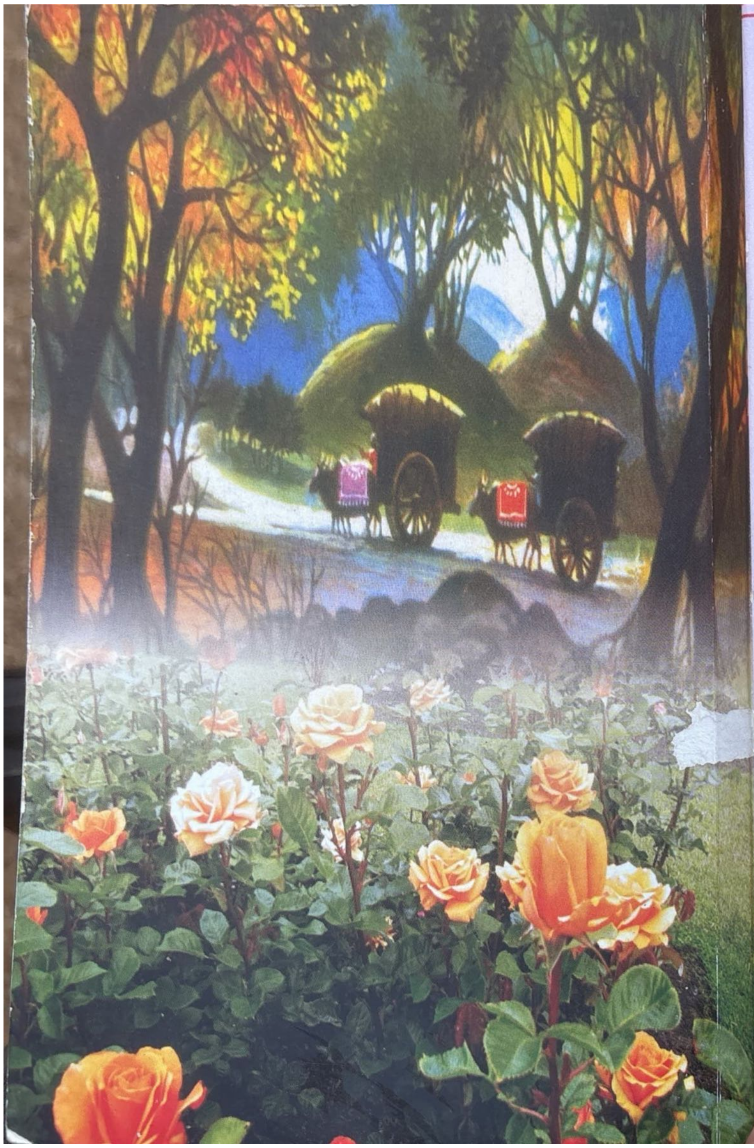


परिकर मालिका (प्रथम भाग) महिला प्रसंग

।। श्रीहरिः ।।

परिकर मालिका

(प्रथम भाग)

महिला प्रसंग



पूज्या माँ, पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) एवं पूज्य श्रीराधाबाबाका जिनसे सर्म्पक रहा है, उन कतिपय माता-बहिनों, साधु-सन्तों, पूज्यजनों, महज्जनों एवं स्वजनों इन सबका संक्षिप्त इति-वृत

प्रस्तुतीकरण

राधेश्याम बंका

॥ श्रीहरिः ॥

परिकर मालिका

(महिला प्रसंग)

(प्रथम भाग)

प्रस्तुतकर्ता—
राधेश्याम बंका

प्रकाशक :
योगेन्द्रनाथ बंका
हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समिति
गीतावाटिका, गोरखपुर—२७३००६

वितरक :
अनुरागकुमार बंका
गोरखपुर मशीनरी स्टोर्स, जलकल-भवन, गोलघर,
गोरखपुर—२७३००१
फोन—(०५५१) २३३३०२०, ३२९९०३८

पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :
साहित्य-मन्दिर
गीतावाटिका,
गोरखपुर—२७३००६
मो०—९७९३८३५८०८

खण्डेलवाल एण्ड सन्स
अठखम्भा बाजार,
वृन्दावन—२८११२१
फो०—(०५६५)२४४३१०१, २४४२१००

प्रकाशन-तिथि :
(१२ सितम्बर २०१३)
वि० सं० २०७० भाद्र शुक्ल अष्टमी
(श्रीराधाष्टमी-महोत्सव दिवस)

मूल्य :
(सेटका मूल्य एक हजार रुपये)
(एक सेटमें पाँच पुस्तकें हैं)

प्रथम संस्करण :
एक हजार

मुद्रक :
राधा प्रेस
२४६५, मेनरोड, कैलाश नगर
दिल्ली—३१

॥ श्रीहरिः ॥

आत्म-निवेदन

गोरखपुर-स्थित गीतावाटिकाकी विभूति-त्रय (परमपूज्या माँ, परम पूज्य बाबूजी [श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार] एवं परम पूज्य श्रीराधाबाबा)के निकटस्थ-जन, चाहे वे समाजके परम वनदनीय महान्-जन और चाहे वे साधारण स्तरके स्वजन-जन हैं, उनका संक्षिप्त परिचय ही इस 'परिकर मालिका' में संकलित है। इस संकलमें प्रथम-भाग मातृ-वर्गसे सम्बन्धित है। प्रथम-भागमें मातृ-वर्गका वृत्त क्यों दिया जा रहा है, इसका आर्य मतके अनुसार एवं विशेष महत्त्व है।

भारतीय संस्कृति और समाजमें नारीका आदरणीय, विशिष्ट तथा गौरवपूर्ण स्थान है। नारी इस भारतदेशकी पावन परम्पराओंसे प्रतिबद्धता, श्रेष्ठतम संस्कारोंसे परिष्कृत तथा अपने कर्त्तव्योंके प्रति संवेदनशील, सतत जाग्रत् और सहज समर्पित है। इसीलिये भारतकी नारीको 'गृहस्वामिनी' तथा 'गृहलक्ष्मी' कहा गया है। वे गौरवमयी हैं तथा सदा ही उत्कृष्ट मानी गयी है। हिन्दू-संस्कृति इस भावनासे परिपूर्ण है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

(जिस कुलमें स्त्रियोंका समादर है, वहाँ देवता प्रसन्न रहते हैं और जहाँ ऐसा नहीं है, उस परिवारमें यज्ञादि क्रियाएँ व्यर्थ होती हैं।)

आर्य-संस्कृतिमें नारी-समाजके प्रति यह केवल शाब्दिक सद्भावनाका प्रदर्शन नहीं है। भारतीय गृहस्थ-जीवनमें पदे-पदे इसकी व्यवहारिक सार्थकता सिद्ध होती है। स्त्री-धर्मकी रक्षासे ही भारत देवताओंका निवास-स्थान बना था और है। देवताओंको अमरलोकसे मर्त्यलोकमें उतारनेके लिय एक नारी-धर्म ही समर्थ है। प्राचीनकालसे भारतमें सती सावित्री, देवी सीता, माता अनुसूया इत्यादिको नारी-धर्मका आदर्श माना गया है।

शक्तिसे ही व्यक्ति शक्तिमान् होता है। यदि शक्ति नहीं हो तो व्यक्तिका शरीर शव ही होता है। यही कारण है कि 'गणेशाय: नम:' के पहले 'श्री' शब्दका प्रयोग होता है। इसी प्रकार राम, कृष्ण, शंकर आदिके पूर्व 'सीता', 'राधा', 'गौरी', 'लक्ष्मी' शब्दोंका प्रयोग होता है।

मानव-जीवनमें नारी-जीवनका स्थान अति महत्त्वपूर्ण है। यही कारण है कि प्रथम-खण्डमें नारी-जीवनके वृत्त संकलित हैं। संकलमें प्रसंगानुरोधसे अथवा भूलसे कहीं-कहीं एक ही प्रसंग दो आ गये हो तो उस ओर पाठकोंको ध्यान नहीं देना चाहिये। प्रसंगानुरोधसे यदि आवृत्ति हुई हो तो, वह उचित ही है, किन्तु यदि भूलसे प्रसंगावृत्ति हुई हो तो वह एक प्रमाद है। बतलाये जानेपर भविष्यमें सुधार दिया जायेगा। यह संकलन सभीको भगवदुन्मुख बनानेकी प्रेरणा दे सका तो यह हमारा सौभाग्य है। भगवान् सबका परम मंगल करें, यही आन्तरिक भावना है।

विनीत
राधेश्याम बंकाजी

सामग्री-सूचिका

क्रमांक	विवरण	पृ० सं०

क्रमांक	विवरण	पृ० सं०

श्रीश्रीभगवती श्रीविष्णुप्रिया प्राकट्य उत्सव

वसंत-पञ्चमी, वि० सं० २०२०

गीतावाटिका, गोरखपुर

वि० सं० २०२० वसंत पञ्चमी, अर्थात् १९ जनवरी १९६४ के दिन बाबाने नदिया विहारी शचीनन्दन श्रीनिमाई पण्डितकी प्राणनिधि भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीका जन्मोत्सव बड़े भावपूर्वक मनाया गया था। भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीके प्रति परमादरणीय श्रीचाचाजी (सम्मान्य श्रीजयदयालजी डालमिया)-का अत्यधिक भक्तिभाव हैं। प्रभुपाद श्रीहरिदासजी गोस्वामीने महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवपर, श्रीलक्ष्मीप्रियापर, श्रीविष्णुप्रियापर तथा श्रीविष्णुप्रिया-निमाईपर प्रभूत साहित्यकी रचना की है। इन्हींकी बंगला भाषामें एक श्रेष्ठ रचना 'विष्णुप्रिया नाटक' है। इस नाटकके हिन्दी अनुवादकी पाण्डुलिपिका पूजन इसी वसंत पञ्चमीको हुआ। मेरा अनुमान है कि इस नाटकका बंगला भाषासे हिन्दीमें रूपान्तर स्वयं श्रीचाचाजीने किया है, भले अनुवादका किंचित् संशोधन किसी अन्यसे करवाया गया हो। मेरा यह भी अनुमान है कि जिस प्रकार बाबाने 'सनातन शिक्षा' के अनुवाद और प्रकाशनके लिये श्रीचाचाजीको प्रोत्साहित किया, उसी प्रकार 'श्रीविष्णुप्रिया नाटक' के अनुवाद और प्रकाशनका कार्य बाबा द्वारा श्रीचाचाजीको सौंपा गया होगा। इस नाटकका पुस्तकाकार प्रकाशन तो वि० सं० २०२१ की रासपूर्णिमाको हुआ, पर जब इसके हिन्दी अनुवादकी पाण्डुलिपि तैयार हो गयी, उस समयकी बात है।

पाण्डुलिपिके तैयार होते ही बाबाने निश्चय कर लिया कि वि० सं० २०२० की वसंत पञ्चमीके दिन भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीका और इस ग्रन्थका पूजन करना है तथा यह पूजन श्रीचाचाजीसे करवाना है। वसंत पञ्चमी तो आयेगी दस-ग्यारह मास बाद, पर बाबाकी ओरसे अग्रिम तैयारी अभीसे आरम्भ हो गयी। वसंत पञ्चमीसे आठ-नौ मास पूर्व एक दिन बाबाने मुझको बुलाया और मुझसे कहने लगे—आपको एक कविता लिखनी है। उसकी वर्ण्य-वस्तु तथा कथा-प्रवाह क्या होगा, वह मैं आपको अभी बतलाऊँगा। मेरे बतलाते समय आप न कोई प्रश्न पूछियेगा और न कोई जिज्ञासा करियेगा। मेरी बतायी हुई बातोंमेंसे जितना स्मरण रह जाय, उतना पर्याप्त है। मेरे वर्णनके आधारपर जो कविता

आप लिखें, उसे वसंत पञ्चमीके पूर्वतक कभी भी मुझे दिखलाइयेगा मत और यदि कविताकी रचना आपके द्वारा नहीं हो सके तो मनमें ग्लानि भी मत करियेगा। यदि आपने कविताकी रचना कर ली तो वसंत पञ्चमीके दिन अपनी कुटियाके एकान्तमें श्रीजयदयालजीको सुनवाऊँगा।

इस प्रकार अनेक प्रतिबन्ध लगाकर बाबा लगभग एक-डेढ़ घंटेतक लगातार बोलते-बतलाते रहे। मैं दत्त-चित्त होकर सुन रहा था, पर कितना स्मरण रख पाता? सुनी हुई बातोंमेंसे जितना मुझे स्मरण रह सका, वह भी दो-तीन मासमें विस्मृतिके गर्भमें चला गया। अभी तो बहुत समय है—ऐसा सोचकर तुरन्त रचना की नहीं और समयके व्यतीत होनेके साथ-साथ स्मृति अधिकाधिक धूमिल होती चली गयी। छः-सात मास बाद तो कुछ भी याद नहीं आ रहा था। बाबा द्वारा वर्णित सम्पूर्ण कथा-प्रवाह ही पूर्णतः विस्मृत हो चुका था। मेरा मन बड़ा खिन्न हो गया। निराश और निर्बलका आधार प्रार्थना ही है। मैं मन-ही-मन भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीकी बार-बार वन्दना करके उनसे प्रार्थना करने लगा। चार-पाँच सप्ताहकी सतत वन्दना-प्रार्थनाके उपरान्त जो भाव मनमें उभरे, वे ही कविताकी पंक्तियोंमें ढल गये। अपने प्रमाद और विस्मृतिपर मुझे बड़ी शर्म आ रही थी, पर अब मैं इसी बातसे ही सन्तोष कर रहा था कि साधारण स्तरकी कविताकी रचना हो जानेके बाद बाबाके सामने रिक्त-हस्त जानेवाली स्थिति नहीं रही।

बाबाके मनमें एक बहुत बड़ी समस्या थी श्रीविष्णुप्रियाजीके समक्ष निवेदित किये जानेवाले नैवेद्यके सम्बन्धमें। सब जानते है कि श्रीविष्णुप्रियाजी प्रातःकालीन दैनन्दिन पूजनादिके बाद एक पात्रमें कुछ चावल अपने सामने रखकर बैठती थीं और सोलह नामवाले मन्त्रको एक बार जप करके चावलका एक दाना दूसरे पात्रमें डाल देती थीं। चावलके दानोंके साथ उनका यह जप अपराह्न कालतक चलता रहता। इस रीतिसे दूसरे पात्रमें जितने चावल संचित हो जाते, उसका ही रन्धन किया जाता और फिर वे सिद्ध भातसे अपने प्राणनाथ श्रीचैतन्यदेवको भोग लगाती थीं। इसमेंसे वे थोड़ा-सा प्रसादी भात स्वयं पातीं, शेष प्रसादान्न भक्तोंमें बाँट दिया जाता था। जिन भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीका समर्पित जीवन कठोर तपका, महान् उत्सर्गका, दिव्य भावका मूर्तिमान् स्वरूप था, उनके समक्ष निवेदित किया जानेवाला नैवेद्य भी तो परमातिपरम शुद्ध

सात्त्विक होना चाहिये। इसके लिये बाबाको आवश्यकता थी परम पवित्र धनकी, जिससे नैवेद्य-निमार्णके लिये सामग्री खरीदी जा सके।

बाबाने अपने निकट आनेवाले प्रत्येक धनपतिसे कमाये गये धनकी शुद्धताके बारेमें पूछा तो बाबाको बड़ी निराशा मिली। सभी धनपतियोंने स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया कि द्रव्यार्जनमें असत्य अथवा असद्भावका किञ्चित् भी आश्रय लिया ही नहीं गया, ऐसा नहीं कहा जा सकता। जो व्यापारी अथवा उद्योगपति आयकरकी चोरी नहीं करते, उनके द्वारा भी अपने कर्मचारियोंके प्रति कभी अन्यथा व्यवहार नहीं हुआ हो, यह स्वीकार करना सर्वथा असम्भव है। बाबाकी इस कसौटीको देखकर सारे धनपति स्वजनोंने अपनी-अपनी विवशता व्यक्त कर दी। जो सरकारी कार्यालयोंके साधु कर्मचारी थे अथवा नगरके महाविद्यालयके सुयोग्य प्राध्यापक थे, उन्होंने भी बाबासे अनुरोध किया। उन सभीसे बाबाका प्रश्न था कि क्या वे लोग डटकर-खटकर-जमकर पूरे समय अपना कार्य सदा करते रहे हैं। बाबाके प्रश्नोंकी झड़ीके सामने वे लोग भी विवशताका अनुभव करने लगे। बाबा हृदयसे चाहते थे कि भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीके लिये जो नैवेद्य बने, उस नैवेद्यकी सामग्रीको परम पवित्र रीतिसे कमाये गये अत्यधिक शुद्ध रुपयोंसे खरीदा जाय।

बाबाकी परेशानी देखकर श्रीगोस्वामीजी (पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी) ने उनसे कहा—क्या आप मेरा वेतन इस पवित्र काममें ले सकते हैं?

श्रीगोस्वामीजीकी बात सुनकर बाबा कुछ देर तक मौन रहे और फिर बोले—आपके धनकी शुद्धता और पवित्रताके बारेमें संदेह करनेके लिये स्थान ही नहीं है। 'कल्याण-कल्पतरु' पत्रिकाका सम्पादन-कार्य स्वरूपतः परम श्रेष्ठ कार्य है। आपके जीवनमें असत्यका अंश नहीं। आप छः घंटेके स्थानपर तेरह-चौदह घंटे कार्य प्रतिदिन कार्य करते हैं, यहाँतक कि आप रविवारको भी अवकाश नहीं लेते। अबतक मैंने जितने भी व्यक्तियोंसे बात की है, उन सभीमें आपका स्थान सर्वोपरि है। इतना होकर भी यहाँ मेरे लिये एक तथ्य विचारणीय है। पत्रिकाके सम्पादन-कार्यके द्वारा आप समाजमें ज्ञानका वितरण करते हैं और इस कार्यको करनेके बदलेमें आप मासिक वेतन लेते हैं। अब विचारणीय तथ्य यह है कि किसी ब्राह्मणके द्वारा ऐसा किया जाना क्या अनुमोदनीय है? अपने भारतवर्षके हिन्दू-धर्म और हिन्दू-संस्कृतिके अनुसार समाजको ज्ञानका दान

करनेवाले ऋषि तो आकाश-वृत्तिसे जीवन व्यतीत किया करते थे। कुछ देकर बदलेमें कुछ लेना, यह लेन-देन तो वणिक् वृत्ति है और अपने ऋषियोंका जीवन तो वणिक् वृत्तिसे सर्वथा शून्य रहा है। वे ज्ञानका दान निरपेक्ष भावसे करते थे। यदि आप वैश्य होते तो मैं आपका पवित्र धन सहर्ष स्वीकार कर लेता, किन्तु आप ब्राह्मण है, अतः अब मुझे सोचना पड़ रहा है कि आप द्वारा उपर्जित धन स्वीकार करूँ अथवा नहीं।

बाबाकी बात सुनकर श्रीगोस्वामीजी मौन हो गये। वैश्यके द्वारा उपर्जित धनको स्वीकार किया जा सकता है, यह सुनकर मैंने कुछ निवेदन करनेके लिये साहस किया। विनम्र शब्दोंमें मैंने बाबासे कहा—बाबा! मैं भी कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।

बाबा श्रीविष्णुप्रियाजीकी अर्चनाके लिये जिस प्रकारका परम पवित्र धन चाह रहे थे और पद-पदपर जैसी निराशा मिल रही थी, ऐसी विषम मनस्थितिमें मेरे द्वारा कुछ भी निवेदन किया जाना एक दुःस्साहस ही था, यह जानते हुए भी मुझसे निवेदन किये बिना रहा नहीं गया। मेरी बात सुनकर बाबाने पूछा—क्या कहना चाहते हैं?

बाबाने मुझसे पूछा ऐसे स्वरमें, जिसमें कुछ निराशा और कुछ उदासीनता थी। उनके स्वरमें चिरपरिचित सरसता न देखकर मैं साहस बटोर करके डरते-डरते अपनी बात कहने लगा। मैंने धीरे-धीरे कहना आरम्भ किया—बाबा! जब मैं सरदारशहरमें पढ़ाया करता था, तब कई वर्षतक मैं अपने हाथसे चरखे द्वारा सूत कातता रहा हूँ। मैं अपना कमरा बन्द कर लेता था। श्रीरासपञ्चाध्यायीका पाठ बोल-बोलकर करता रहता और सूत कातता जाता। इसमें प्रतिदिन लगभग ४५ मिनट लगते। अभीतक मैंने किसीको बतलाया नहीं और बतलानेका साहस भी नहीं हुआ, पर सूत कातनेके पीछे भावना यह थी कि इस कते हुए सूतका वस्त्र बने और वह वस्त्र आपके धारण करनेके काममें आये। वह सारा सूत अभीतक मेरे पास पड़ा हुआ है। यह श्रम तो मैंने किया है और परम सात्त्विक उद्देश्यसे किया है। मेरा ऐसा अनुमान है कि सूतको बेचकर जो पैसा मिले, वह तो इस पूजनके कार्यमें आ ही सकना चाहिये।

बाबाने मुझसे पूछा—जिस कालेजमें आप पढ़ाते थे, वहाँ नियुक्ति-प्राप्तिके लिये क्या आपने किसीसे सिफारिश करवायी थी, जिसके फलस्वरूप कालेजमें

कार्य करनेका अवसर आपको मिल गया और आपसे अधिक योग्य व्यक्ति निराश होकर चला गया?

मैंने पुनः कहा—बाबा! कम-से-कम मैं आपके सामने सत्य बोलूँगा। मैंने किसीसे भी सिफारिश नहीं करवायी थी। कालेजके प्रबन्धकों द्वारा समाचारपत्रमें रिक्त स्थानको विज्ञापित करवाया गया था। मैंने अपना प्रार्थना-पत्र भेज दिया और मुझे साक्षात्कारके लिये बुलवाया गया। मैं उनके लिये और वे मेरे लिये सर्वथा नवीन व्यक्ति थे और भी कई व्यक्ति आये थे, पर उन लोगोंने नियुक्ति-पत्र अपनी स्वेच्छासे मुझे दिया।

इस विवरणसे बाबाको पूर्ण समाधान हो गया। बाबासे अनुमति मिलते ही सारा सूत एक स्वजनको बेच दिया गया। बेचनेसे जितना रुपया मिला, उसमेंसे रूईका मूल्य निकाल दिया गया। शेष पाँच-छः रुपये बचे। इन्हीं रुपयोंसे नैवेद्य-निर्माणके लिये चावल, बेसन, दही, नमक, हल्दी, जीरा, घी, कोयला आदि खरीदा गया और पूजनके लिये नैवेद्य निर्माणकी तैयारी होने लगी।

चावलको खरीदनेके बाद अब चावलके एक-एक दानेको सोलह नामवाले महामन्त्रसे अभिमन्त्रित करना था। सभी चाहते थे कि इस कार्यमें मुझे भी भाग लेनेका अवसर मिले, पर इस दृष्टिसे भी बाबाने मन-ही-मन एक विशेष निर्णय ले रखा था। जिसके हृदयमें महातपस्विनी भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीके त्रयतापहारी श्रीचरणोंमें सच्ची निष्ठा हो और जिसकी मति-रति उन परम विश्ववन्दनीयाके महोत्सर्ग और महानुरागपर बार-बार बलिहारी जा रही हो, उन्हींके द्वारा अभिमन्त्रित करनेका कार्य होना चाहिये और ऐसा सोचकर बाबाने इस कार्यका सौभाग्य श्रीडालमिया-दम्पतिको प्रदान किया। कुछ लोगोंने बाबासे निवेदन किया—श्रीजयदयालजी और उनकी जीवनसंगिनी, ये दोनों मिलकर एक दिनमें कितने दाने अभिमन्त्रित कर पायेंगे?

बाबाने तत्काल उत्तर दिया—इस रीतिसे भले सौ दानें ही अभिमन्त्रित किये जा सकें, पर मुझे तो केवल ये ही सौ चाहिये।

बाबाके उत्तरसे सभीके अधर मौन हो गये। परमादरणीया चाचीजी तथा चाचाजी, दोनोंने स्नान करके शुद्ध देशी वस्त्र धारण किया और पवित्र आसनपर बैठ करके "**हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे**" का जप करते हुए वे चावलके एक-एक दानेको अभिमन्त्रित करने लगे।

प्रात:कालसे लेकर दोपहरके लगभग एक-दो बजेतक जप करनेसे जितने दाने अभिमन्त्रित किये जा सके, उनको ही सिद्ध किया गया। जहाँ रन्धन किया गया, उस स्थानकी शुचिताके बारेमें बाबा बड़े सावधान थे। सारी भूमिको गायके गोबरसे लीपा गया था। कुछ-कुछ ऐसा याद आ रहा है कि रन्धनका कार्य सम्पन्न हुआ था श्रीगोस्वामी (पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी) की धर्मपत्नीके द्वारा। आज बाबा पद-पदपर सावधान थे, जिससे कठोर-व्रती, महा-साध्वी भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीके भावोंके अनुरूप कार्य हो सके।

दो नयी चौकीपर विश्वपावनी भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीका और विश्वप्रेरक श्रीविष्णुप्रिया नाटकका सविधि पूजन हुआ। एक ब्राह्मण दम्पतिका बड़े भाव पूर्वक पूजन किया गया और भोजन कराकर उन्हें पर्याप्त वस्त्र एवं द्रव्य दिया गया। बाबाने यह सारी पूजा श्रीडालमियाजीके द्वारा करवायी। कीर्तनके बोल तो मुझे स्मरण नहीं, परंतु पूजनके बाद भगवती श्रीविष्णुप्रियाजी एवं महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवके नामका बहुत देरतक तुमुल कीर्तन होता रहा। इसके बाद वह परम दिव्य प्रसाद सबके मध्य वितरित किया गया। मात्र कुछ क्षण ही सभीको मिल पाये। वह प्रसाद था अति दुर्लभ और परम प्रभावकारी। कुटियाके आस-पासका वातावरण बड़ा भावमय हो रहा था। बाबा आज विशेष रूपसे भावाविष्ट थे। बाबाने पहले भी कई बार कहा है और आज भी कहा—क्रन्दन ही मेरा जीवन है। सच पूछा जाय तो आज 'क्रन्दन' का उत्सव था। श्रीविष्णुप्रियाजी तो क्रन्दनकी साक्षात् प्रतीक हैं।

रात्रिके समय जगरेके पास बाबाने वह कविता श्रीचाचाजीको सुनवायी। जाड़ेके दिन थे और कुटियाके बाहर धूनी जल रही थी। वहींपर बाबाने श्रीचाचाजीको बैठाया। कुछ और स्वजन भी स्वेच्छासे आ गये और उनको भी बाबाने बैठनेका अवसर दिया। बाबाकी चाह तो पूर्ण एकान्तकी थी, पर वैसी बात बन नहीं पायी। सभीके सामने वह कविता पढ़ी गयी। कविताको सुनकर बाबाने बड़ा साधुवाद दिया और कहने लगे—श्रीगंगाजीमें पापी-तापी-शापीको मुक्ति प्रदान करनेकी जो क्षमता है, उस क्षमतामें और श्रीगंगाजीकी सम्पूर्ण सत्तामें प्रेमकी प्रतिष्ठा करनेके लिये, इतना ही नहीं, उस मुक्ति-प्रदायिनी सत्ताके कण-कणमें प्रेमोद्भूत क्रन्दनकी ज्वाला भरनेके लिये श्रीराधाकृष्णने व्रजका यमुनातट छोड़कर नवद्वीपमें गंगातटपर अवतार लिया, इस तथ्यकी अभिव्यक्ति बड़ी

सुन्दर रीतिसे हुई है। मैं सही-सही कह रहा हूँ कि मेरा भावराज्य रुपयेमें बारह आना इस कवितामें उतर आया है।

मैंने विनम्र शब्दोंमें कहा—आठ-नौ मास पहले आपने जो बताया था, वह मैं सर्वथा भूल गया। मैंने रचना करनेमें बड़ी देर कर दी। जब कविता लिखनेके लिये बैठा तो कुछ भी याद नहीं आ रहा था। फिर मैं भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीसे मन-ही-मन प्रार्थना करने लगा। उनकी कृपासे जो स्फुरित हुआ, वही इस कवितामें लिखा गया है।

बाबाने कहा—जो लिखा गया है, वह एक अद्भुत वस्तु है।

फिर बाबाने चाचाजीसे कहा—आप इस कविताको छपवा दें।

श्रीचाचाजीतो छपवानेकी बात सोच ही रहे थे, अब तो बाबाने भी निर्देश दे दिया। वही कविता अन्तमें संलग्न है।

उस कते हुए सूतके सम्बन्धमें भी एक तथ्यको लिख देनेकी स्फुरणा मनमें हो रही है। जिनको वह कता हुआ सूत बेचा गया था, वे अपने ही एक आत्मीय जन थे और वह सूत उनके पास पूर्णरूपेण सुरक्षित रखा हुआ था। उस कते हुए सूतका वस्त्र यहाँके खादी भण्डारने बनवा दिया और क्या ही सुन्दर बात बन गयी कि ठीक श्रीराधाष्टमीके दिन बाबाने उन वस्त्रको धारण किया। जैसा मैं वस्तुतः चाह रहा था, वैसा घटना-क्रमके अनुसार क्रमशः अपने आप हो गया। मैं इसके बारेमें कुछ कहने या करनेका साहस नहीं कर पा रहा था, पर परम कृपालु भगवान्ने स्वतः वह ढंग बैठा दिया, जिससे मेरी एक अभिलाषा पूर्ण हो सकी।

सूतको कातने तथा बेचनेका और कविताको रचने तथा सुनानेका जो प्रसंग ऊपर लिखा है, पत्रमें यह सब लिखते हुए मुझे बड़ा संकोच हो रहा था। अपनी बात अपने मुँहसे बताना और अपनी कलमसे लिखना कोई अच्छी बात नहीं है। ऐसा होकर भी मैंने लिखनेकी धृष्टता की, पर इसके लिखनेके पीछे सचमुच मूल प्रेरणा थी बाबाके सत्यपरायण जीवनकी एक झाँकी प्रस्तुत करना। बाबा किसी बातकी कितनी अधिक गहराईमें उतरते हैं, किसी बातको कितना अधिक परखते हैं, किसी बातकी तहतक पहुँचनेके लिये कितनी अधिक खोजबीन करते हैं और शुद्धता-पवित्रता-सत्यताके प्रति कितना आग्रह रखते हैं, इन सबको जाननेके लिये यह प्रसंग एक उदाहरण है। इस प्रसंगके साथ मेरा नाम जुड़ा रहनेसे मुझे

वस्तुतः बड़ा संकोच हो रहा था, पर संकोचके भारको मनको सहन किया यही सोचकर कि इससे बाबाके व्यक्तित्वका एक गौरवपूर्ण पक्ष उद्घाटित होगा।

वि० सं० २०२० (१९ जनवरी १९६४) के शुभ दिवसपर पढ़ी गयी रचना

नीरव दिशि-दिशि नीरव निशीथ, नीरव था नभका तारकदल।
नीरव नभ-गंगाके कण-कण, नीरव था नभका नीलाञ्चल॥
उस नीरवतामें था स्पन्दित, नीरव संलाप मृदुल अविरल।
निशिका निशीशका नेह छके, दो हृदयोंका अतिशय निश्छल॥

दो अधर हिले चुपचाप खुले, नभ-गंगाके नव पनघटपर।
दो हृदय इधर उन्मुक्त खिले, नवद्वीप-पार्श्विनीके तटपर॥
था सजा शयन-गृह, शय्यापर विकसित पुष्पोंकी नव चादर।
शय्यापर पुष्पोंका वितान, शय्यापर पुष्पोंकी झालर॥

धूम-गंधसे शुचि शोभासे, मुखरित था शयनागार सकल।
शोभाकी शोभा बढ़ी और पा विमल स्नेहकी सुरभि विमल॥
दो स्नेही हृदयोंसे विकसित जो स्नेह लहरियाँ थीं निर्मल।
उनकी सुषमासे शयन-कक्षकी शोभा थी बोझिल प्रतिपल॥

उस शयन-कक्षकी शय्यापर थे परम सुशोभित नित्य युगल।
श्रीविष्णुप्रिया चैतन्य गौर, प्रेमी-प्रेमास्पद नित्य नवल॥
दोनों ही दोनोंमें डूबे, दोनों ही सुखदाता अविरल।
थीं पैर दबाती विष्णुप्रिया, चैतन्य-हृदय पुलकित पल-पल॥

कुछ कौतूहल, कुछ उत्सुकता, कुछ जिज्ञासाकी मधुर लहर।
उभरी धीरे-से मन्द-मन्द श्रीविष्णुप्रिया-मुख-मण्डलपर॥
उस नीरवतामें छलक पड़ा भीना-भीना-सा नीरव स्वर।
प्राणोंने पूछा मौन-मौन—'क्या मैं ही राधा हूँ? प्रियवर'॥

प्राणोंका नीरव प्रश्न सुना—नवद्वीप-पार्श्विनी सुरसरिने।
उस शयन-कक्षके कण-कणने, चैतन्य गौरके अन्तरने॥
मौन प्रश्नका दिया मौन उत्तर था अधर-अरुणिमाने।
चैतन्य गौरके अधर-विहारी, नित्य विलासी मधु स्मितने॥

''प्रियतमे! भूल क्या गयीं स्वयंको, मुझको, इतनी भोली तुम?
हम नित्य सङ्ग, सम्बन्ध नित्य, मैं माधव हूँ, हो राधा तुम''॥
प्राणोंने पूछा पुनः प्रश्न—''फिर कहाँ तरणिजा-धार परम?
त्यागी क्यों वह स्नेहिल यमुना? सुरसरिता-तीर बसे क्यों हम''?

मूक प्रश्नका मूकोत्तर था तुरत दिया फिर मधु स्मितने।
''पायी मुक्ति परम दुर्लभतम, सुरतरंगिणीसे जगने'॥
उस मुक्तिदायिनी सत्ताके कण-कणमें आये हैं भरने।
क्रन्दन-ज्वाला,जिसमें जल-जल, नित ज्वलित ज्वालके स्नेह सने''॥

''तो क्या मुझको जलना होगा क्रन्दनकी ज्वालामें? प्रियतम।
क्या मुझको अब बहना होगा, आँसूकी धारामें हरदम''?
''हम तुम एक, अतः प्राणाधिक प्रियतमे जलो क्यों केवल तुम?
क्रन्दन-ज्वाला में साथ-साथ अनवरत जलेंगे दोनों हम''॥

शब्दातीत सरल जिज्ञासा व्यक्त हुई जो बिना शब्द ही।
सरस गरलमय समाधान भी प्राप्त हुआ जो अनायास ही॥
सुना शयनगृहने, शय्याने, सुरसरिने अन्दर-अन्दर ही।
निशि-निशीश, नभ-गंगा, नभके नीलाञ्चलने मौन-मौन ही॥

✧ ✧ ✧

जाने कितने तारे टूटे नभके विस्तृत नीलाञ्चलसे।
जाने कितने अश्रु बह गये सुरतरंगिणीके कपोलसे॥
जाने क्यों कहता फिरता है, व्यथित समीरण अपने मुखसे।
व्यथा-तप्त करुणार्द्र कहानी, दो विरही हृदयोंकी जगसे?

नीलाचलमें नील उदधिके नील तीरपर व्यथित विराजित।
सुध-बुध सभी गौर सुन्दरकी, नील-धारमें बही अपरिमित॥
नीलकृष्णके एक चरणपर, सुख-दुख सब हो गया समर्पित।
'कृष्ण', 'कृष्ण'के करुण रुदनसे दिशा-दिशा हो गयी निनादित॥

रुदन कण्ठमें, रुदन रोममें, रुदन नयनकी हर हलचलमें।
धधक उठी क्रन्दनकी ज्वाला गौर-हृदयके प्रति स्पन्दनमें॥

कृष्णान्वेषण दिनमें, निशिमें, जलमें, नभमें, जड़-चेतनमें।
कृष्ण-विरहकी चिता जल गयी व्यथित गौरके अङ्ग-अङ्गमें॥
एक बह चला सजा चिताको, नीलाचलकी नील-धारमें।
एक गयी सम्पूर्ण डूब, अपने आँसूके गहन उदधिमें॥
गौर-हृदयकी नित विहारिणी, जली गौरके विरह-ज्वालमें।
जल-जल बुझना, बुझ-बुझ जलना, शेष यही था उस जीवनमें॥

कितने आँसू हुए प्रवाहित विष्णुप्रियाके तृषित नयनसे?
कितनी भीगी साड़ी उतरी, गौर-विरहमें दग्ध बदनसे?
कबसे हो रहा संगमन, सुरतरंगिणीकी धारासे?
सरस्वती-यमुनाका अविरल, निकल-निकलकर शून्य नयनसे?

कैसी चाह मिलनकी भीषण, जली प्रियाके हृदय-सदनमें?
कैसा हाहाकार मचा था, तनमें, मनमें, और नयनमें?
'हा-हा' भीतर, 'हा-हा' बाहर, भीतर-बाहरके कण-कणमें।
'हा हा' का रव व्याप्त हो गया, जलमें, थलमें और गगनमें॥

हाहाकार भरे घरमें था कहीं न कुछ भी स्वरका स्पन्दन।
सूनी आँखें, सूना जीवन, सूना घरका सारा आँगन॥
नीरव प्राङ्गणमें बैठी थी, विष्णुप्रिया अति ही नीरव मन।
नमित नयनकी व्यथित अश्रु धाराने पूछा—'हे जीवन-धन'॥

तुरन्त गौर सुन्दरकी मनहर गौर कान्तिसे नित संस्पर्शित।
नील लहरियोंसे ध्वनि आयी—'कहो प्रियतमे! क्या अभिवाञ्छित'?
स्वप्न-देशके वीणा-रव-सी, नीरव ध्वनि सुन हुई विकम्पित।
अश्रु-धारकी परमाकुलता मौन-मौन ही हुई निवेदित॥

'कब तक मुझको बहना होगा? क्या सत्य एक यह क्रन्दन है?'
जलना-बुझना, बुझना-जलना, क्या यही एक बस जीवन है?
कब तक ये गीले नयन गले? क्यों दूर हृदयका चन्दन है?
क्या आशा करूँ न दर्शनकी? क्या दासी पूर्ण अभागिन है'?

नील लहरियोंकी नीरव ध्वनि हुई ध्वनित नीरव प्राङ्गणमें।
'हम तुम एक सदा सङ्गी हैं दुसह विरहके भी प्रसङ्गमें॥
विरह मिलनका पोषक, हम-तुम जलें और भी, प्राण-प्रियतमे।
क्रन्दन और हास्यसे ऊपर पुनः मिलन होगा निकुञ्जमें'॥

आशा छूटी, बिजली टूटी कलित बेलपर गौर मिलनके।
सम्बल छूटा, तारे टूटे पूर्ण तिमिरमय नीलाम्बरके॥
धीरज छूटा, बन्धन टूटे, भग्न हृदयके नयन-कोषके।
टूट-टूटकर आँसू बिखरे, आँगनमें सम्पूर्ण विश्वके॥

डूब गया वसुधाका आँगन, डूब गया नभका नीलाञ्चल।
डूब गया नवद्वीप-पार्श्विनी सुरतरंगिणीका भी आँचल॥
आँचलकी सारी सत्ता भी डूब गयी आँसूमें गल-गल।
बची समयके दो कपोलपर शुभ्र अश्रुकी धार अनर्गल॥

वही समय साक्षी हैं जगमें, शुभ्र अश्रुकी शुभ धाराका।
वही समय साक्षी हैं अब भी, नव निकुञ्जकी शुभ-शोभाका॥
जहाँ छिटकता शुभ प्रकाश है, पीली नीली ललित शिखाका।
जिसके शुभ्रालोक-पुञ्जमें, डूबा कण-कण है अग-जगका॥

पूज्या जन्मदात्री माँ

(परम पूज्य श्रीराधाबाबाकी)

परम पूज्य पं० श्रीमहीपालजी मिश्रकी परम पुण्यमयी सौभाग्यशालिनी सधर्मिणी पूज्या श्रीअधिकारिणी देवीकी कोखसे सं १९६९ पौष शुक्ल नौमी, तद्नुसार १६ जनवरी १९१३ को पूज्य बाबाका आर्विभाव हुआ था। परिवारमें मंगलका वातावरण परिव्याप्त था। ग्राममें ही शैशव बीता तथा प्रारम्भिक शिक्षाका शुभारम्भ ग्राममें ही हुआ। एक बार बाबाकी बाल्यावस्थामें आँखपर एक घाव हो गया था। अनेक प्रकारके उपचार किये गये, पर उससे घाव ठीक नहीं हो रहा था। जन्मदात्री माँका बच्चेके प्रति सीमातीत लाड़ था। उसका हृदय बड़ा व्याकुल था। वह हृदयसे श्रद्धालु थी और कातर स्वरमें मन-ही-मन

भगवान्से प्रार्थना करने लगी—आप सब कुछ कर सकते हैं। मेरे बच्चेको ठीक कर दीजिये।

सच्ची प्रार्थनाकी सुनवाई होती है। गाँवमें एक खटपटिया साधु आये। माँ उनके दर्शनार्थ गयी और माथा टेक करके बोली—महराजजी! मेरे बच्चेकी आँखपर घाव हो गया है। वह ठीक नहीं हो रहा है। मैं बहुत विकल रहती हूँ। आप थोड़ी दया कर दीजिये।

माँकी बात सुन करके महात्माजीका हृदय द्रवित हो उठा। वे महात्माजी अपने साथ श्रीशालिग्राम भगवान्की पूजा रखते थे। उन्होंने अपने थैलेमेंसे एक छोटा-सा डिब्बा निकाला और उसे खोला। डब्बेमें श्रीशालिग्रामका पावन विग्रह था और उसके पास भस्म रखी थी। भस्मकी चुटकी उनको दे करके महात्माजीने कहा—यह भस्म घाव पर लगा देना। इससे घाव ठीक हो जायेगा।

उस प्रसादको पा करके माँ बहुत प्रसन्न हुई और फिर उनसे हाथ जोड़कर कहने लगी—आप मेरी कुछ सेवा स्वीकार कर लें।

महात्माजीने कहा—इस समय कुछ नहीं। अभी तो तुम यह भस्म घाव पर लगा देना। जब घाव ठीक हो जायेगा, तब मैं किसी दिन तुम्हारे पास आऊँगा और तुम मुझे दही-चूड़ा खिला देना।

माँ वह भस्म लेकर आयी और घावपर भस्मको लगा दिया। अब प्रभुका चमत्कार यह था कि बहुत दिनोंसे नहीं ठीक होनेवाला घाव दो-तीन दिनमें ही ठीक हो गया। माँ उन महात्माजीके प्रति बड़ी कृतज्ञ थी और सदा राह देखती रहती थी कि वे आवें तो उनको दही-चूड़ाके रूपमें भिक्षा कराऊँ, किन्तु वे फिर कभी भविष्यमें आये नहीं। ऐसे परहितकारक संत भारत भूमिपर यत्र-तत्र छिपे रूपमें विचरण करते रहते हैं और उनकी भाव-गरिमाके कारण ही भारत-भूमिकी आध्यात्मिकता सदैव विख्यात रही है और भविष्यमें रहेगी भी।

बचपनकी अन्य अनेक बातोंको जाननेके लिये पूज्य बाबाके जीवनके अगणित पृष्ठोंवाले जीवन-चरित्रका अवलोकन करना चाहिये। एक बात विशेष रूपसे उल्लेखनीय है कि बाबाने अपनी आयुके नौ वर्षोंतक मातृ-स्तनोंके पावन दुग्धका पान करते रहे हैं।

बचपनमें बालक चक्रधर अपनी जन्मदात्री माँके अत्यधिक आज्ञाकारी पुत्र थे। इसका एक रोचक प्रसंग इस प्रकार है—गाँवसे थोड़ी दूरपर चचेरी बहिनका विवाह हुआ था। माँ अपने पुत्र चक्रधरको उसकी चचेरी बहिनके ससुराल भेजना चाहती थी। चक्रधरने जाना स्वीकार भी कर लिया। चक्रधरको भेजनेके लिये तैयारी की जाने लगी। द्वारपर पालकी आ गयी। इसी समय माँने अपने पुत्र चक्रधरसे कहा—क्या तुम मेरी एक बात मानोगे? मानो तो कहूँ?

माँकी समझमें ऐसा था कि पता नहीं मेरी बात यह मानेगा या नहीं। अब यह अँग्रेजी स्कूलकी दसवीं कक्षामें पढ़ता है, न जाने कैसे-कैसे लड़कोंकी संगतिमें रहता है, अतः पता नहीं कि यह अपनी कुल-परम्पराका निर्वाह करेगा या नहीं। मनमें ऐसी दुविधा होनेके कारण माँने अपने पुत्रसे वैसा प्रश्न किया था, परंतु वह तो मातृ-भक्त था ही। माँने ज्यों ही पूछा, त्यों ही चक्रधरने तत्काल कहा—मैं जरूर मानूँगा।

तब माँने कहा—अपनी बहिनके घरपर जा रहा है। तुम उस गाँवका पानी मत पीना। जब पानी ही नहीं पीना है, तब भोजन करनेकी बात ही कहाँ रह जाती है? जब तुम अपनी बहिनके घरपर पहुँचोगे तो तुम्हारे सामने जल-पात्र रखा जायेगा। तुम झुक करके और हाथ जोड़ करके उसको प्रणाम कर लेना। मैंने तुम्हारे लिये पूड़ी-साग बना दिया है। यह भोजन मैं तुम्हारे साथ पालकीमें रखवा दूँगी। उससे मिल लेनेके बाद गाँवकी सीमाके बाहर आकर जो कुआँ हो, उस कुएँपर बैठकर, अपना हाथ-पैर धोकर भोजन कर लेना, परंतु अपनी बहिनके घरकी तो बात ही क्या, उसके गाँवका न तो पानी ही पीना और न कोई वस्तु ही खाना। तुम पालकीमें जाओगे। पालकी ढोनेवाले चार कहाँर रहेंगे। वे चारों कहाँर तो तुम्हारी बहिनके घरपर ही खायेंगे। उन कहाँरोंको तुम वहाँ भोजन करवा देना, पर तुम अपने बारेमें तनिक भी ढीले मत पड़ना। कोई कितना भी अनुरोध करे, पर करना वैसे ही, जैसे मैंने कहा है।

चक्रधरने अपनी माँकी बात ज्यों-की-त्यों मान ली। गाँवसे चलनेके पूर्व घरका महरा आया। घरमें बर्तन माँजनेवालीको महरी और पानी भरनेवालेको महरा कहते हैं। वह घरका महरा कहने लगा—भइया! जिस गाँवको आप जा रहे हैं, उसी रास्तेमें उससे पहले जो गाँव पड़ता है, वहाँ मेरी बेटी ब्याही है। बाबू! जरा उससे भी मिल लेना तथा उसका भी हाल-चाल पूछ लेना।

महरेको भी चक्रधरने मिल लेनेका आश्वासन दिया। पालकीपर चढ़कर चक्रधर अपनी चचेरी बहिनके यहाँ चल दिया। बहिनके घर पहुँचनेपर बड़ा

स्वागत-सत्कार हुआ। बहिनके घरपर खाने-पीनेके लिये बड़ा आग्रह किया गया, परंतु उस आग्रहको स्वीकार करनेकी बात ही समाप्त थी। जल-पात्र आया तो चक्रधरने हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उसका सम्मान किया। चारों कहाँरोंको बहिनके घरवालोंने भोजन करा दिया।

चक्रधरके साथ भोजनका सामान था ही। वह यही सोच रहा था कि यहाँ बहिनके घरसे विदा होनेके बाद पासवाले गाँवमें जाना ही है, जहाँ महरेकी बेटी है। उस गाँवमें जाकर भोजन कर लूँगा, जल पी लूँगा और महरेकी बेटीसे भी मिल लूँगा। अब चचेरी बहिनसे विदा होनेका समय आया। जिसे देखकर बहिन बड़ी प्रसन्न हुई थी और जिससे मिलकर हृदयमें बड़ा प्यार उमड़ा था, उसी भाई चक्रधरको बहिनने बड़े भारी मनसे विदाई दी।

पालकीमें बैठकर चक्रधर उस गाँवमें आया, जहाँ महरेकी बेटी थी। महरेने नाम और पता ठीक प्रकारसे बता दिया था। वह गाँव बहुत छोटा था, अत: पता लगानेमें देर नहीं लगी। चक्रधरने महरेकी बेटीको बुलवाया। वह लड़की दौड़ी-दौड़ी आयी। उसने चक्रधरको प्रणाम किया। चक्रधरने उसके हाथपर पाँच रुपये रख दिये। उस समयके पाँच रुपये आजके कई सौ रुपयेसे भी अधिक हैं। इसकी तो वह कल्पना भी नहीं कर सकती थी। उसकी आँखोंसे झर-झर आँसू बह चले।

अब उस गाँवमें खाने-पीनेका प्रश्न आया। पहले तो चक्रधरने सोचा ही था कि महरेकी बेटीवाले गाँवमें भोजन कर लूँगा, पर अब मन बदल गया। जिसे बहिन मानकर पाँच रुपया दे दिया, उसके गाँवके बारेमें भी वही नियम है, जो नियम अपनी चचेरी बहिनके गाँवके लिये हैं। मनमें इतना आते ही चक्रधरने कहाँरोंसे पालकी उठानेके लिये कहा। लोगोंने बहुत कहा कि यहाँ खा-पीकर आगे जाना चाहिये तो चक्रधरका यही उत्तर था—बहिनके गाँवका मैं अन्न-जल कैसे ग्रहण कर सकता हूँ?

कुछ लोगोंने समझाना चाहा—यह न तो आपकी सगी बहिन है, न कुलकी बहिन है, न आपके कुटुम्बकी है, न आपके जातिकी है, मात्र महरेकी बेटी है, अत: यहाँ भोजन करनेमें एवं विश्राम करनेमें आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

चक्रधरने कहा—आपका कहना ठीक है, पर जिसे बहिन मान लिया, उसके गाँवमें खाना-पीना कैसे हो सकता है? बहिनका नाता चाहे रक्त-सम्बन्धसे

हो अथवा धर्म-सम्बन्धसे हो, पर जब बहिन कह दिया तो फिर उसके गाँवमें अन्न-जल ग्रहण करना उचित नहीं।

लोगोंने देखा कि चक्रधर अपना आग्रह छोड़नेके लिये प्रस्तुत नहीं है। तब फिर एक और निकट गाँवके ब्राह्मण-गृहमें चक्रधरके खाने-पीनेका प्रबन्ध किया गया। भोजनके आसनपर बैठनेके पहले उसने अपने कपड़े निकाले, हाथ पैर-धोये और फिर भोजनके लिये बैठा।

उपस्थित लोगोंको उसकी इस सारी क्रियामें दम्भ एवं आडम्बर दिखलायी देने लगा। प्रखर शैक्षणिक प्रतिभा, उत्कट देशभक्ति तथा साहसिक राजनैतिक कार्योंके लिये चक्रधरने आस-पासके कई गाँवोंमें विख्यात था। जब वह भोजन करने लगा तो उपस्थित लोगोंमेंसे एकने आड़े हाथ लेनेकी भावनासे प्रश्न किया—हमने सुना है कि आप तो मुसलमानका छुआ भी खाते हैं। एक ओर तो ऐसी सुनी हुई बात है और दूसरी ओर यहाँ आचार-विचारका पालन करते हुए आप शौचाचारका इतना अधिक प्रदर्शन कर रहे हैं कि उसकी सीमा नहीं। अब आप ही बतलायें कि सत्य क्या है?

चक्रधरने कहा—मैंने मुसलमानका छुआ हुआ तो नहीं खाया है, परंतु राजनैतिक सम्मेलनोंमें मुसलमानके साथ बैठकर एक टेबुलपर अवश्य खाया है।

उस व्यक्तिने पुन: प्रश्न किया—आज आप वस्त्र उतार करके और हाथ-पैर धो करके आसनपर बैठे हैं, क्या आप सदा ही इसी प्रकार भोजन करनेके पूर्व करते हैं?

चक्रधरने स्पष्ट कहा—नहीं, मैं ऐसा नहीं करता। सत्य तो यह है कि मैं ऐसा आज पहली बार ही कर रहा हूँ। इसके साथ-साथ यह भी सत्य है कि यहाँसे जानेके बाद वही पुराना ढंग व्यवहारमें आ जायेगा। फिर आपके मनमें यह बात उठ सकती है कि मैं बड़ा ढोंगी हूँ और अपने सम्बन्धियोंके सामने शौचाचारका स्वांग रचता हूँ। वास्तविकता यह नहीं है। सच्ची बात यह कि मैं अपनी माँकी आज्ञाका पालन करनेके लिये ऐसा कर रहा हूँ। इस प्रकारके आचार-विचार-व्यवहारके पीछे एक मात्र कारण है मेरी माँकी आज्ञा। घरसे चलनेके पूर्व माँने जो कहा था और जो मैंने वचन दिया था, उसीका पालन कर रहा हूँ। यदि मेरी माँने कुछ न कहा होता, तो मैं अपनी चचेरी बहिनके घरपर ही खा-पी लिया होता, किंतु माँके द्वारा मना कर दिये जानेके बाद मैं

विवश था। आप विश्वास करें, माँकी आज्ञा-पालनके रूपमें मैं यह कर रहा हूँ। अब आप इसे दम्भ कहें अथवा प्रदर्शन। चक्रधरकी इस मातृ-परायणता और सत्य-वादिताका सभी उपस्थित लोगोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा।

कुछ बड़े होनेपर बाबाने अँग्रेजी शासनकी सत्ताको समूल नष्ट करनेके लिये क्रान्तिकारी गतिविधियोंमें भाग लिया और फलस्वरूप दो बार जेल यात्रा करनी पड़ी। जेलसे बाहर आनेके बाद अपने बड़े भाई पूज्य श्रीदेवदत्तजी मिश्र एवं श्रीतारादत्तजी मिश्रके कथनानुसार कलकत्तेमें पुनः अध्ययन आरम्भ किया। मनमें विरक्ति थी और ईश्वरीय संकेतके अनुसार बाबाने संन्यास लेनेका निश्चय कर लिया। इसकी सूचना बाबाने बड़े भाईयोंको दी।

यह सूचना वज्र-पातके समान थी। दोनों भाइयोंने बहुत समझाया, परन्तु बाबा अपने निश्चयपर अडिग थे। अपने निश्चयके अनुसार बाबाने सन् १९३५ की शरद्-पूर्णिमाको संन्यास ले लिया। संन्यासी वेषमें भी बाबा महाविद्यालय जाते रहे।

शास्त्रकी मर्यादा है कि संन्यस्त जीवन स्वीकार करनेके बाद संन्यासीको एक बार घर जाना चाहिये। संन्यासी चक्रधर अपने ग्राम फखरपुर पहुँचे। उस समय जन्मदात्री माँने जितना विलाप किया, उसका वर्णन संभव नहीं है।

फिर संन्यासी श्रीचक्रधरजी कलकत्ते आ गये। संन्यासी वेषमें इण्टरका कोर्स पूरा किया। इसी वेषमें कालेज जाते रहे। परीक्षा देनेके बाद आपने अज्ञातवास किया और शीघ्र परम सिद्धिकी उपलब्धि हुई।

फिर अब कलकत्ते आ गये। पूज्य स्वामी श्रीरामसुखदासजीसे मिलन हुआ, फिर पूज्य श्रीसेठजीसे शास्त्रार्थ सम विचार-विनिमय हुआ। फिर पूज्य बाबूजीके समीप आगमन हुआ। पूज्य बाबूजीने ज्यों ही चरण स्पर्श किया, स्वामीजीके अन्तःकरणमें व्रजभावका बीजारोपण हो गया।

फिर श्रीस्वामीजी पूज्य श्रीसेठजीके साथ लगभग अढ़ाई वर्ष तक रहे। इस अवधिमें श्रीमद्भगवद्गीताजीके टीका-लेखनका कार्य पूर्ण हुआ। श्रीस्वामीजीके मनमें क्षेत्र-संन्यासका व्रत लेकर वृन्दावन-वास करनेकी चाह थी। भगवान् श्रीकृष्णने क्षेत्र-संन्यास शब्दका स्वरूप बदल दिया और श्रीस्वामीजी पूज्य बाबूजीके साथ नित्य-संग रहनेका व्रत लेकर गीतावाटिकामें रहने लगे।

इधर स्वामीजी गीतावाटिकामें रह रहे थे और उधर जन्मदात्री माँ एक बार मिलनेके लिये अत्याकुल थी। एक योजना बनी, जो नितान्त सुगुप्त थी।

यह योजना थी बाबाकी भेंट जन्मदात्री माँसे एक बार करवा देनेकी। जन्मदात्री माँका बाबाके प्रति बड़ा वात्सल्य था, सीमातीत ममत्व था। बाबा तो संन्यास ले चुके थे और वह माँ अपने संन्यासी बेटेको एक बार फिरसे देखनेके लिये बड़ी व्याकुल थी। उसकी आँखें तरस रही थीं। संन्यास-धर्मके अनुसार संन्यासी एक बार घर जाता है तथा जाकर माता-पिताको प्रणाम करता है। इसके अनुसार बाबा तो घर जाकर माँके श्रीचरणोंका दर्शन कर चुके थे। इसके अतिरिक्त बाबा एक बार और गये थे, तब श्रीमद्भागवतमहापुराणकी पावन सप्ताह-कथाका आयोजन भी हुआ था बाबाकी प्रेरणासे। इस आयोजनका हेतु था वह आश्वासन, जो कभी बाबाने अपनी माँको दिया था और तब घरपर वह सप्ताह-कथा कही थी पूज्य पं० श्रीदेवदत्तजी मिश्रने, परंतु उस बातको भी तो कई वर्ष व्यतीत हो गये। माँके मनकी बेकलीकी सीमा नहीं थी। फिरसे अपने बेटेको देखनेके लिये माँका मन बड़ा अकुला रहा था। ***'करति बिलाप मनहिं मन भारी।'*** हृदयमें हाहाकार मचा था कि एक बार मेरा बेटा मेरे पास आ जाये। जिसे नौ मासतक गर्भमें रखा, जिसे नौ वर्षोंतक अपने स्तनोंका दूध पिलाया और जिसे अपने आँचलकी छायामें पाल-पोसकर बड़ा किया, अपने उस बेटेकी यादमें रात-दिन बिसूरती रहती। माँकी दशा यह थी, ***'जनु बिनु पंख बिहग अकुलाही'***। वह बार-बार यही सोचती कि एक बार अपने बेटेके शरीरपर मैं हाथ फेर लूँगी तो मेरा कलेजा ठण्डा हो जायेगा। जब बाबाका जन्म हुआ था, तब माँको प्रसव-वेदना बहुत कम भोगनी पड़ी थी। बाबाने अपनी आयुके नौ वर्षोंतक माँके स्तनोंका पान किया था। पाठशालासे पढ़कर आनेके बाद पहला कार्य होता था स्तन-पान करना। माँ कितना ही मना करे, पर पुत्र मानता था क्या? बाल-हठके सामने माँको झुकना ही पड़ता था। ऐसे प्यारे बेटेके लिये माँका हृदय छटपटाये तो क्या आश्चर्य? न दिनमें चैन, न रातमें चैन। अमिलनके दुःखसे उसका अन्तर अत्यधिक संतप्त था।

माँके हृदयकी छटपटाहटने परिवारके अन्य सदस्योंके हृदयमें भी बड़ी व्यथा उत्पन्न कर दी। वे लोग गीतावाटिका आकर बाबूजीसे मिले। उन लोगोंने माँकी मनस्थितिका जैसा चित्रण किया, उससे बाबूजीका अन्तर भी द्रवित हो उठा। सभी चाहते थे कि किसी प्रकार माँके मनको परितोष मिले, पर बाबाके नियमोंकी कठोरताको देखते हुए इस समस्याका कोई समाधान सूझ नहीं रहा

था। कोई उपाय उभरकर सामने नहीं आ रहा था, जिसे क्रियान्वित किया जा सके। बहुत विचार करनेके बाद एक बात ध्यानमें आयी। बाबाकी माँ तो गीतावाटिका आ नहीं सकती। यदि वह गीतावाटिका आयेगी तो बाबा तुरंत बाबूजीका साथ छोड़कर गीतावाटिकासे वृन्दावनधामके लिये चल देंगे, हमेशाके लिये चले जायेंगे। अत: एक दूसरे उपायका आश्रय आवश्यक हो गया। बाबाकी माँ बाबूजीसे मिलनेके बहाने भी गीतावाटिका नहीं आ सकती, पर बाबूजी तो बाबाकी माँके पास मिलनेके बहानेसे जा ही सकते हैं। इसी चिन्तनके आधारपर एक नवीन योजना बनायी गयी।

बिहारके डेहरी-आन-सोनसे पश्चिम बंगालके दिनाजपुरतक कैनाल-रोड है। इस लम्बे मार्गपर गया जिलेमें अरवल नामक बस्ती है। अरवलसे तीन मील पूर्वकी ओर बाबाका गाँव फखरपुर है। बाबाको लेकर बाबूजी कारसे अरवल आ जायें और माँ भी फखरपुरसे अरवल आ जाये। यहीं माँकी बाबासे भेंट करा दी जायेगी। यहाँ माँ अपने हाथसे बाबाको कुछ खिला देगी। यदि यह योजना सफल हो गयी तो बाबाके अनेक नियमोंका निर्वाह भी हो जायेगा और माँकी अभिलाषा भी पूर्ण हो जायेगी। यह सारी योजना बाबाको बिना बताये बनायी गयी थी। यदि बाबाको तनिक भी गंध मिल जाती तो सारी योजनापर पानी फिर जाता। इस गुप्त योजनाके अनुसार गोरखपुरसे प्रस्थान करनेकी तिथि भी निश्चित हो गयी। बाबूजीने बाबाके पास संदेश भिजवा दिया—आज रातको एक स्थानपर ट्रेनसे चलना है, अत: आप चलनेके लिये तैयार रहें।

इस संदेशके मिलनेपर बाबा अपने सारे कृत्योंसे निवृत्त होकर संध्याके समय कुटियाके बाहर आकर बेलके वृक्षके नीचे बैठ गये। बाबा तो जानेकी पूर्ण तैयारीसे बैठे थे। उसी समय अचिन्त्य भगवदीय विधानसे बाबाके संन्यास-धर्मकी रक्षाका संयोग घटित हो गया। भगवदीय प्रेरणासे एक व्यक्तिने आकर बाबाको बताया—बाबा! एक योजना बनायी गयी है, जिसकी जानकारी आपको नहीं है। आजकी यात्राका उद्देश्य है आपको आपके गाँवके पास ले जाना और आपको आपकी माँसे मिलाना। लोग कुछ भी आपको बतायें, पर असली बात यही है।

उस व्यक्तिने सारी योजनाका सही विवरण बाबाके सामने रख दिया। उस व्यक्तिको विदा करके बाबाने पूज्या माँको बुलाया तथा उनसे बाबा कहने

लगे—तुम सब लोग जा रहे हो मेरे पूर्वाश्रमकी माताजीको सुख पहुँचानेके लिये, पर तुम मान लो कि इससे उसको दु:ख हो जायेगा तथा भविष्यमें उसका अमंगल होगा।

बाबाने माँको सच्ची बात कही थी और उस सच्चाईका असर माँके हृदयपर हुआ। माँ बाबाके पाससे उठकर बाबूजीके पास गयी। उसने सारी बात बाबूजीको बता दी। बातचीतका परिणाम सुन्दर निकला। यात्राका विचार छोड़ दिया गया और फिर वह योजना भी सर्वथा विसर्जित हो गयी।

जो सोचा गया था, वह सब ढह गया, सर्वथा बिखर गया। बाबाके जानेका ढंग नहीं बैठ पाया और सभी अपने मनको मसोस कर रह गये। जितने भी निकटवर्ती जन थे, उन सबका संवेदनशील हृदय माँकी व्यथाको याद कर-करके व्यथित हो रहा था। मेरे परमादरणीय मित्र श्रीशिवनाथजी दूबेने एक दिन अवसर पाकर बाबासे कहा—आप नारी मात्रमें भगवती श्रीराधाका दर्शन करते हैं, फिर अपनी जन्मदात्री जननीसे एक बार मिल लेनेमें कौन-सा अपराध बन जाता है? आपसे मिलनेके लिये वे बड़ी ही व्याकुल हैं। दया करके आप मेरे निवेदनपर कुछ विचार करें।

अत्यन्त गम्भीर होकर बाबाने उत्तर दिया—दूबेजी! मुझे इस गैरिक वस्त्रकी मर्यादाकी रक्षा करने दीजिये। आप मेरी बातपर विश्वास कर सकें तो उत्तम ही होगा। आप सत्य मान लें कि अपने जीवनके अन्तिम समयमें मेरी माँ निश्चय ही ऐसा अनुभव करेगी कि मैं उसके समीप हूँ·····। जिन श्रीराधारानीपर मैंने अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया है, वे इतनी निष्ठुर नहीं हैं कि इस शरीरको जन्म देनेवाली मेरी माँको निराशा प्रदान करेंगी। दूबेजी! एक बात और है। जिस लाभपर दृष्टि टिकाये हुए आप यह अनुरोध कर रहे हैं, वह लाभ सामयिक, तात्कालिक और क्षणिक है, परंतु मैं अपनी जन्मदात्री माँके हितमें जिस लाभका चिन्तन कर रहा हूँ, वह लाभ चिरन्तन, स्थायी, निरवधि होगा और जीवनके उस पार भी मेरी माँके लिये हितकारी होगा।

बाबा द्वारा प्रदत्त वह आश्वासन सचमुच अक्षरश: पूर्ण हुआ। माँकी बड़ी लालसा थी कि वह एक बार अपने पुत्र चक्रधरको देख लें। अब उसके जीवनके अन्तिम दिन आ गये थे। शरीर अस्वस्थ चल रहा था। मृत्युसे दो दिन पहलेकी बात है। एकादशीको माँकी स्थिति गम्भीर हो गयी। घरके लोगोंको

ऐसा लगा कि शरीरसे हंस उड़ जानेवाला है। माँको खाटसे नीचे उतार लिया गया। ऐसे अवसरपर एकने माँसे पूछा—तुम्हें संन्यासी बाबू याद आते हैं क्या?

माँने बड़ी प्रसन्न चित्तसे कहा—देखो, वह रहा। वह मेरे सामने ही तो है। देखो वह रहा है।

जब-जब बाबाके बारेमें पूछा गया, तब-तब माँने बाबाकी उपस्थिति बतलायी, कभी पास, कभी दूर, कभी दाहिने, कभी बायें। माँको सतत यही अनुभव हो रहा था कि मेरा संन्यासी बेटा मेरे पास है और यह बात सही भी थी कि उसको बाबा दिखलायी दे रहे थे। वह प्रसन्न वदना माँ समीप खड़े हुए अपने संन्यासी बेटेसे पूछने लगी—क्यों रे! तू मजेमें है न? तुमको भोजन ठीकसे मिल जाता है न?

इस प्रकार वह माँ अपने संन्यासी बेटेसे थोड़ी देरतक बात करती रही, फिर वह अपने आप चुप हो गयी। प्रतिक्षण मृत्यु समीप आ रही थी। द्वादशी (१३-१-५७) को माँने अपने परिवारवालोंसे कहा—मुझे काशी ले चलो।

बाबाके बड़े भाई बड़े मातृभक्त थे, उनकी हर आज्ञाको माननेमें वे तत्पर रहा करते थे। उनकी बड़ी चाह थी कि माँकी अन्तिम अभिलाषाको कैसे पूरा किया जाये। वे बड़े व्यथित थे कि न तो पासमें रेलवे-स्टेशन है और न ग्राममें किसीके पास मोटरकार है। माँकी मृत्युको सन्निकट देखकर वे सोच नहीं पा रहे थे कि क्या किया जाये? निराशाकी स्थितिमें भगवान्का स्मरण ही एक मात्र सहारा होता है। वे भगवान्का स्मरण मन-ही-मन करने लगे। अगले दिन उन्होंने देखा कि घरके पाससे होकर एक खाली मोटरकार चली जा रही है। पं० श्रीतारादत्तजी दौड़कर ड्राइवरसे पूछा—यह मोटरकार कहाँ जा रही है?

ड्राइवरने बताया—काशी।

उन्होंने कहा—भइया! तुम जितना भी रुपया लोगे, हम देंगे। मेरी माँ मरणासन्न है। उसकी इच्छा काशी जानेकी है। तुम हमलोगोंको काशी पहुँचा दो।

वह ड्राइवर सहमत हो गया। तुरंत मोटरकारमें पीछे गद्दा बिछाया गया। माँके साथ बाबाकी बड़ी बहिन बैठी, जो बाबासे लगभग बीस वर्ष बड़ी थी। पं० श्रीदेवदत्तजी आवश्यक धन लेकर आगे ड्राइवरके बगलमें बैठ गये। इनके अतिरिक्त दो व्यक्ति और भी बैठे। कारमें परिवारके कुछ पाँच व्यक्ति माँके

साथ काशी गये। किसीको पता नहीं कि वह मोटरकार किसकी थी, वह कहाँसे आ रही थी और कैसे आयी, पर वह आ पहुँची ईश्वरीय विधानसे माँकी अन्तिम चाहको पूर्ण करनेके लिये। ज्यों ही मोटरकारने भगवान् विश्वनाथके पावन क्षेत्रमें, पुण्यतोया गंगाजीके पुलको पार करके काशीकी सीमामें प्रवेश किया और चौकपर रुकी, त्यों ही माँने अपने पार्थिव शरीरका परित्याग कर दिया। बाबाकी पूज्या माँका देहान्त सं० २०१३ वि० की मकर संक्रान्तिके शुभ कालमें, तद्नुसार पौष शुक्ल १३ सोमवार, १४ जनवरी १९५७ ई० के दिन हुआ। ऐसा लगता है कि वह भगवान् सूर्यनारायणके उत्तरायण होनेकी प्रतीक्षा कर रही थी। मकर संक्रान्तिके दिन भगवान् सूर्यनारायण दक्षिणायनसे उत्तरायणकी ओर हुए और संक्रान्तिके पावन दिन तीन लोकसे न्यारी काशीके पावन क्षेत्रमें उसने अपने शरीरका परित्याग किया।

अब धर्मशालाके अन्दर जाकर ठहरना था ही नहीं। तुरंत विमान बनाया गया और मणिकर्णिका घाटपर ले जाकर शवको चिताके ऊपर रख दिया गया। ऋषि-मुनियोंकी सन्तान हिन्दूका एक-एक कार्य, उसका जन्म-मरण, उसका जीवन ही यज्ञमय होता है। हिन्दूकी अन्त्येष्टि प्रक्रिया भी एक प्रकारका यज्ञ ही है। वे जन परम भाग्यशाली है, जिनका शरीर किसी परम पुनीत तीर्थक्षेत्रमें एवं किसी परम पवित्र पुण्यकालमें परम पावनी भगवती गंगाके किनारे प्रज्वलित चितारूपी यज्ञाग्निमें आहुति बनता है। यह यज्ञ माता-पिता स्वयं नहीं करते, अपितु पुत्रके द्वारा होता है। माता-पिताका आत्म-विस्तार ही तो पुत्र है। पुत्रके रूपमें माता-पिता ही इस यज्ञको सम्पन्न करते हैं। चिताग्निमें शरीरकी अन्तिम आहुतिद्वारा जीवन-यज्ञकी पूर्णाहुति होती है। इस अन्तिम आहुतिको देकर श्रीतारादत्तजी एक किनारे बैठ गये और वे बैठे-बैठे देख रहे थे कि चिताग्निकी ऊँची-ऊँची लपटें शवको आत्मसात करती चली जा रही हैं। अपनी परम पूजनीया माँको भस्मीभूत होते देख करके उनके हृदयमें मातृ-वियोगका भाव उमड़ पड़ा और वे फूट-फूट करके रोने लगे। अपने भाई पं० श्रीदेवदत्तजीसे लिपट करके कहने लगे—क्या भइया! अब मैं टुअर (मात-पितृ-विहीन) हो गया? क्या मैं अनाथ हो गया?

उसी समय श्रीदेवदत्तजीने उनसे कहा—अरे तुम रोते हो? ऐसी माँका पुत्र होना कितना बड़ा सौभाग्य है? जिसने मकर संक्रान्तिके पुण्य अवसरपर भगवान्

विश्वनाथके परम पवित्र काशी क्षेत्रमें अपने शरीरका परित्याग किया, जो संत-सेवा और पुरजन-सेवा सारे जीवन उल्लास एवं उत्साह पूर्वक करती रही, जिसकी पति-सेवाका भाव सदा ही सराहा गया और सबसे बड़ी बात यह कि जिसने चक्रधर जैसे परम सुयोग्य संन्यासी पुत्रको जन्म दिया, वह माँ धन्य, उसका वंश धन्य, उसके दोनों कुल धन्य और उसके समस्त स्वजन धन्य। भगवान् करे, ऐसी माँ सबको मिले।

पं० श्रीदेवदत्तजीके इन शब्दोंसे श्रीतारादत्तजीको बड़ी सान्त्वना मिली। चिता आधी ही जल पायी थी कि एक विशेष बात घटित हुई। आकाशमें बादल तो थे ही, अब वर्षा आरम्भ हो गयी। यद्यपि वर्षा हल्की थी, फिर भी उसे देखकर दोनों भाइयोंको चिन्ता होने लग गयी। आश्चर्यकी बात यह हुई कि वर्षाका चितापर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह पूर्ववत् ही प्रज्वलित रही।

माँके निधनकी सूचना देनेके लिये भाईने बाबाके पास तार दिया। बाबाने सन् १९५६ ई० की आश्विनी शरद्-पूर्णिमाके दिन कठोर-मौन व्रत ग्रहण किया था और इसके तुरंत कुछ समय बाद बाबा बाबूजीके साथ रतनगढ़ आ गये थे। रतनगढ़ राजस्थानका एक नगर है। तार तो बाबाके पास बहुत विलम्बसे पहुँचा, पर तारके पहुँचनेके पहले कुछ और ही रतनगढ़में घटित हो गया। बाबा अपने कमरेमें थे। रातके नौ-दस बजेके आस-पास बाबाकी माँ बाबाके सामने आकर खड़ी हो गयी। बाबाने अपनी माँको पहचान लिया और बाबाको बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह यहाँ कैसे आ गयी। बाबाने उससे पूछा—तू यहाँ कैसे?

खड़े-खड़े माँ मुसकराने लगी। उसके पैर भूमिपर टिके हुए नहीं थे। वह आकाशमें भूमिसे कुछ ऊपर खड़ी थी। यह देखकर बाबाको तुरंत ज्ञात हो गया कि यह तो अपने स्थूल शरीरका परित्याग करके इस समय मेरे सामने सूक्ष्म शरीरसे खड़ी हैं।

शरीरका परित्याग करनेके बाद बाबाकी माँकी कुछ दिव्य परिणतियाँ हुई और निधनके तीन दिनके भीतर ही उसे जहाँ पहुँचना था, वह वहाँ पहुँच गयी। बाबाकी माँकी सर्व प्रथम परिणति भगवती पार्वतीके रूपमें हुई। माँने अपने शरीरका परित्याग भगवान् विश्वनाथकी दिव्य पुरी काशीकी सीमाके भीतर किया था, सम्भवत: इसी कारण प्रथम परिणति भगवती पार्वतीके रूपमें हुई। इसके बाद दूसरी परिणति महर्षि भागुरिकी धर्मपत्नीके रुपमें हुई। महर्षि शाण्डिल्य तो श्रीनन्दकुलके पुरोहित हैं और महर्षि भागुरि वृषभानुकुलके पुरोहित हैं। बाबाके पिताजीकी परिणति महर्षि भागुरिके रूपमें हुई, अत: उनकी धर्मपत्नीके रूपमें माँकी परिणतिका होना स्वाभाविक है। बाबाकी माँकी अगली परिणति माँ कीर्तिदाके रूपमें हुई। सबसे अन्तिम परिणति हुई सौदामिनीके रूपमें, जो वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके शीशपर विराजित एक विशिष्ट प्रकारकी चन्द्रिका है।

रतनगढ़में बाबा अपने कमरेमें बैठे हुए थे। कमरेके दोनों द्वार बन्द थे। तभी एक स्त्री बाबाके कमरेमें आयी। उसके शरीरकी कान्ति बड़ी उज्ज्वल थी, उसके अङ्गोंमें दिव्य आभूषण शोभा पा रहे थे। उसके परिधान देखनेमें असाधारण लग रहे थे। कमरेके एकान्तमें एक स्त्रीको अपने सामने अचानक देखकर बाबाको बड़ा अटपटा लगा। बाबा अपने कमरेमें पाटेपर उत्तराभिमुख बैठे हुए थे और यह दिव्य स्त्री पूर्वाभिमुख खड़ी थी। बाबा उसे पहचान नहीं पाये। फिर उस स्त्रीकी ओर बाबा एकटक देखने लग गये। गड़ी दृष्टिसे निहारकर देखनेके बाद बाबा जान पाये कि यह तो मेरी जन्मदात्री माँ है। बाबा तुरंत अपने पाटेपरसे नीचे उतरे तथा भूमिपर मस्तक रखकर माँको प्रणाम किया। बाबाको इस बातसे अतीव प्रसन्नता हो रही थी कि मेरी माँको अपने अन्तिम स्वरूपकी प्राप्ति इतनी शीघ्र हो गयी। ज्यों-ही बाबाने भूमिपर माथा टिकाकर प्रणाम किया, त्यों ही उसने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर वरद मुद्रामें आशीर्वाद दिया, उसने हाथ हिलाकर तीन बार आशीर्वाद दिया। बाबाने मन-ही-मन कहा—जा माँ, तू सुखसे रह।

इसके बाद वह अदृश्य हो गयी। वह फिर कभी बाबाको दिखलायी नहीं दी।

परम पूज्या श्रीआनन्दमयी माँ

परम पूज्या श्रीआनन्दमयी माँका गौर मुखमण्डल सदैव आध्यात्मिकालोकसे उद्भासित रहता था। भगवदीयताकी दिव्य रश्मियोंसे उनकी सहज सौम्य मुखाकृतिमें अद्भुताकर्षण था। उनके महान् व्यक्तित्वसे दैवी भावोंकी तरंगें सदैव प्रसरित होती रहती थीं। उत्तर भारतकी वे एक महान् संत थीं और अगणित नारी-नर भक्तोंकी प्रेरणास्रोत थीं। वे प्राय: मौन रहती थीं। प्रवचन देना उनके स्वभावमें नहीं था। भक्तोंके प्रश्नोंका उत्तर आवश्यकतानुसार संक्षेपमें अवश्य दे दिया

करती थीं। वे सदैव धवलाम्बर धारण किये रहती थीं। वृद्धावस्थामें भी उनके शीशके केश सुदीर्घ और कृष्णवर्णीय थे। उन्होंने कोई साधना नहीं की थी। वे जन्मजात सिद्ध सन्त थीं। बाल्यावस्थामें ही सहज समाधि लग जाया करती थी। अनेक दैवी क्षमताओंकी साकार पुञ्ज होकर भी उन्होंने कभी कोई चमत्कार नहीं दिखलाया। कृष्ण-कीर्तन, प्रभु-भजन एवं रासलीला उन्हें बहुत प्रिय थी। उनको भागवत कथा और संत कथामें रुचि रहा करती थी।

उनकी मान्यता थी कि मानव-जीवनकी सफलता भगवत्प्रेमकी प्राप्तिमें है और इसके लिये भगवान्‌के नामका जप और कीर्तन करना चाहिये तथा रासलीला देखनी चाहिये। उनका कथन था कि प्रत्येक साधकको ध्यानका एक समय निश्चित कर लेना चाहिये। जहाँतक मुझे स्मरण आ रहा है, वे कहती थीं कि सभी साधकोंको रात्रिके ठीक नौ बजे, भले दो या तीन मिनटके लिये ही ध्यान करना चाहिये। इसमें कभी अपवाद न हो। अब थोड़ी कल्पना करें। भारतके विभिन्न प्रदेशोंके विभिन्न नगरोंमें पूज्या माँके अनेक नारी-नर भक्त निवास कर रहे हैं। वे सभी अपने-अपने स्थानपर घड़ी देखकर ठीक नौ बजे ध्यानमें निमग्न हो जाते हैं। सबका एक साथ ध्यानमें निमग्न हो जाना, वह भी पूर्णतः निश्चित समयपर, इससे कल्पनातीत अत्यधिक समृद्धिशालिनी दैवी भाव-तरंगोंका उद्भवन-उच्छलन-प्रसरण होता है जो सभीको परम सहायक सिद्ध होगा और साधन-पथपर अग्रसर करेगा। पूज्या माँकी वाणी थी कि साधनामें सफलता पानेके लिये इस नियमका निर्वाह अत्यधिक आवश्यक है।

पूज्या माँका जन्म सन् १८९४ में खेवरा (Kheora)-में हुआ था जो टिप्पेरा (Tipperah) जिलेमें हुआ था। अब यह भाग पूर्व बंगालमें पड़ता है। पूज्या माँका पूज्य बाबूजी एवं पूज्य बाबासे अत्यधिक आत्मभाव था। परस्परमें बड़ी घनिष्ठता थी। सन् १९६६ के ग्रीष्म-ऋतुकी बात है। पूज्य बाबूजी सत्संगके लिये स्वर्गाश्रम गये हुए थे। पूज्य सेठजीका निधन १९६५ में हुआ था। निधनके पूर्व सेठजीने कहा था कि स्वर्गाश्रमका ग्रीष्मकालीन सत्संग भली प्रकारसे चलता रहे, इसका दायित्व तुमपर है। पूज्य बाबूजीकी रुचि नितान्त एकान्तकी थी, परन्तु मात्र पूज्य श्रीसेठजीकी रुचिके प्रति महत्त्वबुद्धि होनेके कारण बाबूजी गोरखपुरसे स्वर्गाश्रम ग्रीष्म-ऋतुमें कुछ मासके लिये जाया करते थे।

पूज्य बाबूजी स्वर्गाश्रमकी डालमिया कोठीमें विराज रहे थे और पूज्या माँका

एक बातके लिये बार-बार अनुरोध हो रहा था। देहरादूनके निकट स्थित राजपुरा मातृ आश्रममें वन्दनीया माँका ७१वाँ जन्मोत्सव मनाया जानेवाला था, पूज्या माँका यह जन्मोत्सव एक सप्ताह मनाया जानेवाला था, जिसमें पूज्य श्रीहरि बाबा, पूज्य स्वामी शरणानन्दजी महाराज आदि अनेक उच्च स्तरीय संत आनेवाले थे। पूज्या माँकी ओरसे यह अनुरोध था कि पूज्य बाबूजी सारे सप्ताह इस उत्सवमें प्रतिदिन पधारें। माँके अनुरोधकी उपेक्षा सम्भव नहीं थी, अतः पूज्य बाबूजी सर्वप्रथम २ मईको उत्सवमें भाग लेनेके लिये स्वर्गाश्रमकी डालमिया कोठीसे कार द्वारा राजपुरा स्थित मातृ आश्रममें गये।

पूज्या माँने बड़ा स्वागत किया। माँको प्रणाम करनेके लिये ज्यों-ही बाबूजी झुके, तभी माँने बीचमें ही उनके हाथको अपने हाथमें ले लिया तथा बाबूजीके करपल्लवपर अपना मस्तक रख दिया। मंचपर अपने बगलमें ही माँने बाबूजीका आसन लगवाया और उल्लासपूर्वक कई बार कहा—हनुमान आ गया, हनुमान आ गया।

एक मातृभक्त जन्मोत्सवके अवसरपर पुष्पमाला लेकर ज्यों-ही मंचपर आया, माँने वह माला उसके हाथसे ले ली और फिर माँने बाबूजीको पहना दी। पुनः वह भक्त दूसरी पुष्पमाला लेकर आया और तब वन्दनीया माँको श्रद्धापूर्वक पहना पाया।

२ मईके बाद पूज्य बाबूजी दूसरी बार ३ मईको गये। उस दिन पण्डालमें पूज्य बाबूजीका प्रवचन दस बजेसे होनेवाला था, परन्तु पूज्य बाबूजी पन्द्रह-बीस मिनट पहले ही वहाँ पहुँच गये थे, अतः पंडालमें जानेके पूर्व बाबूजी पूज्या आनन्दमयी माँके कुटीरकी ओर गये। पूज्या आनन्दमयी माँ अभी अपने कुटीरमें ही थीं। किसीने भीतर जाकर उन्हें बाबूजीके आनेकी सूचना दी। सूचना मिलते ही पूज्या आनन्दमयी माँ कुटीरके द्वारपर पधारीं। उनके हाथमें पुष्पमाला थी, श्वेत पुष्पोंके बीच-बीचमें पीले-पीले फूल बड़े सुन्दर लग रहे थे। पूज्या आनन्दमयी माँके शीशके सम्पूर्ण केश काले थे, किन्तु सम्पूर्ण शरीरपर श्वेत परिधान बड़ा भव्य लग रहा था। उज्ज्वल वस्त्र धारिणी माँ अपने हाथमें पुष्पमाला लिये हुए द्वारपर आकर बाबूजीके प्रति कहने लगी—बाबा, ओ बाबा, बाबा, आओ ना!

कुटीरके बाहर सात-आठ कदमकी दूरीपर बाबूजी किसी महात्मासे बात करनेमें व्यस्त हो गये थे। बातचीतकी व्यस्ततामें उनका ध्यान कुटीरके द्वारकी

और नहीं था। पूज्या आनन्दमयी माँने तीन-चार बार पुकारा, तब बाबूजीका ध्यान उस ओर गया। बाबूजी पूज्या माँके पास गये। पूज्या माँ शायद पुष्पमाला पहनाना चाहती होंगी। माँने ज्यों-ही अपने हाथ बढ़ाये, बाबूजीने वह पुष्पमाला अपनी हथेलीमें ले ली। इसके बाद बाबूजी कुटीरके अन्दर गये। बैठनेके पूर्व बाबूजीने पृथ्वीपर मस्तक रखकर प्रणाम किया। पूज्या आनन्दमयी माँने भी काफी झुककर प्रणाम किया। यह दो संतोंका मिलन था। उस समय दोनों संतोंकी नेत्र-आभा देखने ही योग्य थी, जिसमें पारस्परिक स्नेह और सम्मानका सागर उमड़ रहा था। दोनों एक-दूसरेको सम्मान देनेके लिये परम उत्सुक थे। पूज्या आनन्दमयी माँ पलंगपर बैठ गयीं और बाबूजीके विराजनेके लिये चटाईपर एक सुन्दर पीला आसन बिछा दिया गया। बाबूजीने उस आसनको प्रणाम करके एक किनारे रख देनेका ज्यों-ही प्रयास किया, त्यों-ही आनन्दमयी माँने तथा आदरणीय दीदीने उस आसनको स्वीकार करनेके लिये आग्रह किया। आग्रह एक बार नहीं, कई बार किया, परन्तु वह अनुरोध बाबूजीको स्वीकार था ही नहीं और वे चटाईपर ही बैठ गये। चटाईपर विराज जानेके बाद पूज्या आनन्दमयी माँने बाबूजीको एक सुन्दर रेशमी दुपट्टा ओढ़ाया, जो आन्तरिक सम्मान-दानका प्रतीक था। इसके अतिरिक्त बहुत सारे फल भेंटस्वरूप प्रदान किये। बाबूजीने उन फलोंको स्पर्श करके प्रणाम किया फिर बँगला भाषामें बाबूजी और पूज्या माँकी नौ-दस मिनटतक बातचीत होती रही। इसके बाद पूज्या माँने कहा—हरि बाबाने कहा है कि हनुमानके आनेपर पंडालमें चलूँगा, अतः हो सकता है, वे आपकी राह देख रहे हों, पर कोई बात नहीं, उनको यहीं बुला लिया जाता है।

बाबूजीने तुरन्त निवेदन किया—नहीं माँ, उनके पास मुझे ही जाना चाहिये। यही उचित है।

पूज्या माँके पाससे चलकर जब बाबूजी श्रीहरि बाबाकी कुटियापर आये तो पता चला कि वे पंडालमें चले जा चुके हैं। फिर बाबूजी पंडालकी ओर बढ़े। नीले और सफेद कपड़ोंसे कलात्मक आकृतियाँ बनाकर पंडालको खूब सजाया गया था। कागजको कलात्मक ढंगसे काटकर कलश और नारियलकी सुन्दर रचना की गयी थी। इन सबसे पंडालका वातावरण बड़ा मोहक लग रहा था। पंडालमें मंचपर श्रीहरि बाबा, पूज्या आनन्दमयी माँ, स्वामी श्रीशरणानन्दजी और बाबूजीके लिये विशेष आसन बिछाये गये थे। बाबूजीके लिये जो आसन

बिछाया गया था, वह पीले रंगके रेशमी कपड़ेका था। सभाके संचालक महोदयने बाबूजीका स्वागत किया और मंचपर ले जाकर निर्दिष्ट आसनपर विराजनेके लिये अनुरोध किया। बैठनेके लिये बाबूजी ज्यों ही आगे बढ़े और झुके, उन्होंने उस रेशमी आसनको प्रणाम करके हटा दिया। उसी समय मंचपर उपस्थित एक अन्य महात्माने उस आसनको फिरसे बिछा दिया। बाबूजीने उन महात्माको प्रणाम किया, फिर उस आसनको प्रणाम किया और फिर वह आसन हटा करके एक किनारे रख दिया। अबकी बार पूज्य श्रीहरि बाबा अपने आसनपरसे उठकर आगे आये। उन्होंने अपने हाथसे वह आसन बिछाया और बाबूजीका हाथ पकड़कर उस आसनपर बैठा दिया। बाबूजीको पीले रेशमी आसनपर बैठना पड़ा। कुटीरमें आसनके प्रसंगको लेकर पूज्या आनन्दमयी माँके सामने विजय पानेवाले बाबूजीको मंचपर श्रीहरि बाबासे पराजित होना पड़ा। यह पराजय भी उनकी एक गौरव गाथा है।

राजपुरासे वापस आनेके बाद एक बार बाबूजीने कहा था—आनन्दमयी माँ, स्वामी शरणानन्दजी, श्रीहरि बाबा हम सब लोग एक ही परिवारके हैं।

बाबूजीके इन वचनोंका गूढ़ तात्पर्य तो मैं समझ नहीं पाया। मैंने तो इतना ही अर्थ लगाया कि दैवी भावराज्यमें संतोंका भी कोई आध्यात्मिक परिवार होता है, उसीकी ओर बाबूजी संकेत कर रहे हैं। जो भी हो, मुझे इन वचनोंको सुनकर बड़ा अच्छा लगा, बड़ा आह्लाद मिला। इन वचनोंको सुनते ही मैं मन-ही-मन बाबूजीकी ओर गहरी दृष्टिसे देखने लगा।

जब दूसरी बार पूज्य बाबूजी मातृ आश्रम गये थे, तब पूज्या माँ भोजनके लिये बार-बार कहने लगीं। समीप ही विराजित थे पूज्य श्रीहरि बाबा। कई बार विनती करनेके बाद भी जब बाबूजी भोजनके विषयमें मौन रहे तब माँने श्रीहरि बाबासे कहा—ओ बाबा हरि! ओ बाबा!! बोलो ना! तुम बोलो, तभी काम बनेगा।

माँके ऐसा कहनेपर श्रीहरि बाबा मन्द-मन्द विहसने लगे। उस मन्द हास्यमें भी एक मीठी मनुहार परिव्याप्त थी। बाबूजीने कहा—वहाँ डालमिया कोठीपर भी तो भगवान्का प्रसाद तैयार है।

तब तुरंत माँने कहा—यहाँ भी तो भगवान्का ही प्रसाद है।

इसपर भी जब बाबूजी मौन रहे तो माँने अब दूसरे ढंगसे कहा—अच्छा! कल जब आओ तो यहाँ ही प्रसाद पाना।

इस अनुरोधको अस्वीकार कर सकना सम्भव नहीं था। बाबूजीने अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। तब माँने मंचपर ही पूछा—कितने व्यक्तियोंका भोजन सिद्ध करवाया जाये? दो या चार या छः कितने व्यक्तियोंका?

बाबूजीने कहा—जितने भी आ जायें।

बाबूजीके ऐसा कहते ही मंचपर उपस्थित सभी महात्मा और सभी भक्त खुलकर हँस पड़े। फिर तो माँने लगभग पचास व्यक्तियोंके प्रसाद पानेकी व्यवस्था करवायी।

उत्सव पण्डालमें बाबूजीका प्रवचन प्रथम दिन भी हुआ था और आज भी। इन दोनों प्रवचनोंका विषय था मानवकी मानवता और भगवद्भक्तिकी महिमा। दोनों प्रवचनोंका सार यही था कि मानवकी सच्ची मानवताका प्रारम्भ होता है तब, जब जीवन ईश्वराभिमुख हो जाये और भगवद्भक्ति सारे अशुभोंका शमन करके मानव-जीवनको शुभके सौरभसे सुवासित कर देती है। आज जब बाबूजी आश्रमसे प्रस्थान करने लगे तो श्रीहरि बाबाने कहा—हमलोग तो व्रज-भावके लोकोत्तर स्वरूपपर मधुर चर्चा आपके श्रीमुखसे सुनना चाहते हैं।

बाबूजी इस निवेदनके समक्ष नतमस्तक थे। अगले दिन गोपी-प्रेमपर बाबूजीका प्रवचन हुआ। वह प्रवचन अद्भुत था। उस दिनके प्रमुख श्रोता थे श्रीहरि बाबा, स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज, श्रीआनन्दमयी माँ आदि-आदि। ऐसे संत-समुदायके मध्य श्रीराधा-माधवके प्रेम-राज्यके गहन तथ्य वाणीके माध्यमसे व्यक्त होने लगें तो क्या आश्चर्य किया जाय। ***"भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई॥"*** उस दिन ब्रह्मलोकसे भूतलपर धावित होनेकी सार्थकता और सफलताको देखकर वागीश्वरी शारदा भगवती अवश्य ही परम आनन्दित हुई होंगी।

प्रवचनके बाद वन्दनीया माँने पूज्य बाबूजीको, पूज्या माँको और बाबूजीके परिकरवर्गको बड़े ही प्यारसे भोजन करवाया। माँके अनुरोधपर आज बाबूजी सपरिवार-सपरिकर पधारे थे। विदा होते समय वन्दनीया माँने बाबूजीको एक तुलसी-माला तथा विपुल फल उपहारमें दिये।

यह तो प्रसंग है राजपुरा स्थित आश्रमका। कलकत्तामें अथवा कुम्भके मेलेमें अथवा अन्यत्र जब-जब वन्दनीया माँसे बाबूजी मिलते तब-तब माँका आदरभाव, स्नेहभाव उमड़ पड़ता था।

बाबाके प्रति भी वन्दनीया माँकी बड़ी महत्त्व-बुद्धि थी। केन्द्रीय सरकारके भूतपूर्व शिक्षा मन्त्री डॉ० श्रीत्रिगुणसेनके सामने एक बार माँने कहा था कि—"राधा बाबा प्रेम भक्ति और सत्यका प्रतीक। भक्ति मार्गका जीवन्त मूर्ति।" एक बार और माँने अपने उद्‌गार व्यक्त किये थे कि—"एक स्थिति है, जहाँ ब्रह्म सिवाय और कुछ नहीं। द्वैत-अद्वैत, ज्ञान-भक्ति सब एक ही है। वही है, जो स्थिति राधा बाबाकी है।"

माँ योग्य साधकको बाबाके पास भेज दिया करती थीं। सन् १९८१ के जूनके मध्यमें माँने एक बंगाली युवक साधकको बाबाके पास भेज दिया। उनका नाम था श्रीनिर्मल ब्रह्मचारी। श्रीनिर्मलजी उच्च घरानेके व्यक्ति थे। वे एक फर्ममें मैनेजर थे। भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनकी चाह मनमें जगते ही एक कम्बल ले करके तथा अपनी माँको प्रणाम करके घरसे बाहर निकल पड़े। कम्बलके अतिरिक्त उनके पास कुछ भी नहीं था। वे चले आये आनन्दमयी माँके पास। वन्दनीया माँने इनके वस्त्र तथा आवासकी व्यवस्था की। इनकी श्रीकृष्ण-भक्ति देख करके माँने यही उचित समझा कि श्रीनिर्मल ब्रह्मचारीको गीतावाटिकाके राधा बाबाके पास भेज दिया जाये। माँने अपने निजी व्यक्तिसे कहा—आप निर्मलको राधा बाबाके पास छोड़ आइये। फिर राधा बाबा जाने। जबतक राधा बाबा चाहें, अपने पास रखें और जबतक निर्मल चाहे, वहाँ रहे।

वे सज्जन अपने साथ श्रीनिर्मलजीको तो लाये ही थे, इसके अतिरिक्त माँद्वारा प्रदत्त चन्दन-पुष्पमाला और पुष्कल प्रसाद लाये थे, जिसको बाबाने बड़े ही सम्मानके सहित स्वीकार किया। माँके द्वारा भेजे गये श्रीनिर्मलजीको बाबा एकान्त वार्ताके लिये अधिक-से-अधिक समय देते। श्रीनिर्मलजीके खान-पानके स्पर्शास्पर्श-सम्बन्धी नियम बड़े ही कठोर थे। उन नियमोंके निर्वाहमें कभी भी तनिक बाधा उपस्थित न हो, एतदर्थ बाबाका अत्यधिक ध्यान रहता। श्रीनिर्मलजीके भोजनकी व्यवस्था बहिन विमलाको सौंपकर बाबा निश्चिन्त थे और बहिन विमलाने बाबाके उस विश्वासमें कभी भी खरोंच लगने ही नहीं दी। श्रीनिर्मलजी बहुत दिनोंतक गीतावाटिकामें रहे। फिर वन्दनीया माँके पास वापस चले आये।

एक विचित्र संयोगकी बात लिख रहा हूँ। बाबा तथा माँ दोनों ही लकवासे ग्रस्त हुए। दोनोंके शरीरपर २० तारीखको लकवाका झटका आया और दोनोंके शरीरके दक्षिण अंग लकवासे प्रभावित हुए। ज्यों ही माँको बाबाके लकवा-ग्रस्त

होनेकी सूचना मिली, त्यों ही एकदम चैतन्य होकर 'हरी-हरी-हरी' उच्चारण करने लगीं। फिर माँने आदेश दिया कि आज ही गीतावाटिका पत्र लिख दो—बाबाका शरीर खराब हो गया है। यह माँको ठीक नहीं लगा। 'राधा बाबा; राधा बाबा; राधा बाबा, नमो नारायण; नमो नारायण; नमो नारायण।'

बाबा कई बार कहा करते हैं कि माँ भारतकी परमोच्च कोटिकी आध्यात्मिक विभूति हैं। बाबाको माँके दर्शन तीन बार हुए हैं। इसके बारेमें बाबाने बताया—जब-जब माँके दर्शन हुए, तब-तब यही अनुभव हुआ कि मेरे सम्मुख साक्षात् भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीजी विराजित होकर अपना पावन दर्शन दे रही हैं। तीनों बार एक ही जैसा दर्शन होना स्वयंमें एक बहुत बड़ी बात है। जिस दिव्य रूपमें दर्शन मिले, वह छवि आजतक हृदय-पटलपर ज्यों-की-त्यों अंकित है।

श्रीश्रीआनन्दमयी माँके उद्‌गार और उपहार

सन् १९७७ में श्रीव्रजेन्द्रकुमारजी शुक्ल और सम्मान्य श्रीजज साहब श्रीरामप्रसादजी दीक्षितके मध्य जो पत्राचार हुआ, वह वस्तुतः अवलोकनीय है।

श्रीव्रजेन्द्रकुमारजी शुक्ल परम पूज्या श्रीश्रीआनन्दमयी माँके शिष्य हैं तथा सेना-विभागमें शिक्षाधिकारीके रूपमें कार्य कर चुके हैं। आपका हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समितिके उपाध्यक्ष जज साहब (श्रीरामप्रसादजी दीक्षित)-से बड़ा स्नेह सम्बन्ध है। सन् १९७७ के जुलाई अथवा अगस्त मासमें डॉ० श्रीत्रिगुणसेन, जो कभी दिल्लीके केन्द्रीय मन्त्रिमण्डलमें शिक्षामन्त्री रह चुके हैं, वे अपने मित्र श्रीव्रजेन्द्रकुमारजी शुक्लके साथ किसी कार्यसे गोरखपुर आये और अतिथिके रूपमें आप दोनोंने गीतावाटिकामें दो दिनतक निवास किया। यहाँसे जानेके बाद जज साहबके पास श्रीशुक्लाजीका जो पत्र आया, वह इस प्रकार है—

प्रथम पत्र :—

श्रीश्रीमाता आनन्दमयी आश्रम
स्थान—कनखल (हरिद्वार)
दिनांक-१८-८-१९७७

श्रद्धेय दीक्षितजी,

सादर सप्रेम प्रणाम।

आपका कृपा पत्र मिला था। पूज्य बाबाका पावन प्रेम तथा आप सब भाई-बहिनोंकी शुभ कामनायें लिये वह पत्र पूज्या माँको सुनाया तो माँने पूज्य बाबाके लिये तीन बार '**नमो नारायण**' उच्चारण किया था।

गत सप्ताहकी एक सुखद घटना आपको लिख रहा हूँ। एक दिन प्रातः पूज्या माँको श्रीराधा-माधव-रस-सुधा नामक ग्रन्थमें पूज्य बाबाद्वारा लिखित जगज्जननी श्रीराधाकी जीवनी दिखायी तो माँ बड़ी मुग्ध हो गयीं और श्रीराधाके चित्रको बारंबार चरण-वन्दन किया और कहा, "बाबा! पाठ करके सबको सुनाना"। उसी दिन सायं दर्शनके समय जब त्रिगुणदा और मैं पूज्या माँको प्रणाम कर रहे थे तो माँ अनेक भक्तोंके समक्ष स्वतः बोल उठीं, "देशमें जितना महात्मा जिन्दा हैं, राधाबाबाकी स्थिति सबसे ऊपर। अच्छा हुआ तुम जाकर बाबाका दर्शन किया"।

उसके दूसरे दिन काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके उप-कुलपति डॉ० धर तथा आई०टी०टी० कानपुरके डाइरेक्टर डॉ० भट्टाचार्य पधारे थे। वे दोपहरके समय त्रिगुणदाके साथ माँके दर्शन करने गये। उस समय भी माँने कहा—"राधा बाबा प्रेम-भक्ति और सत्यके प्रतीक, भक्ति-मार्गकी जीवन्त-मूर्ति"। त्रिगुणदा यह लिखकर ले आये थे सो मुझे आकर तुरन्त बताया। मैं कमरेमें विश्राम कर रहा था। उसी दिन शामको दर्शनके समय महानिर्वाणी अखाड़ेके महन्तजी भी पधारे थे। माँने वेदान्त तथा भक्ति-मार्गकी बात की। तभी कहती गयीं—"एक स्थिति ऐसी है, जहाँ ब्रह्मसिवाय और कुछ नहीं। द्वैत, अद्वैत, ज्ञान, भक्ति सब एक ही है। वही है, जो स्थिति राधा बाबाकी है"।

मैं पूज्या माँके सान्निध्यमें एक वर्षसे हूँ और त्रिगुणदा चार वर्षसे। माँको किसी संतके विषयमें कभी ऐसे उद्‌गार कहते नहीं सुना। जो माँके साथ अति कालसे हैं, उन्होंने बताया कि माँने पूज्य हरि बाबा तथा पूज्य गोपीनाथजी कविराजके प्रति अवश्य अपने उद्‌गार व्यक्त किये थे।

त्रिगुणदा और मुझे तो परम सुख और प्रेमका आह्लाद हुआ और कई भक्तोंने पूज्य बाबाके निमित्त जिज्ञासा की तथा दर्शनोंकी अभिलाषा व्यक्त की। यह सत्य है कि माँके मुखके उद्‌गार परम भागवत एवं परम सत्य हैं।

मैं देहरादून गया था। राधाष्टमी-उत्सवपर हम दोनोंके आनेका विचार है। कृपा करके मेरा और मेरी पत्नीका पूज्य श्रीबाबाके श्रीचरणोंमें साष्टांग प्रणाम निवेदन करें।

विनीत
व्रजेन्द्र

द्वितीय पत्र :—

श्रीश्रीमाता आनन्दमयी आश्रम
कनखल (हरिद्वार)
२५-८-७७

श्रद्धेय दीक्षितजी,

सादर सप्रेम जय माँ।

गत मास गीतावाटिकाके पुस्तक-विक्रय केन्द्रसे मैं एक प्रति 'राधा-माधव-रस-सुधा' नामक ग्रन्थ लाया था, जिसमें पूज्य बाबाद्वारा लिखित जगज्जननी श्रीराधाकी जीवनी छपी है।

२२ ता०को प्रात: जब श्रीमद्भागवत सप्ताहके अन्तिम दिन सुदामा-चरितका प्रकरण चल रहा था, तब पूज्या माँने मुझे बुलवाया और कहा कि वह ग्रन्थ, जिसमें राधाजीकी जीवनी है, मुझे दे दो और अपने लिये दूसरा मँगा लो। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और माँको सहर्ष उसी समय ले जाकर दे दी। माँने माथेसे लगाकर अपने पास रख ली। मैं तो आधी ही पढ़ पाया था कि पूज्या माँके कर-कमलोंमें समर्पित कर दी।

पूज्य बाबाके श्रीचरणोंमें मेरा साष्टांग प्रणाम करें।

आपका
माँके चरणोंमें
व्रजेन्द्र

तृतीय पत्र :—

श्रीश्रीमाता आनन्दमयी आश्रम
कनखल (हरिद्वार)
२६-८-७७

श्रद्धेय दीक्षितजी,

सादर सप्रेम प्रणाम।

आपका २४-८-७७ का लिखित पत्र आज ही मिला। पूज्य बाबाके दाहिने अंगपर पक्षाघातका प्रभाव जानकर स्तब्ध रह गया। सायं पाँच बजे सत्संगमें त्रिगुणदा मिले, उन्हें बताया तो वे भी स्तब्ध हो गये। सत्संगके बाद लगभग

साढ़े छ: बजे पूज्या माँके पास गया। वे पिछले दो दिनसे अधिक अस्वस्थ हैं। तीव्र ज्वर और मुँह तथा ओठ सूज जाते हैं। ज्यों ही 'पूज्य बाबाको पक्षाघात हुआ है', माँको बताया तो एकदम चैतन्य होकर ''हरी, हरी, हरी'' कहने लगीं और कहा कि ''भगवान्ने इस रूपमें आनेको सोचा है। उनका ही तो शरीर है।'' उसके बाद आपने जो कुछ लिखा, वह पढ़कर सुनाया तो गुरुप्रिया दीदी और स्वामी भास्करानन्दजी कहने लगे कि माँ भी बिलकुल यही कहती हैं गीताकी साक्षी देकर। मुझे उस समय ठाकुर रामकृष्णपरमहंसकी वह उक्ति स्मरण हो आयी, **''सब सियाल एक राह।''**

पूज्या माँने आदेश दिया कि बाबाको लिख दो, ''बाबाका शरीर खराब हो गया, यह माँको ठीक नहीं लगा। **राधाबाबा, राधाबाबा, राधाबाबा! नमो नारायण, नमो नारायण, नमो नारायण।**'' इतना कहकर माँ एकदम मौन हो गयीं और मैं प्रणाम करके चला आया।

पूज्या माँका शरीर जन्मजात भावमय है और पूज्य बाबाने कठिन तपस्यासे अपने शरीरको तपाकर भावमय बना लिया है, अत: हम सब अपने भावको शुद्ध रखकर निरन्तर नाम-जप करते हुए भागवत-परिवेशमें रहें तो महापुरुष स्वत: ही ठीक हो जायँगे। राधा-माधवके युगल चरण उनके अन्त:करणमें विराजते हैं। उनकी लीला वे ही जानें।

हम सबको इस समाचारसे अत्यन्त दु:ख है। आज माँके सामने चिन्तन किया तो २० ता० बड़ी अशुभ निकली। पूज्या माँको भी प्रथम दौरा २० मईको बरेलीमें हुआ था, फिर जूनको कनखलमें और अब पूज्य बाबाको २० अगस्तको। दोनोंका ही दाहिना अंग अ-बश हुआ। कैसा विचित्र संजोग है!

यह सब उन्हींकी लीला है। वे ही इससे त्राण करेंगे। कृपया पूज्य बाबाके शरीरके विषयमें सूचना देनेका कष्ट अवश्य करें। पूज्य बाबाको सादर दण्डवत् प्रणाम निवेदन करें।

आपका
माँके चरणोंमें
व्रजेन्द्र

चतुर्थ पत्र :—

श्रीश्रीमाता आनन्दमयी आश्रम
कनखल (हरिद्वार)
१८-१-७८

श्रद्धेय दीक्षितजी,

सादर, सप्रेम जय माँ!

कल माँसे थोड़ी आध्यात्मिक विषयोंपर चर्चा हुई। तभी पूछनेपर कि पंचमीपर पूज्य बाबाके दर्शन कर आऊँ, माँ प्रसन्न हो उठी और बोली—'जाओ दर्शन कर आओ।' थोड़ी देर बाद फिर बोली कि इस बार थोड़ा-सा प्रसाद और एक हार बाबाको मेरी ओरसे ले जाना। मैं गद्‌गद हो गया कि क्या मेरे ऐसे भाग्य, जो माँका प्रसाद पूज्य बाबा-जैसे महापुरुषको मुझ-जैसा अकिंचन ले जायेगा। आज माँने प्रसाद-रूपमें थोड़ी मिश्री और किशमिश अपने हाथसे दिये और चन्दनकी एक माला अपने मस्तकपर लगाकर दी तथा बताया कि बाबाको चन्दन और पुष्प-हार देकर तब प्रसाद देना।

शायद १२ फरवरीको वसंत पंचमी है। यदि शरीर ठीक रहा तो ११ फरवरीको हम दोनों गोरखपुर पहुँच जायँगे। बड़ी कृपा होगी यदि पूज्य बाबाके सान्निध्यमें गीतावाटिकामें तीन दिन रहनेकी व्यवस्था करवा दें।

एक सुन्दर-सा पुष्प-हारका तथा थोड़ा-सा चन्दनका प्रबन्ध यदि १२ की सुबह हो जावे तो पूज्य बाबाको माँका प्रसाद देनेमें सुविधा होगी।

विनीत
माँके चरणोंमें
व्रजेन्द्रकुमार शुक्ल

श्रीव्रजेन्द्रकुमारजी शुक्लने अपने १८-१-७८ वाले पत्रसे श्रीजज साहबको सूचना दी थी कि मैं ११ फरवरीको पूज्य श्रीबाबाके दर्शनार्थ गीतावाटिका आऊँगा, किन्तु किसी पारिवारिक जनके निधन हो जानेके कारण उनको अपना कार्यक्रम बदलना पड़ा तथा वे ११ फरवरीके स्थानपर १३ फरवरीको आये। वे अपराह्न कालमें गीतावाटिका पहुँचे। आते ही पूज्य श्रीबाबाको प्रणाम करने गये। पूज्य बाबा उस समय टब-बाथ लेनेके लिये टहल रहे थे। श्रीशुक्लजीने जाकर पूज्य बाबाको साष्टांग प्रणाम किया। श्रीशुक्लजीको देखकर पूज्य बाबा

गद्‌गद हो गये। उनको उठाकर उनका हाथ अपने हाथमें ले लिया तथा बहुत ही उल्लसित स्वरमें पूज्य बाबा कहने लगे—आपको देखकर ऐसा लग रहा है मानो मैं माँ (श्रीआनन्दमयी माँ)-के दर्शन कर रहा हूँ।

१४-२-१९७८ के प्रात:काल नौ बजे श्रीशुक्लजी वे वस्तुएँ, जो पूज्या माँने भेंट-स्वरूप भिजवायी थी, उनको लेकर पूज्य श्रीबाबाके पास गये। इसके अतिरिक्त पुष्पहार तथा चन्दन भी थालमें उन्होंने ले लिया था। पूज्य बाबा अपनी कुटियामें चौकीपर विराज रहे थे। पूज्य बाबाने उल्लासभरे स्वरमें श्रीशुक्लजीका स्वागत किया। श्रीशुक्लजीने पूज्य बाबाको साष्टांग प्रणाम किया। इसके बाद बड़ी प्रसन्न-मुद्रामें तथा बड़े शान्तचित्तसे उन्होंने पूज्य बाबाके ललाटपर चन्दन लगाया और फिर गेंदाकी विशाल माला धारण करवायी। इसके बाद उन्होंने पुनः साष्टांग प्रणाम किया। अब श्रीशुक्लजी पूज्या माँकी भेंटकी वस्तुएँ क्रमशः प्रदान करने लगे। तुलसी-पत्र दिया, फिर मिश्रीका थैला और अखरोट-किशमिशका थैला दिया। इन वस्तुओंको लेकर पूज्य बाबाने अपने मस्तकसे लगाया। सबसे अन्तमें उन्होंने चन्दनकी माला पूज्य बाबाको पहनायी, जो पूज्या माँने स्वयं दी थी। सारा वातावरण बड़ा भावमय हो रहा था। वाटिकाके अनेक भक्तगण एकत्रित हो गये थे। पूज्य बाबा रह-रह करके पूज्या माँकी पुनीत भावनाका अभिनन्दन कर रहे थे। भावविभोर बाबाने कहा—जब सर्वप्रथम मुझे माँका दर्शन कलकत्तेमें हुआ था, तब उन्होंने अपने जिस दिव्यस्वरूपसे, अपने जिस लोकातीत स्वरूपसे मुझे दर्शन दिया, उनका वह अमानुषी स्वरूप आजतक मेरे हृत्तलपर अंकित है और वह सर्वथा मेरी अपनी अनुभूतिकी वस्तु है। पूज्या माँ आज भारतकी सिद्ध संतोंमेंसे एक हैं।

(मुझे पूज्य बाबाकी एक महत्त्वपूर्ण पुरानी उक्ति स्मरण हो आयी। बहुत पहले पूज्य बाबाने प्यारपूर्वक बतलाया था कि जब उनको कलकत्तेमें सर्वप्रथम पूज्या माँका दर्शन हुआ था, तब नख-शिख वात्सल्यमयी माँके दिव्य व्यक्तित्वमें भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीकी छविकी झाँकी मिली थी।)

पूज्या माँद्वारा दीक्षित एक अमेरिकन शिष्यने पूज्या माँके कीर्तनकी दो टेप भेंट-स्वरूप भेजी, जिसमें माँ कीर्तनका नेतृत्व कर रही हैं तथा भक्तगण कीर्तन कर रहे हैं। कीर्तनकी दो टेपोंके अतिरिक्त उन्होंने माँका एक चित्र भी भेजा, जिसमें पूज्या माँ मोर मुकुट धारण किये श्रीकृष्णरूपमें आसनपर विराजमान हैं।

श्रीशुक्लजीने ये दोनों टेपें तथा चित्र पूज्य बाबाको आदरपूर्वक अर्पित किये। इसके अतिरिक्त पूज्या माँका नवीनतम फोटो पूज्य बाबाके प्रति श्रीशुक्लजीने अपनी ओरसे भेंट-स्वरूप प्रदान किया। पूज्य बाबाने आदेश दिया—ये दोनों चित्र मेरी कुटीरके खम्भोंपर टाँग दिये जायँ।

बादमें ये दोनों चित्र टाँग दिये गये। ये चित्र पूज्य बाबाके तिरोहित हो जानेके क्षणतक सदा टँगे रहे।

पूज्या माँके कीर्तनवाली टेपोंको टेपरेकार्डरद्वारा पूज्य श्रीबाबाको सुनवाया गया। उसमें '**आत्म गुरु नमो नमः**' का कीर्तन कराया गया है। पूज्या माँकी दीक्षा बड़ी विचित्र रीतिसे हुई है। श्रावण शुक्ल पूर्णिमाकी अर्ध रात्रिमें पूज्या माँके शरीरसे एक व्यक्ति बाहर प्रकट हुआ। उस व्यक्तिने पूज्या माँको दीक्षा दी और दीक्षा देकर पुनः पूज्या माँके शरीरमें ही समा गया। इसी कारण 'आत्म-गुरु' की वन्दना बड़ी श्रद्धासे की गयी है।

चन्दन तथा हारद्वारा पूज्य बाबाका यह पूजन आज मैंने पहली बार ही देखा। इस प्रकारका अभिनन्दन या अभ्यर्चन पूज्य बाबाको अरुचिकर है, पर आज एक परम सिद्धसंतकी (पूज्या माँकी) भावनाओंको समादृत करनेके लिये पूज्य बाबाका मन विगलित हो उठा और समुदायके बीच इस प्रकारकी अभ्यर्चनाके लिये उन्होंने स्वीकृति प्रदान कर दी।

इसके बाद पूज्य बाबाने श्रीशुक्लजीको तथा उनकी पत्नीको अपने सामने ही जलपान कराया। यह जलपान देखनेमें प्रत्यक्षतः तो श्रीशुक्लजी कर रहे हैं, पर वस्तुतः पूज्य बाबा करा रहे हैं उन पूज्या माँको, जिनके प्रतिनिधि श्रीशुक्लजी हैं। पूज्या माँको जलपान कराया जा रहा है, इस भावनासे भावित हुए पूज्य बाबा श्रीशुक्लजीकी बार-बार मनुहार करते हैं और उनकी रुचिको देखते रहते हैं।

पूज्य बाबाने पूज्या माँद्वारा भेजी गयी तुलसीका एक दल, किशमिशका एक दाना तथा अखरोटका किञ्चिदंश स्वीकार किया। इसके बाद पूज्या माँकी प्रसादी वस्तुएँ उपस्थित भक्तसमुदायमें वितरित कर दी गयीं। कुटियापर आज प्रातःका वातावरण बड़ा भाव-भीना बना रहा।

सन् १९८२ की बात है। २६ अगस्त १९८२ को श्रीराधाष्टमी-महोत्सव सानन्द-सोत्साह-सोल्लास मनाया जा रहा था। गीतावाटिकामें उमंगका वातावरण था।

गीतावाटिकाका यह उल्लासमय और उत्साहपूर्ण वातावरण, बस, एक

शोक-समाचारसे बड़ा ही संकुचित और स्तंभित हो गया। २८ अगस्त १९८२ के दिन यह सुननेको मिला कि परम वन्दनीया श्रीआनन्दमयी माँका निधन हो गया है। यह संवाद एक भीषण वज्रपातके समान था। गीतावाटिकाके सम्पूर्ण वातावरणमें शोक व्याप्त हो गया। वन्दनीया माँसे बाबूजीका और बाबाका बड़ा सम्पर्क रहा है।

ज्यों ही माँके निधनका समाचार मिला, बाबा एकदम अवसन्न हो गये। राधाष्टमी-महोत्सवका उल्लास बड़ा संकुचित-स्तंभित हो गया। सबके मनमें खिन्नताने घर कर लिया। बाबाने जब जल ही ग्रहण नहीं किया, तब भिक्षाका तो प्रश्न ही नहीं। २८ अगस्तके सारे दिन सारी रात बाबा निर्जल—निराहार रहे। दूसरे दिन २९ अगस्तके प्रातःकाल गंगाजल तो स्वीकार किया, पर चौवालीस घंटा निराहार रहनेके उपरान्त बाबा भिक्षाके आसनपर तब ही बैठे जब वन्दनीया माँके पार्थिव शरीरका अन्तिम संस्कार कनखलमें हो गया। बाबा तो श्रीआनन्दमयी माँकी गरिमाका वर्णन करते थकते ही नहीं थे।

बाबाने एक बात और कही। माँका निधन हुआ था २८ अगस्तको। निधनके बारह दिन बाद ९ सितम्बरको माँ अपने दिव्य स्वरूपसे बाबाके पास पधारीं तथा परस्परमें संलाप भी हुआ।

श्रीसरोजिनी देवीका आत्मोत्सर्ग

आर्य रमणीका जीवन कैसा होता है, आज इस विलासिताके युगमें समझ लेना कुछ कठिन है। पूर्वकालकी बात है। मुगल सेना एवं राजपूत वीरोंमें सारे दिन युद्ध हुआ। रणभूमि शवसे पाट दी गयी। अनेक राजपूत वीर, अनेक क्षत्रिय युवक अपनी मातृभूमिकी गोदमें चिरनिद्रामें सो गये। संध्याकालीन सूर्यकी रश्मियोंमें उनका निर्मल प्रशान्त मुख चमक रहा था। मातृभूमिके लिये अपना जीवन अर्पण करनेवाले उन वीरोंके साथ ही हजारों मुगल वीर सो रहे थे। सम्पूर्ण नीरवता थी। हाँ, कुछ काक एवं गिद्धोंका दल एकत्रित हो गया था और उनकी कर्कश ध्वनि बीच-बीचमें इन पुनीत नीरवतासे टकराती और अन्तरिक्षमें विलीन हो जाती थी। सूर्यदेव इस दृश्यको अधिक देर नहीं देख सके। अस्ताचलमें जा छिपे। धीरे-धीरे घोर अन्धकार छा गया।

मुगल सेना कुछ दूरपर ही पड़ाव डाले हुए थी और चौकन्ना थी। कहीं प्राणोंकी बाजीसे खेलनेवाले वीरोंकी कोई टुकड़ी अवशिष्ट रह गयी हो और फिर भिड़ना न पड़े। इसीलिये बारम्बार दृष्टि निर्वीड़ अन्धकारको चीरती हुई उस शवपुंजकी ओर जा लगती। अवश्य ही थकी आँखें कुछ क्षण ही खुली रह सकीं। रात्रिके प्रथम पहरका अवसान भी न हो पाया था कि सेना गम्भीर निद्रामें बेसुध हो गयी। एक जग रहा था। गठीला जवान था। प्रत्येक अंगसे रोब टपक रहा था। वह स्वयं दिल्लीश्वर था। अपने आपको शस्त्रोंसे पहले सजाया, नीचेसे ऊपरतक लैस होकर, पर अपने इस वीर वेशको चादरसे छिपाकर पैरोंको अत्यन्त धीमे-धीमे रखते हुए चल पड़ा। शवपुंजके पास आ पहुँचा। उसने देखा—तेरह वर्षकी एक सुन्दर सुकोमल बालिका अपने हाथसे एक प्रदीप लेकर शवोंके बीच घूम रही है। वह प्रत्येक शवके पास जाती है, दीपकके प्रकाशमें मुख देखती है, फिर आगे चल पड़ती है। मुगल वीर यह देखकर कुछ स्तब्ध सा हो गया। बालिकाके सुन्दर केश उसके कन्धोंपर बिखरे हुए थे। मुखपर एक अनिर्वचनीय शान्ति, प्रेम एवं व्याकुलता—सी छायी हुई थी। मुगल वीरने सोचा, मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ। यह स्वर्गकी अप्सरा तो नहीं है। बालिका दीपक लिये शवोंको देखती हुई उस मुगल वीरके समीप जा पहुँची थी। दीपककी ज्योतिसे मुगल वीरकी सफेद चादर चमक उठी। बालिकाके नेत्र उस ओर गये। वीरने एक बार अपने शस्त्र सुसज्जित अंगोंकी ओर देखा तथा दो कदम आगे बढ़कर बालिकाके ठीक सामने खड़ा हो गया। अब उस बालिकाने आँखें ऊपर उठायी। एक क्षणके लिये वह किंचित् सहम गयी, पर दूसरे क्षण ही एक अपूर्व तेजसे उसका सम्पूर्ण अंग चमकने लगा। बालिकामें भयकी गन्ध भी न रही। मुगल वीरने विनयपूर्वक धीमी कण्ठसे पूछा—'देवि! क्या कर रही हो?' एक क्षणके लिये मौन रहकर बालिकाने उत्तर दिया—'खोजने आयी हूँ।' इस बार उत्सुकतामिश्रित, पर किंचित् झिझकके साथ मुगल वीरने कहा—'इस निस्तब्ध रात्रिमें इन शवपुंजोंमें तुम किसे ढूँढ रही हो देवि!' बालिकाने इस बार तेजीसे कहा—'अपने पतिदेव, प्रियतम, प्राणनाथकी देहको खोजने आयी। इस युद्धमें आज वे धराशायी हुए हैं। उनकी देह मुझे चाहिये। उनकी देहको अपनी गोदमें रखकर इस दीपकको आँचलसे लगाकर सती हो जाऊँगी। मैं तुम्हें बड़ा भैया कहकर पुकार रही हूँ। तुम ऊपरसे कुछ लकड़ियाँ डाल देना।'

मुगल वीर उस बालिकाके तेजसे अभिभूत था। उसमें सामर्थ्य नहीं रह गयी थी कि कुछ पूछे, पर उसने सारा साहस बटोरा और बोला—'देवि! बुरा न मानना, तुम्हारी उम्र तो बहुत छोटी है। तुम्हारा विवाह कब हुआ होगा?' बालिकाने सरलतासे उत्तर दिया—'विवाह तो अभी नहीं हुआ था, सगाई हुई थी।' मुगलवीरने अन्तिम प्रश्न किया—'देवि! जबतक विवाह नहीं हुआ, तबतक वह आपका पति कैसे? उसके साथ प्राण देना······' बालिका रोषपूर्ण कण्ठसे बीचमें ही बोल उठी—'चुप, सावधान! ऐसी बात जीभपर फिर न लाना। रमणी राजपूत एक बार ही पतिका वरण करती है।'

पाठकोंको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि देवी सरोजनीने भी अपना प्राणविसर्जन करनेके पूर्वक अपने पत्रमें एक शब्दके हेरफेरसे यही बात हनुमानप्रसादजीको लिखी थी—**'हिंदू रमणी वरे एक पति।'** यह सरोजनी कौन थी, यह विचार भाई श्रीश्यामसुन्दरजी दुजारीके शब्दोंमें पढ़िये। भाईजीसे उसका क्या सम्बन्ध था? यह घटना भाईजीने अपने एक मित्रको दो बार सुनायी थी—

'सम्वत् १९६४ वि० (सन् १९०७) का वर्ष था। अपने मामाजीके बुलानेसे ग्वालन्दे होते हुए अपनी ननिहाल चाँदपुर जा रहा था। साथमें मेरे सुखलाल जमादार था। उस समय ग्वालन्देसे चाँदपुर जहाजमें बैठकर जाना हुआ करता था। अत: मैं भी जहाजपर सवार हुआ। मैं जहाजके जिस स्थानपर बैठा, भाग्यचक्रसे वहीं एक बंगाली सज्जन परिवार सहित बैठे थे। उनके साथ उनकी स्त्री और उनकी एक कन्या सरोजनी नामकी थी। जिसकी आयु १३-१४ वर्षकी होगी। उसका एक छोटा भाई पाँचसे छः वर्षका था। वह भी उसके साथ था। मेरे पास कुछ मेवे थे। उनमेंसे मैंने स्वाभाविक ही कुछ मेवे उस बालकको दे दिये। उस बालकने भी वह मेवा ले लिया। थोड़ी देरमें जहाजकी एक स्टेशन लोहगंज (नारपासा) आया। उसी स्टेशनपर वे लोग उतरकर डोंगीमें बैठकर चले गये।'

ऊपरसे यह घटना कितनी स्वाभाविक दीखती है। प्रतिदिन न जाने कितने यात्री ठीक इसी प्रकार मिलते हैं, मिलकर बिछुड़ जाते हैं। इसमें किसीको कुछ भी स्मृति नहीं रहती, पर नहीं, सरोजनीदेवीके परिवार एवं भाईजीके इस मिलनके अन्तरालमें एक पुनीत रहस्यमय घटना छिपी है, इसकी गन्धतक स्वयं भाईजी भी करीब चार वर्षतक न पा सके। इस मिलनकी स्मृतिको तो वे लोहगंज स्टेशनके जल-कलरवके साथ ही विदा दे चुके थे। तबसे अनन्त नूतन स्मृतियाँ

आयीं, गयीं। उनके भारसे सरोजनीके मिलनकी यह स्मृति इतनी दब गयी थी कि चंचल मनके साथ यह मधुमय साजके साथ पुनः नाच उठेगी, यह कल्पना भाईजीके लिये सम्भव नहीं थी, पर, इससे क्या होता? भाग्यचक्र तो निरन्तर घूम रहा था। ऊषा आती, प्रभात हँसता, मध्याह्न रोषमें भर जाता, संध्या गम्भीर हो जाती, निशा सान्त्वना देती। इन कालस्रोतकी लहरियोंपर प्रभुका मंगल विधान नियमित क्रमसे नाचता रहता था। एक क्षणके लिये इस नृत्यका विराम नहीं हुआ। एक लहर नाचती हुई आती। हनुमानप्रसादके गलेमें एक माला डाल जाती, दूसरी आती तिलक कर जाती, तीसरी आती पान खिला जाती, चौथी आकर अंजन लगाती, फिर एक नयी आती आभूषण पहना जाती। इस प्रकार प्रत्येक लहर आती और लीलामय प्रभुके निर्धारित विधान भेंट देकर लौट जाती और हनुमानप्रसादजी क्या करते? वे अपनी जीवनसंगिनीके निर्मल प्रेमकी धारामें अवगाहन करते हुए ही, विधानके आगे हँसते हुए सिर नवा देते। अस्तु।

लहरोंमें बहता हुआ एक दिन एक पत्र प्रथम श्रावण कृष्ण ९ सं० १९६९ (९ जुलाई, सन् १९१२) को आया। कलकत्तेकी पगयापट्टीमें, पारखजीकी कोठीकी अपनी दुकानमें हनुमानप्रसादजी बैठे थे। रात्रिकी चादर डालकर कलकत्ता नगर विश्राम करने जा रहा था, पर हनुमानप्रसादजी जाग रहे थे। सोते भी कैसे? अभी-अभी एक लहरीने उनकी अज्ञात चेतनासे कह गयी थी, मेरी बहन तुम्हें एक पत्र देने आ रही है, सो मत जाना भला और सचमुच दूसरे ही क्षण पत्र आया। पत्रपर किसी अज्ञात रमणीके अक्षर थे। भाईजीने पत्र खोला। वह अत्यन्त विस्तृत था। नीचे लिखा था—'सरोजनी' और पास ही लिखा था मेरे मिलनेका पता कालीघाट है। पत्रके आरम्भमें पूर्ण विवरण दिया हुआ था। किस प्रकार आप ग्वालन्दीसे चाँदपुर जहाजपर बैठे हुए जा रहे थे और मैं पिताजीके साथ आपके समीप ही बैठी थी। लोहगंजपर मैं उतर पड़ी थी और शेष पत्रमें क्या था, इसकी कल्पना पाठक मेरी असमर्थ लेखिनीकी निम्नांकित शब्दावलीसे स्वयं करें। अवश्य ही वैसा करनेसे पूर्व अपने हृदयको पवित्र पाशविक इन्द्रियसम्पर्क, इन्द्रियसुखसे सर्वथा शून्य निर्मलतम प्रेम—मन्दाकिनीकी धारामें डुबो लें, अन्यथा उस पूजनीया प्रेममयी देवी सरोजनीके मंगलमय आशीर्वादसे वंचित हो जायेंगे।

इस बातको जानता था विश्वनाटकका सर्वत्र सूत्रधार और जानती थी सरोजनी। इसके बाद सरोजनीके जाननेसे जान पाये भाईजी, जो सर्वथा सरोजनीकी स्मृतितक भूले हुए थे। लोहगंज स्टेशनपर सरोजनी उतरी थी, पर उतरी थी अपना शरीर, अपना प्राण, अपना हृदय, अपना सर्वस्व हनुमानप्रसादके चरणोंमें सदाके लिये समर्पित करके, पर उसका यह समर्पण खोखला न था। वह अन्तस्तलके निर्मलतम प्यारसे लबालब भरा था, इसीलिये प्रकट न हुआ। देवी सरोजनी बाह्य व्यवहारमें भी अत्यन्त कुशल थी, इसीलिये उसने प्रकटमें कुछ भी न कहकर श्रीहनुमानप्रसादजीके साथ जो सुखलाल नामक जमादार था, उससे नाम और जाति सब पूछकर अपनी डायरीमें नोट कर लिया। इस बातका हनुमानप्रसादजीको भी पता न लगने दिया और न हनुमानप्रसादजीको सुखलाल जमादारने ही कहा। भाईजी उसे बिलकुल ही भूल गये थे, किन्तु जिस देवीने अपने जीवनको उनके चरणोंमें समर्पित कर दिया था, वह कब भूलनेवाली थी? उसके हृदय पटलपर तो वह मधुर मूर्ति उसी क्षणसे निरन्तर नाच रही थी। वह कैसे जीवन बिता रही होगी, इसका अनुभव किसी हृदयवान्‌को ही यत्किंचित् हो सकता है। यद्यपि उस देवीने अपने विशुद्ध और निश्छल प्रेमको किसी पर भी प्रकट नहीं किया, किन्तु उसके घरवालोंने चार वर्षके बाद सम्वत् १९६७ वि० के लगभग उसका विवाह किसी अन्य पुरुषके साथ करनेका विचार किया, तब उस देवीके मनमें बड़ी दुविधा उत्पन्न हुई। यदि वह अपने विवाहका विरोध करती है तो उसका प्रेम प्रकाशमें आ जाता है और प्रेमका प्रकाशमें आना प्रेमीके लिये कितना असाध्य होता है, संसार-आसक्त मानव उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। और यदि स्वीकृति देती है तो अपने आराध्यदेवकी वंचना होती है। सरोजनीका मन इस दुविधामें चंचल हो उठा, पर एक अचिन्त्य शक्तिने उसकी चिन्ता हर ली। उसे पथ मिल गया। प्रस्तुत होकर वह चल पड़ी। विवाहका नाटक रचे जानेमें उसने बाधा न दी, क्योंकि उसकी दृष्टिमें उसके आराध्यदेवके अतिरिक्त कोई दूसरा पुरुष था ही नहीं। उसके अन्तरके पट खुल चुके थे। प्रेमकी निर्मल धारामें सभी मल धुल चुके थे। ***'उत्तम के अस बस मन माहीं, सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं'*** की उज्ज्वल मूर्ति वह बन चुकी थी। मेदिनीपुर जिलेके किसी ग्राममें विवाहका नाटक पूर्ण हुआ। संसारकी दृष्टिमें वह सच्चा था, पर उसकी दृष्टिमें यह सर्वथा खेल था।

सरोजनी ससुराल पहुँची। ससुरालमें चार-पाँच महीने रही, पर रही **'चंचरीक**

जिमि चंपक बागा' की तरह। अब प्रेमकी परीक्षा प्रारम्भ हुई। सतीत्व रक्षाका प्रश्न उपस्थित हुआ। सरोजनी क्या करती है? सम्वत् १९६९ श्रावणके लगभगकी बात है। एक दिन नाटकके संसारको उसने अंतिम बार प्रणाम किया सदाके लिये बाहर चल पड़ी। हृदयमें आराध्यदेव भाईजीकी मूर्ति सान्त्वना दे रही थी बाहर श्रीभगवान्की कृपा रक्षा कर रही थी। सरोजनी जिस दिन अपनी माँसे बिदा होकर खेलने ससुराल जा रही थी, उस दिन तीस गिन्नियाँ माँने उसे दी थी। नाटक खेलकर जब वह अपनी वास्तविक ससुरालकी ओर चली तो उस समय भी वे तीस गिन्नियाँ उसके अंचलमें बँधी थी।

एक दिन मीरा अपने गिरधरलालको खोजनेके लिये चली थी। सरोजनी भी आज अपने आराध्यदेवको ढूँढ़ने चली है। दोनोंके अन्तस्तलमें भावोंमें पूर्ण साम्य है, पर बाहर कुछ अन्तर है। सरोजनीने अपने ऊपरका भेष बदल लिया। उसने अपनेको एक सिख बालकके रूपमें सजाया और घूमने लगी। कलकत्ते पहुँची। इस विशाल नगरमें अपने आराध्यदेवको ढूँढ़ने लगी। उस समय बर्द्धवानमें बाढ़के कारण हाहाकार मचा हुआ था। पत्रोंमें उसकी सहायताके लिये सूचना निकली थी। सरोजनीने देखा कि उन्हीं समाचारोंमें उसके आराध्यदेवका नाम छपा था। नाम पढ़ते ही रोम-रोम आनन्दसे नाच उठा। पर अब मिलूँ कैसे?—यह प्रश्न था? सोचती क्या स्वयं चली जाऊँ। पर दूसरे ही क्षण हृदयके अन्तस्तलमें प्रेमकी किरणें फूट पड़ती और सरोजनी निश्चय करती—भला प्रेम भी प्रकट करनेकी वस्तु होती है, ना, कभी न जाऊँगी, पर शीघ्र ही अन्तस्तल उफनने लगा। एक बार दर्शनकी प्रबल उत्कण्ठासे, एक बार प्रियतमके चरणोंमें उपस्थित होकर दो-चार शब्द निवेदन करनेकी लालसासे उसके प्राण विकल हो उठे। प्रेमके आवेशमें उसे केवल एक ही पथ दीखा। वह यह कि प्रियतमको एक पत्र लिखूँ। जहाज परके प्रथम मिलनसे लेकर आजतककी सम्पूर्ण घटना स्वामीको लिखकर भेजूँ। तब वे यदि मिलना चाहेंगे तो अवश्य आ जायँगे। इसी निश्चयका परिणाम यह पत्र है, जिसे हाथमें लिये हुए हनुमानप्रसादजी स्तब्ध बैठे हैं।

भाईजीके निर्मलतम हृदयमें भावोंकी आँधी चल रही थी। हाथका पत्र शोणित धमनियोंमें विद्युतका संचार कर रहा था। अतीतकी स्मृति चित्रपटकी भाँति सामने आ रही थी। जहाजका वह दृश्य मानो अभी-अभीका है। भाईजी

भावमें विभोर होकर कुछ क्षणके लिये निश्चेष्ट हो गये। आजतक उनके जीवनको पापकी छाया तक भी स्पर्श न कर पायी थी, पूर्ण सदाचार जीवनका व्रत रहा था। अतः इस पत्रसे उनके मनमें कोई इन्द्रिय मलिन विकार तो न हुआ, सर्वथा पवित्र भाव ही उत्पन्न हुआ, पर वे अपने वर्तमान कर्तव्यको लेकर गहरे विचारमें पड़ गये। 'सरोजनीके पत्रके प्रत्येक अक्षरमें निर्मल प्रेम छलक रहा था। इस विशुद्ध प्रेमने बाध्य कर दिया।' एक बार उसे दर्शन देनेकी प्रार्थनाको पूर्ण करनेकी पवित्र इच्छा जाग उठी। पत्रमें लिखा था—कालीघाट मन्दिरके पास हमसे कल नौ बजे प्रात:काल मिल सकते हैं। अत: वहीं निश्चित समयपर चल पड़े। साथमें एक मित्र थे जिनका नाम बालचन्द मोदी था। पर वह वहाँ न मिली और ये अन्यमनस्क वहाँसे लौट आये। उसी रात्रिको उपर्युक्त पतेसे एक पत्र फिर मिला, जिसमें लिखा था—'आप जब वहाँ पहुँचे, तब मैं वहाँ थी अवश्य, पर आपके साथ एक सज्जन थे और इसीसे मैं न मिली। अब आप मुझे न खोजें, मैं आपका स्थान जान गयी हूँ। मैं ही आपसे मिल लूँगी।' इसके कुछ देर बाद उसी रात्रिको दूसरा पत्र मिला—कल प्रात: आउटरामघाटके स्टेचूके पास हमसे मिलें, दूसरे दिन भाईजी उस स्थानपर जाकर उत्सुकता भरे नेत्रोंसे उस देवीको ढूँढ़ने लगे, पर वह आज भी न मिली। हाँ उस स्टेचूके पास कागजकी एक चिट मिली, जिसपर लिखा था—'आपके आनेमें विलम्ब होनेसे मैं जा रही हूँ। यहाँ ठहरना मेरे लिये निरापद नहीं है। अब मैं आकर स्वयं मिल लूँगी।'

वह दिन बीता। संध्या हुई, रात्रि हुई। भाईजीके मनमें एक चिन्ता-सी लगी थी। रात्रिके समय वे दुकानसे घर लौट रहे थे। घर हरिसन रोड पर था। पथमें घरसे थोड़ी ही दूरपर एक शिवमन्दिर था। वहीं एक सिख बालक मिला उसने अपना परिचय दिया—'मैं सरोजनी हूँ। यह कृत्रिम वेश है।' भाईजीने भी पहचान लिया। सचमुच वही बालिका है। परिचय होनेके बाद रमणी सुलभ सौन्दर्य उस सिख वेशमें छिप ही कैसे सकता था?

अपने प्रियतम स्वामीको पाकर प्रेममूर्ति सरोजनीकी क्या दशा हुई होगी—इसका चित्रण करना लेखनीसे असम्भव है। इतना लिख देना सम्भव है, आवश्यक भी है कि यह निर्मल विशुद्ध प्रेम था। इसमें भोगवासनाकी गन्धतक भी नहीं थी। इसलिये दोनों परस्पर प्रेममें डूबकर बात करते हुए भी किसीने भी किसीके शरीरका किंचित्मात्र

स्पर्श तक भी न किया। इस मिलनमें इसकी आवश्यकता भी न थी, क्योंकि यह प्रेमका मिलन था, कामका उद्दाम उच्छ्वास नहीं।

कई घण्टेतक बातें हुई। सरोजनीके प्रत्येक शब्दसे सत्य झर रहा था। उसकी समस्त चेष्टायें आन्तरिक सरलता, आन्तरिक विशुद्ध प्रेमसे ओतप्रोत थी, उनमें कृत्रिमताकी गन्ध भी नहीं थी। भाईजीका हृदय सरोजनीके प्रति पवित्र अनुरागसे भर उठा, पर शरीर तो वे अपनी विवाहिता पत्नीके हाथोंमें दे चुके थे। धर्मतः वैसे सम्बन्धकी दृष्टिसे उनके शरीरपर उनकी एकमात्र विवाहिता पत्नीका ही अधिकार था। दी हुई वस्तुको छीनकर उससे फिर दूसरेको दे देना सच्चे सज्जनोंने सीखा ही नहीं। अतः सरोजनीके अनमोल प्रेमकी भेंटमें शरीर न्यौछावर करनेका प्रश्न समाप्त हो चुका था। अवश्य ही भाईजीके मन, प्राण उस देवीके विशाल प्रेमसागरसे जा मिले। सरोजनीने अनुभव किया, उसके हृदयके अन्तस्तलमें अभी-अभी जो प्रेमके बुदबुदे उठ रहे थे, वो प्रियतम स्वामीके प्राणोंका संयोग पाकर उत्ताल तरंगें बन गये हैं।

अब बाह्य जगत्‌की व्यावहारिक समस्या हल करनी थी। भाईजीने अपने हृदयके प्रेमसे सानकर कहा—'देवि! तुम यहीं रहो, पर एक अलग मकानमें। तुम्हारे जीवन यापनकी सारी व्यवस्था हो जायगी, सारा प्रबन्ध हो जायगा।' पर सरोजनी वास्तविक प्रेम करना चाहती थी। उसके जीवनमें स्वसुखवासना थी ही नहीं। स्वामीका सुख ही उसके जीवनका सच्चा सुख था। भविष्यमें स्वामीके सुखमें व्याघात न हो, इस उद्देश्यसे बोली—कदाचित् आपके हमारे इस निर्मल प्रेममें आगे चलकर कोई कलुषित विचार उत्पन्न हो जाय तो आश्चर्य नहीं। मेरा दूर रहना ही उचित है, आवश्यक है। अवश्य ही आपके प्रति मेरे प्रेममें कामवासना, अंगसंगकी इच्छाकी रंचमात्र गन्ध भी हेतु नहीं है।

जाते समय सरोजनी अपने आराध्यदेवको अपनी स्वर्णनिर्मित अँगूठी देती गयी। यह अँगूठी मानो उसके अर्पित हृदयके प्रतीक उसकी अँगुलीमें रहती थी, पर हृदय देकर प्रतीक रखना प्रेममें कलंक है, इस भावसे प्रतीकको भी वहीं रख दिया, जहाँ हृदय था।

कुछ दिनों बाद सरोजनीके प्रेममय हाथका अन्तिम पत्र आया। उसमें लिखा था—'शरीर-वियोग व्यथा सहनेमें असमर्थ है, अब मैं इसे नहीं रखूँगी।' भाईजीने पत्र पाकर उसे ढूँढ़नेकी बहुत चेष्टा की, पर कोई अनुसन्धान न

मिला। बादमें ज्ञात हुआ कि उसने प्रयागमें जाकर त्रिवेणी संगममें जल समाधि ले ली।

प्रेम-प्रतिमा देवी सरोजनीके हृदयकी वह प्रतीक अँगूठी, उसको स्वर्णमेडल (तमगा) के रूपमें परिणत किया गया। प्रतीकके आकारमें अन्तर न आया। पहले भी गोल था, अब भी गोल रहा। पर खोखला था, होना ही चाहिये। हृदय भी प्रियतम वियोग वेदनामें घुल-घुलकर खोखला हो गया था और आज मानो उसके प्रियतमके पिघले हुए प्राण उस खोखले स्थलके पास जा पहुँचे, पोल भर गया। वह मेडल नहीं था, दो पिघले हुए एकमेव हुए प्रेमिल हृदयोंका प्रतीक था। मेडल जालन्धर कन्या महाविद्यालयकी एक कन्याको भाईजीने पुरस्कारमें दिया। उसकी एक ओर खुदा था—'**सरोजनीके स्मृत्यर्थ**' और दूसरी ओर लिखा था—'**हिंदू रमणी वरे एक पति।**'

बहुत वर्षों बाद इस घटनाकी चर्चा करते हुए भाईजीने कहा कि सरोजनीके विशुद्ध प्रेमका आदर करते हुए भी मेरे मनमें लौकिक वासनाकी गंध भी पैदा नहीं हुई एवं सरोजनी भी आर्य-मर्यादापर दृढ़ रही।

महान् भक्तिमती श्रीचिन्मयी देवी

सन् १९५६ में गीताप्रेसकी ओरसे द्वितीय तीर्थयात्रा ट्रेन चली थी। यात्राका आरम्भ वाराणसीसे हुआ था। उड़ीसामें कुछ साम्प्रदायिक उपद्रव हो गये थे, अतः परिक्रमा विपरीत रीतिसे करनी पड़ी, अर्थात् वाराणसीसे विभिन्न तीर्थस्थानोंपर होते हुए द्वारका, द्वारकासे रामेश्वरम्, रामेश्वरम्से जगन्नाथपुरी और फिर जगन्नाथपुरीसे वाराणसी।

दक्षिण भारतमें तीर्थयात्रा ट्रेन विजयवाड़ा पहुँची। विजयवाड़ाके समीपके एक स्थानकी घटना बड़ी दिव्य है। इस घटनाका बाबूजीके जीवनमें अति महत्त्वपूर्ण स्थान है। वहाँ पहुँचनेपर एक परिचित एवं प्रतिष्ठित वकीलके घर बाबूजी गये। बातचीतके बीचमें उन्होंने बताया—मेरे पड़ोसमें ही प्रौढ़ आयुकी एक बहिन रात-दिन एकान्तमें भजन करती रहती है। वह भजनके अतिरिक्त और कुछ करती ही नहीं। सात्त्विकता और आस्तिकताकी तो मानो साकार प्रतिमा है। उसे न दिनका पता है और न रातका। उसके लिये तो सूर्योदय और सूर्यास्त

एक समान ही है। जगत्में क्या हो रहा है, इसे न वह जानती है और न जानना चाहती है। वह सदा अपने पूजा-पाठमें लगी रहती है और जब-तब उसके कपोलोंपर अश्रुके बिन्दु ढुलकते ही रहते हैं। आपका यहाँ आगमन हो ही गया है तो एक बार उससे अवश्य मिल लें।

उनके आग्रहको स्वीकार करके बाबूजी उस बहिनसे मिलने गये। साथके लोगोंको बाहर बैठाकर बाबूजी अकेले ही उसके कमरेमें गये। उसे कमरा न कहकर साधना-कक्ष ही कहना चाहिये, जिसका वातावरण अत्यन्त सत्त्व-सम्पन्न था। उस कक्षके कण-कणमें दिव्यता व्याप्त थी। बाबूजीने देखा कि एक देवी अपने आराध्यके समक्ष भाव-विह्वलावस्थामें बैठी हुई है। उसकी यह भाव-विह्वलता कोई एक दिनकी बात नहीं है। विह्वलता तो उसके जीवनका स्वरूप बन गयी थी। पूजामें प्रात:काल बैठती और फिर कब मध्याह्न हो जाता, इसका उसे ध्यान नहीं रह जाता था। उसे ध्यान बना रहता मात्र एक बातका—कब मुझे मेरे आराध्यका दर्शन होगा? बस, एक बार मुझे मेरे आराध्यका दर्शन हो जाय।

यदि किसीके आराध्य सर्वव्यापक भगवान् हों तो ऐसी भावमयी स्थिति भाग्यवान् साधकोंकी ही हो सकती है, पर जिसके आराध्य पाञ्चभौतिक चोलेके भीतर प्रकट होकर लीला कर रहे हों और जिनके दर्शन सुलभ होनेपर भी अभीतक नहीं हुए हों, उसके हृदयकी स्थितिका यथार्थ चित्रण सम्भव ही नहीं। दर्शनाभिलाषिणी एवं प्रतीक्षारत एक भाग्यशालिनी त्रेतायुगमें हुई थी, जिसका वर्णन श्रीरामकथामें शबरीके रूपमें आता है। ऐसा लगता है, उसी भूमिखण्डमें यह देवी वर्तमान युगकी एक महान् शबरी है, जो उसी उच्चादर्शको अपने सामने रखकर प्रतिदिन-प्रतिक्षण प्रतीक्षा करती रहती है और अपने आराध्यके दर्शनकी चाह लिये नित्य राह देखती रहती है। सर्वव्यापक एवं सर्वज्ञ भगवान्से कुछ छिपा नहीं है। करुणार्णव भगवान् उसपर द्रवित हुए। इस प्रतीक्षारत देवीको भगवान्ने विरहके तापमें अधिक तपाना उचित नहीं समझा और उसकी वाञ्छाके पूर्ण होनेके लिये समुचित परिस्थितिका निर्माण कर दिया।

उस साधना-कक्षमें प्रवेश करनेपर बाबूजीने देखा कि वह देवी अपने आसनपर बैठी है। उसके युगल कपोल और उसका आँचल भीगा हुआ है। उसके सामने उसके ठाकुरजीका श्रीविग्रह है और श्रीविग्रहके पासमें ही उन्हींका

(अर्थात् बाबूजीका) चित्र है। बाबूजीने कक्षमें प्रवेश किया, इसके बाद भी उस देवीने अपने नेत्र नहीं खोले। उसने यही सोचा कि प्रतिदिनकी भाँति प्रसाद-ग्रहणार्थ अनुरोध करनेके लिये कोई आया होगा। उसे देखकर बाबूजी भाव-विभोर हो गये। कुछ समय बाद वे बोले—देवि! यह चित्र किसका है?

सिर झुकाये ही देवीने उत्तर दिया—बहुत वर्षों पूर्व मैंने इनके बारेमें कुछ पढ़ा था, तबसे मेरा इनके प्रति समर्पण-भाव हो गया है। बहुत प्रयत्न करनेपर बम्बईसे मुझे यह चित्र मिला। तबसे मैं इन्हें इष्टदेवके रूपमें देखती हूँ और इनकी पूजा करती हूँ।

बाबूजीने पूछा—क्या तुम इन्हें जानती हो? कभी इनसे मिली हो? ये कहाँ रहते हैं?

देवीने बतलाया—मैं उनका नाम जानती हूँ, पर कभी इनसे मिली नहीं हूँ। जब मैंने अपना समर्पण इनके प्रति कर दिया तो पता-ठिकाना जाननेकी आवश्यकता नहीं।

देवीने उत्तर तो दे दिया, किन्तु प्रश्नोंको सुनकर उसके मनमें विचारोंका एक प्रवाह भी चल पड़ा कि अभीतक किसीने इस प्रकारकी जिज्ञासा नहीं की और आज इन प्रश्नोंको करनेवाला कौन आ गया। मस्तक नीचे किये-किये ही वह अपने विचारोंके साथ बह रही थी, तभी किसी अचिन्त्य प्रेरणासे उसने अपना मस्तक ऊपर उठाया और बाबूजीकी ओर देखा। देखते ही वह तो विस्मयमें डूब गयी। विस्मयके आवर्तमें पड़ी हुई देवीको अपनी दोनों आँखोंपर विश्वास नहीं हो पा रहा था। वह सोच रही थी—क्या मैं इतनी भाग्यशालिनी हूँ? क्या मेरे आराध्य मेरे सामने हैं? क्या सचमुच मेरे आराध्य पधारे हैं? क्या मेरा इतना महान् सौभाग्य है?

देवीके नेत्र लज्जा-शील-संकोच-दैन्य-उल्लास-आह्लाद आदिके विपुल भावोंसे भर गये। उसका शरीर पुलकित-रोमाञ्चित हो उठा। उसने तत्क्षण बाबूजीके श्रीचरणोंपर अपना मस्तक रख दिया। कुछ देर बाद वह उठी और बाबूजीके भालपर चन्दनका तिलक किया, चरणोंमें चन्दन चढ़ाकर पुष्प अर्पण किया और धीरेसे बोली—भगवान्ने मेरा मनोरथ पूर्ण कर दिया। मैं धन्य हो गयी। इससे अधिक मुझे और कुछ नहीं चाहिये था।

बाबूजी बोले—देवि! मैं आपका परिचय जान लेता?

उसने उत्तर दिया—मेरा परिचय जानकर क्या करेंगे? मुझे कोई लाभ दिखलायी देता नहीं। मेरी प्रार्थना तो यह है कि जो परिचय आपको मिला है, उसे भी आप कृपा करके किसीको मत बताइयेगा, नहीं तो मेरे यहाँ भीड़ लग जायगी।

बाबूजीने कहा—आप मेरा पता लिख लें।

देवीने कहा—मुझे इसकी भी आवश्यकता नहीं है। मेरे मनमें तो यही एक साध थी कि एक बार मुझे दर्शन हो जायँ। वह साध अन्तर्यामी प्रभुने बड़े विचित्र ढंगसे पूरी कर दी। अब और कुछ चाह मनमें है नहीं। मनसे तो मैं निकट ही रहती हूँ। बस, मेरा यह समर्पण अन्ततक निभ जाय।

बाबूजी इस सर्वथा अहैतुक समर्पणको देखकर विस्मित एवं स्तम्भितसे हो गये और मनसे भूरि-भूरि आशीर्वाद देते हुए बाहर चले आये। बहुत वर्षों बाद बाबूजीने यह घटना अपने एक अंतरंग स्वजनको बतलायी। बहुत आग्रह करनेपर उनका नाम तो उन्होंने बता दिया 'चिन्मयी देवी', पर स्थानका पता अन्ततक नहीं बतलाया। यदि कभी पूछा जाता तो बाबूजी कह देते—वह नहीं चाहती कि जगत्‌का कोई व्यक्ति उसके निष्काम मूक समर्पणको जान पाये।

बहिन श्रीकुमुद

(पंजाबी बहिन श्रीकुमुद)

इसका जन्म पंजाबके मुलतान शहरमें हुआ था। जब इसके माता-पिता मुलतानमें रहते थे, तब तो पंजाबका दौरा करते समय पं० श्रीजवाहरलालजी नेहरू इनकी कोठीपर ठहरे थे। जब कुमुदकी आयु छोटी थी, तभी वह अपने माता-पिताके साथ बम्बई आ गयी थी। जब यह सात वर्षकी थी, तभी इसके पिताजीका देहान्त हो गया था। इसके एक भाई था, जो इससे दो वर्ष बड़ा था। भाईकी धार्मिक पुस्तकोंमें बड़ी रुचि थी। वह प्रायः गीताप्रेससे प्रकाशित पुस्तकोंको तथा धार्मिक पत्रिका 'कल्याण' के अंकोंको बड़े मनोयोगपूर्वक पढ़ा करता था। उन्हीं पुस्तकोंको तथा कल्याण-पत्रिकाको कुमुद भी चावपूर्वक पढ़ा करती थी। जब कुमुदकी आयु लगभग पन्द्रह वर्षकी थी, तब वृन्दावनसे

श्रीहरगोविन्दजीकी रास-मण्डली बम्बई गयी हुई थी। उस रासलीलाको देखनेके लिये ये दोनों भाई-बहिन जाया करते थे। उस रासलीलाका कुमुदके कोमल मनपर बड़ा प्रभाव पड़ा। भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति-भावनामें उसका मन बहने लगा। यह भाव-धारा और भी वेगवती हो गयी अपने भाईके वियोगसे। एक दिन समुद्र-स्नान करते समय समुद्रकी लहरें उसके भाईको बहा ले गयीं। भाईके आकस्मिक वियोगने कुमुदके अन्तरमें संसारके प्रति आत्यन्तिक विरक्ति भर दी। घोर उदासी और प्रबल निराशाकी स्थितिमें उसका स्वास्थ्य बहुत गिर गया। उसे कहीं कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। संसारकी असारताको देखकर वृन्दावनेश्वर श्रीकृष्णके श्रीचरणोंपर सर्व समर्पित कर देनेका लौल्य उसके मनमें जाग उठा। महावियोगिनी प्रेमयोगिनी मतवाली मीराके भावोंके अनुसार, बस, एक ही बात कुमुदके मनमें रह गयी थी—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई॥

इस समय बहिन कुमुदकी आयु लगभग उन्नीस वर्षकी होगी। इन दिनों कुमुदके मनकी केवल एक ही पुकार थी कि मैं वृन्दावन कब पहुँचूँगी। एक दिन कुमुदने अपनी माँसे कहा—माँ! तू मुझे वृन्दावन ले चल।

माँके सामने अनेक सांसारिक विवशताएँ थीं। जब माँने अपनी कुछ पारिवारिक उलझनों तथा कुछ जागतिक रुकावटोंका बयान किया तो कुमुदने अति खिन्न मनसे अपनी माँसे कहा—क्या तू यही चाहती है कि मैं अपना जीवन समाप्त कर लूँ?

विवश होकर माँ कुमुदको लेकर वृन्दावन आयी। वृन्दावन आकर माँ-बेटी पहले एक धर्मशालामें ठहरीं। फिर एक पंजाबी सद्‌गृहस्थके घरमें कमरा किरायेपर लेकर रहने लग गयीं। किसी कारणसे माँको वापस बम्बई जाना पड़ा तो माँ कुमुदकी सँभालका भार उन सद्‌गृहस्थ पंजाबीजनपर छोड़ गयी।

उधर माँ तो बम्बई गयी और इधर श्रीकृष्ण-विरहसे व्यथिता भक्तिमती कुमुदकी दशा कुछ और ही थी। व्यथाके अतिरेकमें कुमुद क्या-क्या करती थी, यह तो कुमुद ही जाने, पर उसके परिचितोंने इतना अवश्य देखा कि वह एक बड़ी मटकी लेकर यमुना-स्नानके लिये जाती, स्नान करनेके बाद मटकीको यमुना-जलसे भरकर अपने सिरपर रख लेती और घरकी ओर

वापस आते समय रास्तेभर यही कहती—क्या नन्दलाल! मेरी मटकी फोड़ने नहीं आओगे?

किसीको सुनानेके लिये नहीं, प्रबल भावोंका वेग जब सीमाका अतिक्रमण करने लगता था, तब वह गाने लगती थी—

जन्म जन्म के बिछड़े साथी साथ निभाओ।
जीवन के अँधियारे पथ पर दीप जलाओ॥
जैसे तैसे भूले भटके ही आ जाओ।
अंत समय है और मुझे अब मत तरसाओ॥

उसको भोजन करनेकी फुरसत भला कहाँ? कच्चे आटेको पानीमें घोलकर वह पी लेती। एक बार उस कमरेमें रहते समय कुमुद बहुत बीमार हो गयी तो एक दूसरी संतसेवी श्रद्धालु बहिन उसका उपचार करनेके लिये उसे अपने घरपर ले आयी। इन्हीं दिनों 'कल्याण' पत्रिकामें पूज्य बाबा द्वारा लिखित 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' क्रमशः धारावाहिक रूपसे प्रकाशित होता था। कल्याण-पत्रिकामें वह 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' को पढ़ते-पढ़ते अघाती नहीं थी। इसके वाचनसे उसकी भक्ति-भावना अत्यन्त उद्दीप्त हो उठती थी। इसके अतिरिक्त पूज्य बाबूजीके पत्रोंको पढ़नेमें उसकी रुचि थी। 'कामके पत्र' शीर्षक स्तम्भके अन्तर्गत बाबूजीके पत्र 'कल्याण' पत्रिकामें प्रायः छपा करते थे। इससे उसको बड़ा अवलम्ब मिलता था। यह 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' और ये पत्र कुमुदके प्राणोंकी निधि थे। दिनके समय कुमुद लाल स्याहीसे कॉपीमें 'राधा-राधा' लिखा करती थी। सन्ध्याके समय वह लहँगा पहिनकर अपने ठाकुरजीके सामने नाचा करती थी। वह नाच-नाच करके अपने ठाकुरको रिझाया करती थी। उसका कण्ठ बड़ा मधुर और ललित था। वह पदोंको गा-गा करके अपने ठाकुरको सुनाया करती, केवल अपने ठाकुरको। उसके जीवनका सारा माधुर्य और सारा लालित्य अब एक मात्र जीवनधन प्राण-प्रियतम श्यामसुन्दरके लिये था। अन्य अवसरपर वह कभी गीत गाती नहीं थी, मनुहार करनेपर भी वह मौन ही रहती। उसका व्रत था कि यदि सुनाना है तो केवल अपने ठाकुरको ही। जब वह भावभरे मनसे अपने ठाकुरजीको पद सुनाया करती थी तो उसके निकटवर्ती जन भी छिप-छिप करके उसके पदोंको सुना करते थे। उसका सबसे प्रिय पद था—

गोबरधनवासी साँमरे तुम बिन रह्यौ न जाय हो।
ब्रजराज लड़ैते लाड़िले॥
बंक चितै मुसिकाय के लाल सुंदर बदन दिखाय हो।
लोचन तलफें मीन ज्यों पल छिन कल्प बिहाय हो॥

श्रीचतुर्भुजदासजीद्वारा रचित इस पदमें छब्बीस पंक्तियाँ हैं और इस एक पदको वह तीन-चार घंटेमें पूरा कर पाती थी। कई बार मकानकी छतपर खड़ी होकर वह पगली कुमुद निर्लज्ज होकर पुकारने लगती थी—प्रियतम! तुम कब आओगे?

इस पागल पुकारकी कोई सीमा तो थी नहीं। मतवाली मीराके समान उसकी एक ही अकुलाहट थी, एक ही छटपटाहट थी, एक ही अनुरोध था, एक ही अभिलाषा थी—

प्यारे दरसन दीज्यो आय।
तुम बिन रह्यो न जाय॥
जल बिन कमल चंद बिन रजनी,
ऐसे तुम देख्याँ बिन सजनी,
आकुल व्याकुल फिरूँ रैन दिन,
बिरह कलेजौ खाय।
प्यारे दरसन दीज्यो आय॥

प्रीतम बोलो कब आवोगे?
कब वीणाकी झंकारों पर बन अमर गीत छा जावोगे?

यह एक ऐसी आग है, जो बुझाये बुझती नहीं; एक ऐसा रोग है, जो मिटाये मिटता नहीं और उस रोगीको कितना ही समझाओ, वह समझाये समझता नहीं। उस विरहिणी कुमुदकी, बस, एक ही आह थी और एक ही आवाज थी—

कब होगा हमसे प्यार सखी।
मेरी वीणा है मूक पड़ी, सोये हैं इसके तार सखी,
पर कभी झनक ही उठती है, ले बजनेका अधिकार सखी,
मेरी इस नीरव वीणाकी, है यही मूक झंकार सखी।
कब होगा हमसे प्यार सखी॥

क्या शान्त कभी होगी मेरी, दुख दर्द भरी हुंकार सखी,
क्या शीतल फिर हो पायेगे, मेरे मनके अंगार सखी,
क्या लुप्त शून्यमें ही होंगे, आकुल उरके उद्‌गार सखी।
कब होगा हमसे प्यार सखी॥
आ दीन दशा देखे मेरी, वह प्रीतम प्राणाधार सखी,
आ स्वयं आप वह कर जाये, इस पीड़ाका उपचार सखी,
दुखिया प्राणोंका सम्बल वह, है जीवनका शृंगार सखी।
कब होगा हमसे प्यार सखी॥

रोदन ही बहिन कुमुदका जीवन था, विकल अश्रुधारा ही उसकी सहेली थी और 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' का सदा वाचन ही उसके लिये सान्त्वनाका स्रोत था। इन्हीं आँसुओंसे भीगे-भीगे उसके दिन कट रहे थे कि एक दिन उसकी माँ बम्बईसे आयी उसे बम्बई लिवा जानेके लिये। माँने कहींपर कुमुदके सम्बन्धकी बात तय कर ली थी। लड़की सयानी हो गयी है, अत: विवाह कर देना उचित है। कन्याके दायित्वसे मुक्त होनेके लिये ही वह कुमुदको अपने साथ बम्बई ले गयी। न चाहते हुए भी माँके अनुशासनपर कुमुदको बम्बई जाना पड़ा। बम्बई जानेसे पहले कुमुदने उस संतसेवी श्रद्धालु बहिनसे कहा—जिस तरह तुमने मेरी इतनी सँभाल की, बस, वैसे ही तुम मेरा एक काम और कर देना। कल्याण-पत्रिकामें क्रमश: छपनेवाला यह 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' जब कभी भी भविष्यमें पुस्तकाकार छपे, तब उसकी एक प्रति मेरे पास अवश्य भेज देना। अवश्य-अवश्य भेज देना।

कुमुदने जाते-जाते इस अनुरोधको दो बार या चार बार नहीं, आठ-दस बार नहीं, कम-से-कम बीस-पच्चीस बार दोहराया होगा। बम्बई पहुँचनेपर कुमुदकी चाहके विरुद्ध उसकी माँने उसका विवाह कर दिया। जिस नये घरमें कुमुदने बहूके रूपमें प्रवेश किया, वहाँका वातावरण सर्वथा अनुकूल नहीं था। उस प्रतिकूल वातावरणमें उसका दम अत्यधिक घुटने लगा और क्या ही दुर्भाग्यकी बात! उस विकट प्रतिकूलताकी भीषण ज्वालामें एक दिन अति विकला कुमुदका जीवन आहुति बन गया। विवाहके बाद वह ससुरालमें अधिक दिन नहीं जी पायी। थोड़े दिनोंके बाद ही वह संसारसे विदा हो गयी। इस दारुण शोक समाचारको सुनकर कुमुदकी माँ तो चीख मारकर रो पड़ी। माँके मनमें

बड़ी कसक थी कि मैं उसको वृन्दावनसे वापस क्यों लायी? कुमुदके निधनके बाद उसकी माँ पागलिनीकी भाँति उस श्रद्धालु बहिनके पास वृन्दावन आयी और रो-रो करके कहने लगी—कुमुद गयी, कुमुद चली गयी, कुमुद सदाके लिये संसारसे चली गयी।

वह श्रद्धालु बहिन तो सुनकर अवाक् रह गयी। कुमुदके दिव्य भविष्यके बारेमें उसने कितनी सुहावनी कल्पनाएँ सजा रखी थीं, इसे सुनते ही वे सब-की-सब ढह गयीं। *'बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा।'* कुछ भी कहा नहीं जा सकता कि कब क्या हो जायेगा।

बहिन कुमुदके विदा हो जानेके कुछ वर्ष बाद 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' जब पुस्तकाकार छपकर तैयार हुआ तो वह श्रद्धालु बहिन उस ग्रन्थको पढ़कर सुनाती और कुमुदकी दिवंगत आत्मासे कहती—तू जहाँ भी हो, इसे सुन ले।

उन श्रद्धालु संतसेवी बहिनसे वृन्दावनमें मैंने जब बहिन कुमुदका यह करुण वृत्त सुना तो सचमुच मेरा तन-मन सिहर उठा। मैं अपने भावोंका संवरण नहीं कर पाया और यह वृत्त मैंने पूज्य बाबाको सुनाया। मैंने सन् १९८३ ई० के मई मासमें बाबाको सुनाया था। बहिन कुमुदके संक्षिप्त परिचयको सुनते समय बाबाके नेत्र कई बार सजल हुए। वे कई बार पुलकित हुए। बाबाका मन रह-रह करके द्रवित हो रहा था। कुमुदकी भक्ति-भावनाको देखकर बाबाको आह्लाद हो रहा था, पर असमयमें ही उसके चले जानेसे बाबाको खिन्नता भी कम नहीं हो रही थी। बाबाके अन्तरमें हर्ष और विषाद, दोनों ही हो रहे थे। इस सारे वृत्तको सुनकर बहिन कुमुदके बारेमें बाबा कहने लगे—निश्चित ही वह भगवान् श्रीकृष्णमें विलीन हो गयी होगी। अब प्रश्न है यह कि उसकी इच्छाकी पूर्ति कैसे हो? अब उसको पुस्तक कैसे दी जाये?

मैं बाबाके भावोंको अपनी मूर्खताको कारण समझ नहीं पाया और एक अनाड़ीकी भाँति मैं बोल उठा—जब वह चली गयी, तब भला उसे कैसे दी जा सकती है?

फिर बाबाने कहा—उसके निमित्तसे किसीको मैं दे दूँ तो कैसी बात रहे? मैने तुरन्त इसका अनुमोदन किया और तभी यह निश्चित हो गया कि आगामी १५ मईको अक्षय तीज है, इसी अक्षय तीजके दिन 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' की एक प्रति विमला बहिनको दे दी जाये। बहिन विमला विप्र-कुलोद्भवा है और इसके अतिरिक्त परम भक्त-हृदया है।

अक्षय तीजके प्रात:कालकी बात है। परिक्रमा होनेमें अभी कुछ विलम्ब था। बाबाने भगतजीसे 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' की एक प्रति मँगवायी। संयोगकी बात, यह वही प्रति थी, जो बाबाके उपयोगमें आया करती थी। बाबाने बहिन विमलाको बुलवाया। बहिन विमलाको तनिक भी पूर्व-जानकारी नहीं थी कि बाबा मुझे क्यों बुला रहे हैं। उस समय बाबाके पास कुल चार-पाँच व्यक्ति खड़े थे। बाबाने वह प्रति अपने हाथमें लेकर दिवंगत कुमुदका अत्यधिक संक्षिप्त परिचय दिया—एक बहिन थी। उसका मन श्रीकृष्ण-भक्तिसे परिपूर्ण था। उसकी इच्छा थी कि जब 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' पुस्तकके रूपमें छप जाये तो उस पुस्तकको प्राप्त करूँ। पहले यह कल्याण-पत्रिकामें क्रमश: छपा करता था। इसके पुस्तकाकार छपनेके बहुत पहले ही वह बहिन कुमुद इस भूतलसे विदा हो गयी। उसीके निमित्तसे यह पुस्तक मैं तुमको दे रहा हूँ।

बहिन विमलाने अपना आँचल फैला दिया। अपने हाथसे बाबाने उसके आँचलमें दे दिया। देते समय बाबा बड़े विभोर हो रहे थे। बाबाने विभोर स्वरमें कहा—इस पुस्तकसे तेरा अशेष मंगल होगा और तेरे माध्यमसे उस बहिन कुमुदका भी अशेष मंगल होगा।

बाबाके नेत्र तो सजल थे ही, बहिन विमलाकी आँखें तो और भी अधिक भरी हुई थीं। उस पुस्तकको अपने आँचलमें सँभालते-समेटते हुए बहिन विमलाने याचना की—बाबा! आप आशीर्वाद दें कि भगवान् श्रीकृष्णमें अहैतुकी प्रीति हो।

ऐसा कहते-कहते बहिन विमला अत्यधिक विह्वल हो रही थी। जिसके निमित्तसे ग्रन्थ दिया जा रहा था, उसके कारण बाबा विभोर थे ही, निर्मल हृदया विमलाकी निश्छल विह्वलताने बाबाके भावोंको और भी उद्वेलित कर दिया। बाबाने प्रसन्न वाणीमें कहा—होगी, अवश्य होगी। बेटी! मुझको तुमपर गौरव है। तुम्हारा हृदय जैसा सुन्दर है और तुम्हारा जीवन जैसा सात्त्विक है, वह मेरे लिये गौरवकी वस्तु है।

जिस समय बाबाने पुस्तक प्रदान की, उस समय सारा वातावरण इतना गम्भीर, इतना भावपूर्ण, इतना संवेदनशील हो गया कि क्या कहा जाये? मैं तो वहीं था, खड़े-खड़े सब देख रहा था। देखते-ही-देखते वातावरणका रंग-ढंग कुछ लोकोत्तर हो गया था। उस भाव-भीने वातावरणमें बहिन विमलाने भूमिपर

माथा टेककर बाबाको प्रणाम किया। सबने मन-ही-मन बहिन विमलाके भाग्यकी सराहनाकी कि इसे अक्षय तीजके दिन बाबाने ऐसा अमोघ आशीर्वाद दिया तथा अक्षय तीजके दिन बाबाके हाथसे 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' पुस्तक मिली। ***'एहि सम पुन्य पुंज कोउ नाहीं'***। अब बहिन विमला उस पुस्तकका नित्य पाठ करती है। भले ही पाठ थोड़ा हो, पर पाठ नित्य होता है।

(अब पूज्या विमला बहिनका पार्थिव नहीं रहा। उसके 'जाने' के बाद वह पावन ग्रन्थ किसके पास है और उसका पाठ होता है या नहीं इसके बारेमें मुझे जानकारी नहीं है।)

श्रीश्याम सुहागिन

'कल्याण' पत्रिकाकी विख्याति इतनी अधिक थी कि देशके कोने-कोनेसे विविध प्रकारके पत्र पूज्य बाबूजीके पास पत्रिकाके सम्पादक होनेके नाते आया करते थे। एक पत्र पंजाबसे आया, जिसमें एक भक्त बहिनकी हृदयस्पर्शी गाथा थी। पत्रके रूपमें आयी हुई इस गाथाको बाबूजीने बाबाके पास भिजवा दिया और पत्रमें वर्णित प्रसंग बाबाके लिये भगवत्कृपाका एक उल्लेखनीय तथ्य बन गया। इस प्रसंगको बाबाने कई बार सुनाया है। बाबाके श्रीमुखसे सुने हुए प्रसंगको आदरणीया बहिन श्रीराधाबाई भालोटियाने लिपिबद्ध किया और उसीको यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

अखिलभुवन-समर्थ, जगदाधार, जगन्नियन्ता, अखिल ब्रह्माण्ड-कटाहनायक, श्रीकृष्णचन्द्रकी सामर्थ्यसत्ता भी कुण्ठित होकर गौरवका अनुभव करती है—अनुरागके समक्ष। अकारण करुणामय, करुणावारिधिके गाम्भीर्यमें भी विकम्पन होने लग जाता है। कारुण्यकी लहरोंका उच्छलन, उस उच्छलनकी गरिमा और उस अननुभूत सुखका स्पर्श कैसा अद्भुत, कैसा पीयूषवर्षी होता है! उसका अनुभव कर सकता है वही, जिसने कभी स्पर्श किया हो उन अकारण करुणामयकी कृपाकणिकाका।

अनादिकालसे अबतक प्राप्त और भविष्यमें अनन्त कालतक रहनेवाली सम्पूर्ण सुखराशिके मूल उत्स (झरना)-में भी सुख-प्राप्तिकी कामनाका उदय होता है और वह सुख है अपने उर:स्थलको एकमात्र प्रियतमके लिये रिक्तकर, उसे

अभिनव अनुरागसे सज्जित कर सतत प्रतीक्षा कर रहे किसी कृष्णानुरागीके सामीप्यका सुख। लालायित रहते हैं नित्य व्रजेन्द्रकुमार उस सुखकी प्राप्तिके लिये।

रसका उद्भव होता है रसराज व्रजराजकुमारसे और अखिल रसामृत-सिन्धु भी व्यग्र हो उठते हैं रसके आस्वादनके लिये। प्रयत्नशील होते हैं वे उस दिशामें और उसके लिये कैसा-कैसा दृश्य वे उपस्थित कर देते हैं, उसका आकलन प्राकृत मन-बुद्धिसे हो सके, असम्भव ही लगता है।

बस आकुलताके बिन्दुका सृजन ही तालिका है उस रसद्वारको उन्मुक्त करनेकी। अनन्त जन्मोंकी साधनाके फलस्वरूप जब वह प्रभुकृपा फलवती हो उठती है, तब उदय होता है भावका और वही भाव जब अपनी सम्पूर्ण गरिमासे उर:स्थलको अनुरञ्जित कर देता है, तब अविलम्ब उसमें स्थान ग्रहण कर लेते हैं प्राणसारसर्वस्व नीलसुन्दर। भावोंकी ऐसी गरिमाके उदय होनेपर आज इस युगमें भी ऐसा संयोग उपस्थित होता है, इसीका निर्देशन मिल रहा है प्रस्तुत एक सत्य घटनामें—

पंजाबकी सीमाका स्पर्श कर रहे एक नगरविशेषमें निवास करता था एक मध्यवित्तीय पंजाबी परिवार। केवल तीन ही प्राणी थे परिवारमें—दम्पति और एकमात्र पुत्री। एकलौती संतति होनेके नाते माता-पिताका विशेष स्नेह था बालिकापर और दम्पति नयन-पूतरीकी भाँति ही संरक्षण भी करते थे उसका।

अत्यन्त रूपवती थी वह। सुकोमल देह-यष्टि, ज्योत्स्ना-पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति उज्ज्वल मुखमण्डल, कृष्ण-सुचिक्कण सघन केशराशि-सहज ही एक आकर्षण उत्पन्न कर देते थे देखनेवालेके मनमें, पर सबसे अधिक सद्भावपूरित था उसका हृत्तल। जागतिक प्रपञ्चोंकी कलिमा उसका स्पर्श भी न कर सकी थी। कामवासनाकी गन्ध वहाँ प्रवेश कैसे कर सकती थी—सहज सरलताका ही एकाधिपत्य था वहाँ।

काल तो नियन्त्रणकी सीमासे परेकी वस्तु ठहरा। बालिका शनैः-शनैः शैशवसे कैशोरकी ओर अग्रसर हुई। उपयुक्त पात्रके हाथोंमें अपनी उस निधिको सौंपनेकी एक सुखद लालसा अब माता-पिताके हृदयोंमें समा-सी गयी थी। बालिका अपने सहज चाञ्चल्यसे हर्षका विषय बनी हुई थी सम्बन्धित जनोंके बीच। समय अपनी अबाध गतिसे चल रहा था।

परन्तु वह बालिका आयी नहीं थी इस भवाटवीमें भ्रमित होनेके लिये। प्रजापति ब्रह्मा, देवर्षि नारद भी जिसे प्राप्त करनेकी कामना करते हैं, उस कृष्णानुरागका उदय होना था उसके अन्तरमें और लीलामयने रचना कर दी उस दृश्यकी।

एक दिन किसी समारोहमें बालिकाके कर्णकुहरोंमें प्रवेश पा गयीं किसी गायककी दो पक्तियाँ—

ऐसे बर को क्या बरूँ जो जन्मे और मर जाय रे।
बर बरिये गोपालजी मेरो चुड़लो अमर हो जाय रे॥

स्वरने प्रवेश किया मात्र कर्ण-रन्ध्रोंमें परन्तु उसका तात्पर्य समा गया बालिकाके प्राणोंमें। उसने निश्चय कर लिया—'मैं भी विवाह करूँगी तो केवल उसी गोपालसे। सुहागिनी कहलाऊँगी तो अपने नीलदेवताकी ही, मेरी सीमन्त-रेखाको सिन्दूरपूरित करेंगे वे ही नन्दतनय।' मर्त्य-मानव मेरा वरणीय नहीं।

सरल बालिकाके मनका निश्चय था और साथ ही था गोपिकाप्राणके प्रति निश्छल विश्वास। अतएव अब तो प्रतीक्षा थी मात्र समयकी ही। उहापोह तो कहीं था ही नहीं। अपने इस दृढ़तम निश्चयसे बालिकाने माता-पिताको भी अवगत करा दिया। लाडली बेटीका यह निश्चय क्षणार्धके लिये माता-पिताको विकम्पित तो कर दिया, किन्तु प्राणोंके रससे सञ्चालित पुत्रीकी रुचिके वैपरित्यकी दिशामें पद-विन्यास दम्पतिके लिये भी सम्भव नहीं हो सकता था। अतएव उसकी रुचिमें ही अपनी रुचि मिला दी उन्होंने।

उस क्षणसे ही सर्वथा नवीन रूप धारण कर लिया बालिकाके जीवनने। 'कदाचित् श्रीकृष्ण मुझे वरण कर लें'—इस भावनाका भी समावेश समाप्त हो गया शनैः-शनैः उसके जीवनमें········। अब तो वह बन चुकी थी श्रीकृष्णवियोगिनी।

प्राणसर्वस्वके वियोगमें शृङ्गार और विलेपन कैसा? केश-सज्जा और वस्त्रालङ्कारोंका सर्वथा परित्याग कर दिया उसने। लज्जा-निवारणके लिये एक श्वेत परिधानमें अपने-आपको अवगुण्ठित कर चुपचाप एकान्त स्थलमें बैठी रहती वह। कोई दे देता तो खा लेती, अन्यथा उसका भी ध्यान नहीं रहता। श्रीकृष्णदिवानी प्रेमरसमें सराबोर रहती।

प्रतिदिन जब प्राचीमें ऊषाका आगमन होता, तब बालिका भी अपने निवास-स्थलके निकट बहनेवाली स्रोतस्विनीके तटपर आती, स्नानोत्तर धारण करनेवाले अपने परिधान तटपर रखकर जलमें प्रवेश करती और तटपर आकर अर्घ्यदान करती भुवनभास्करको। घरसे बाहर आनेका इतना ही क्रम शेष रह

गया था, अन्यथा अपने एकान्त कक्षमें बैठी वह चिन्तन करती रहती थी अपने प्राण-वल्लभका।

लगभग चार वर्ष इसी भाँति बीत गये। सुचिक्कण केशराशि तनिक धूमिल हो गयी थी। शरीर कृशताकी ओर अग्रसर होने लगा था, परन्तु उसके क्रममें कोई व्यवधान नहीं था। नित्यकी भाँति आज भी बालिकाने स्नानके पश्चात् प्रणमन किया अंशुमालीको और घरकी ओर लौट पड़ी।

परन्तु कुछ ही दूर जानेपर देखा कि एक नवनीरद वर्ण बालक उसकी ओर देखकर मुसकुरा रहा है। जिस सौन्दर्यको देखकर ब्रह्मसुख भी हेय प्रतीत होने लगता है, उसकी मोहकता कैसी होगी, कौन जाने? परन्तु दीख जानेपर उससे नेत्र हटा लेनेकी सामर्थ्य भला सम्भव है कहाँ? अनायास बालिकाकी आँखें जा टिकीं उसपर और वहीं जड़िमाग्रस्त-सी खड़ी रह गयी वह। कौतुकी बालकको मानो यही अभिप्रेत था। अविलम्ब वह सामने आकर खड़ा हो गया और वीणा-विनिन्दित स्वरमें बोल उठा—'आदाब अर्ज माशा अल्ला! आपकी खूबसूरतीका तो जबाब नहीं? ऐसा बेपनाह हुस्न पाया है आपने कि बयान नहीं कर सकता, मगर एक बात मेरी समझमें नहीं आती। आपने अपने इस बेमिसाल हुस्नको इतना नजरअंदाज क्यों कर रखा है? खुदा ताला आपको सलामत रखे। क्या नरगिसी आँखें हैं, मगर सुरमेंकी जगह आपने इनमें अश्क भर रखे हैं। कैसी गुलाबी जिल्द है, उसे आपने सबेरे-सबेरे इस दरियामें डुबकी लगाकर ज़र्द कर दिया है। तौबा! तौबा!! क्या गेसू है? अगर कोई गन्ध-फ़रोश देख लेता तो दीवाना होकर अपना सारा तेल-फुलेल यहीं उड़ेल देता। मगर वाक़ई आपने तो इनका ख़्याल रखनेके बजाय इनको ऐसा खुश्क कर दिया है कि देखनेवालेके लिये बरदाश्त करना मुश्किल हो गया है।'

मन्त्रमुग्ध-सी बालिका सुन रही थी, पर सहसा उसके अंदर ज्ञानका उदय हुआ और वह बड़े जोरसे नाराज होते हुए बोली—'तुमको क्या पड़ी है, मैं सँवारूँ या रखूँ। तुम पूछनेवाले कौन हो? ज्यादा बोलोगे तो एक तमाचा जड़ दूँगी।'

नीलबालक मानो डर गया हो। ऐसा प्रदर्शन करते हुए उसने दोनों हाथ जोड़ लिये और बोला—'खता माफ़ हो सरकार! जरूर मुझसे कोई गलती हो गयी, नहीं तो भला आप इतना नाराज क्यों होतीं?'

बालकका यह स्वर सुनते ही बालिका मानो पुनः जड़िमाग्रस्त हो गयी।

उसके मुखपर स्मित-रेखा दौड़ गयी और बालकने फिर अपनी चञ्चलता प्रारम्भ कर दी—'माशा अल्ला! आप मेरी नेकनीयतीपर यकीन करें। अगर इतनी परेशानी आपके लिये मुमकिन न हो तो लाइये, मैं आपके गेसू सँवार दूँ—उलझी लटोंको सुलझाकर एक खूबसूरत चोटी बना दूँ, तब आप खुद यक़ीन नहीं कर पायेंगी कि आप इतनी हसीन हैं।'

स्वरकी झंकृतिसे वातावरण मधुरिमा-पूरित हो उठा। क्षणार्धके लिये बालिका पुनः प्रकृतिस्थ हुई और बोल पड़ी—'भाई, देखो! मैं तो अब अपने केश खुद सँवारूँगी नहीं, अब तो मेरा साजन ही सँवारेगा इनको।'

बालिका इतना ही कह सकी थी कि वह नीलबालक खिल-खिलाकर हँस पड़ा—'या अल्ला! बिलकुल बजा फरमा रहीं हैं आप। मगर आपको क्या वाक़ई इसका अंदाज़ और यकीन है कि मैं ही वह आपका साजन नहीं हूँ। आप एक बार गौर फ़रमायें तो सही, कहीं मैं ही वह न होऊँ, जिसकी आपको इतने दिनोंसे तलाश है, जिसके लिये आपके दिलमें इतनी तड़प है। वाक़ई आप इतनी बलाकी हसीन और दिलदार हैं कि मैं बयान नहीं कर सकता·····। मैं तो आपको पाकर अपनेको खुशनसीब महसूस करूँगा। आप फिरसे गौर फरमा लें—कहीं मैं ही तो वह नहीं हूँ?'

बालिका मन्त्रचालित-सी निर्निमेष नयनोंसे उसकी ओर देखने लगी। हठात् वह कृष्ण, कमनीय किशोर कृष्ण नयनोंके समक्षमें अन्तर्हित हो गया। तत्क्षण मानो सम्पूर्ण निधि हठात् किसीने छीन ली हो, ऐसी दीना भिक्षुकी-सी उस बालिकाकी अवस्था हो गयी। बेसुध बावली-सी वह चल पड़ी घरकी ओर। नेत्रोंसे अनवरत अश्रुप्रवाह हो रहा था। रह-रहकर उसके प्राणोंमें टीस-सी उठ रही थी—हाय रे! कितनी हतभागिनी मैं हूँ। प्राणनाथ स्वयं आये और मुझसे मुझ नगण्यासे वार्तालाप किया, मुझे स्वयं इस रहस्यसे भी परिचित करा दिया कि वे ही मेरे प्राणवल्लभ हैं, फिर भी मैं उन्हें पहचान न सकी—और वे चले गये। अब मेरे अस्तित्वका अर्थ ही क्या है?

पूर्वाभ्यासवश पदविन्यास स्वतः ही हो रहा था निवास-स्थलकी ओर। अपने कक्षमें पहुँचकर बालिकाने द्वार बन्द कर लिये। उसके प्राणोंका हाहाकार भला किसके हृदयपर प्रतिविम्बित हो सकता है! काल तो किसीकी प्रतीक्षा करता नहीं। मध्याह्न, सन्ध्या और मध्यरात्रि भी बीत गयी, रोते-रोते लगभग तीन

बज गये। सहसा निशाका नीरव अञ्चल प्रकम्पित-सा हो उठा—कोटि-कोटि चन्द्रज्योत्स्नाकी ज्योतिको हेय करनेवाला एक अभिनव प्रकाश फैल गया चतुर्दिक् और बालिका विस्मय-विस्फारित नयनोंसे देखने लगी। वही नीलकिशोर मुखपर भुवन-मोहिनी मुसकान लिये उपस्थित हुआ और हँसकर कहने लगा—

सलावालेकुम! आपने अपनी यह क्या हालत बना रखी है, किस वजहसे इतना ग़मगीन हो रही हैं? देखिये, मैंने तो उसी वक्त कहा था कि आप गौर फ़रमायें, पर ख़ैर कोई बात नहीं! अब तो आप तहेदिलसे मुझे अपना साजन मान ही रही हैं। अब तो आप मुझे रुख़सत नहीं करेंगी। तो लाइये, अब मैं आपकी खूबसूरतीमें चार चाँद लगा दूँ। यह देखिये, कंघी तो मैं साथ लेकर ही आया हूँ।

उसने कंघी अपनी फेंटसे निकाल ली। बालिका चुपचाप हाथ जोड़े खड़ी थी; नीलबालकने उसे बैठाकर उसकी उन्मुक्त केशराशिको अपने हाथोंसे सँवारना प्रारम्भ किया।

उस क्षण कैसी प्रेमपरवशता उनकी रही होगी, उसका अनुभव तो कर पायी होगी वह समर्पणप्रतिमा बालिका ही, पर जिस सौन्दर्यको मन्मथमन्मथ सँवारें, वह अनिन्द्य तो हो उठेगा। साथ ही कैसी और कितनी अद्भुत सात्त्विकता एवं मधुरिमापूरित किरणें बिखरने लगेंगी उससे, इसका अनुमान सहज ही हो सकता है। सम्पूर्ण कक्ष एक अनिर्वचनीय सौरभसे भर उठा। बालिका मन्त्रमुग्ध-सी बैठी रही। नीलकिशोरने उसके केशोंको सँवारकर वेणीकी रचना कर दी। बाँध लिया सर्वतन्त्रस्वतन्त्रने स्वयंको उस केशपाशके साथ। धन्यताकी गरिमा इससे अधिक और हो ही क्या सकती है?

केशविन्यासके अनन्तर बालक फिर हाथ जोड़कर सामने खड़ा हो गया—'वालेकुम सलाम! अब आप अगर इजाजत दें तो मैं चलूँ, फिर जब भी आप याद फरमायेंगी बन्दा हाजिर हो जायगा। मगर गुस्ताखी माफ़ सरक़ार! रोज़ तो मुमकिन नहीं होगा; हाँ, हर दूसरे-तीसरे रोज़ मैं ज़रूर आपकी ख़िदमतमें हाजिर रहूँगा।'

बालिका कुछ उत्तर दे सके, इसके पूर्व ही वह नीलसौन्दर्य अन्तर्हित हो गया। शेष रह गयी महा-महिमामयी वह बालिका और चिन्मयसुवासपूरित उसका कक्ष। कुछ क्षणोंके अनन्तर प्रकृतिस्थ होनेपर बालिकाने द्वार खोल दिया।

बेटीके हाथ पीले करनेकी अपनी जननीकी व्यग्रतासे वह सुपरिचित थी। बाहर आकर उसने माँको बुलाया और अपने कक्षमें ले गयी। माँकी गोदमें सिर रखकर आनन्दाश्रुओंसे सिक्त कर दिया उसने जननीकी क्रोडको और फिर गलेमें बाँहें डालकर बोली—'माँ! तू बड़ी चिन्तित थी न! अरी, देख, आज तेरी सारी चिन्ता दूर हो गयी। देख तो अपनी बेटीकी ओर, देख तो सही! अरी! आज तेरी लाडिली सुहागिन हो गयी है। उसके प्रियतमने आकर आज अपने हाथोंसे उसे सजा-सँवार दिया है।'

उस अननुभूत प्राणोंसे माताका मानस भी इस प्रपञ्चको सर्वथा छोड़ ही चुका था, साथ ही बेटीका अद्भुत सौन्दर्य भी उसके चर्मचक्षुओंके समक्ष मूर्त था ही; निहाल हो गयी जननी। ***'पुत्रि पबित्र किए कुल दोऊ'*** उक्ति भी आज उसे हेय प्रतीत हो रही थी अपनी लाडिलीके अचिन्त्य सौभाग्यके समक्ष।

अब तो यही क्रम बन गया। प्रायः ही वे नीलकिशोर आकर बालिकाका शृंगार अपने हाथोंसे करते और उसे कण्ठसे लगाकर अपने स्नेहपयोनिधिमें निमग्न कर देते।

एक दिन कौतुकीको एक नवीन क्रीड़ाका आयोजन अपेक्षित हुआ और उन्होंने प्रस्ताव किया—'आपको दरियामें डुबकी लगानेकी ख़ास शौक़ है। कहिये तो आज मैं आपको सतलजमें नहला लाऊँ।'

बालिकाका अब अपना पृथक् अस्तित्व था कहाँ? और जहाँ अस्तित्व न हो, वहाँ मनकी कल्पनाको स्थान कहाँ? वह तो मात्र हाथ जोड़े खड़ी रहती थी, क्योंकि उसका जीवन था **'ता मन्मनस्का मद्गतप्राणाः'** की जीवन्त मूर्ति।

कृष्ण किशोरने इतना कहकर उसे अपनी बाँहोंमें उठा लिया और क्षणार्धमें पहुँच गये दोनों सतलजके घाटपर। धाराके बीचमें कृष्णबालक लिवा ले गया उसे और दोनोंने आरम्भ कर दी डुबकी लगानेकी होड़। कितने समयतक यह जलक्रीडा चली, कौन जाने, परन्तु सर्वथा जलसिक्त वस्त्रोंसहित ही अब बालिका पुनः विराजित थी अपने कक्षमें! सारा कक्ष एवं शय्या भीग चुकी थी जलसे। और उसके मध्य सुखासीन थी वह बड़भागिनी।

बादमें इसका पता लगानेपर ज्ञात हुआ कि वह घाट, जहाँ उसने स्नान किया, उसके निवास-स्थलसे लगभग चार सौ मील दूर था और जिस स्थानपर वह डुबकी लगा रही थी, वहाँ दो हाथी डूब सकें—इतना गहरा जल था, परन्तु बालिकाकी कटिमात्रका ही स्पर्श वह कर पा रहा था।

यह है, ***'चुड़लो अमर हो जाय'*** की एक सच्ची घटना।

बालिकाने अपने मुखसे यह घटना सुनायी थी। इसमें शब्दोंका हेर-फेर तो हो सकता है, परन्तु भाव सर्वथा सर्वांशमें सत्य है। भगवान्ने उस पंजाबी बालिकासे उर्दू भाषामें क्यों बात की, इसे तो वे सर्वसमर्थ ही जानें, परन्तु यही भाषा माध्यम बनी थी उससे वार्तालापका—इसमें संशयको स्थान नहीं है।

आज भी इस रूपमें कृपाकी अभिव्यक्ति सम्भव है और होती है। जो भी चाहे अपने मानसको तदाकार बनाकर अखण्ड विश्वास और निश्छल अनुरागके सहारे रसिकशेखरसे अपना रसमय नाता जोड़ सकता है।

जर्मन संन्यासिनी श्रीउमाशंकरानन्दाजी

२ जून १९६७ के प्रात:काल नौ बजे सम्मान्या श्रीउमाशंकरानन्दाजीका भजन-कार्यक्रम हुआ। सम्मान्या श्रीउमाशंकरानन्दाजी एक जर्मन माताजी हैं। इस समय आयु लगभग तीस वर्षकी होगी। भारतमें विगत सात वर्षसे रह रही हैं। अभीतक उन्हें भारतीय नागरिकताका अधिकार प्राप्त नहीं है। प्रत्येक वर्ष उसका नवीनीकरण करवाना पड़ता है। 'डिवाइन लाइफ सोसाइटी' के संस्थापक ब्रह्मलीन स्वामी श्रीशिवानन्दजी महाराजकी आप शिष्या हैं। संन्यास ग्रहणके बाद उनका नाम उमाशंकरानन्दा पड़ा। जर्मनीमें घरपर दादाजी हैं, पिताजी हैं, एक भाई और दो बहनें हैं, परंतु सम्बन्ध केवल पत्र-व्यवहारतकका है। वे लोग जर्मनी बुलाना चाहते हैं, पर आप जाती नहीं। भारतीय संगीतका अच्छा अभ्यास है। वीणापर संस्कृतके स्तोत्र एवं हिन्दीमें तुलसी, मीरा, सूरके पद बड़े ही ललित स्वरमें गाती हैं। संस्कृत भाषाका सुन्दर ज्ञान है। उन्होंने भारतीय देवी-देवताओंकी सुन्दर प्रतिमाओंका निर्माण किया है। आप लक्ष्मण-झूलासे ऊपर एक मीलकी दूरीपर एक गुफामें रहती हैं।

जबसे बाबूजीसे सम्पर्क हुआ है, प्रत्येक ग्रीष्ममें बाबूजीसे मिलने आती हैं और कई बार आती हैं। उनके भोजनके लिये आटा-दाल-शाक आदिकी व्यवस्था बाबूजीके द्वारा हो जाया करती है। इस वर्ष भी वे बाबूजीके पास आयीं। जर्मन संन्यासिनीजीका कल पहली जूनकी रात्रिमें ही भजनका कार्यक्रम होनेवाला था। वे माँ और बाबूजीको अपने भजन सुनाना चाहती थीं। धूपमें आनेके कारण उनका शरीर कुछ अस्वस्थ हो गया था, अत: भजनका कार्यक्रम अगले दिनके लिये स्थगित कर दिया गया। रात्रिमें उनकी सेवाका भार माँने एक बहिनको सौंप दिया। माँने भी रात्रिमें समय-समयपर उन जर्मन संन्यासिनीजीकी सँभाल की। सबेरे माँने उनसे पूछा—तुम्हारे पास पहननेके लिये वस्त्र हैं या नहीं?

जर्मन संन्यासिनीजीने उत्तर दिया—मेरे पास तीन वस्त्र हैं और मुझे पर्याप्त हैं।

माँने कहा—आवश्यकता हो तो और ले लो।

जर्मन संन्यासिनीजीने लेनेसे अस्वीकार कर दिया। उनके बात करने और उत्तर देनेकी शैलीमें बड़ा ही संकोच था, मानो भारतीय नारीका स्वर्णिम गुण-शील उनके रोम-रोममें उतर आया हो। माँके पास बैठी थी तो जर्मन संन्यासिनीजीको देखनेके लिये बहुत-सी स्त्रियाँ इकट्ठी होने लगीं, तब उन्होंने अपना मुँह ढँक लिया।

दूसरी जूनके सबेरे बाबूजीके कमरेमें जर्मन संन्यासिनीजीका कार्यक्रम आरम्भ हुआ। एक ओर माँ बैठी हैं। माँकी तबीयत ठीक नहीं है। रक्तचापसे तबीयत खराब है, फिर भी वह बैठी है। बाबूजी अपनी डेस्कके सामने बैठे हैं। जर्मन संन्यासिनीजीका भजन आरम्भ हुआ। पहले उच्चारणकी शुद्धताकी बाबूजीने बड़ी सराहना की। फिर श्रीशंकराचार्यजीके एक स्तोत्रको उन्होंने सुनाया। इसके बाद वैदिक सूक्त और फिर श्रीतुलसीदासजीके भजनका गायन हुआ। सारे श्रोता मुग्ध नेत्रोंसे उनकी ओर अपलक देखते रहे। जबतक वे संस्कृतके स्तोत्र या सूक्त सुनाती रही, तबतक माँके कुछ समझमें आया नहीं, पर जब उन्होंने हिन्दीमें भजन सुनाया तब माँने रुचि पूर्वक सुना। कार्यक्रमके पूर्ण हो जानेपर बाबूजीने भोजन, सुरक्षा, स्वास्थ्य, जीवन-निर्वाह, स्वाध्याय आदिसे सम्बन्धित अनेक बातें उनसे पूछी, जिनका उन्होंने यथोचित उत्तर दिया। उन उत्तरोंको सुनकर बाबूजीके नेत्रोंसे सन्तोष झलक रहा था।

मातृस्वरूपा

परम पूज्या गोपी-हृदया श्रीरैहाना तैयबजी

भक्ति महारानी कब किसीपर किस रूपमें कृपा कर दें, यह कहा नहीं जा सकता। भक्तिके लिये चाहिये भावुक हृदय और आदरणीया माँ 'अमानी' रैहाना तैयबजीने हृदय पाया था व्रजगोपी जैसा परम भावुक और बुद्धि पायी थी परम विवेकपूर्ण।

बड़ौदामें एक कुलीन मुसलमान न्यायाधीश श्रीअब्बास तैयबजीके घरमें जन्म लेनेके कारण अदब (शिष्टाचार) तो उन्हें विरासतमें मिला था। आनेवाला नवागन्तुक हो या पुराना परिचित, वे सबसे अत्यन्त आत्मीयतासे मिलती थीं। पैरोंतक लम्बी अलफी (मैक्सी) पहने तथा सिरपर अक्सर रूमाल बाँधे हाथ फैलाकर जिस आत्मीय मुद्रासे वे आशीर्वाद देती थीं, उसकी याद भुलाये नहीं भूलती।

उनके कमरेमें खुली अल्मारीके एक खानेमें भगवान् श्रीकृष्णका एक छोटा चित्र विराजमान रहता था, जिनके सामने वे अगरबत्ती जलाकर रखती थीं और उन्हें टॉफीका भोग लगाया करती थीं। भोगकी एक-एक टॉफी आनेवाले लोगोंको जाते समय वे दिया करती थीं। उस टॉफीका कागज भी वे पैरोंमें नहीं गिरने देती थीं और उस कागजको जला देनेके लिये कहती थीं। एक बार उनसे आदर्श पतिकी व्याख्या पूछी गयी तो श्रीकृष्णके उपास्य चित्रकी ओर उन्मुख होकर सजल नेत्रोंसे वे बोलीं—श्रीकृष्णको छोड़कर पति और हो ही कौन सकता है? वे ही सबके सर्व श्रेष्ठ पति हैं।

उनका श्रीकृष्ण-प्रेम अटूट था। श्रीकृष्णको वे सम्पूर्ण साकार ब्रह्म ही मानती थीं। वे कहा करती थीं—निर्गुण निराकार रूपको अलह कहते हैं और वही जब साकार, सगुण मूर्त रूप धारण करता है तो वह 'श्रीकृष्ण' कहलाता है। इस सम्बन्धमें एक प्रसंग उल्लेखनीय है।

कई भारतीय भाषाओंके अतिरिक्त उनको कई विदेशी भाषाओंका भी सम्यक् ज्ञान था, अतः दिल्लीमें उनके निवास-स्थानपर आनेवालोंमें एक बड़ी संख्या उन विदेशियोंकी भी होती थी, जिनको भारतीय आध्यात्मविद्याके विषयमें जिज्ञासा होती थी और जो अपनी ही भाषामें उसका समाधान प्राप्त करनेके लिये

उनके पास आया करते थे। एक दिन संयुक्त अरब गणराज्यके एक राजनयिक उनसे मिलने आये। आसन ग्रहण करनेके उपरान्त उनकी दृष्टि खुली अल्मारीमें विराजित भगवान् श्रीकृष्णके चित्रपर पड़ी। उन्होंने अरबी भाषामें पूछा—यह किसका चित्र है?

आदरणीया माँने उत्तर दिया—यह श्रीकृष्णका चित्र है।

वे अरबीमें ही उत्तर दे रही थीं, परंतु हमलोगोंको उनके प्रश्नों एवं अपने उत्तरोंको हिन्दीमें ही अनुवाद करके बताती जाती थीं। अरब राजनयिकने फिर पूछा—श्रीकृष्ण क्या हैं?

आदरणीया माँने उत्तर दिया—मुजस्सिम इश्क (साकार प्रेम) को श्रीकृष्ण कहते हैं।

श्रीकृष्णकी इस संक्षिप्त व्याख्याको सुनकर हम सब स्तम्भित रह गये। कक्ष निःशब्दतासे भर गया। राजनयिकने पुनः पूछा—लेकिन आप तो मुस्लिम हैं?

इसपर आदरणीया माँने एक हल्का ठहाका लगाकर किंचित् हँसते हुए कहा—भाई! मैं तो उन लोगोंको बड़ा त्यागी मानती हूँ, जो अपने पिताकी सम्पत्तिमेंसे एक-एक कमरा लेकर सन्तुष्ट हो जाते हैं, लेकिन मैं तो एक खुदगर्ज औरत हूँ। मुझे तो अपने पिताकी पूरी जायदादपर कब्जा चाहिये।

मत-मतान्तरोंके संकीर्ण पूर्वाग्रहोंपर यह कितनी करारी चोट है! देखिये श्रीकृष्णका वर्णन उन्हींके शब्दोंमें—"श्रीकृष्ण हैं। उनका रूप है। उनका बिलकुल स्पष्ट व्यक्तित्व है। बचपनमें वे मेरे बाल सखा रहे। ज्यों-ज्यों मैं बढ़ती गयी, त्यों-त्यों वे अपना रूप, अपना व्यक्तित्व बदलते गये, मगर शुरूसे लेकर आखिरतक एक बात वैसी-की-वैसी रही कि श्रीकृष्ण सम्पूर्णावतार हैं। निराकार, निर्गुण परम तत्त्व जब साकार सगुण बनता है तो मानवियोंके जगत्‌में 'श्रीकृष्ण' कहलाता है। वह जो हृदयको खेंचता है, वह जो परम प्रेम है, वह जो श्रेष्ठमें श्रेष्ठतम है, वह जो पुरुषोत्तम है, वही श्रीकृष्ण है।"

बचपनमें उन्हें जब उस्ताद संगीत सिखाने आते तो वे उस गीतको सीखनेसे इन्कार कर देती थीं, जिसमें श्रीकृष्ण नाम न आता हो। जब आदरणीया माँको कोई राग सिखाना होता तो उनके लिये उस रागमें श्रीकृष्ण-परक पद ढूँढकर लाना जरूरी होता था। वे कहती थीं कि मेरी इस कृष्ण-भावनाकी पुख्तगीमें संगीतकी बड़ी मदद रही।

उनके शरीरपर श्वेत कुष्ठके दाग उभर आनेसे उनका विवाह रुक गया और इसलिये उन्होंने आजीवन कुँआरी रहनेका दृढ़ व्रत ले लिया। यह व्रत धारण करके उन्होंने अपने मुस्लिम घरमें भगवान् श्रीकृष्णकी छवि रख ली और उन्हींके गुण-कीर्तन-ध्यानमें ही मग्न रहने लगीं। अब श्रीकृष्ण ही उनके पति बन गये। उनके आजीवन शादी न करने और श्रीकृष्ण-भक्तिमें लवलीन रहनेकी प्रतिज्ञा पर उनके माता-पिताने भी कोई आपत्ति नहीं की, बल्कि सहर्ष स्वीकृति दे दी। उन्होंने लगनसे शास्त्रीय संगीतका अध्ययन किया और स्वयं ही नये-नये भजन बनाकर गाने लगीं। तभी इन्होंने अँग्रेजीमें 'हार्ट आफ ए गोपी' किताब लिखी, बल्कि उन्हींके शब्दोंमें सही बात यह है कि कोई चौबीस सालकी उम्रमें 'हार्ट आफ ए गोपी' ने अपनेको लिखवाया।

भारतकी स्वतंत्रताके बाद आरणीया माँने अपनी लिखी हुई अँग्रेजी किताब 'हार्ट आफ ए गोपी' का हिन्दी अनुवाद किया, जो 'गोपी हृदय' नामसे प्रकाशित हुआ है। कविवर भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजीने रहीम, रसखान आदि मुसलमान भक्तोंके लिये जो शब्द कहे हैं, वे आदरणीया माँ रैहाना तैयबजीके आदर्श भक्त-जीवनपर भी चरितार्थ होते हैं। वह सूक्ति है ***''इन मुसलमान हरिजनन पै, कोटिक हिन्दुवन वारिये''***।

उनकी श्रीकृष्ण-भक्ति आदर्श थी। वे जब भी गाती थीं तो वही गीत या पद गाती थीं, जिनमें श्रीकृष्ण-गुण-गान हो। तैयबपरिवारका पूज्य महात्मा गाँधीसे बड़ा निकट सम्पर्क था। श्रीतैयबसाहब एक बार अखिल भारतीय काँग्रेसके अध्यक्ष भी रह चुके हैं। बापूने प्रार्थना सभामें आरणीया माँ रैहानाजीको एक राष्ट्रीय गीत गानेके लिये कहा।

आदरणीया माँने बापूसे निहायत अदबके साथ अर्ज किया—बापू! मैं सदा श्रीकृष्ण-भजन ही गाया करती हूँ।

महात्मा गाँधीने कहा—पर आज एक राष्ट्रीय गीत गाकर सुना दो।

आदरणीया माँने बापूसे पुनः विनम्र निवेदन किया—बापू! यदि मैं राष्ट्रीय गीत गाऊँगी तो मेरा कण्ठ चला जायेगा। मैं सचमुच केवल भगवान् श्रीकृष्णके गीत गाया करती हूँ। सच पूछा जाय तो यह कण्ठ और यह राग मात्र एक श्रीकृष्णके लिये ही है।

बापूने यही समझा कि आदरणीया माँ रैहानाजी तो गायनके प्रसंगको टालनेके

लिये ऐसा कह रहीं हैं। बापूने फिर आग्रह पूर्वक कहा। उस आग्रहके सामने वे कुछ बोल नहीं पायीं, पर कहते हैं राष्ट्रीय कि गीतके गाते ही उनका कण्ठ चला गया। ऐसी उनकी श्रीकृष्ण-भक्ति।

ऐसी परम भक्तिमती आदरणीया माँ रैहानाजीकी श्रीकृष्णभक्तिका सिंचन एवं पोषण करनेमें पूज्य श्रीबाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का बहुत बड़ा हाथ रहा है। बहुत लम्बे समय तक दोनोंके मध्य पत्र-व्यवहार चलता रहा और दोनों ओरके पत्र बड़े लम्बे हुआ करते थे। उदाहरणके लिये एक पत्र आदरणीया माँका और एक पत्र पूज्य श्रीबाबूजीका नीचे दिया जा रहा है।

वड़ोदा

२१-११-३९

भाई साहब,

आपके—आपके,······क्या कहूँ। आपके-आपके,······क्या कहूँ। आपकी प्रेम-गीताका पहला सफा खुदा-खुदा करके पढ़ तो पाई, पर अब बेबस हो गयी हूँ। आँखोंका अन्धापन मुझे क्यों रोके? आपके जरिये जो मीठी आँसुओंकी धारा चली है, उसका मजा आपको मिलना चाहिये। आप उसके हकदार हैं। ज्यादा न पढ़ सकती हूँ, न लिख सकती हूँ। वृन्दावनमें अमृतका झरना है। हरेक सखी हर दूसरीको वह बतलाती है, पर पीती सब खामोशीसे हैं।

आपके कदमोंकी धूलि हजार बार हमारे माथोंका तिलक बनती रहे।

सँभली तो हूँ, पर भृंग एक फूलका पूरा रस चूसे वगैर और फूल पै क्यों नजर डाले? शुरू ही में उन्होंने आपसे वह बातें लिखायी, जिनके लिये मेरा दिल तड़प रहा था और जिनके बिना मैं जीते जी मुरदा बनी फिरती थी। भाई साहब! मेरा काबू जा रहा है और अम्माजान लाल आँखें देखकर फिक्रमंद होंगी। फिर भी खुदाके लिये आप इस तरह कभी-कभी मुझे रुलाते रहिये। आपने उनका बयान किया है। उफ! बस, जीवन इसी तरह क्यों नहीं बीत जाता कि कोई उनका बयान करता रहे और मैं रोती रहूँ। कितनी छोटी-सी माँग है मेरी? पर इतना कहाँ देते हैं? और सब चीजोंके लिये रुलाते हैं। पर हाय! अपने लिये नहीं रुलाते। उनकी बात—खुदा! एक आग है, एक समुन्दर है, दिनमें रात है और रातमें दिन है। जिन्दगीमें मौत है और मौतमें जिन्दगी है, तो मैं क्या सुना दूँ? ***'देखन आव री!'***

आपको याद है? मैंने आपको कभी यह सुनाया था? *'मो सों मत बोलो। मैं तो भई बावरी।'* मगर यह आपके लिये नहीं है। आप तो बोलते जाइये।

ना पूछो मों सों हृदयकी बतियाँ।

तुम क्या जानों प्रेमकी गतियाँ।

अरे! देख भी पाई वह श्याम सुरतिया?

अहो! कैसी मोहक वह सूरत साँवरी।

भाई साहब! आप मेहरबानी करके जुल्म करते हैं। यह पागलपन संसारियोंके लिये नहीं होता और मैं निरी संसारी हूँ। आप मुझे पागल न बनाया कीजिये और अगर न बनायी तो आप मेरे भाई नहीं और न मैं आपकी बहिन ही हूँ।

वह क्या नहीं है? वह क्या नहीं है? और वह है क्या? भाई साहब! वह है क्या? और कहाँ? तौबा है, मैं उनकी बात नहीं कर सकती। जो उनका कभी विचार ही न करता हो, उसको उनका जिक्र करनेका हक कहाँ?·····मगर आपने उनकी दयाका भी जिक्र किया न? उनकी मिठास उनकी·····बस, बस, बस।

(देरसे) भाई साहब! 'रहा करते हैं कैदे होशमें' इस कैदे-होशका चौकीदार अहंकार है और दरवान शर्म है। इस घड़ी मैं अपनी शर्मसे शरमा रही हूँ। बेहोशीमें हाथ कुछ लिख देता है, बादमें संकोच कहता है—यह फाड़ डाल, मत भेज, ऐसी बातें करना अच्छा नहीं, कोई क्या कहेगा? मैं अकलकी टिख-टिखसे तंग आ गयी हूँ। चौबीसों घंटों उसके तंग तारीक दायरेमें जकड़ी रहती हूँ। नतीजा यह होता है कि जब काबू जाता है तो एकदम और पूरा जाता है कि मैं आपको भी ठिकानेसे लिख सकती ही नहीं। आपका खत पढ़ना शुरू किया और रोम-रोममें बिजलीकी तरह पागलपन फैल जाता है। जो हमेशा शराब पीता रहे, उसे नशा आसानीसे नहीं चढ़ता। शाजोनादिर (कभी-कभी) पीनेवालोंके सर कच्चे ही रह जाते हैं। मेरा सर बहुत कच्चा है। इतना कच्चा है कि अब तो मुझमें भजन गानेतककी हिम्मत नहीं रही। रोना बहुत जल्द आ जाता है। इस कमजोरीको माफ करें। स्वस्थ होकर लिखना ही अकलमंदी है। मैं जानती हूँ, मगर मैं अकलमंद नहीं और जब आपको लिखती हूँ, तब स्वस्थ रह ही नहीं सकती। इस वक्त मुझे कुछ होश है। मैं अभीसे अपनी सब गलतियोंके लिये माफी माँग ही लूँ।

इस होशकी घड़ीमें ख्याल आता है, मेरी कितनी असम्मयता है कि मैं

अपनी ही बातें करती चली जाती हूँ। पर क्या करूँ? और किसकी करूँ? या तो उनकी या तो अपने दिलकी, जो इस वक्त खैर। उनकी बात कर नहीं सकती। क्या करूँ, नहीं कर सकती। हजार चाहती हूँ। इस बेबसीका क्या इलाज? 'बन्धु कान्हा! बन्धु कान्हा!! निरमल! प्रेमल! अमृतसागर! तुम सों छूटूँ तो जीभ चले, पर मौन धरूँ जब आँख लरत है।'

(देरसे) सारा दिन गुजर गया और मैंने अभी आपके खतका एक ही सफा पढ़ा है। हिम्मत नहीं चलती, रहा भी नहीं जाता! अजीब हालत है। भाई साहब, जिस तरह आपने उनकी बात की है, मेरा दिल उसकी सच्ची कदर करता है। उनका सौन्दर्य, उनकी मिठास, उनकी लीलाओंका, उनके बाँकेपनका, उनके आभूषणोंका हर तरह चर्चा है। मैंने उनके स्वभाव, उनके चरित्रका कम ही जिक्र सुना है और मैं उसी पै मतवाली हूँ। श्रीकाका साहब कालेलकरकी जीवता तहेवारोमें उनका यह पहलू बड़ी खूबसूरतीसे बतलाया गया है, आपने जरूर पढ़ा होगा। गोकुलाष्टमीके प्रसंगपर जो लेख है, आपको याद होगा।

अहो! कितने सुन्दर भजन-उद्गार आपने लिख भेजे हैं। अब सरोज (आदरणीया माँकी सहेली) और मैं उन्हें साथ पढ़ेंगे, तब सच्चा लुफ्त आयेगा। इन्साल्लाह, पच्चीसको पूना जाऊँगी। वह आपके खतपै दिवानी हो जायगी। क्या मजा!

भाई साहब! माफ कीजिये। आपका खत मैं फाड़ डालूँ? हाय, उसके पहले इस सीनेको न फाड़ डालूँ? यह तो उनकी आवाज सुनायी दे रही है और जिस कंठसे वह प्यारी आवाज निकल रही है उसे मैं घोंट दूँ? यह आपने कैसी जालिम आज्ञा दी? क्या अजीब है कि आपके पत्रमें यह शब्द पढ़नेसे अव्वल ही मैंने भी कुछ इसी किस्मके भाव प्रकट किये। नहीं, मैं आपकी बात समझ सकती हूँ, मगर आप जरा भी डरिये नहीं कि यह कृष्ण प्रेरित शब्द किसी अयोग्य या अनसमझ नजरसे गुजरेंगे। मेरे लिये यह भाई साहब, यह कृष्णकी भेंट है। आँसू, तड़प, बेहोशी, उनकी तेज नजदीकी इससे बढ़कर (सिवाय उनके) जीवनमें कोई चीज है नहीं? मेरा जीवन किस तरहका है, आप क्या जानें। आपके खत उस शुष्क अरण्यमें अमृतकी नहरें बहा देते हैं और आजवाले खतसे तो मैं बिलकुल ही बावरी हो गयी हूँ। सिवाय उनके, किसमें ताकत है कि दिलको इस तरह दिवाना बना दे? यह उन्होंने लिखाया है एक बेबस, तुच्छ,

क्षुद्र, प्राणीपर असीम दया करके। आज सारा दिन मेरी क्या हालत रही सो आप ही समझ लें। आप नहीं जानते? उस श्याम सलोने प्रीतमकी छवि नैनन भीतर छाय रही। आँखें आनन्दसे कैसे न द्रवित हो जायँ। मैं आपके सामने पर्दा नहीं करती। आज आप भी मेरे सामने वेपर्दा हुए तो यह न्याय ही है या नहीं? अज-बराये-खुदा मेरे लिये तो बेपर्दा ही रहें। सारा जहाँ सियाह पर्द दो में लिपटा रहता है। आँखें हकीकतको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते अँधला जाती हैं। आप मेरे लिये एक झरूखा हैं, जिनमेंसे कभी-कभी मुझे उनकी झाँकी मिलती रहती है, आप बँद न हो जायें। आपको उनकी दुहाई है।

यहाँतक लिखकर बेकाबू हो गयी। तब इस तरह लिखते-लिखते छोड़ दिया, इसी कारणसे छोड़ दिया, यह मैं सिर्फ इसलिये जला देती हूँ कि मैं जानती हूँ कि आपको खुशी मिलेगी। भक्तजन तो मशहूर पाषाण हृदयी हुआ करते हैं न? औरोंकी आहोजारी (रोदन) में उनको लुत्फ आता है, औरोंके आँसू देखकर वे हँसने लगते हैं। कल सारा दिन आप मुझे रुलाते रहे। बलिहारी! इस एवजमें लीजिये, मैं आपको हँसाती हूँ। कैसी सुन्दर लेन देन? भाई साहब, सरोज और मुझे आपसे बहुत बड़ा प्यार है, बड़ा ही प्यार है। हमको भाइयोंसे खास प्यार है इसकी एक गुप्त वजह है। सुनाऊँ? हम दोनोंको वह बन्धुके रूपमें आकर्षते हैं। हम दोनोंके लिये वह भाई है। हम उनको 'बन्धु' या 'बन्धु कान्हा' ही कहती हैं। यह क्यों? वही जाने।

न जाने रैहाना ये कैसे—बन्धु बने मोरे विश्वके मालिक?
बिनकी दया अरु बिनकी लीला—उन बिनु कोऊ न समझत है॥

यह भजन आपको लिख दूँ? सुनिये—

ऐसो चपल मेरो बन्धु कान्हा—एक ही स्मित सो भान रहत है। (आपने उनके हास्यका जिक्र न किया? हो हो!!)

प्रेम भरी वाकी मीठी नयन: सों दु:खकी ज्वाला शांत रहत है॥
मनमें प्रश्न उठे प्रभु, कैसे पावन करो पापी पतितन को?
हँसकर प्रियतम आँख मिचकावे पलमें अनहोनी होवत है॥
प्रश्न करूँ, प्रभो, मोह सों कैसे मुक्त करो मुझ सम दुखियनको?
मनमोहन झट मोहको मोहे देख झलक, बस मोह हरत है॥
पूछूँ प्रभो! टुक बोलो तो? कैसे रास रच्यो प्रिय गोपिनके संग?
हृदयमें आकर मुरली बजावे मेरो अन्तर तब नृत्य करत है॥

मान जो आवै, पूछूँ प्रभुजी, दानकी लीला कैसी करी थी?
अपना हृदया हाथमें लेकर, मेरे हियाके बीच रहत है॥
बन्धु कान्हा बन्धु कान्हा! निरमल! प्रेमल! अमृत सागर।
तुमसे छूटूँ तो जीभ चले, पर मौन धरूँ जब आँख लरत है॥
न जाने रैहाना ये कैसे बन्धु बने मेरे विश्वके मालिक?
बिनकी दया अरु बिनकी लीला उन बिनु कोऊ न समझत है॥

(देरसे—) अह, भाई साहब! ठीक है! ठीक है!

सर फिर चकराने लगा है, इसलिये आजके लिये खुदा हाफिज।

जय श्रीकृष्ण

आपकी सदा की और सदाके लिये बहन
रैहाना

॥ श्रीहरि: ॥

डालमिया दादरी
२८-११-३९

प्यारी बहिन

आपका प्रेम-रस-सुधासे सना हुआ पत्र मिला। पढ़कर निहाल हो गया। आपने अपनी ही बातें की। बहुत अच्छा किया। पराई बातोंमें क्या रखा है? बात तो अपनी ही करनी चाहिये और बात अपनी वही है, जिसमें अपने, सबसे अपने, एकमात्र अपने श्रीकृष्णकी मधुर चर्चा हो। आपकी अपनी बात श्रीकृष्णकी माधुरीसे सनी है, इसलिये मैं इस मधुरताका बयान नहीं कर सकता। आपके पास शब्द सौन्दर्य है और है आपके पास भाव भरा हृदय। मेरे पास तो इनमेंसे एक भी नहीं है। मैं कैसे बतलाऊँ, मुझे आपकी अपनी बातें पढ़कर कितना सुख मिला और मिल रहा है। सचमुच उनकी माधुरीसे मधुरिमाको प्राप्त हुई बातें हृदयको और दिमागको बेकाबू कर देती है, बहा देती है एक आनन्दकी अनोखी धारामें। समुद्रमें भी बाढ़ आ जाती है। इन बातोंसे और वह भी बहने लगता है। आपने उनके हास्यकी बात याद दिलायी और वह भी 'एक ही स्मित सो भान हरत है' इस भाव भरे वाक्यसे! उनका तो सभी कुछ सुन्दर है। उनकी भयंकरतामें भी महान् सौन्दर्य भरा है, फिर हँसीकी तो बात ही क्या? श्रीकृष्ण-रस-मतवारे बावरे रसखानने लीला देखी और उसका यह वर्णन किया है—

खंजन नैन फँसे पिंजर छबि नाहिं रहें थिर कैसेहु माई।
छूट गई कुल कान सखी रसखानि लखी मुसिकान सुहाई॥
चित्र लिखी सी भई सब देह न बैन कढ़ैं मुख दीन दुहाई।
कैसि करौं जित जाऊँ तितैं सब बोल उठैं यह बावरि आई॥

* * * *

कानन दै अँगुरी रहिहौं जब ही मुरली-धुनि मन्द बजैहैं।
मोहन तातन सों रसखानि अटा चढ़ि गोधन हेरत गैहैं॥
टेर कहों सिगरे व्रज लोगन काहि सु चौंक कितौ समुझै है।
माइ री वा मुख की मुसिक्यान सँभार न जैहैं न जैहैं न जैहैं॥

* * * *

आज री नंदलला निकस्यो तुलसी बन ते मृदु ही मुसिक्यातो।
देखत नैन न बनै कहिते कछु सो सुख जो मनमें न समातो॥
हौं रसखानि बिलोकन को कुल कान सु काज किये हिय हातो।
आय गयी अलवेलि अचानक एक भटु लाज कि काज कहा तो॥

श्रीकृष्णके एक बड़े प्रेमी भक्त भगवतरसिकजी कहते हैं—

लखी जिन लाल की मुसकान।
तिनहिं बिसरी वेद विधि जप जोग संजम ध्यान॥
नेम व्रत आचार पूजा पाठ गीता ग्यान।
रसिक भगवत दृग गई असि ऐंचि कै मुख-म्यान॥

बड़े-बड़े तपस्वियोंको मोहित करनेवाली सद्गुरुकी हँसी, जगत्‌में आनन्दका समुद्र बहा देनेवाली संतोंकी हँसी, नेक नामपर प्राणोंकी बलि चढ़ा देनेवाली शहीदोंकी हँसी, जंगमें शूरतापर हर्षित होनेवाली वीरोंकी हँसी, सफलतापर आनन्दको न पचा सकनेवाले सकाम पुरुषोंकी हँसी, बहुत बड़े साधकों-मुनियोंको हिला देनेवाली अप्सराओंकी हँसी, महात्मा गाँधी जैसे पुरुषोंको आनन्दमुग्ध कर देनेवाली शिशुओंकी हँसी, जितने प्रकारकी हँसी अनादिकालसे अबतक नित्य नवीनरूपोंमें सदा ताजी होकर लोगोंके मनोंको मोहिती है, उन सारी हँसियोंको एक स्थानमें एकत्र करनेपर भी, जो श्रीकृष्णकी मधुर हँसीके सामने, एक समुद्रके सामने नन्हीं-सी बूँदकी तुलनामें भी नहीं आ सकती, उस हँसी, उस मुसकान, उस माधुरीकी महिमा कौन कह सकता है? जगत्‌की सारी

मधुरिमा, सारा सौन्दर्य जिस नटनागरकी हँसीकी छायाकी भी छाया नहीं कही जा सकती, वह हँसी कैसी होती है, इस बातको वे ही जानते हैं, जिन्होंने कभी उस हँसीका, उसकी छायाका भी साक्षात्कार किया है, परन्तु यह निश्चय है कि जिन्होंने वह हँसी देखी है, उनका सब कुछ उस हँसीने हर लिया है।

बहिन! मैं उस हँसीकी बात क्या कहूँ? यह भी नहीं कह सकता कि मैंने कभी उसकी छाया नहीं देखी है और यह भी नहीं कहते बनता कि देखी है। सचमुच देखी होती तो आज कुछ और ही स्वरूप होता आपके इस नाचीज भाईका।

सचमुच वे सब कुछ हैं, सब कुछसे परे भी वे ही हैं। वे सर्वेश्वर सर्वलोकमहेश्वर योगेश्वरेश्वर हैं, सृष्टि-स्थिति-प्रलय उनके विनोदकी रेखाएँ मात्र हैं। वे हिन्दुओंके ईश्वर, वेदान्तियोंके ब्रह्म, मुसलमानोंके अल्लाह, ईसाइयोंके गॉड, सूफियोंके माशूक, आस्तिकोंके अस्तित्व, नास्तिकोंके नास्तित्व, वैज्ञानिकोंके नियम और अन्य सब कुछ हैं, परंतु 'सब कुछ' होते हुए भी वे मेरे कृष्ण हैं, उनसे मेरेपनका नाता है और आप उस मेरे श्रीकृष्णको बन्धु कान्हा कहकर पुकारती हैं और वे आपको बन्धुके रूपमें आकर्षित करते हैं। आप मेरी बहिन तो थी ही, इस नातेसे तो बहुत ही सम्माननीय, बहुत ही प्यारी, बहुत ही नजदीकी, एक माँके पेटसे जन्मी हुई से भी अधिक नजदीकी बहिन हैं। वे आपके बन्धु हैं, ठीक है। बहुत अच्छी बात है। मेरे तो वे सर्वस्व हैं। वे जिस किसी भी नातेसे मुझे आकर्षित करें, मैं उसीके लिये तैयार रहना चाहता हूँ। यह तैयारी भी उन्हींके कराये होती है। वे बड़े लीलामय हैं। न मालूम कैसी-कैसी रंगतें दिखलाते हैं।

सचमुच आपके सामने मैं बेपर्द हो गया। पता नहीं श्रीकृष्णकी क्या मंशा है। उन्होंने क्यों मेरे जीवनकी गुप्त-से-गुप्त बात किसी अंशमें स्पष्ट तौरपर आपके सामने कहलावा दी।

मैं, बहिन! शरीरसे पक्का सनातनी वर्णाश्रमी हिन्दू हूँ, परंतु मैं वस्तुतः कुछ भी नहीं हूँ। मैं तो मेरे कृष्णका हूँ, क्या हूँ, सो पता नहीं है। यदि श्रीकृष्ण मुझे अपना बनाये रखें तो फिर, कैसी भी हालत हो, नरकका स्थान मेरे लिये सुरक्षित रहे, जगतकी गालियोंकी बौछार सदा सिरपर बरसती रहे, मुझे मंजूर है और उनको छोड़कर ऊँची-से-ऊँची पदवी, बड़े-से-बड़ा सौभाग्य भी मेरे लिये बड़ा

दुर्भाग्य है। फिर हिन्दू और मुसलमानके भेदकी तो बात ही क्या है? यह सारा भेद तत्त्वत: देखे तो शरीरको लेकर ही है और यदि मार्ग दिखलानेवालेकी नजरसे देखें तो उस एक ही सत्यको प्राप्त करनेके लिये ये अपने-अपने अनुभूत रास्ते हैं। जिसने जिस रास्तेसे सफर की और वहाँ पहुँचा, वह उसी रास्तेका बयान करता है और ठीक करता है। सच्चा सम्बन्ध तो आत्माका है। श्रीकृष्ण आत्माकी भी आत्मा हैं, वे हमारे सब कुछ हैं। श्रीकृष्णका प्रेम तो '**सर्वधर्मान्परित्यज्य**' से ही शुरू होता है। गोपियोंकी चरणरजकी इच्छा करते हुए श्रीउद्धवने श्रीमद्भागतमें कहा है—

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं न हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

'अहा, कैसे इन गोपियोंकी चरणधूलि मेरे मस्तकपर पड़े। भगवान् मुझे इस वृन्दावनकी कोई बेल, कोई औषधि, कोई नन्हा-सा झाड़ बना दें, जिसपर गोपियोंके चरणोंकी धूल पड़ती है। इन गोपियोंने श्रीकृष्णके लिये, जिनको छोड़ना बहुत ही कठिन है, उन स्वजनोंको और सनातन आर्यपथको भी छोड़ दिया और मुकुन्दके उन चरणोंका अनुसरण किया, जिनकी खोज सदा वेद करते रहते हैं।'

कृष्ण प्रेम पथ पथिक कै रहि न सकै कुल कान।
मैंड मिटी, फाजिल भए वेद पुराण कुरान॥

यह वेद-पुराण-कुरानका फल है, वेद शास्त्र अपना फल देकर उसपरसे अपना अधिकार हटा लेते हैं। नारदजीने कृष्ण-प्रेमकी व्याख्या करते हुए कहा है—

'वेदानपि संन्यस्यति, केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते।'

'वह वेदोंका भी भली-भाँति परित्याग कर देता है। वह अखण्ड असीम श्रीकृष्णप्रेमको प्राप्त होता है।'

वेद-पुराण-कुरानकी बात! नावपर सवार होकर उस पार जब घर पहुँच गये, फिर नावको सिरपर ढोकर ले चलनेकी क्या जरूरत? परंतु यह प्रेम जबानकी चीज नहीं है। श्रीकृष्ण-कृपासे ही मिलता है। आपने ठीक ही लिखा है कि इन्सान तो इतना ही कर सकता है कि उनको याद करे, परंतु वह याद भी उनकी कृपासे ही कर सकता है। मैं उन्हें रो-रोकर पुकारता हूँ, ऐसी बात नहीं है। मेरे तो आँसू सूख गये हैं। लोगोंके सामने तो मैं कभी रो ही नहीं सकता। एकान्तमें

वे रुलाते हैं तो रोता हूँ, हँसाते हैं तो हँसता हूँ। हाँ, आपके पिछले पत्रने मुझे कई बार रुलाया। आज भी इस समय आँखोंमें आँसू आ गये हैं, अब तो बह चले हैं।

इससे मालूम पड़ता है कि सचमुच श्रीकृष्ण आपसे प्रेम करते हैं। श्रीकृष्णके प्रेम बिना ऐसा होना बहुत कठिन है। आप अपनेमें श्रीकृष्ण प्रेम नहीं देखती और कहती हैं—'श्रीकृष्ण प्रेम भाई साहब! वह मुझे कब मिलेगा?' यही तो प्रेमियोंके दिलका फोटो है। उन्हें कभी यह महसूस होता नहीं कि हमारे भीतर प्रेम है। इसीसे तो प्रेमका स्वरूप है '**प्रतिक्षण-वर्धमानम्**'। प्रेम सदा बढ़ता ही रहता है। जिस प्रेममें बस है, जो प्रेम यह कहता है कि मैं तुझमें पूरा आ गया, वह प्रेम ही नहीं है। ज्ञानियोंकी भाँति प्रेमी यह नहीं कहता कि बस, अब कुछ भी मिलना बाकी नहीं है, सब मिल चुका, सब कर चुका। वह प्रेमी खामोश नहीं हो जाता। वह तो एक-एक क्षणमें अनुभव करता रहता है अपने प्रेमकी कमीका। उसमें ज्ञानका अभाव नहीं है। वे प्रेमास्पद प्रियतम श्रीकृष्णके स्वरूपको जानता है। तभी तो सबकुछ छोड़कर, सबसे नाता तोड़कर—उनसे प्रेमका सम्बन्ध स्थापित करता है, परंतु प्रेममें ज्ञान अलग स्वरूपस्थ होकर नहीं रहता। वह प्रेममें घुल-मिलकर छिप जाता है। इसीसे प्रेमी सदा तृप्त होकर भी अतृप्त रहता है। वह देखता हुआ भी नहीं देखता, बल्कि देखना ही चाहता है, सुनता हुआ भी सुनना ही चाहता है। मिलता हुआ भी मिलना ही चाहता है। यही तो उसका पागलपन है। एक प्रेमिका गोपी अपनी आँखोंकी दशापर कहती है—

नितके जागत मिट गयो वा संग सुपन मिलाप।
चित्र दरसहू कौं लग्यो, आँखिन आँसू पाप॥
इन दुखिया अँखियान कौं, सुख सिरजो ही नाहिं।
देखत बने न देखते बिन देखे अकुलाहिं॥

'रातको कभी नींद आती नहीं, इसलिये जो सपनेमें, ख्वाबमें कभी मिलाप हो जाता था, वह अब नहीं होता और दिनमें आँखोंमें आँसुओंका पाप लग गया, जो उनका चित्र भी नहीं देखने देता। विधाताने इन दुखियारी आँखोंके लिये सुख रचा ही नहीं, देखते समय देखना बन नहीं पाता और बिना देखे वे व्याकुल रहती हैं।'

यह केवल कविता नहीं, बल्कि प्रेमियोंकी दशाका चित्र है। आप तो इसका अनुभव ही करती हैं। इसीलिये तो भजन तक गानेकी हिम्मत छोड़ बैठी हैं। रोना बहुत जल्द आ जाता है। यह शाजोनादिर पीनेवालोंकी बात है या हमेशा छके रहनेवाले मतवालोंकी? कच्चाई-पक्काई? वाकई क्या है, आपके बन्धु कान्हा ही जाने। आपको तो कच्चाई मालूम होगी और यही ठीक है। प्रेममें पक्काई मालूम होना प्रेमका कलंक है। यह सच है कि किसी दिलमें जब उनकी प्रेमभरी याद भड़कने लगती है, तब वे आकर उस व्यक्तिके रोम-रोममें समा ही जाते हैं, फिर तमाम वायुमण्डल कृष्णमय ही हो जाता है। इसीसे तो उनके प्रेमियोंकी यह घोषणा है—

नारायन जाकें हिये, सुन्दर स्याम समाय।
फूल पात फल डारमें ताको वही दिखाय॥
दर दिवार दरपन भये जित देखौं तित तोहि।
काँकर पाथर ठीकरी भये आरसी मोहि॥

कानन दूसरो नाम सुने नहीं, एक ही रंग रंग्यो यह डोरौ।
धोखेहु दूसरो नाम कढ़े, रसना मुख बाँधि हलाहल बोरौ॥
ठाकुर प्रीतिकी रीति यही हम कैसेहूँ टेक तजै नहिं भोरौ।
बावरि वे अँखियाँ जरि जाँय जो साँवरो छाँड़ि निहारति गोरौ॥

तमाम वायुमण्डल उनसे भर जाता है। वे-ही-वे दिखते हैं। फिर भी प्रेमीको तृप्ति नहीं होती। वह सबको भूल जाता है। सबमें उनको देखना तो सबको याद रखना है। वह तो बस एक उन्हींको लेकर, उन्हींसे मिलजुलकर, उन्हींके साथ बातचीतकर उन्हींमें मन-तन रमाकर अपने आपको भुला देता है। एक नारायन नामके पागल कृष्ण-प्रेमी हुए हैं, पंजाबी शरीर था। वृन्दावन वास करते थे, श्रीकृष्णके बड़े प्यारे भक्त थे। वे कहते हैं—

जाहि लगन लगी घनश्याम की।
धरत कहूँ पग परत कितेहूँ भूलि जाय सुधि धाम की॥
छबि निहार नहिं रहत सार कछु घड़ी, पल, निसिदिन जाम की।
जित मुँह उठे तितै ही धावे, सुरति न छाया धाम की॥
अस्तुति निन्दा करो भले ही, मैंड तजी कुल गाम की।
नारायण बौरी भई डोले, रही न काहूँ काम की॥

जरूर वे 'माशूके-आलम' हैं, परन्तु प्रेमी-आशिक तो उन्हें, बस, अपने ही 'माशूक' को देखना चाहता है। वह अकेला ही उनके प्रेमकी वह 'मोनाँपली' (एकाधिकार) चाहता है। वह प्रीतमसे कहता है—

आवहु प्रीतम नैन में, पलक बंद करि लेउँ।
ना मैं देखों और कों, ना तोहि देखन देउँ॥

इसीलिये तो रासमण्डलमें प्रत्येक प्रेमिका गोपीके साथ अलग-अलग श्रीकृष्ण थे। आज भी वही बात है। प्रेमियोंके लिये वे वैसे ही हैं। इसलिये तो वे अपने हृदयको हाथमें लेकर मेरे हृदयके बीच रहते हैं।

वाकई आज आपका जादू मुझपर सवार हो गया। इसीसे मैं बेतरतीब असम्बद्ध रूपसे जो कुछ मनमें आता है, लिखता जा रहा हूँ। न पुनरुक्तिका खयाल है, न किसी खास जवाबके छूट जानेका। सचमुच मैं भाग्यवान हूँ, जो मुझको आप और सरोज सरीखी बहिनें मिली हैं। मैं भी यही चाहता हूँ अपना यह भाई बहिनका सम्बन्ध कायम रहे, शुद्ध, सच्चा, निर्मल। रहेगा क्यों नहीं? जहाँ स्वार्थ, अपवित्र और दुनियाबी सम्बन्ध होता है, वहीं उसके कायम न रहनेकी सम्भावना रहती है। अपना सम्बन्ध तो पवित्र, परम पवित्र है और शुरूसे आखिरतक पवित्र है बन्धु कान्हाके प्यारे सम्बन्धसे। उनकी कृपा तो ऐसी होती है कि हम सब उन्हींके हैं, उन्हींके रहेंगे। उन्हींके चरणोंमें उन्हींकी प्रेमरज्जुसे जकड़कर बँधे रहेंगे। वे एक बार जिन्हें अपना मान लेते हैं, उन्हें छोड़ते नहीं है। उनका स्वभाव ही ऐसा मधुर और पवित्र है।

आपने अपनी बात लिखी तो मैंने भी मेरी ही लिखी। बहिन! क्या-क्या लिखूँ, उनकी एक-एक बातमें रंग भरा है। आनन्द, अजीब, अजीब आनन्दके फब्बारे छूटते हैं। वे किसके साथ कब कैसे-कैसे खेल खेलते हैं, किसको कब किस खेलमें लगाते हैं, वे ही जानें। विचित्र है, अनोखी है उनकी लीला। बलिहारी। जै, जै।

पूज्या अम्माजानकी तबियत कैसी है? उनके कदमोंमें मेरा प्रणाम कहियेगा। उनकी हालत लिखते रहियेगा। इस पत्रमें बीच-बीचमें अकलमंदीकी प्रेरणाने कुछ तत्त्वकी बात भी लिख दी है, जो परम तत्त्वके साथ पूरा मेल नहीं खातीं। तीन श्लोक याद आ गये, उन्हें लिखनेका मन हो गया। लिखकर खतका उपसंहार करता हूँ—

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणविम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

जिनके करकमल वंशीसे विभूषित हैं, जिनकी नवीन मेघकी-सी आभा है, जिनके पीत वस्त्र हैं, अरुण बिम्बफलके समान अधरोष्ठ हैं, पूर्णचन्द्रके सदृश सुन्दर मुख और कमलके-से नयन हैं, ऐसे श्रीकृष्णको छोड़कर अन्य किसी भी तत्त्वको मैं नहीं जानता।

नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो
नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।
किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णामृताब्धे-
र्गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः॥

मैं न ब्राह्मण हूँ, न क्षत्रिय, न वैश्य, न शूद्र, न ब्रह्मचारी, न गृहस्थ, न वानप्रस्थी और न संन्यासी। मैं तो उन अखिल परमानन्द सुधासे पूर्ण समुद्र श्रीगोपीवल्लभके पदकमलोंके दासोंका दासानुदास हूँ।

पापवल्ली मुखे तस्य जिह्वारूपेण कीर्त्यते
या न वक्ति दिवारात्रि श्रीकृष्णगुणकीर्तनम्।
पततां शतखण्डा तुसा जिह्वा रोगरूपिणी
श्रीकृष्णकृष्णकृष्णेति श्रीकृष्णेति न जल्पति॥

मुँहमें वह जीभ नहीं है, बल्कि जिह्वाके नामसे पुकारे जानेवाली पापकी बेल है, जो दिनरात श्रीकृष्णके गुणोंका कीर्तन नहीं करती। जो श्रीकृष्ण-कृष्ण-कृष्ण-श्रीकृष्ण उच्चारण नहीं करती, उस रोगमयी जीभके सौ टुकड़े होकर गिर जायँ।

आपका भाई
हनुमानप्रसाद

विशेष संकेत—पूज्या माताजी (श्रद्धेया श्रीरैहाना तैयबजी)-से सम्बन्धित सभी पर्याप्त सामग्री पढ़ने योग्य है। वह सामग्री सम्मान्य श्रीधर्मेन्द्र मोहनजी सिन्हाके वृत्तमें पढ़नेकी कृपा करें।

सौ० श्रीसावित्रीबाई फोगला

सुख-दानकी भावना

जब पूज्य बाबाका काष्ठ-मौन व्रत था, तब उनकी कुटियाके बाड़ेके भीतर केवल हम तीन व्यक्ति ही जा सकते थे, पूज्य बाबूजी, माँ और मैं। बाबाको भिक्षा करवाना है अथवा उनको जल पिलाना है, यह कार्य भी हम तीनोंमेंसे किसी एक द्वारा होता था। बाबा भिक्षा प्रायः सूर्यास्तके बाद किया करते थे, अतः रातके कुछ बीत जानेपर प्यास लगना स्वाभाविक है। भगतजी माँको बुलाने आया करते थे और माँ श्रीभगतजीके साथ कुटियापर जाया करती थी बाबाको जल पिलानेके लिये। यदि माँ अपनी अस्वस्थताके कारण नहीं जा पाती थी तो मैं जाया करती थी। कभी-कभी तो भगतजी आधी रातके समय बुलानेके लिये आया करते थे और चाहे वर्षा ऋतुमें घोर पानी बरस रहा हो अथवा शीत ऋतुमें घना जाड़ा लग रहा हो, हम दोनोंमेंसे कोई जल पिलानेके लिये जाता ही था। अपनी अस्वस्थताके बाद भी हमलोग जाया करते थे, जिससे कि पूज्य बाबूजीको जानेका कष्ट न उठाना पड़े। बाबूजीका एक-एक क्षण बड़ा ही मूल्यवान होता था, अतः हमदोनोंका ध्यान सदा यही रहता था कि अत्यधिक व्यस्त बाबूजी कम-से-कम इस कार्यसे तो मुक्त ही रहें।

हमलोग बाबूजीका ध्यान रखें, इससे अधिक वे हमारा ध्यान रखते थे। यदि बाबूजीको कभी पता चल जाता कि मैं और माँ कुछ अस्वस्थ हैं तो वे तुरन्त भगतजीके साथ भिक्षा करानेके लिये अथवा पानी पिलानेके लिये कुटियाकी ओर चल देते थे। उनको उठनेमें देर नहीं लगती थी। वे चाहे आवश्यक कार्यमें व्यस्त हों अथवा स्वयं ही शरीरसे अस्वस्थ हों, अपनी धोती सँभालते हुए वे भगतजीके साथ चल ही पड़ते थे। यह केवल एक या दो बारकी बात नहीं, अपितु ऐसा प्रायः होता रहता था। सचमुच उन्होंने जितना स्नेह माँको दिया और जितना वात्सल्य मुझको दिया उसकी कोई सीमा नहीं। मुझे अथवा माँको सुख देनेकी भावनासे प्रेरित होकर उन्होंने जो-जो और जितना-जितना किया, वस्तुतः उसका अनुमान भी कल्पनासे परे है।

सँभालकी तत्परता

बात उस समयकी है, जब मेरी आयु लगभग दस वर्षकी रही होगी। तब

गीतावाटिकामें बिजली नहीं थी। वाटिकाके भीतर न इतने मकान थे और वाटिकाके बाहर न कोई बस्ती थी। था चारों ओर जंगल-ही-जंगल। घरमें नौकर-चाकर भी नहीं थे। सारा काम, अपने हाथसे करना होता था। जिसे आजकल पावन कक्ष कहते हैं, यह कमरा भी तब नहीं बना था। इसका निर्माण तो बहुत वर्षोंके बाद हुआ। तब बाबूजी उस कमरेमें रहते थे, जो भिक्षाघरके ऊपर है। उसी कमरेमें रहते हुए वे 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादनका कार्य किया करते थे।

एक रात बहुत जोरसे वर्षा आयी। पानी मूसलाधार बरस रहा था। बरामदा तो पानीसे भर ही गया, बरसातका पानी कमरेमें भी आने लग गया। ऐसा लगता है कि छतपरके कूड़े-कचरेसे नालीका मुँह बन्द हो गया और निकास बन्द हो जानेसे बढ़ता हुआ पानी कमरेमें फैलने लगा। कमरेमें बाबूजीकी बहुत-सी फाइलें नीचे भूमिपर पड़ी हुई थीं। और भी कई कागज थे। मैं, माँ और बाबूजी, हम तीनों ही कागजों-फाइलोंको उठा-उठाकर ऊँचे रखने लग गये। जमीनपर बिछे हुए गद्देको जल्दी-जल्दी समेटकर ऊपर रखा गया। बढ़ते हुए पानीसे बचावके लिये हम तीनों लोग तत्परता पूर्वक उठा-उठा करके सामान ऊपर रख रहे थे, तभी बाबूजीने कहा—सावित्री! तुम चीजोंको, कागजोंको सँभालकर रखना। मैं अभी आता हूँ।

मैंने पूछा—इस तेज बरसातमें आप कहाँ जा रहे हैं?

बाबूजीने कोई कारण तो बतलाया नहीं, केवल 'अभी आता हूँ', 'अभी आता हूँ', यह कहते-कहते लालटेन उठायी और चल दिये।

बादमें तो सब पता चल ही गया। बाबूजी जा रहे थे बगीचेके पिछले भागमें इमलीके विशाल वृक्षोंकी ओर, जहाँ बाबा फूसकी कुटियामें रहते थे। उन दिनों बगीचेके पिछले भागमें बड़ी ऊँची-ऊँची घास थी, इतनी ऊँची कि उसमें कोई आदमी छिप जाय। घासके उस जंगलमें मोटे-मोटे लम्बे-लम्बे साँप भी बहुत थे, कभी पगडंडीपर पड़े हुए, कभी वृक्षोंसे लटकते हुए। ऐसा होकर भी बाबूजी लालटेन लेकर बाबाके पास गये। वहाँ जाकर देखा कि बाबा अपनी कुटियामें भीग रहे हैं। इसी परिस्थितिका अनुमान करके ही तो बाबूजी लालटेन लेकर कमरेसे तुरन्त चल पड़े थे। अपने अनुमानको प्रत्यक्ष देखकर बाबूजीका हृदय स्नेहार्द्र हो उठा कि बाबा कितना कष्ट पा रहे हैं। पूज्य बाबूजीने तत्काल बाबाका

हाथ पकड़ा और उनको उठाकर अपने साथ ले आये। ऐसी थी पूज्य बाबूजीके मनमें ममत्वकी भावना और ऐसी थी उनके मनमें सँभालकी तत्परता।

सौ० श्रीराधादेवी भालोटिया

गुणदर्शन एवं प्रशंसन

पूज्य नानाजीकी सहज चेष्टा है, उनका सहज स्वभाव है सबमें गुणदर्शन करनेका। गीताभवन (स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश) में प्रति पक्ष सफाई सत्संगी भाई-बहिन स्वयं हाथसे करते हैं। नानाजी भी उस दिन हाथमें झाड़ू लिये दिखायी पड़ रहे हैं। परस्परमें बात होने लगी—अरे, बाबूजी सफाई कर रहे हैं। चलो, सब चलें।

सब दत्तचित्तसे जुट जाते हैं। जोरोंसे गन्दगीका बहिष्कार हो रहा है। सब जगह स्वच्छ हो गयी है। नानाजी स्नानादिसे निवृत्त हो गये हैं। अब चल रहा है उनका प्रशंसाका कार्यक्रम। आज तो अमुक व्यक्तिने बड़ी मेहनतसे सफाई की, अमुकने गन्दा नाला साफ कर दिया, अमुक तो शौचालयतक धो आया।

प्रशंसा मीठी लगती है, सब बाहर खड़े सुन रहे हैं, प्रसन्न हो रहे हैं और मन-ही-मन निश्चय-सा कर रहे हैं कि अगली बार और जोरसे सफाई करूँगा। जीवनमें कर्मठता आये, यही नानाजीको अभीष्ट है। उनकी प्रशंसासे स्वयमेव यह हो रहा है। यह है नानाजीकी अनुपम शैली गुण बढ़ानेकी।

* * * * *

नानाजीका घर सबका घर है। विश्वके कोने-कोनेसे विदेशी, देशी, अँग्रेज, नीग्रो, काले, गोरे, सब उनके घरमें आते हैं, सब समुचित आदर पाते हैं। वे कैसे किसीका अपमान कर सकते हैं? चौका उठ गया है। अचानक बीस आदमी आ गये हैं। उन्होंने प्रातःकालसे कुछ खाया नहीं है, अतः सायं भोजन तैयार होनेतक प्रतीक्षा नहीं कर सकते हैं। इसी समय संध्या चार बजे उनके लिये पूड़ी-सागकी आवश्यकता है। रसोईघरका महाराज अभी दस मिनट पहले चौकेसे निकल कर गया है। तुरन्त कैसे बुलायें उसको?

अब अन्नपूर्णा स्वरूपा नानीजी स्वयं आटा लेकर बैठती हैं—लाओ, मिलकर बना लें। आनेवाले अतिथिका सत्कार तो होना ही चाहिये।

नानीको लगे देखकर घरकी अन्य स्त्रियाँ भी जुट गयीं। भोजन तैयार है। प्रात:कालसे भूखे अतिथियोंने छककर खाया। मन-ही-मन शुभकामना की—ऐसे सद्गृहस्थकी गृहस्थी सदा फले-फूले।

नानाजीको पता लगा कि आज सबने इस प्रकारसे अतिथिसेवा की। वे प्रसन्न हो गये। अघा नहीं रहे हैं प्रशंसा करते-करते। उल्लसित वाणीमें वे कह रहे हैं—देखो! कितना काम किया इन लोगोंने! इस गर्मीमें कितना परिश्रम किया इन्होंने! इन्हींके परिश्रमके परिणाम स्वरूप ही तो विश्वरूप प्रभुकी यह अर्चना सुरुचिपूर्ण सम्पन्न हो सकी।

काम करनेवाले गद्‌गद् हो उठते हैं—इतना सम्मान! अन्य तो कोई भी दे नहीं सकता।

* * * * *

नानाजी स्वयं अच्छे-से-अच्छे डाक्टर, वैद्यराज या होमियोपैथसे कम नहीं हैं। उनकी छोटी-मोटी डिस्पेंसरी और रसायनशाला उनके साथ ही चलती है। वे सबको दवा देते हैं, ठीक करते हैं, पर यदि अन्य कोई जरा-सी भी सेवा किसीकी कर देता है तो अर्थ-व्यय सारा स्वयं वहन करनेके उपरान्त भी तनिक-सा सहयोग करनेवालेको सच्चे सेवकका खिताब दे डालते हैं—बेचारा कितना सेवा करता है? जरा-सा भी आलस्य नहीं। एक बार, दो बार, पाँच बार, जितनी बार आवश्यकता होती है, डाक्टरको बुला देता है। दवा ला देता है, बड़ा ऋणी हूँ इसका।

नानाजीके मुखके उद्‌गार उल्लास-विभोर बना देते हैं सेवा करनेवालेको। कहीं कोई कृत्रिमता हो इस कथनमें, सो भी नहीं। स्वभावसे ही गुण दीखते हैं नानाजीको और प्रशंसा कर देते हैं वे।

* * * * *

वस्तुओंको सुव्यवस्थित रखना नानाजीका स्वभाव है। दैनिक उपयोगकी प्रत्येक वस्तु वे बड़ी सँभाल कर रखते हैं। दूसरा कोई भी इस पद्धतिको अपनाता है तो वे बड़ी प्रशंसा करते हैं उसकी। अँधेरा हो रहा है, बत्ती फ्यूज हो गयी है। किसीको कोई दवाकी आवश्यकता है और अँधेरेमें उठाकर ले आता है। उसकी कुशलता नानाजी सबको बताते और प्रसन्न होते थकते नहीं।

राधाष्टमीका उत्सव है। यह राधा-परिवारकी भावनाको लेकर, नानाजी और

बाबाजीकी चलायी हुई परम्परानुसार एक पारिवारिक उत्सवके रूपमें मनाया जाता है। इसमें सम्मिलित होनेवाले प्रत्येक व्यक्तिका यह अपना उत्सव है। उसकी अपनी उपासनाका अंग है, फिर उसमें जो जितना अधिक सहयोग करे, उसका अपना कर्तव्य है, अपनी निधि है। पर नहीं, नानाजीकी पैनी दृष्टि गुण देखनेमें चूक नहीं सकती। जो कुछ भी नहीं कर रहे हैं, उनके प्रति असन्तोष व्यक्त करनेकी तो कहीं स्फुरणा ही नहीं—वे बिचारे साधन करते हैं। उन्हें समय ही नहीं कि अन्य कुछ सहयोग दे सकें। जो कार्यकर्ता हैं, इन्होंने रात-दिन सेवा-कार्यको सँभाला। उन्हें मैं क्या कहूँ? सब अपने हैं, उसी स्नेहसे काम करते हैं।

* * * * *

उत्सवमें आनेवाले ठहरनेवाले व्यक्तियोंको कुछ असुविधा तो स्थानाभावके कारण होती ही है और कष्टका वरण करनेमें मानवको कष्ट होता ही है। व्यवस्था करनेवाले कुछ तो परिस्थितिवशात् और कुछ अपने अहंकारवशात् उद्विग्न हो जाते हैं और क्रोध आ जाता है, पर नानाजीकी गुण-ग्राहकता वहाँ भी गुणदर्शन कर रही है—अपने घरोंमें तो बिचारे सभी अपनी-अपनी सामर्थ्यके अनुसार बड़े आरामसे रहते हैं, फिर यहाँ कष्ट सह करके पैसा खर्च करके वे आते हैं, उत्सवमें भाग लेते हैं। बड़ी ही कृपा है उनकी तो हम सबपर।

आनेवाला अपना कष्ट भूल जाता है, मनका क्षोभ भी स्वत: दूर हो जाता है नानाजीकी इस स्नेहभरी सराहनासे।

* * * * *

दूर-दूरसे लोग आ रहे हैं नानाजीसे मिलने, पर नानाजी अपने भावराज्यमें लीन हैं। आनेवाला आता है, बैठ कर लौट जाता है। कमरेके किवाड़ खुले, नानाजीको पता लगा, उन्हें बड़ा विचार हो रहा है। प्रभु प्रेरित वे फिर आ पहुँचे। अब तो नानाजीका मन-भाया हो गया। झुककर अभिवादन करते हैं, क्षमा माँगते हैं—बड़ा कष्ट हुआ महाराज आपको! मैं तो ऐसा ही हूँ। दिमाग खराब हो जाता है मेरा तो। आप इतनी दूरसे आये, इतनी प्रतीक्षा करनी पड़ी आपको। क्षमा करें।

'भाईजी! आपके पास जो रात-दिन रहते हैं, उनका जीवन धन्य है। हम जैसोंको तो सालोंमें कभी एक बार दर्शन हो पाते हैं'—सरल श्रद्धालु महिलाके

मुखके ये उद्गार सुन रहे हैं नानाजी, पर उसका समर्थन नहीं है। हाथ जोड़कर वे कह उठते हैं—नहीं, नहीं, मेरे क्या दर्शन हैं? मैं किस लायक हूँ? यह तो आप लोगोंकी कृपा है, स्नेह है, जो मुझ सरीखेको भी अपना रखा है।

इतना आदर देते हैं। 'तृणादपि सुनीचेन' का उदाहरण तो है ही, इसके अतिरिक्त है बड़े दुर्लभ सद्गुणका परिचायक, दूसरेमें भलाई देखना, गुण देखना।

* * * * *

शत्रु और मित्र तो जगत्में होते ही हैं। अजातशत्रु मर्यादा पुरुषोत्तम राम और सर्वसुहृद् लीलापुरुषोत्तम कृष्णके भी निन्दक और विरोधी उत्पन्न हो ही गये थे। हमारे नानाजी सरीखे आदर्श पुरुषमें भी दोष देखनेवाले अहंकारी उनकी निन्दा करते हैं। इससे नानाजीपर सहज ही श्रद्धा रखनेवालोंको कष्ट होता है। मन-ही-मन एक विद्रोह-सा उत्पन्न हो जाता है उन निन्दकोंके प्रति, पर नानाजीपर असर नहीं। वे श्रद्धालु-जनोंसे कहते हैं—थे लोग बावला हो। मूर्ख हो। मेरी तो बड़ी श्रद्धा है और बाँको बड़ों स्नेह है मेर ऊपर तो।

श्रद्धालुओंके अन्तरका विरोध वहीं घुटकर रह जाता है। तनिक-सा प्रश्रय नहीं मिल पाता उसे नानाजी द्वारा।

* * * * *

अपने पिता अथवा अग्रजको विवाहिता हिन्दू रमणी प्रणाम न कर सकती हो, चरण स्पर्श न कर सकती हो, कहीं हिन्दू शास्त्रमें ऐसा उल्लेख नहीं है। फिर नानाजी जैसा सच्चा पिता, सच्चा भाई दूसरा होगा ही कौन? फिर भी नानाजी इसे प्रश्रय नहीं देते, इसके विरोधक ही हैं। एक बार कलकत्तेमें माता-बहिनोंने अत्यन्त श्रद्धा और अन्तरका पवित्रतम स्नेह लेकर नानाजीके चरणोंका स्पर्श कर लिया। छिद्रान्वेषी तो ढूँढ़ते ही रहते हैं कहीं छिद्र मिले। एक सज्जन, सुहृद्, परामर्शदाताने नानाजीको सलाह दी—आप इस प्रकार प्रणाम करवाते हैं, उचित नहीं।

बड़े स्नेहसे बड़ा आदर देकर नानाजीने अपना दोष स्वीकार किया—क्या बताऊँ? उचित तो नहीं, पर मुझे भी आत्म-पूजा, आत्म-सम्मानकी बड़ी भूख है, सचमुच ही यह मेरा पतन है। सलाहकार प्रसन्न हैं कि नानाजीने उसकी बातको समझ तो लिया। माने-न-माने, अपना दोष तो स्वीकार किया ही। कम-से-कम ध्यानमें तो आया। और नानाजी तो गुणदर्शनमें बेजोड़ हैं ही। बार-बार

हर मिलनेवालेके सामने चर्चा करते हैं—उन्होंने कितनी सुन्दर बात कही? कितनी अच्छी सलाह दी मुझे?

'चरण स्पर्श सर्वथा न करें, अन्यथा उपवास करूँगा मैं'—नानाजीकी गम्भीर घोषणासे आत्यन्तिक कष्ट हुआ सबको। सबके मनमें एक दर्द है—क्या हम इतने अभागे हैं, जो अपने बाबूजीके, अपने भाईजीके चरण नहीं छू सकते?

पर उसकी परवाह नहीं। नानाजी तो उस अज्ञानान्धकारमें समाविष्ट रहनेवाले सुहृद्के परामर्शका आदर करेंगे। वे बार-बार कहते हैं—*'निंदक नियरे राखिए आँगन कुटी छवाय।'*

* * * * *

नौकर काम कर रहा है। एकके बाद दूसरा, दूसरेके बाद तीसरा आदेश मिलता जा रहा है उसे। हम उसे पैसा देते हैं और काम करना ही पड़ेगा उसे, इसी अहंकारका पोषण हो रहा है उसे आज्ञा देकर। नानाजी देख रहे हैं—बेचारा हमारे जैसा आदमी है। कितना कठोर परिश्रम कर रहा है वह? कहीं जरा भी आलस्य नहीं, रोष नहीं।

हमलोग अपना अधिकार समझकर उसे उसका कर्तव्य सिखानेका प्रयत्न कर रहे हैं, पर वह असमर्थ है और नानाजीका स्नेहभरा दृष्टिपात उसे कर्तव्य पथपर डटे रहनेका पाठ पढ़ा देता है। उनका उसमें गुणदर्शन ऐसे सद्गुणोंको मूर्त कर देता है, जिन्हें बेचारा वह स्वयं नहीं जानता। पर वह भी अपने दयालु मालिकके प्रति कृतज्ञ अवश्य है।

* * * * *

मेहतरानी सफाई कर रही है। लोग अपने मनमें एक हेय उपेक्षाका भाव ही रख पाते हैं उसके प्रति। लेकिन नानाजीका निर्माण इन अहंता-ममताके तत्त्वोंसे नहीं, श्रीकृष्ण-तत्त्वसे हुआ है।

मेहतरानी माँ है, जगज्जननी है। माँ केवल अपने बच्चेका मल साफ करती है और यह प्राणिमात्रका मल धोती है। शिशुके तनिक बड़े हो जानेपर माँको आपत्ति हो सकती है, पर उसे कभी कोई अनिच्छा नहीं। अब किसके मातृत्वका धरातल ऊँचा है? माँ मात्रका अथवा इस विशाल हृदया जगज्जननीका?

तार्किक बुद्धि भी इसका उत्तर नहीं दे पाती है, विरोध नहीं कर पाती।

* * * * *

भावराज्यकी दृष्टिसे नानाजी सर्वोपरि हैं। उनसा साधक, उनसा सिद्ध, उनसा संत, उनसा '**मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः**' दूसरा नहीं। पर उनमें आडम्बर अथवा कृत्रिमताकी गन्ध भी नहीं। हृदय-धनको गोपनीय रखना ही अभिप्रेत है उनको। अब, जब अपना वश नहीं रहा, बात बेकाबू हो गयी, तब उसका नया रास्ता निकाल लिया गुप्तताके प्रेमी नानाजीने। हर आनेवाला घरका-बाहरका जानता है नानाजी भाव-समाधिमें हैं, पर उसका नया नामकरण किया है, मान-सम्मानको परम त्याज्य समझनेवाले नानाजीने 'माथा खराब होना'। अर्थात् होश-हवाश ठीक नहीं रहे। दिमाग असंतुलित हो गया है। पहले ठीक था, अब जो हो रहा है, वह ठीक नहीं, जब कि यथार्थ यही है।

यों तो उनके लिये जगत्में रचे-पचे रहना अथवा भाव समाधिमें रहना, है समान ही वस्तु। श्रीराधा-माधव और नानाजी, ये दो वस्तु नहीं। जहाँ नानाजी हैं, वहाँ राधा-माधव बाध्य हैं रहनेको और जहाँ यह युगल है, नानाजीकी उपस्थिति वहीं हैं, इसमें संशयको स्थान नहीं। ऐसे नानाजी अपने मुखसे दूसरोंके बारेमें कहते हैं—भैया! अमुक व्यक्ति बड़ी साधना करता है। नामजप करता है। निरन्तर भगवच्चिन्तनका प्रयास करता है। उसे अनुभव भी होते हैं। अपनेसे तो वही अच्छा है।

प्रभु बाध्य हो जाते हैं इस सराहनासे। वह अधिकारी था या अनधिकारी, अब यह प्रश्न नहीं रहा। भगवान् भक्तके वशमें हैं। लीलाविहारी नटवर हों या चतुर्भुज नारायण, उन्हें उसे अपनाना ही पड़ेगा। यह है नानाजीके गुणदर्शनका निरुपम परिणाम। अब इसे क्या उपमा दी जा सकती है?

पूज्या बउआ माताजी

बहिन सरोज और मुन्नीकी पूजनीया माताजीका नाम तो था अम्बादेवीजी माथुर, परंतु वे हमलोगोंके मध्य बउआके नामसे जानी जाती थीं। कई माथुर जातीय परिवारोंमें माँको बउआ ही कहते हैं। लगभग नब्बे वर्षकी आयुवाली वृद्धा बउआ दस-बारह दिनोंसे रुग्ण चल रही थी। उसकी रुग्णताको देखकर कई लोग संदेह भी करते थे कि यह पका आम अब कहीं डालसे चू जानेवाला तो नहीं है। लोगोंका संदेह सत्य निकला, पर उसके अन्तिम तीन-चार दिनोंकी

भावमयी स्थितिको देखकर सब आश्चर्य करने लगे। वैसे बउआने अपने जीवनमें साधना कम नहीं की है, पर महाप्रयाणके समय भला किसकी ऐसी सुन्दर प्रेममयी स्थिति बन पाती है। गोस्वामी तुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसमें कहा भी है कि मुनि लोग जन्म-जन्मतक यत्नपूर्वक साधना करते हैं, फिर भी जीवनके अन्तिम क्षणमें मुखसे भगवान्का नाम 'राम' उच्चरित नहीं हो पाता। '***जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥***', पर बउआकी अद्भुत भाव-दशाने सभी उपस्थित लोगोंके मनमें यह विश्वास जमा दिया कि भगवान् हैं, भगवान्का दर्शन होता है और भगवान् प्रेमके अधीन हैं।

बहिन सरोज और मुन्नीके पूज्य पिता श्रीमाथुरजी एक कुशल चित्रकार थे। यह प्रायः देखा जाता है कि सच्चा कलाकार अपनी कला-प्रियताके अतिरेकमें न अपने शरीरकी भली प्रकार चिन्ता कर पाता है और न अपने जगत्के व्यवहारको ठीक प्रकारसे निभा पाता है। यह बात श्रीमाथुरजीके सम्बन्धमें सच्ची थी। ऐसी परिस्थितिमें बउआपर घर-गृहस्थीकी सँभालका उत्तरदायित्व और अधिक आ गया और बउआने एक पतिव्रता नारीकी भाँति इसका सम्यक् प्रकारसे निर्वाह किया।

यह पूरा परिवार पूज्य श्रीनारायण स्वामीजीको गुरु मानता था। ये श्रीनारायण स्वामीजी वे ही हैं, जो केवल टाट धारण किया करते थे और जिनकी एक लघु पुस्तिका 'एक संतका अनुभव' गीताप्रेससे प्रकाशित है। अखण्ड मौन रहकर भगवन्नामका जप करनेसे टाटवाले श्रीनारायण स्वामीजी महाराजको भगवान् नारायणके दर्शन हुए थे। इस पुस्तिकामें उन्होंने स्वयं लिखा है—'परम दयालु नारायणने इस दासपर कृपा करके नर्मदाके किनारे चान्दोद नामक स्थानमें दर्शन दिये थे। पहले छम-छमकी आवाज आयी। फिर विमान आया, जिसको चार पार्षदोंने उठा रखा था। साधन करनेसे इस दासको तीन वर्ष छः मास चौबीस दिनमें भगवान्के दर्शन हुए थे।'

टाटवाले श्रीनारायण स्वामीजी महाराज मौन एवं नामजपको अत्यधिक महत्त्व दिया करते थे। अपने गुरुदेवकी इस शिक्षाके अनुसार श्रीमाथुरजी प्रायः मध्य रात्रिके समय अपने आसनपर बैठकर नामजप और ध्यानकी साधना किया करते थे। बउआ प्रायः अपराह्न कालतक मौन रहा करती थी। उसे बच्चोंके लिये भोजन बनाना पड़ता था। जब बच्चे स्कूल चले जाते, तब उसके बाद बउआ

अपने पूजा-पाठके नियमको पूरा करनेमें संलग्न होती और नित्य-नियमके पूरा होनेके बाद ही मौनका विसर्जन होता।

अयोध्याके एक संतके मुखसे बउआने सुन लिया कि श्रीरामचरितमानसके १०८ नवाह्न-पाठका नियम लेकर जो अखण्ड रूपसे पाठ करता है, उसे भगवान्‌के दर्शन होते हैं। बउआने यह बात पकड़ ली और उसने मानसका नवाह्न-पाठ आरम्भ कर दिया। तीन वर्षमें बउआने मानसके १०८ नवाह्न-पाठ पूरे किये। उसी दिन मध्य रात्रिके समय भगवान् श्रीसीतारामजी विमानसे पधारे। साथमें श्रीलखनलालजी भी थे। बउआके पूजा-पाठ-नैवेद्यादिकी तैयारी बहिन सरोज किया करती थी और उस दिन वह किसी कार्यसे रीवाँ नगर गयी हुई थी। विमानको देखते ही बउआ जोर-जोरसे पुकारने लगी—अरे, रामजी तो आ गये। विमान आ गया। सरोज तो है नहीं, कौन सारी तैयारी करेगा? भगवान् तो आ गये। इनका स्वागत-सत्कार कैसे हो?

एक बार बउआने श्रीमद्भागवतका पाठ आरम्भ किया। एक स्थानपर उसने भागवतकी कथा सुनी और कथा बड़ी प्यारी लगी। बस, उसने श्रीमद्भागवतका पाठ आरम्भ कर दिया। बउआ केवल अर्थ पढ़ा करती थी, उसे संस्कृत तो आती नहीं थी। उसके मनमें कोई संकल्प नहीं था कि इतने दिनकी अवधिमें पाठ पूर्ण करना है। चाहे जितने दिनमें भागवत पूरी पढ़ी जाये, पर भागवतका पाठ अच्छा लगता था। दिनमें सूर्यके प्रकाशमें और रातमें लालटेनकी रोशनीमें भागवत पढ़ती जाती थी। चाव-चावमें बउआ सारे भागवतका पाठ कर गयी। यह भी क्या संयोगकी बात है कि जब दिनोंकी गणना की गयी तो पता चला कि सम्पूर्ण भागवतका पाठ सात दिनमें पूरा हो गया है। अनजानेमें ही उसके द्वारा श्रीमद्भागवत-सप्ताहका एक पारायण हो गया।

बउआने एक बार मानसके सुन्दरकाण्डका पाठ आरम्भ किया। उसने सुन रखा था कि भगवान् श्रीरामकी कथाको सुननेके लिये श्रीहनुमानजी महाराज पधारा करते हैं। इस सुनी हुई बातके आधारपर बउआने पाठ आरम्भ करनेके पहले एक लाल आसन श्रीहनुमान्‌जीके विराजनेके लिये बिछाया और श्रीहनुमानजीका आह्वान करते हुए उसने कहा—

तुलसी कृत रामायण कथा कहूँ अनुसार।
आसन लीजै परम हित आइये पवनकुमार॥

श्रीहनुमानजीके आह्वानका यह दोहा ज्यों ही पूरा हुआ, त्यों ही विशालकाय श्रीहनुमानजी आकर उस आसनपर विराज गये। श्रीहनुमानजीको देखकर बउआ अत्यधिक भयभीत हो गयी और उसके मुखसे चीख निकल गयी। इस पाठके बादसे फिर कभी बउआने श्रीहनुमानजीका आह्वान नहीं किया। श्रीहनुमानजीके आह्वानकी बात आनेपर बउआ कहा करती थी कि मुझे तो उनसे बड़ा डर लगता है।

बउआने श्रीप्रयागराजमें कई कल्पवास किये हैं। कल्पवास करनेवालेको सम्पूर्ण माघमास भर प्रयागराजमें गंगाजीके किनारे रहना पड़ता है तथा प्रतिदिन त्रिवेणीपर संगम-स्नान करना पड़ता है। माघमासके घोर शीतमें यह कल्पवास एक कठोर तप ही है। जब बउआ अन्य-अन्य नगरोंमें रहती थी, तब वह कल्पवासके लिये उस-उस नगरसे कई बार प्रयाग आयी है और प्रयागमें रहते समय भी वह अपने घरसे माघमासमें प्रतिदिन संगम-स्नानके लिये त्रिवेणीपर जाया करती थी। प्रतिदिन सपरिवार आनेमें बड़ी परेशानी हुआ करती थी। एक दिन जब परेशानी सीमाको पार करने लगी तो बउआ झुँझला उठी और उलहना देती हुई भगवती गंगासे उसने कहा—इतनी परेशानी झेलनी मेरे वशकी बात नहीं है। गंगा परमेश्वरी! अब तू मेरी बात सुन ले। अब कलसे मैं नहीं आऊँगी। इस उपालम्भके तुरंत थोड़ी देर बाद ही किसी विचित्र विधानसे संगमके एकदम निकट एक बहुत सुन्दर स्वच्छ और विशाल तम्बूमें सपरिवार रहनेकी बड़ी सुन्दर व्यवस्था अयाचित रूपसे हो गयी।

टाटवाले श्रीनारायण स्वामीजी महाराजके महाप्रयाणके बाद बउआके मनमें बड़ी व्यथा हुई कि कोई सच्चा संत मिलना चाहिये, जिसके आश्रयमें रहा जा सके। सच्चे संतका आश्रय किलेकी दीवालके समान है। सच्चे संतकी प्राप्तिके लिये बउआ भगवान्‌से प्रार्थना करने लगी। फिर भगवत्कृपासे श्रीजजसाहब (परमादरणीय श्रीरामप्रसादजी दीक्षित) के द्वारा बउआको गीतावाटिकाके पूज्य बाबूजी (रस-सिद्ध-संत पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) तथा पूज्य बाबाका परिचय मिला और क्रमशः सारा परिवार ही इन दो संतोंके अति निकट सम्पर्कमें आ गया। बाबूजीका परिचय तो बउआको पहलेसे ही था। सन् १९३६ ई० में जब परम पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीकी देख-रेखमें एक वर्षका अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन गीतावाटिकामें हुआ था, उस समय बउआ फैजाबादमें रहती थी। तब बउआके सहोदर भाई गोरखपुरमें डिप्टी कलक्टर थे। अपने सहोदर

भाईसे अखण्ड हरिनाम-संकीर्तनका समाचार पाकर बउआ फैजाबादसे आयी थी और अपने भाईके पास ठहरी थी। बउआ प्रतिदिन अपने भाईके बँगलेसे पूर्वाह्न कालमें गीतावाटिका आती और अपराह्न कालमें लौट जाती। इस प्रकार बाबूजीके संत-जीवनकी जानकारी तो बउआको थी ही, पर गीतावाटिकाके इन दोनों संतोंके प्रति श्रद्धा और समर्पणका भाव श्रीजजसाहबके माध्यमसे ही पुष्ट हुआ।

७ अप्रैल १९६७ को जब बाबाने मौन लिया था, तब बाबाके दर्शनार्थ बउआ सपरिवार प्रयागसे गोरखपुर आयी थी। उस दिन एक बड़ी अद्‌भुत और विशेष घटना घटित हुई। ७ अप्रैलको दोपहरके बाद जब बाबा श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा लगा रहे थे, उस समयकी बात है। परिक्रमाके समय बउआ भी उपस्थित थी। बउआको दिखलायी दिया कि बाबाने एक लहँगा पहन रखा है। उस लहँगेकी किनारी बड़ी चौड़ी और बहुत चमकीली है। उस चौड़ी-चमकीली किनारीसे दिव्य प्रकाशकी किरणें निकल रही हैं। प्रकाशकी किरणोंसे सारा परिक्रमा-पथ ज्योतित हो रहा है। लहँगेकी चमकीली किनारीसे निरन्तर निकलनेवाली सुनहरी किरणें चारों ओर फैली हुई हैं। वह लहँगा बड़ा लम्बा है। बउआको ऐसा लगा कि कहीं बाबा उलझकर गिर न जायें। बाबा तो अपने संन्यास-धर्मके अनुसार सहज स्वाभाविक गैरिक वेषमें ही थे, पर किसी अचिन्त्य सौभाग्यके फलस्वरूप भावराज्यसे सम्बन्धित वास्तविकताकी किंचित् झाँकी सत्त्व सम्पन्न-हृदयवाली बउआको हो गयी। जो भी हो, इस दिव्य लोकोत्तर अनुभूतिके कारण बउआने मन-ही-मन समाधान कर लिया कि ये बाबा लहँगा पहनते हैं, शायद इसीलिये लोग इन्हें राधा बाबा कहते हैं। राधा बाबा-नामका रहस्य अपनी खुली आँखोंसे देखकर बउआका मन गहरी श्रद्धासे भर गया।

सन् १९७२ ई० में पतिदेव श्रीमाथुरजीके दिवंगत हो जानेके बाद बउआ गीतावाटिकामें रहने लगी। बाबाकी आज्ञा मिलनेके बाद सन् १९७२ ई० की अक्षयतीज तिथिके दिन बउआ गीतावाटिका आयी और अपने अन्तिम श्वासतक यहीं रही। सबसे छोटी सुपुत्री मुन्नी तो बहुत पहलेसे ही बाबाके चरणाश्रित होकर गीतावाटिकामें रह रही थी।

बउआका बाबापर बड़ा ही विश्वास था, इसे शुद्ध हृदयका सहज विश्वास कहना चाहिये। एक बार बउआके पैरके तलवेमें गोखरू (CORN) हो गया।

गोखरूकी चुभनके कारण चलनेमें बड़ा कष्ट होता था। जब इसके बारेमें बउआने बाबाको बतलाया तो बाबाने विनोद करते हुए कहा कि मैं तुमको एक मन्त्र बतलाता हूँ। *'जन्तर मन्तर घोंघा सारी। बुढ़िया खइलस लोन सुपारी॥'* बस, इस मन्त्रको तीन बार पढ़कर तीन अञ्जलि जल पी लिया करो। इसे सुनकर बउआ बड़ी प्रसन्न हुई। बाबाने तो विनोद किया था, परंतु बउआके मनने इसे एक सत्यके रूपमें स्वीकार कर लिया। अब बउआ प्रतिदिन इस मन्त्रको पढ़कर जल पीने लगी और आश्चर्यकी बात है कि बउआके पैरका गोखरू कुछ दिन बाद समाप्त हो गया।

सबेरे उठते ही बउआका दैनिक लीला-चिन्तन-क्रम आरम्भ हो जाया करता था। लीला-चिन्तन निम्नलिखित पंक्तियोंसे आरम्भ होता था—

उठो मेरे लाल मदन गोपाल, आये तेरे ग्वाल बुलावन को।
चुटिया चुपड़ी दधि माखन सों, बंशी लो शंख बजावन को।
बृंदावन जाय आनंद करो, लकुटी ले गऊ चरावन को।

लीला-चिन्तनके कारण व्यस्त रहनेवाली बउआ कई बार मुन्नीसे कहा करती थी—अपने इन सब कामोंसे मुझे फुरसत कहाँ मिलती है?

बउआ ढोलक बजानेमें बड़ी माहिर थी। वह ढोलक ऐसा बजाती थी मानो तबलेपर ठेका दिया जा रहा हो। बउआको पान खानेका शौक था। वृन्दावनसे पूज्य श्रीमहाराजजी (पूज्य श्रीबालकृष्णदासजी महाराज) जब गीतावाटिका आया करते थे, तब बउआ उनको पान-बीड़ी अवश्य दिया करती थी। बाबाने भी बउआसे माँग करके पान-बीड़ी कई बार आरोगी है। बउआ एक बड़ा सुन्दर तमोलिनवाला पद भावपूर्वक गाया करती थी। इस पदमें जनकपुरकी तमोलिन दुल्हा श्रीरामसे पान-बीड़ी आरोगनेके लिये आग्रह कर रही है। इस पदको बाबाने कई बार बउआसे परिक्रमाके समय सुना है। बउआके मुखसे यह पद बड़ा अच्छा लगता था। तमोलिनवाला पद इस प्रकार है—

खाते जाना गिलोरी तमोलिन खड़ी।
पड़ा है केवडा कत्थेसे महक आती है,
गिलोरी मेरी बड़ी दूर दूर जाती है।
तमोलिन हूँ मैं जनकपुर की नाम मोती है,
तुम्हारी जानकी मेरा ही पान खाती है।

पड़ी दोनों इलायची छोटी बड़ी।
खाते जाना गिलोरी तमोलिन खड़ी॥

नब्बे वर्षकी आयु हो जानेसे अति वृद्धावस्थाके कारण बउआका शरीर काफी कमजोर हो गया था और दुर्बल बउआ प्रायः खाटपर चुपचाप पड़ी रहती थी। जीवनके अन्तिम दिनोंमें वह कुल पन्द्रह-सोलह दिन बीमार रही होगी। बुधवार पहली फरवरीके दिनसे बउआकी स्थितिमें परिवर्तन आया। इस दिन शामको रुग्ण बउआ खाटपर लेटी-लेटी गाने लगी और उसके गायनके द्वारा ही उसकी भाव-दशाका परिचय मिलने लगा। बउआने एक गीत गाया—

जसोदा का कुँवर मेरा दिल हो चुका है।
मेरा दिल हो चुका है, जिगर हो चुका है॥

गाते समय लय-तालमें चूक नहीं होती थी। धीरे-धीरे बात फैलने लगी कि बउआ इतनी बीमार है कि सम्भवतः उसके चले जानेकी सम्भावना है, इसके बाद भी वह मस्त होकर लय-ताल सहित पद गाती है। ज्यों-ज्यों यह बात फैलने लगी, त्यों-त्यों लोग अधिकाधिक संख्यामें मिलने-देखनेके लिये बउआके पास आने लगे। बउआने अपने पदमें दो पंक्तियाँ और जोड़ दी।

जसोदा का कुँवर मेरा दिल हो चुका है।
मेरा मन हो चुका है, तेरा तन हो चुका है।
मेरा प्राण हो चुका है प्राण का प्राण हो चुका है॥

शुक्रवार, ३ फरवरीकी शामको कई लोग बउआके पास बैठे-बैठे उसके गायनको सुन रहे थे और उसकी मस्तीको देख रहे थे। बउआ तो अपनी मस्तीमें गा रही थी, तभी एकने पूछा—क्यों बउआ! वह तुमको दिखलायी देता है क्या?

बउआने चट कहा—वह मेरे सामने खड़ा है न!

फिर पूछा गया—वह अकेला है या श्रीराधाजी भी उसके साथमें हैं?

बउआने कहा—नहीं, राधाजी नहीं हैं। वह अकेला ही है।

पुनः जिज्ञासा हुई—वह तुमसे बात करता है या नहीं?

बउआने बताया—नहीं, बात नहीं करता। वह बात करते शर्माता है। उसे लाज लगती है।

बउआको छेड़नेकी दृष्टिसे फिर कहा गया—बउआ! वह तुमसे बात नहीं करता तो तुम उसके कान पकड़ो।

इतना कहते ही अपना हाथ फैलाकर अँगुलियोंको मटकीले ढंगसे घुमाते हुए बउआने कहा—अरे, वह तो बड़ा प्यारा है, अति ही प्यारा है। वह बारह वर्षका इतना प्यारा लगता है कि क्या कहूँ?

बउआ यह सब इतने सहज ढंगसे मस्तीभरे स्वरमें कह रही थी कि सबका मन रीझता चला जा रहा था। तभी एकने अनुरोध किया अथवा यों कह लीजिये कि बउआसे प्यारभरा आग्रह किया—बउआ! हमको भी दर्शन करा दो।

बउआने झिड़कनकी पुट देते हुए कहा—क्या तुमको दिखलायी नहीं देता कि वह सामने खड़ा है? वह सामने ही तो है। तुम देख लो।

इतना बउआद्वारा कहा जाना था कि वह 'जसोदाका कुँवर' बउआके सामनेसे तिरोहित हो गया। उसका तिरोहित होना था कि बउआ चिल्ला पड़ी और उच्च स्वरमें कहने लगी—अरे, वह तो चला गया। प्यारे! प्यारे! तुम कहाँ चले गये? प्यारे! जल्दी आना।

स्वरका तीखापन तथा निर्लज्ज पुकार वस्तुतः इस बातको प्रमाणित कर रही थी कि उसके तिरोहित हो जानेसे कितनी व्यथा बउआके हृदयमें हो रही है। पुकारकी कातरताने बाध्य कर दिया 'जसोदाके कुँवर' को पुनः सामने आ जानेके लिये।

बउआके सुपुत्र श्रीमाथुरसाहबने एक बार बउआसे पूछा—तुम इस समय क्या सोच रही हो?

बउआने तुरंत कहा—भगवान्‌को।

श्रीमाथुरसाहब इसे सुनकर प्रसन्नतामें हँस पड़े। इन दो-तीन दिनोंमें बउआने कई बार पूज्य श्रीमहाराजजी (टाटवाले श्रीनारायण स्वामीजी महाराज)-को भी याद किया। बउआ जब-तब अपने पदको गाती ही रहती थी—***'जसोदा का कुँवर मेरा दिल हो चुका है।'***

इसे सुनकर मुन्नीने बउआसे पूछा—यह भजन तो मैंने तुम्हारे मुँहसे कभी नहीं सुना। यह तुम्हारा पुराना भजन तो है नहीं। फिर यह भजन कहाँसे आया?

बउआने कहा—यह भजन मेरे दिलमेंसे निकला है, दिलके भीतरसे निकला है। वह मेरे दिलमें ही तो बैठा है। वह हर वक्त मेरे साथ ही रहता है और वही मेरी सँभाल हमेशा करता रहता है।

रविवार, ५ फरवरीके मध्याह्न कालमें बउआने महाप्रयाण किया। इसी दिन

सबेरे श्रीचोपड़ाजी बउआको देखने और सँभालनेके लिये गये। बउआने अपने पदमें दो पंक्तियाँ और जोड़ दी थी और उसीको गा रही थी—

जसोदा का कुँवर मुझे दरस दे गया है।
मुझे दरस दे गया है, मेरा दर्द ले गया है॥
मेरा दर्द ले गया है, मेरा दुःख ले गया है।
जसोदा का कुँवर मुझे दरस दे गया है॥

श्रीचोपड़ाजी बउआकी मस्तीपर बलिहारी जा रहे थे। तभी बउआने बड़े जोरसे पुकारा—राधा बाबा, राधा बाबा।

श्रीचोपड़ाजी इस विचित्र स्थितिको अवाक् हुए थोड़ी देरतक देखते रहे, फिर बउआसे पूछा—क्या बाबाको बुला लाऊँ?

बउआने कहा—जाओ। बाबासे कह देना कि बउआने बुलवाया है।

उधर श्रीचोपड़ाजी बाबाको बुलानेके लिये गये और इधर बउआने एक नया ही गीत गाना आरम्भ कर दिया।

मिलेगी जो रसिकोंकी जूठन प्रसादी
वही जीविका का सहारा करेंगे।

श्रीचोपड़ाजीसे सूचना पाकर बाबा बउआके पास आये। बाबाके पहुँचते ही बउआने कहा—बाबा! 'राम-राम! राम-राम!! राम-राम!!!'

बाबा बउआके सामने कुर्सीपर बैठ गये और बाबाके बैठते ही बउआने वही गीत गाना आरम्भ कर दिया, जो वह बाबाके आनेसे पहले गा रही थी—

सदा श्याम श्यामा पुकारा करेंगे
नवल रूप निश-दिन निहारा करेंगे।
मिलेगी जो रसिकों की जूठन प्रसादी
वही जीविका का सहारा करेंगे॥

अभीतक तीन-चार दिनसे बाबा तो दूसरोंके मुखसे बउआकी भाव-दशाके बारेमें विविध वृत्त सुना करते थे, पर अब वे स्वयं सुन रहे थे और इन पंक्तियोंको सुनते ही बाबाकी आँखें भर आयीं। फिर उन्मुक्त स्वरमें बाबाके मुखसे निकल गया—वाह! वाह! बउआ, तुम वस्तुतः दर्शनीय हो, वन्दनीय हो।

इसके बाद बाबाने बउआसे पूछा—बउआ! क्या हाल है?

बउआने कहा—बाबा! बड़ी कृपा है, बड़ी कृपा है, बहुत कृपा है। बस, आनन्द-ही-आनन्द है। आनन्द बरस रहा है। अपार आनन्द है।

बाबाने फिर पूछा—क्यों बउआ! क्या कोई कष्ट है?

बउआने बताया—कोई कष्ट नहीं, कोई तकलीफ नहीं। तनिक भी कष्ट नहीं। बस, आनन्द-ही-आनन्द है।

तभी मुन्नीने बउआसे कहा—अपना पद बाबाको सुनाओगी क्या?

इतना कहते ही बउआ गाने लगी—*'जसोदा का कुँवर मेरा दिल हो चुका है।'*

इन तीन-चार दिनोंमें उसने जितनी भी पंक्तियाँ जोड़ी थी, उन सबको गा-गाकर बउआने सुना दिया। बउआ अत्यधिक लय-ताल पूर्वक गा रही थी तथा अपने हाथके संचालन और भृकुटीके नर्तनद्वारा भाव भी बतलाती जा रही थी। वह हर पंक्ति बड़े ही लहजे और लटकके साथ गा रही थी। एक बार बउआने अपना हाथ ऐसा फैलाया, मानो वह हाथ बाबाका स्पर्श कर लेगा। तुरंत बाबाने अपनी कुर्सी पीछे हटायी।

बाबाने पूछा—क्या ढोलक बजाओगी?

बउआने कहा—अब ढोलक बजानेमें क्या रखा है।

फिर बाबाने 'तमोलिन' वाले पदकी एक पंक्ति सुना दी। इसे सुनाना था कि बउआने वह तमोलिनवाला पद गाना आरम्भ कर दिया।

बाबाने पूछा—क्या तुमको दर्शन हो रहे हैं?

बउआने कहा—हाँ, हाँ। वह मेरे सामने ही खड़ा है। बाबा वह इतना सुन्दर है, इतना सुन्दर है कि क्या बताऊँ? ऐसी सुन्दरता तो मैंने कहीं देखी ही नहीं। बड़ा ही सुन्दर है वह! और यह मौसम भी कितना सुहावना है?

इस समय तो सचमुच घोर शीत पड़ रहा था। बाबाने उपस्थित लोगोंको समझानेके लिये कहा—इस समय बउआ यहाँ तो है नहीं। इसे तो इस समय 'उसका' दर्शन, 'वहाँ' का दृश्य और 'वहाँ' का ही मौसम अनुभवमें आ रहा है।

बाबाको बैठे हुए लगभग एक घंटा हो गया था। बाबाने मुन्नीसे कहा—तुम बउआसे पूछो कि बाबा जायँ क्या? बाबाको स्नानादिसे निवृत्त होना है।

मुन्नीके पूछते ही बउआने कहा—जाओ बाबा! जाओ! जरूर जाओ।

बाबाने मनुहारभरी वाणीमें कहा—तुम कहो तो मैं बैठा रहूँ। तुम मेरी माँ हो न!

बउआने प्यार सहित कहा—तुम जाओ। तुम थक जाओगे। तुम जरूर जाओ।

बाबा बउआके पाससे चले आये। आते-आते बहिन सरोज और मुन्नीसे कहा—बउआको कोई दवा मत देना। बउआको किसी प्रकारकी सांसारिक स्मृति भी मत दिलाना। अब बउआको सँभालनेकी आवश्यकता नहीं है। नन्दनन्दन स्वयं इसकी सँभाल कर रहे हैं।

बाबाके चले आनेके बाद बउआको सूजी तथा दूधका पतला आहार दिया गया। बउआने अच्छी प्रकारसे आहार ग्रहण किया। कुछ माताएँ-बहिनें बउआके पास बैठी थीं। बउआने उनसे हरिनाम-संकीर्तन करवाया। इसके बाद फिर वह गाने लगी—

तुम्हें श्याम वंशी बजानी पड़ेगी।
लगी मेरे दिलकी बुझानी पड़ेगी॥

बउआके अधरोंका यह अन्तिम गीत था। उसी समय बउआके ऊर्ध्व श्वास चलने लगे। बाबाको तुरंत सूचना दी गयी। बाबा जल्दी-जल्दी आये। बउआको भूमिपर लिटा दिया गया था। बाबाके समक्ष अन्तिम बार हाथका कम्पन हुआ और बाबाके सामने ही बउआ अपने 'जसोदा के कुँवर' के पास चली गयी।

शव-यात्राके पूर्व कुछ बहिनें जब शवको भली प्रकारसे स्नान करा चुकीं तो अन्तमें बाबाने स्वयं स्नान करवाया। एक व्यक्ति शवको पकड़े रहा। बाबाने ऋषिकेशवाला गंगाजल शवके शीशपर डाला और अपने हाथसे मस्तक मला। संन्यास लेनेके बाद बाबाके जीवनका यह दूसरा प्रसंग है, जबकि किसी स्त्रीके शवको उन्होंने स्वयं अपने हाथोंसे स्नान करवाया हो। प्रथम प्रसंग है कमली मैयाका, जब बाबाने अपने हाथसे उसके शवको स्नान करवाया था। उसके बाद यह द्वितीय प्रसंग है। स्नान कराते समय बैठे हुए शवको देखकर बाबाने कहा कि ऐसा लगता है मानो बउआ समाधिस्थ हो। जब शवको अरथीपर विराजित कर दिया गया तो बाबाने उसका फूलोंसे शृङ्गार किया, फिर अरथीकी तीन परिक्रमा देकर अन्तिम प्रणाम किया और अन्तमें बाबा अरथीको कन्धा दिया।

बउआके निधनपर अपने उद्गार व्यक्त करते हुए बाबाने कहा—मृत्यु हो तो ऐसी हो। महाप्रस्थानके समय बउआ एक सिद्ध संतके कोटिमें स्थित थी। उसने योगीन्द्र-मुनीन्द्रकी-सी गति पायी। वह सीधे श्रीकृष्णके धाम गयी। उसके

लिये किसी प्रकारके श्राद्धादि कर्मकाण्डकी आवश्यकता है नहीं, फिर भी परम्पराके निर्वाहके लिये यह सब अवश्य करना चाहिये।

जिस बउआसे दिनमें कई बार मिलना-जुलना, उठना-बैठना, हँसना-बोलना होता था, वह अत्यन्त साधारण-सी लगनेवाली वृद्धा भीतर-ही-भीतर इतनी महान् होगी, इसकी कल्पना किसीको भी नहीं थी। उसके जीवनके अन्तिम दिनोंकी भाव-दशासे सब विस्मित थे। फिर तो लोगोंने बहिन सरोज और मुन्नीसे उसके पूर्व जीवनके बारेमें बहुत-सी पुरानी बातें पूछनी आरम्भ कर दीं। इन दोनों बहिनोंने जितना बतलाया, उसका अल्पांश ही यहाँ वर्णित हुआ है। ऐसी विपुल अनुभूतियोंकी धनी होकर भी बउआने कभी अपनी भक्ति-भावनाका विज्ञापन अथवा प्रदर्शन नहीं किया। एक सरल सती हिन्दू-नारीके समान उसने जीवनको व्यतीत किया। इतनी भक्तिमती होकर भी बउआकी रहनी अत्यन्त साधारण थी। उसकी इस प्रच्छन्न महानताको देखकर मस्तक बरबस झुक जाता है।

पूज्य बउआके भावपूर्ण वृत्तको पढ़कर परम पूज्य पण्डितजी महाराजने जो उद्गार व्यक्त किये, वे इस प्रकार हैं।

जिन देवीजीकौ महाप्रयाण आपने लिखौ, अध्यात्मपथकी ये आदर्शिका बन गयीं।
श्रीसद्गुरुकी प्राप्ति।
श्रीप्राणनाथके प्रेम प्राप्त्यर्थ साधन।
श्रीरामायणजीके १०८ पाठ।
श्रीमद्भागवतजीकौ सप्ताह पाठ।
तब शनैः-शनैः हृदयमें प्रेमांकुर।
तब हृदयोद्गार।
तब श्रीप्रियतमके दर्शन।
अन्त समयमें प्रेमदात्री श्रीगीतावाटिकामें निवास।
महाप्रयाणके सुअवसरपर संतकौ सांनिध्य।

आप जहाँ आय गये हौ अनेकन आश्चर्यमयी घटनाएँ आपकूं देखबे कूं मिलैंगी कोटिक जन्मन के सुकृत जब उदय होय हैं तब ऐसौ सुअवसर प्राप्त होय है ***'संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही॥'*** ***'संत संगति संसृति कर अंता।'***

बहिन श्रीमुन्नी

बहिन श्रीमुन्नीका नाम श्रीसन्तोष माथुर था। इनका जन्म इलाहाबादमें हुआ था। पिता श्रीमाथुरसाहब महान् चित्रकार थे। कलाकृति उनके रग-रगमें समायी हुई थी। बहिन मुन्नीका बाल्यकाल इलाहाबादमें ही व्यतीत हुआ। उसने हिन्दीसे एम०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। फिर वह शोधकार्यमें संलग्न हो गयी। यह कार्य पूर्ण नहीं हो पाया। इनके पूरे परिवारका श्रीनारायणस्वामीजी महाराजसे निकट-सम्पर्क और उनका इनके परिवारपर पूर्ण अनुग्रह था।

मुन्नी बहिन इलाहाबादका परित्याग करके गोरखपुरकी गीतावाटिका कब चली आयी, इस बारेमें प्रामाणिक रूपसे बतला सकना मेरे लिये सम्भव नहीं है। बहिन मुन्नी-सम्बन्धित अनेक बातोंकी जानकारी प्राप्त करनेकी मैंने भरपूर चेष्टा की; किन्तु खेदके साथ कहना पड़ता है कि उनकी नित्य सहेली और साथ-साथ रहनेवाली बहिन कमलसे कोई सहयोग नहीं मिला। इस असहयोगकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था। एक बार कुछ लिख करके उन्हें दिखलाया तो उन्होंने कहा—यह ठीक विवरण नहीं है।

उनके इस उत्तरसे मुझे बड़ी खिन्नता हुई। मैंने उनसे कहा—तुम लिख दो अथवा किसीसे कुछ सांकेतिक बातें लिखवा दो या स्वयं बोलकर बतला दो।

मेरा यह अनुरोध भी फलदायी नहीं हुआ। बहिन मुन्नीके परिवारके कुछ सदस्य गीतावाटिकाके पार्श्वमें रहते हैं। मैंने उनसे भी अनुरोध किया, किन्तु कोई परिणाम नहीं निकला। अब मैं अपनी धूमिल स्मृतिके आधारपर लिख रहा हूँ। जिन बहिन मुन्नीने अपने जीवनका एक-एक रक्त पूज्य बाबाकी सेवामें लगा दिया, उसका वृत्त पुस्तकमें किसी-न-किसी रूपमें अवश्य प्रकाशित होना चाहिये। मेरे विवरणमें पूर्ण जानकारीके आधारपर कोई भूल रह गयी हो तो सभीसे क्षमा-प्रार्थी हूँ।

पूज्य बाबा जब भगवान् श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा करने आते थे, तब उनके आनेके पूर्व श्रीगिरिराजजीकी तथा परिक्रमा-पथकी फूलोंसे शृंगार किया जाता था। बहिन मुन्नी कलाकार पिताकी सुपुत्री थी। कला-कृति उसे विरासतमें मिली थी। बहिन मुन्नीके नेतृत्वमें अनेक बहिनें मिलकर परिक्रमा-पथ शृंगार किया करती थीं। परिक्रमा-पथ पुष्पोंसे आच्छादित रहता था। परिक्रमा-पथकी

शोभा सीमातीत रहा करती थी। कई पत्रकार शृंगार परिक्रमा-पथकी फोटो लिया करते थे। परिक्रमा-पथके शृंगारको देखकर ऐसा लगता था, मानो श्रद्धापूरित बहिनोंका सुन्दर मन ही सुमन (अर्थात् पुष्प)-के रूपमें व्यक्त होकर श्रीगिरिराज भगवान्की शोभा बढ़ा रहा करता है।

जब पूज्य बाबा श्रीगिरिराज भगवान्की परिक्रमा किया करते थे, उस समय आरम्भके पद-गायन एवं पूर्णताके अवसर *'कृष्ण गोविन्द, गोविन्द गोपाल'* का संकीर्तन हुआ करता था। जब वाटिकामें कोई उत्सव हो, तब रास-मण्डलीमें आये हुए कीर्तनिया लोग जैसे पूज्य श्रीश्रीरामजी, पूज्य श्रीफतेहकृष्णजी, पूज्य हरिवल्लभजी या अन्य कीर्तन-प्रेमीजन कीर्तन कराया करते थे। जब ये महान् गायक लोग नहीं रहा करते थे, तब परम सम्मान्य श्रीहेमचन्दजी जोशी कीर्तन करवाया करते थे। कभी-कभी ऐसा अवसर आया है कि कीर्तन करवानेके लिये कोई भी नहीं है। उस समय बहिन कमल और बहिन मुन्नी कीर्तन करवाया करती थी। भगवान्ने दोनों बहिनोंको अति मधुर कण्ठ-लालित्य प्रदान कर रखा है।

एक बारका प्रसंग विशेष रूपसे याद है। बहिन कमल और मुन्नीको परिक्रमाके समय पद गायन करना था। उन्होंने 'मधुराष्टक' का गायन किया। इस गायनने जादूका कार्य किया। पूज्य बाबा पदकी भाव-गरिमा एवं स्वर-लालित्यसे इतने अधिक प्रभावित हो गये कि परिक्रमा-पथपर उनके चलनेकी गतिमें मन्दता आ गयी।

एक अन्य दिवसका प्रसंग है। परिक्रमाके समय पूज्य बाबाने कहा—वह कविता सुनाओ, जिसका आरम्भ *'चलौ री आज·······'* से होता है।

दोनों बहिनोंने कहा—बाबा! वह पद हमें याद नहीं है।

संयोगसे यह पद मुझे याद था। बहिनोंको यह पद याद तो था, किन्तु कवित्तकी पंक्तिके प्रथम शब्द स्मृतिमें उभर नहीं रहे थे। मैंने संकेतमें बतलाना आरम्भ कर दिया और फिर दोनों बहिनोंने वह कवित्त बड़े ललित स्वरमें सुनाया। यह कवित्त इस प्रकार है—

चलौ री, आज ब्रजराज मुख निरखिये
लोक की लाज से महा काज सरैगो।
बहुरि कोउ कहैगो स्याम के ढिंग गई
याहु ते अधिक कोउ और कहा कहैगो॥

नाचिबे लगी तो फेर घूँघट कहा
सूर रन चढ़े पै कौन ते डरैगो।
निरखिये रूप नारायण हरी स्याम को
बहुरि ऐसो सखी दाँव कब परैगो॥

पूज्य बाबाको यह पद इतना प्रिय था कि उन्होंने अपनी पुस्तकका नाम रखा है *'चलौ री, आज ब्रजराज मुख निरखिये।'*

बम्बईकी परमादरणीया बहिन सावित्री बाई सेकसरिया पूज्य बाबूजीके भोजनके लिये कभी कुछ और कभी कुछ बनाती रहती थी। बहिन सावित्री बाई गीतावाटिकाके सामने नयी कोठीमें रहा करती थी। जब वे बम्बईसे आती थीं, तब कोठीके ऊपरी तल्लेमें दो कमरे उनके लिये सदा स्थायी रूपसे निश्चित रहा करते थे। बहिन कमल और बहिन मुन्नीका भी पर्याप्त दिवसोंतक नयी कोठीके ऊपरी तल्लेमें निवास रहा है। जब बहिन सावित्री बाई पूज्य बाबूजीके लिये कुछ बनाया करती थी, तब बहिन मुन्नी उनको कभी-कभी सहयोग दिया करती थी।

सन् १९७६ के अप्रैल मासमें मैं वृन्दावन और गोवर्धन यात्राके लिये जानेवाला था। मुझे गोवर्धन जाकर पूज्य पण्डितजीको प्रणाम करना ही था। जब जानेकी बातकी जानकारी बहिन मुन्नीको मिली उसने पूज्य पण्डितजीके लिये मिठायी बनायी। बनायी अत्यधिक शुद्धतापूर्वक तथा गंगाजलका प्रयोग करके। मिष्ठान्नका वह स्टील डब्बा मेरे साथ था।

वृन्दावनसे मैं गोवर्धनके लिये रवाना हुआ साथमें भाई नारायणदास स्वामी तथा वेणु विनोद कुञ्जके श्रीबनवारी लालजी थे। बस में बैठे परस्परमें बात चल पड़ी। मैंने बतलाया—बहिन मुन्नीने पूज्य पण्डितजीके लिये मिष्ठान्न भेट स्वरूप दिया है।

भाई श्रीनारायणजीने पूछा—उस मिष्ठान्नमें कौन चीनी पड़ी है।

मैंने कहा—बहिन कमल, मुन्नी मिलकी चीनी काममें लेती है, वही उसी मिलकी चीनी प्रयोग हुआ है।

तब श्रीनारायणजी तथा बनवारी शरण, दोनों एक साथ बोल बड़े—पण्डित मिलकी चीनीका प्रयोग नहीं करते।

इतना सुनना था कि मैं हताश हो गया। मन-ही-मन सोचा—मैं तो भेंट

स्वरूप प्रदानकर दूँगा। फिर पण्डितजी भक्तोंके मध्य वितरण कर देंगे, किन्तु मनमें विषाद अवश्य था कि जिस उद्देश्यसे यह मिष्ठान्न भेजा गया है, वह उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सका। हम सभी गोवर्धन पहुँचे। अपराह्नके समय पूज्य पण्डितजीको प्रणाम करनेका अवसर मिला। थोड़ी देर बाद मैंने पूज्य पण्डितजीसे निवेदन किया—बहिन मुन्नी पूज्य बाबाकी सेवामें संलग्न रहती है। उसीने यह मिष्ठान्न बड़ी पवित्रताके साथ बना करके आपके लिये भेजा है और इसके बनानेमें गंगाजलका प्रयोग हुआ है।

मैं यह सब बतला ही रहा था कि उसी समय पण्डितजीने मिष्ठान्नका एक अंश उठाया और अपने मुखमें डाल लिया। ज्यों ही उन्होंने आरोगा, उसी समय मैं बोल बड़ा—इसमें मिलकी चीनीका प्रयोग हुआ है।

इस समय पूज्य पण्डितजीने जो दो-चार शब्द कहे वे तो स्मरण नहीं, किन्तु उनके कथनका आशय यह था कि एक सच्चे श्रद्धालु भक्तकी श्रद्धाका सम्मान आवश्यक है। मैं मन-ही-मन बहिन मुन्नीके श्रद्धा-भावनाको वन्दन कर रहा था, जिसका सम्मान करनेके लिये पूज्य पण्डितजी अपने अंगीकृत नियमको एक बार किनारे रख दिया। गोवर्धनसे गीतावाटिका आनेपर मैंने यह वृत्त बहिन मुन्नी आदिको सुनाया। जब उन्होंने यह सुना उनकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी।

पूज्य पण्डितजीने अपने नियमको भंग कर दिया तो वे गद्गद् हो उठीं, उनका जी भर आया। संत सचमुच प्यारकी एक विचित्र प्रतिभा होता है। उन बहिनोंको इस बातका खेद है कि आपने अपना नियम भंग कर दिया, पर साथ ही आपके प्यारसे उनके तन-मनका अणु-अणु संसिक्त भी हो रहा था।

सन् १९७८ में मैंने अपनी कुमारी-पूजन प्रक्रियाकी पूर्णिता की थी। पूजा करते-करते तेरह वर्ष हो चुके थे। पूज्य बाबाने कहा था—भगवतीको आरोगनेके लिये नैवेद्य वे ही माताएँ-बहिनें बनायेंगी, जिनको मैं बतलाऊँगा। नव दुर्गाकी भावनासे नौ बहिनें-माताओंको नैवेद्य बनाना था। इन दो बहिन कमल और मुन्नी भी थीं। आठ सुनिश्चित हो चुकी थीं नौवाँ नाम उभर नहीं रहा था। आसपासकी किसी बहिनका मैं नाम बतलाता तो कुछ देर सोचकर बाबा उसके नामके लिये ना कह देते थे। मैंने अपनी समस्या बहिन मुन्नीके सामने रखी। उसकी बुद्धि कुशाग्र है। उसने मुझसे कहा—आप प्रयागवाली मैयाका नाम बताइये। प्रयागवाली

मैया अस्वस्थ थीं। वे केवल एक बार एक आलू छील दें। उनका हाथ लग जायेगा और इस प्रकार नौ की संख्या पूरी हो जायेगी।

मैंने बहिन मुन्नीके कथनका आदर किया। बाबाने प्रयागवाली मैयाका नाम स्वीकार कर लिया। इस प्रकार नौ की संख्या पूर्ण हो गयी। इस बार भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीकी भावनासे जो कुमारी-पूजन हुआ, उसमें अनेक चमत्कार घटित हुए। उनका वर्णन सम्भव नहीं है।

दिव्य भावस्वरूपा बहिन श्रीरुक्मिणी बाई भागलपुरसे गोरखपुर पूज्य बाबूजी और पूज्य बाबाके पास सन् १९८८ में आयी थीं और गीतावाटिकाकी अतिथिशालामें ठहरी। बाईके साथ श्रीचन्दाबाई, श्रीनर्मदी बाई, शशी और भागलपुरवाली कमल बाई भी थी। सभीका ध्यान बाईके स्वास्थ्यपर और इसीके साथ उनकी भावमयताके चढ़ाव-उतारपर बना रहता था। एक दिन प्रात:काल छ: बजे बाईके पेटमें भयंकर पीड़ा हुई। भाभीजीने अनुमान लगा लिया कि यह भयंकर पीड़ा उस ट्यूमरके कारण है। बात भी यही थी। समय-समयपर ट्यूमरके कारण बाईको ऐसी पीड़ा होती थी कि मानो कालका बुलावा आ गया हो। पीड़ा देखकर भाभीजी, नर्मदी बाई तथा अन्य बहिनें बहुत घबरा गयीं। भाभीजीने कमलजी और मुन्नीजीको बुलानेके लिये शशीको भेज दिया। कमलजी और मुन्नीजी तो बाईकी परम अन्तरंगा सहेली रही हैं। बाई उनके साथ बैठकर घण्टों-घण्टों बात किया करती थीं और श्रीप्रिया-प्रियतमके लीला-राज्यकी अनोखी-से-अनोखी लीलाएँ सुनाया करती थीं। भावकी दृष्टिसे बहिन कमलजीको बाई भी अपनी बहिन मानती थीं और सदैव आन्तरिक सम्मान दिया करती थीं।

कमलजी और मुन्नीजीका भी बाईके प्रति गहरा लगाव था। शशीके साथ बहिन कमल और मुन्नी तुरन्त बाईके पास आयीं। बाईकी पीड़ा देखकर वे भी चिन्ताकुल हो गयी। *'हारेको हरिनाम'*। कमल जी और मुन्नीजी राधा-नामका संकीर्तन करने लगीं। संकीर्तनमें समीपस्थ सभी बहिनें सहयोग दे रही थीं। तभी अचानक बाई बिलकुल निश्चेष्ट हो गयीं। भाभीजीने तथा नर्मदी बाईने यह अनुमान लगा लिया कि बाई बेहोश हो गयी हैं और पीड़ाकी असहनीय दशामें बेहोशी हुई है। बेहोशीमें जब एक घण्टा बीत गया, तब भाभीजी दौड़कर बाबाके पास गयीं और बाईकी बेहोशीकी सूचना दीं। सुन करके भी बाबा

शान्त बैठे रहे। भाभीजीकी बाईके प्रति जो ममता थी, उसके कारण मनमें भाभीजीने ऐसा ही मान लिया कि चुपचाप बैठे हुए बाबा भीतर-भीतर कुछ कर रहे होंगे। बाई उनकी बहिन हैं और बाबा उसके भाई हैं। बहिनके लिये भाई और भाईके लिये बहिन चुपचाप न जाने कितनी बार क्या-क्या करते रहते हैं, जिसको हमलोग कभी जान ही नहीं पाते। बाबाके मौनका रहस्य बाबा ही जानें। सूचना देना मेरा कार्य था, वह मैंने कर दिया। थोड़ी देर बाद भाभीजी बाबाके पाससे चली आयीं।

भाभीजी फिर बाईके पास आयीं, पर बाई तो उसी प्रकार निस्पन्द लेटी हुई थीं। जीवनका यही लक्षण शेष था कि श्वास चल रहा है। कमलजी और मुन्नीजीके लिये भी लगातार बैठे रहना सम्भव नहीं था। वे भी अपने कमरेमें कभी चली जातीं और कभी वहाँसे बाईके पास चली आती थीं। वे भी बड़ी चिन्तित थीं, परन्तु कोई उपाय नहीं था। बस, राधानाम-संकीर्तन और श्रीराधा-कृपा-कटाक्ष-स्तोत्र, श्रीरामरक्षास्तोत्र तथा गजेन्द्र मोक्षका पाठ हो रहा था। ज्यों-ज्यों समय बीत रहा था, चिन्ताकी स्थिति गहरा रही थी। प्रत्येक क्षण प्रतीक्षामें बीत रहा था कि बाई कब उठेंगी। सुबह छ: बजे बाई बेहोश हुई थीं और अब शामके छ: बज गये थे। यह तो बड़ी ही दर्दभरी भयप्रद स्थिति थी। यदि स्वस्थ-दशामें निस्पन्दता आयी होती तो यह मान लिया जाता कि बाई अपने भावोदधिमें निमग्न हैं, परन्तु निस्पन्दताके रूपमें यह बेहोशी भयंकर उदरशूलका परिणाम थी और इतनी देर बेहोश रहना तो लगता है मानो खतरेकी कोई घण्टी हो। अब तो रातके नौ बजने लगे। चिन्ताने डरावना रूप धारण कर लिया। रातके नौ बजे पूज्य श्रीबाबाकी भिक्षाका कार्य पूरा हुआ और तभी कमलजी और मुन्नीजीमें एक अनोखी तरंग उठी। वे ढोलक और झाँझ लेकर बाईके पास आ गयीं और रासके पद नाच-नाच करके गाते हुए सुनाने लगीं। नर्तन-गायनका क्रम दस बजेतक चला होगा कि बाई अचानक उठ बैठीं। उठकर बाईने बिस्तरकी चादर अपने हाथमें ले ली और फिर जमीनपर रखकर उसीपर बैठ गयीं। बैठते समय बाईके मुखमण्डलपर ऐसी प्रसन्नता छायी हुई थी, जिसको शब्दोंमें व्यक्त कर पाना कठिन है। बाईकी मुखाकृतिपर अथवा शरीरके किसी भी अंगपर भुक्त कष्टके किसी भी लक्षणका आभास नहीं मिल रहा था। उनकी प्रसन्न मुख-मुद्रा और तरंगायमान चेष्टाओंको देखकर ऐसा लगता था, मानो बाई

स्नानोपरान्त पूजा करके और भोजन करके अति तृप्तावस्थामें बात कर रही हैं। बाईकी इस प्रसन्नतापूर्ण स्थितिको देखकर सभीको परमाश्चर्य हो रहा था। गत पन्द्रह घण्टोंमें बाईके मुखमें आहारकी कौन कहे, जलकी एक बूँद भी नहीं गयी थी। पन्द्रह घण्टे निस्पन्द लेटे रहनेपर किसी भी मानवके शरीरमें अकड़न आ ही जाती है किन्तु ऐसा कुछ भी चिह्न बाईके शरीरपर दिखलायी नहीं दे रहा था। मातृहृदया नर्मदी बाईने उनको कुछ खिला-पिला देना चाहा, तब बाईने मुसकुराते हुए उत्तर दिया—माँ! मैं आपको भूखी लग रही हूँ क्या?

फिर कमलजी और मुन्नीजीकी ओर उन्मुख होकर बाई कहने लगीं—मुझे रञ्चमात्र प्यास नहीं है, भूख नहीं है। मेरा पेट भरा हुआ है। मैं तो उस राज्यमें उन्मुक्त विहार कर रही थी। वहाँ विहार करनेवालीको श्रीप्रिया-प्रियतम भूखे और प्यासे रखेंगे क्या? वहाँका उल्लास ही तो मेरे ऊपर छाया हुआ है। वही आपलोग देख रही हैं। वहाँके उल्लास और आनन्दकी सीमा नहीं।

फिर बाईने वहाँके लीला-विहारका वर्णन आरम्भ कर दिया। बाई मुसकुरा-मुसकुरा कर, विलक्षण भंगिमाएँ दिखा-दिखाकर श्रीप्रिया-प्रियतमके विहारकी बातें बतला रही थीं और इस वर्णनमें तीन घण्टे कब निकल गये, किसीको भी पता ही नहीं चला। अब रात्रिके एक बज रहे थे। बहुत आग्रह करनेपर बाई उठ सकीं। बाईकी यह लोकोत्तर स्थिति देखकर आश्चर्यमें डूबी हुई सभी अपने सौभाग्यकी सराहना कर रही थीं।

सन् १९९५ में अखण्ड हरिनाम-संकीर्तनके लिये गीतावाटिकामें नवीन पक्के भवनका निर्माण होनेवाला था। इसमें समय-समयपर बहिन मुन्नीने बड़े उपयोगी सुझाव दिया। मैं उसके सुझावको बहुत आदर दिया करता था तथा तदनुसार करनेका प्रयास करता था। मुझे ३० दिसम्बर १९९५ के दिन पण्डालके टिन-शेडसे नवनिर्मित भवनमें अखण्ड-भगवन्नाम-संकीर्तनकी पधरावनी करवा देनी थी। इस दिनांकसे कम-से-कम पन्द्रह-बीस दिन पहलेतक भवन-निर्माणका कार्य पूर्ण हो जाना आवश्यक था। मैं तत्परतापूर्वक कार्यमें लगा हुआ था। एक दिन बहिन मुन्नी आयी और उसने कोई नवीन सुझाव दिया। विवशताकी स्थितिमें झिड़क करके मुझे कहना पड़ा—क्या सदा तोड़-फोड़-मरोड़में ही लगा रहूँगा? तोड़ो, फिर बनाओ, इससे क्या काम पूर्ण हो पायेगा? अब तुम अपना सुझाव अपने पास रखो और मुझे अपना काम करने दो।

मेरे उत्तरसे उसको बुरा अवश्य अनुभव हुआ होगा, परन्तु परिस्थितिवशात् मुझे वैसा उत्तर देना पड़ा। कार्यकी सम्पन्नताका भूत मेरे सिरपर सवार था।

परम सम्मान्या श्रीसावित्री बाई फोगलाके ज्येष्ठ सुपुत्रका नाम है प्रिय श्रीसूर्यकान्त और ज्येष्ठ पुत्रबहूका बाई मञ्जुला है। बाई मञ्जुलाका २० जून १९९२ को निधन हो गया। अब श्रीसूर्यकान्तने वैचारिक दृष्टिसे अनोखी उड़ान ली। वह मन-ही-मन हवाई महल बनाने लगा। उसने मनमें सोचा कि गीतावाटिकाके समीप एक जमीन खरीदी जायगी और वहीं पर दिवंगता मञ्जुलाकी चिता प्रज्वलित हो, जैसे गीतावाटिकामें पूज्य बाबूजीकी चिता सन् १९७१ में जली थी, उसीके अनुकरणमें उस 'नव श्मशान' भूमिपर पत्नीका दाह-संस्कार किया जाय तथा उस भूमिपर 'नव गीतावाटिका' की स्थापना की जाय। अपने चिन्तनके अनुसार श्रीसूर्यकान्त खोज करने लगे, पर गीतावाटिकाके समीप नहीं, अपितु पर्याप्त दूरीपर एक भूमि मिल गयी, जो गीतावाटिकाका २५० फीटकी परिधिसे काफी परे था। श्रीसूर्यकान्तने उसी भूमिपर दाह-संस्कारका मन बना लिया और यह भी मन बना लिया कि उस 'नव श्मशान'-भूमिपर दाह-संस्कारके लिये पूज्य बाबा भी चलें। पूज्य बाबा गीतावाटिकाकी २५० फीटकी परिधिके बाहर नहीं जाते थे। इस परिधिके बाहर न जाना पड़े, ऐसा पूज्य बाबाका नियम था। इस नियमकी जानकारी होनेके बाद भी श्रीसूर्यकान्तने मन बना लिया, अपितु निश्चय कर लिया कि वहाँपर पूज्य बाबाको ले ही जाना है।

बाई मञ्जुलाका शव पूज्य बाबूजीकी समाधिके पास बिल्ववृक्षके नीचे भूमिपर था। उस समय लगभग साठ-सत्तर लोगोंकी भीड़ थी। सभी शव-यात्रामें भाग लेनेवाले थे। उसी समय श्रीसूर्यकान्तने सभीको अपनी सारी बात बतलायी। यह एक नवीन बात थी और थी कल्पनासे अति अतीत बात। सभी चौंक पड़े। सभी मन-ही-मन सोचने लगे—यह क्या होने जा रहा है? क्या पूज्य बाबाको वहाँ पर ले जाया जायेगा? इससे क्या पूज्य बाबाके नियमोंकी उपेक्षा नहीं हो रही है? बाबाके नियमोंको एक किनारे रख करके मनमानी करना क्या बाबाके महान् गौरवपूर्ण व्यक्तित्वकी उपेक्षा नहीं है?

लगभग इसी प्रकारका चिन्तन सभीके मनमें था। सभीके मनमें एक जिज्ञासा थी, एक कौतूहल था और तीव्र चाह थी कि सद्यः भविष्यमें क्या होनेवाला है। परम सम्मान्य श्रीजीजाजी (श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगला) श्रीसूर्यकान्तके

चिन्तनके सर्वथा विरोधमें थे। गीतावाटिकाके प्रधान कार्यकर्ता श्रीजगदीशप्रसादजी शर्मा प्रबल विरोधी थे। एक प्रकारसे गीतावाटिकाका कोई भी सदस्य और पूज्य बाबाके निकटजन, कोई भी श्रीसूर्यकान्तकी भावना और योजनाका समर्थक नहीं, अपितु विरोधी ही था। श्रीसूर्यकान्तकी बात सुनकर बहिन कमल और मुन्नी अत्यन्त व्यथित हुईं। उन दोनों बहिनोंने मुझको बुलाया। उनका मुझपर अत्यधिक विश्वास और स्नेह था। इन सारी बातोंका उल्लेख करके बहिन कमलसे प्रेरित होकर बहिन मुन्नी मुझसे यह कहने लगी—भइया! यह तो बड़ा अनुचित हो रहा है। यह तो अति बुरा है। आपके व्यक्तित्वके प्रति सभीका आदर-भाव है तथा लोग आपकी बात मान सकते हैं। आप इसका खुलकर विरोध कीजिये। आपके विरोध करनेसे बिगड़ती बात बन सकती है।

बहिन मुन्नीने मुझको भरपूर उकसाया और मैंने विरोध करनेके लिये अपनी कमर कस ली।

मैं बिल्ववृक्षके पास आया। वहाँ भीड़ तो थी ही, श्रीसूर्यकान्त भी था। उसको सम्बोधित करते हुए मैंने ललकारते हुए मैंने कहा—बाबा! गीतावाटिकाके बाहर नहीं जायेंगे।

ऊँची आवाजमें मेरी ललकार सुनकर सभी चौंक उठे। सभीकी नजरें मेरी ओर गड़ गयीं। सूर्यकान्तने भी ललकारते हुए उलटा प्रश्न किया—आप कौन होते हैं हमारे बीचमें बोलनेवाले?

मैं किसी प्रकार दबा नहीं। दबनेका सवाल भी नहीं था। मैंने भी उससे भी ऊँचे स्वरमें कहा—मैं भी पूज्य बाबाका एक निजजन हूँ और उसीके अधिकारपर बोल रहा हूँ।

अब आगेका प्रसंग मैं यहाँपर विस्तारसे लिखना नहीं चाह रहा हूँ। मुझे आशा थी कि बहिन कमल और बहिन मुन्नी मेरा साथ देंगी, परन्तु परिस्थितिकी भीषणताको वे देखकर संकुचित हो गयीं। बहिन मुन्नीने और कमलने अपने कदम पीछे हटा लिये, पर मेरा कदम तो बढ़ चुका था। मैं अपना कदम वापस करना जानता ही नहीं था। इसके बाद श्रीसूर्यकान्तके प्रबल आग्रहको लाचारीवशात् मानकर पूज्या माँ तथा परम सम्मान्या बाईने पूज्य बाबाको जानेके लिये कह दिया। पूज्या माँके कथनको आदेश मानकर पूज्य बाबाको जाना पड़ा। मैंने जो ललकार लगायी थी, इसके फलस्वरूप बादमें जिस कठिन

परिस्थितिमेंसे मुझे उस समय गुजरना पड़ा तथा भविष्यमें जो कटु परिणाम मुझे भुगतना पड़ा, उसकी कथाको कहनेसे कोई लाभ नहीं। अन्तमें एक तथ्यका निवेदन कर रहा हूँ। श्रीसूर्यकान्तजीने कल्पना करके जो हवाई महलवाली योजना बनायी थी, वह ढह गयी। हवाई महलका शिखर धराशायी हो गया। उस महलके खण्डहरकी तो बात ही क्या, टुकड़े-टुकड़ेको अपितु एक-एक-कणका कालका प्रबल प्रहार उड़ा ले गया। उस जमीनपर भी श्रीसूर्यकान्तजीका आधिपत्य नहीं रहा। कुछ लोगोंके लिये इस कल्पित हवाई महलकी बात पारस्परिक विनोदका विषय बन गया।

अब यह स्मरण नहीं है कि आगामी प्रसंग पूज्य बाबाके जीवन-कालका है अथवा उनके अन्तर्हित हो जानेके बादका है। मैं पूज्य बाबाके नेह-निकुञ्जके पूर्व-दक्षिण दिशा एक लघु उपवन है। पूज्य बाबाकी मानसी-भावनाके अनुसार यह 'राधा-कृष्ण-कुण्ड' परिसर है और इसकी अष्ट दिशाओंमें अष्ट सखियोंके आठ कुञ्ज है। पूज्य बाबाकी भावनाके अनुसार उत्तर दिशामें श्रीललिता कुञ्ज, ईशान (उत्तर-पूर्व) दिशामें श्रीविशाखा कुञ्ज, पूर्व दिशामें श्रीचित्रा कुञ्ज, आग्नेय (पूर्व-दक्षिण) दिशामें श्रीइन्दुलेखा कुञ्ज, दक्षिण दिशामें श्रीचम्पकलता कुञ्ज, नैऋत्य (दक्षिण-पश्चिम) दिशामें श्रीरंगदेवी कुञ्ज, पश्चिम दिशामें श्रीतुंगविद्या कुञ्ज और वायव्य (पश्चिम-उत्तर) दिशामें श्रीसुदेवी कुञ्ज प्रतिष्ठित है। इस भावनाके अनुसार पेण्टसे लिखवा करके अति छोटे बोर्ड मैंने लगवा दिये। जब नाम-लिखित सांकेतिक पटोंको बहिन मुन्नीने देखा तो उसने मुझसे कहा—आपने नामकरण गलत किया है। श्रीललिता कुञ्ज उत्तर-दिशामें नहीं, बल्कि वायव्य (पश्चिम-उत्तर) दिशामें होता है।

मैंने तुरन्त कहा—मेरे द्वारा जो हुआ है, वह सही है। जो हुआ है, उसमें भूल नहीं है।

बहिन मुन्नी मेरी बातसे सहमत नहीं थी। उसका बार-बार यही कहना था कि बातचीतके मध्य पूज्य बाबा जो बतलाया है, वहीं मैं कह रही हूँ।

जब मैंने बहिन मुन्नीकी बात नहीं मानी तो वह परमादरणीय श्रीठाकुरजी (श्रीघनश्यामदासजी शर्मा) के पास गयी। उस समय श्रीठाकुरजी गीतावाटिका आये हुए थे। श्रीठाकुरजीने तुरन्त मुझको बुलाया और लगे कहने—गलत काम क्यों कर रहे हो? मुन्नीकी बात क्यों नहीं मान रहे हो?

मैंने विनम्र स्वरसे कहा—बहिन मुन्नी पूज्य बाबाके कथनको बार-बार कह

रही है। वह उस समयकी बात कह रही है जब पूज्य बाबाने किन्ही विचित्र और अनचाही परिस्थितियोंसे आत्म-संरक्षणके लिये पागलपनका स्वांग अंगीकार कर लिया था। (स्वांगका यह अभिनयम पूज्य बाबाने स्वीकार किया था अपने जीवनके अन्तिम कुछ मासोंमें।) बहिन कह रही है पूज्य बाबाकी कही हुई बात। यदि मैं पूज्य बाबाके द्वारा अपने हाथसे बनाया हुआ नक्शा दिखला दूँ, तब तो आप मेरी क्रियाको सही मानेंगे या नहीं?

श्रीठाकुरजीने कहाँ—अब संदेहके लिये स्थान नहीं रहा।

फिर श्रीठाकुरजीने सारा बात बहिन कमलजी और मुन्नीको बतलायी। अन्तमें सभीने, जो हुआ, उसको सही मान लिया। एक व्यर्थका विवाद क्रमशः समाप्त हो गया।

दिव्यभावस्वरूपा पूज्या श्रीरुक्मिणी बाईने इस मर्त्यलोकसे २ मई १९९५, को विदाई ली थी। इस समाचारसे बहिन मुन्नीका अन्तर अत्यधिक शोकाकुल हो उठा। तब उसने एक भावभरा पत्र बहिन मीरा भगतके पास भागलपुर भेजा था। वह इस प्रकार है—

पूज्य बाबाने अपने मौन-व्रतकी घोषणा कर दी थी कि ६ अप्रैल, १९६८ के दिन वे सदा-सदाके लिये इस प्रपञ्च राज्यसे मुँह मोड़कर रस-सागरके अतल-तलमें निमज्जनके हेतु प्रस्थान करेंगे। गीतावाटिकामें भारतके विभिन्न प्रान्तोंसे बाबाके प्रिय भक्तोंकी भीड़ उमड़ पड़ी उनके दर्शन की, उनसे मिलकर अपने हृदयकी बात कहनेकी लालसाको लेकर। इन्हीं भक्तोंकी भीड़में भागलपुरसे श्रीमहिला-संघकी कई बहिनें पधारी थीं। उन्हींमें हमारी प्यारी रुक्मिणीजी भी घनी मेघमालामें छिपी सौदामिनी-सी आयी थीं। मैं भी सौभाग्यसे पूज्य बाबाके पास ही उन दिनों थी। यद्यपि श्रीरुक्मिणीजीको श्रीमहिला-संघकी बहिने अत्यन्त गोपन रखती थीं, पर क्या वारिधिकी यह क्षमता है कि वह विद्युत्‌को छिपा ले? श्रीमहिला-संघकी दसियों बहिनोंकी झुण्डमें वे निराली-सी चमक जाती थीं। मेरी दृष्टि जब प्रथम बार उनकी ओर उठी तो लौह चुम्बककी भाँति मैं उन्हें निहारती रही। पूज्य बाबाके निकट श्रीगिरिराज-परिसरमें बैठे रहनेपर समयका भान ही नहीं रहता था। दृष्टि उन्हींपर केन्द्रित, कान उन्हींकी वाणीसे स्पन्दित और मन उन्हींमें जाकर स्थिर हो जाता था। न जाने कितने दिन, कितनी रातें बीत गयी पर कुछ पता ही न चला। सहसा एक दिन मेरे पार्श्वमें उस उज्ज्वलवसना देवीने

झुककर एक उज्ज्वल वस्त्र श्रीगिरिराजजीकी रेणुमें बिछाया और झुककर प्रणाम करने लगी। पूज्य बाबाकी दृष्टि किसी अन्यसे बात करते-करते भी उसी देवीकी ओर लग गयी। कुछ क्षणोंतक वे प्रणाम ही करती रह गयी। फिर जब स्वस्थ होकर बैठी तो पूज्य बाबाने उसकी ओर देखा भी नहीं, वे अपनी बातमें पूर्ववत् संलग्न रहे। अपने पार्श्वमें अपरिचित; किन्तु अत्यन्त अपनी वस्तुको देखकर मैं रह-रहकर उन्हींको देखने लगी। एक किशोरी बाला, गौरवर्णा, अपने उज्ज्वल बिना किनारेकी उज्ज्वल साड़ीसे माथेतक सिरको ढके, अधरोंपर अनोखी मन्दस्मित लिये, नेत्रोंको नीचे किये, मौन आकर बैठ गयी। न पूज्य बाबाकी ओर देखती, न किसीकी ओर देखती। उसके दिव्यरूपसे दिव्य किरणोंका प्रसार हो रहा था। उसके ब्रजरसमें डूबे तन-मनसे प्रेमकी दिव्य निर्झरणी प्रवाहित हो रही थी। वे कुछ देर प्रस्तर प्रतिमा-सी बैठी रही, पर देखते-ही-देखते उसके उन्मीलित नेत्र अर्धोन्मिलित हो चले। अधरोंमें स्पन्दन-सा होने लगा। मेरे हृदयमें कुछ गुदगुदी-सी होने लगी। आज मुझे बाबा यह क्या वस्तु दिखा रहे हैं। वे सहसा उठी और चल पड़ी बिना किसी ओर देखे-ताके। साथमें नर्मदी बाई (जिन्हें रुक्मिणीजी अपनी माँ सम्बोधित करती थीं वह) भी उठ खड़ी हुई। उन्होंने मुझे संकेत किया कि बाईके संग जाओ; क्योंकि अभी कदाचित् पूज्य बाबाके पास बैठना चाहती थीं। आगे-आगे वे ब्रजबाला और पीछेसे उनका अनुगमन करती मैं। गीतावाटिकाका सिंहद्वार पार करके वे अपने निवास नयी कोठीमें न जाकर शहरकी ओर मुड़ने लगी। तब मैं बोली, "आप कहाँ जा रही हैं?" वे अत्यन्त भावमयी, कोमल, सुमधुर वाणीमें बोलीं, "हम तो श्रीयमुनाजी पर अपने प्रियतमसे मिलने जा रही हैं।" मैं रोमांचित हो गयी और उनकी स्थितिको जबतक समझूँ, तबतक पीछेसे नर्मदीबाईने आकर उनका हाथ पकड़ लिया। वे नयी कोठी चलनेकी हठ करने लगीं और वे श्रीयमुनाजीपर प्रियतमसे मिलनेकी। अन्तमें श्रीनर्मदी बाईने कहा—"मैं भी तो श्रीयमुनाजी पर प्रियतमके पास ही जा रही हूँ, यह मार्ग है श्रीयमुनाजी जानेका।" बस, उस भोली बालाने नर्मदी बाईका हाथ पकड़ लिया और चल पड़ी प्रियतमसे मिलने। ऊपर नयी कोठीके कमरेमें पहुँचकर उसका प्रेम-राज्य अवतरित हो गया और वे अनन्त-अनन्त सखियोंके साथ श्रीयमुना-तटवर्ती उद्यानमें केलि करने लगीं। कभी मुझसे कहती "मेरा श्रृंगार सुन्दर है ना? मेरे सीमन्तमें सिन्दूर भर दो,

मेरी कलाईकी चूड़ियाँ देखो न? मैं हक्की-बक्की-सी उनके चरणोंको अपने मस्तक पर रखनेको बेचैन थी। अपने भाग्यकी सराहना करते-करते न थकती थी और साथ ही पूज्य बाबाके खेलको देख रही थी, वे मुझे किस रूपमें अपने घरकी झाँकी दिखा रहे हैं। जब उनका भाव शामित हुआ तो उन्होंने मुझे अत्यन्त प्यार दिया। मैंने उनसे कहा कि आज मुझे इस बातकी पूरी अनुभूति हो रही है, पूज्य बाबासे मर्यादाका ध्यान रखते हुए मैं कभी बात भी न करती थी और उनके आगे मुझे स्वयं संकोच भी रहता था अटपटे प्रश्नोत्तर करनेका। इसीसे आज आपके रूपमें मुझे बाबा ही मिले हैं, जिनसे मैं अपने घरकी बात हृदय खोलकर कर सकूँ और उन्होंने इसे स्वीकार भी किया। संयोगकी बात मेरा कमरा उनके कमरेसे सटा था और बीचमें एक दरवाजा था। नित्य रात्रिको जब मैं पूज्य बाबाकी भिक्षोपरान्त जाती, वे मुझे बुला लेतीं। बस, सारी-सारी रात्रि मैं उनके साथ उस दिव्य राज्यकी चर्चा देखा-सुना करती। इस प्रकार कई माह उनके साथ बितानेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। फिर तो मुझे जैसे नशा चढ़ गया। रात्रिको बिना उनके पास जाये चैन न पड़े। इधर पूज्य बाबाकी परिक्रमाका कोई समय निश्चित नहीं था। भीड़की अधिकतासे वे रात्रिमें एक, दो, तीन बजेतक कभी भी परिक्रमा कर पाते थे। रुक्मिणीजी मुझे अपने कमरेमें पहले सरस चर्चा सुनातीं फिर कहतीं, तू सो जा, जब परिक्रमा होगी, मैं जगा दूँगी। कैसे आश्चर्यकी बात, वे मुझे नित्य जगातीं—''मुन्नी! उठ, अब बाबा परिक्रमामें आनेवाले है।'' जबकि वे गीतावाटिकासे दूर सड़क पार रहती थीं।

एक दिन मुझसे बोलीं—''तेरे पीछे एक सन्त खड़े हैं, शरीरपर मात्र टाटकी एक कौपीन धारण किये हैं। मुख-मण्डल तेजस्वितासे देदीप्यमान हो रहा है, बड़े विशाल नेत्र हैं, मुखपर मंदस्मित है। तेरे पीछे वरद हस्तकी मुद्रामें खड़े हैं। बड़े प्रसन्न हो रहे हैं, तू देख न!''

मैं अन्धे नेत्रोंसे भला क्या देख पाती? यह बातें सुनकर मेरे रोम-रोम खड़े हो गये, मैं आनन्दसे नाच उठी। मेरे कानोंमें पूज्य बाबाके शब्द गूँजने लगे, ''बड़ी ही सौभाग्यवती हो बिटिया तुम।'' प्रथम दर्शनमें पूज्य बाबाने मुझे यही आशीर्वाद दिया था। उनके आशीर्वादको साकार होते देख, मैं तन-मनकी सुधि भूल गयी। अरे ये तो मेरे श्रीनारायण स्वामीजी महाराज पधारे हैं। अपनी बेटीको पूज्य बाबूजी, पूज्य बाबा, पूज्य रुक्मिणीजी—जैसे सन्तोंको सौंपकर प्रसन्न हो रहे हैं।

मैं पागल-सी हो गयी। आज भी जब मैं सोचती हूँ तो आधी पागल-सी हो जाती हूँ। जन्मके दरिद्रोंको जैसे पारस मिल गया हो। ये वही सन्त शिरोमणि श्रीनारायण स्वामीजी महाराज हैं, जिनकी छत्र-छायामें मैं चार वर्षकी आयुसे जाती थी और मेरे माता-पिता इन्हें अपना परम गुरु मानते थे। इनके पधारनेके बाद मेरी माँने श्रीभगवान्‌से बहुत प्रार्थना की ''अब हम कहाँ जायें, कैसे जियें, हमें आप संत बताइये, संतसे मिलाइये।'' इसीके पश्चात् मुझे पूज्य बाबूजी एवं बाबाके पास रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। रुक्मिणीजीके सामने सभी संत प्रत्यक्ष रहते थे। एक नहीं अनेकों घटनाएँ हैं, जब वे भारतके विभिन्न संतोंसे अपने कमरेमें बैठी-बैठी बातें करती थीं।

मेरी पूज्या माँको पूज्य बाबाने अत्यन्त प्यारसे अपने पास रखा था। उनसे वे बच्चोंकी तरह खेलते-बोलते और हँसी करते थे। भावकी दृष्टिसे पूज्य बाबाने उन्हें श्रीराधाजीकी नानीका भाव दिया था। पूज्य बाबा कहा करते थे, हमें इसे देखकर नानीकी स्फुरणा होती है—

'किञ्चित् थी झुकी कमर, उसकी थी सितकेशी हे प्रियतम।', रुक्मिणीजी एक दिन माँके पास आयीं और ''नानी'' कहकर चिपट गयीं। उनके पास बिस्तरपर लेट गयी। बोलीं—''नानी! मुझे कहानी सुना।'' कैसा विचित्र भावका साम्य था, पूज्य बाबा और रुक्मिणीजीमें। फिर बोली—मुझे (सावनकी तीजपर) वस्त्र दे। मैं नये वस्त्र पहन कर झूला झूलूँगी।

मैं भला तुच्छ, मैं क्या कह सकती हूँ रुक्मिणीजीकी गरिमा और उनके विषयमें। मैं तो उनके जितने गीत गाऊँगी, वह उनकी ऊँचाईका स्पर्श भी नहीं कर सकते। जिसने सूर्यका प्रकाश देखा ही नहीं है, वह क्या जाने। बिचारा अपने घरके दीपकका ही गुण गाता रहेगा। वही मेरी दशा है। उनके गुण गाने बैठती हूँ तो मन कहता है, जोर-जोरसे, चिल्ला-चिल्लाकर भरपेट रो लूँ, कहाँ है मेरी प्यारी रुक्मिणीजी? कोई बताओ तो सही, कहाँ है मुझे हृदयसे प्यार करनेवाली रुक्मिणीजी? मुझे भाँति-भाँतिकी वस्तुएँ खिलाकर, पिलाकर, प्यारसे अपने पास सुलाकर हृदयसे खिल पड़ती थी। ऐसा दिव्य, ऐसा अलौकिक, ऐसा अनूठा, ऐसा अनुपम प्यार देनेवाली कहाँ चली गयी? मेरी प्यारी रुक्मिणीजी......।

अस्तु, जो हुआ, सो हुआ। जो भी हो, बहिन मुन्नी अपने नियमोंके निर्वाहमें बड़ा दृढ़ रहती थी। अर्चनाका जो भी क्रम था, उसका वह निर्वाह करती ही

थी। पूज्य बाबूजी एवं पूज्य बाबाके प्रति उसका जो समर्पणभाव रहा है, वह सभीके लिये सराहनीय रहा है। उसे कुछ बार दिव्य अनुभूतियाँ भी हुई हैं। एक बार उसको बिल्ववृक्षके समीप सनकादिके दर्शनका सौभाग्य मिला। एक बार पूज्य बाबूजीके कमरेके बाहर कतिपय बालिका-बालकोंको हरिनाम-संकीर्तन हुए देखा अथवा उनका सुमधुर स्वर सुनायी पड़ा।

जीवनके अन्तिम दिवसोंमें बहिन मुन्नीको दाँतमें कैंसर हो गया था। भीषण कष्ट था। विख्यात सर्जन डॉक्टर श्रीराकेश बहिन मुन्नीको देखनेके लिये आये। उनको संदेह हो गया कि कैंसर होगा, उन्होंने कहा—बायप्सीके लिये मैं माँसका एक टुकड़ा लूँगा।

उनकी बात सुनकर बहिन मुन्नीको रोगकी भीषणताका परिज्ञान हो गया। उसने देनेसे इनकार कर दिया। बहिन मुन्नी भीषण कष्ट पा रही थी, किन्तु उसकी सहिष्णुताकी जितनी सराहना की जाय, वह सर्वथा कम है। वह एकदम शान्त पड़ी रहती थी। डॉक्टर श्रीराकेश फिर देखने आये। वे आश्चर्यमें डूब गये। उनको अतिशय विस्मय हो रहा था कि इस भीषण कष्टमें भी यह रुग्णा कितनी शान्त है। उन्होंने मन-ही-मन मान लिया कि जीवनभरकी साधना आज अपनी प्रत्यक्ष परिणाम दिखला रही है।

ऐसा संतोंका कथन है कि श्रीप्रिया-प्रियतमके निकुञ्ज-राज्यमें न शुभका और न अशुभका प्रवेश है। बहिन मुन्नीके जीवनमें जो अशुभ था, उसके फलस्वरूप वह भीषण कष्ट पा रही थी और जो शुभ था उसके फलस्वरूप उसको आत्मीय बहिनोंसे जैसी सेवा-सँभाल मिला, वैसी देख-रेख किसी अरबपति-घरकी माताको भी नहीं मिल सकती। बहिन मुन्नीके शुभ और अशुभ जब दोनों शेष हो गये, तब वह सन् २००५ के २४ अप्रैलके दिन श्रीहनुमज्जयन्तीके शुभ अवसरपर अपने जीवनाराध्यके समीप चली गयी। वह चली गयी, किन्तु सभी उसके यशका गान कर रहे थे और आज भी करते हैं।

आदरणीया बहिन कमलजी प्रायः गोरखपुरसे वृन्दावन जाया करती थीं। अब जब जाती थीं, प्रायः अधिक दिनोंतक वृन्दावनमें निवास रहता रहा है। उस समय अनेक बार आदरणीया बहिन मुन्नीने उनको पत्र लिखा है। पत्रोंकी संख्या असंख्य है। उन पत्रोंमेंसे जो कुछ भावपूर्ण और हृदयस्पर्शी पंक्तियाँ हैं, वे यहाँपर उदाहरणके रूपमें प्रस्तुत की जा रही हैं।

(१) मैं तो वास्तवमें किसीकी भी अपनी नहीं हूँ। आपने इतने वर्षोंतक

अपने स्नेहसे जो आप्यायित किया, उसके लिये मेरे पास कोई शब्द ही नहीं है। हृदयकी बात अन्तर्यामीके सिवा और कौन जाने? मेरी बीमारीमें आपका हृदय मुझसे भी अधिक उद्वेलित हो जाता है। यह सब सच्चे प्यारका सच्चा स्वरूप है और एक मैं हूँ कृतघ्नताकी मूर्ति। आपको अपने राग-द्वेषात्मकके व्यवहारसे सदा ही दुःख पहुँचाती आयी। क्या करूँ? आपका संग करके भी आपके चरणकी धूलि भी नहीं बन पायी। यह मेरा दुर्भाग्य....।

(२) कृष्ण भैया भी मुझसे जब मिलते हैं तो आपके विषयमें ही बात करते हैं। उनका स्नेह भी सराहनीय है। कह रहे थे एक दिन ''कमलजी कीर्तन अच्छा करती थीं, कि उनमें यह गुण थे वह गुण थे सो बात नहीं, उनका अपना एक व्यक्तित्व है साथ ही दैन्य कितना है। उनमें से पवित्रताकी किरणें निकलती रहती हैं।''

(३) आदरणीया श्रीरुक्मिणीजी आपको इतना अधिक याद करती हैं। वे कहती हैं कि कमल तो मोहनी डाल गयी मेरे ऊपर। मैं तो मरी जाऊँ हूँ। उसकी यादके मारे एक मिनट मुझे भूली ही नहीं है वो।

(४) आजकल तो आप बृजकी होलीमें रँगी होंगी तन-मनसे। उस रंगकी एक छींट हमारे लिये भी लेती आइयेगा। क्या पता किसी कृपाकोरसे ***'श्याम रंग चढ़ि जाय वा दिना ह्वै जाय बेड़ा पार।'*** अपने जीवनमें चरितार्थ हो जाय।

(५) कल भिक्षामें बाबा गायत्रीसे प्रशंसा करते हुए कह रहे थे कि बिटिया! इसका हेतु है तू कृष्ण-कृष्ण कहती रहती है न? तेरे पिताने कहा कि तू सोतेमें बोलती है कृष्ण-कृष्ण। यह सुनकर गायत्री (डॉ० एल० डी० सिंहकी सुपुत्री) बोली कि मैं तो नहीं करती। वह कभी एक-दो बार सोते समय मुँहसे निकल गया होगा। इसपर बाबा कहने लगे कि सोतेमें मुँहसे वही शब्द निःसृत होंगे जो मनुष्यके मानस पटलपर दिनमें अथवा जाग्रत अवस्थामें विद्यमान रहेंगे। यह सुनकर मैं (अर्थात् मुन्नी) बोली कि बाबा! कमलजी भी सोते में या करवट लेते समय 'हे किशोरी हे राधे' बोलती हैं और एक बार तो पूरा दोहा 'भक्ति भक्त भगवन्त गुरु···' बोल गयी थीं। यह सुनकरकर बाबाने कहा कि असलमें कमल राधाजीकी सच्ची भक्त है, तभी सोतेमें राधा नाम उसके मुँहसे निकलता है।

(६) आपके जानेके बाद पहले दिन जब बाई (आदरणीया सावित्रीबाई

फोगला) कमरेमें घुसी तो एकदमसे बोली कि कमलके बिना सूना-सूना लग रहा है। बाईने होलीके पदोंके गायनकी संख्या बढ़ा दी है। आज विमलाजी होलीका एक पद 'अंग लिपटि हँसि हाय हाय खाय' में भाव विभोर होकर नृत्य करने लगीं। इस रस उच्छलित होने लगा।

श्रीकमलड़ी मैया

मैयाका नाम था श्रीकमलाबाई सरावगी, किन्तु हमलोग प्यारमें उसे कमलड़ी मैया कहा करते थे। कमली मैयाका बाबाके प्रति पुत्र-भाव था। वह बड़ी भोली थी, बड़ी सरल थी। सचमुच, उसे छल-छद्म-छिद्र छू नहीं गया था। उसकी बाबाके प्रति ऐसी श्रद्धा, ऐसी आत्मीयता उमड़ी कि वह अपने पुत्रोंको छोड़कर, परिवारकी सुख-सुविधाको छोड़कर बाबाके पास यहीं गीतावाटिकामें ही रहने लग गयी।

गीतावाटिकामें रहते समय कमली मैयाने एक नियम-सा बना लिया था। दोपहरके समय जब बाबा शौचके लिये जाते तो वह देखनेके लिये आ जाती। उस समय बाबा अपनी पुरानी कुटियामें रहते थे। पुरानी कुटियासे मेरा प्रयोजन उस कुटियासे है, जिसमें बाबा, बाबूजीके महाप्रस्थानके पूर्व रहा करते थे। बाबूजीके नित्यलीलामें लीन हो जानेके बाद बाबाने उस कुटियामें प्रवेश किया ही नहीं। फिर तो बाबा एक वृक्षके नीचे खुली कुटियामें रहने लगे। अब उस कुटियाके स्थानपर 'नेह कुञ्ज' का निर्माण हो गया है, जिसमें पूज्य बाबाका श्रीविग्रह प्रतिष्ठित है।

कमली मैयावाली बात उस समयकी है, जब पूज्य बाबाका निवास पुरानी कुटियामें था। इस पुरानी कुटियाके पास ही २०, २५ गजकी दूरीपर एक टिनशेड था। कमली मैया प्रतिदिन दोपहरके समय आती और इसी टिनशेडमें बैठ जाती। बाबा शौचके लिये कुटियासे कब निकलेंगे, यह समय निश्चित तो था नहीं। वे निकलते थे कभी बारह बजे, कभी साढ़े-बारह बजे और कभी एक बजे, पर कमली मैया बारह बजेके पहले ही आकर बैठ जाती और तबतक बैठी रहती, जबतक बाबा शौचके लिये चले नहीं जाते। बाबाको यह पता भी नहीं रहता था कि वह आकर बैठी है। बाबा अपनी कुटियासे निकलते, आँखें नीची

किये हुए चलते, धीरे-धीरे चलते हुए शौचालय जाते और फिर शौचादिसे निवृत्त होकर अपनी कुटियामें लौट आते। एक दिन बाबाने देख लिया कि कमली मैया टिन-शेडके नीचे बैठी है। बाबाने उससे पूछा तो पता चला कि वह नित्य दोपहरके समय दर्शन करनेके लिये आती है। यह सुनकर किंचित् उपालम्भ देते हुए बाबाने कहा—अरी मैया! यदि तू मुझे तनिक भी आभास दे देती कि तू नित्य मेरे लिये आकर बैठती है तो मैं दृष्टि उठाकर तुझे देख लिया करता।

तब कमली मैयाने कहा—बाबा! मैं केवल तुम्हारे लिये ही थोड़े आती हूँ। मैं तो एक मतलबसे आती हूँ।

बाबाने पूछा—तेरा और क्या मतलब है, जिसके लिये तू आती है?

वह नितान्त-निरीह-मति अत्यधिक-सरल-हृदय मैया अपने सहज ढंगसे कहने लगी—बाबा! जब तुम शौचके लिये जाते हो न, तब तुम्हारे पीछे-पीछे बड़ा सुन्दर-सा, बड़ा सलोना-सा एक छोटा नीला बालक चलता रहता है। उसके सिरके लहरदार बाल, उसके पैरोंकी पायजेब, उसके चलनेका ढंग, उसके शरीरका रंग, उसके कमरकी तागड़ी, उसके हाथका हिलना, ये सब आँखोंको-कानोंको बड़े ही प्यारे-प्यारे लगते हैं। मैं तो उस नन्हें-से बालकको देखनेके लिये आती हूँ।

कमली मैयाकी बात सुनकर बाबा तो चकित रह गये। यह तो एक उदाहरण है। उसको ऐसी अनुभूतियाँ सदा ही होती रहती थीं। स्वयं मुझसे उसकी बात हुई है। एक बारकी बात है। दोपहरके समय वह टिनशेडके नीचे बैठी थी। मैंने उससे विनोद करना आरम्भ कर दिया—मैया! तू आजकल कृपण हो गयी है, कुछ खिलाती-पिलाती नहीं।

कुछ देरतक ऐसे ही विनोद चलता रहा, फिर पारस्परिक बातचीतने सरस रूप ले लिया। वह मुझसे कहने लगी—बेटा! देख! यह पेड़ है न! इस पेड़के पत्ते-पत्तेमें राधाकृष्ण हैं। वे तुमको दिखलायी नहीं देते क्या? मुझे तो दीख रहे हैं।

कमली मैयाकी एक और बेटी थी आशा, उर्मिला बाईकी छोटी बहिन। प्रयत्न करनेके बाद भी आशाकी सगाई कहीं नहीं हो पा रही थी। एक दिन उसने बाबासे कहा—बाबा! क्या आशाकी सगाई नहीं होगी?

बाबाने उत्तर दिया—मैं तेरा बेटा अभी जीवित हूँ, तब तू क्यों चिन्ता करती है?

प्रतीक्षा करते-करते काफी दिन निकल गये। कमलड़ी मैयाने बाबासे पुनः इस बातकी चर्चा चला दी। एक दिन उसने पूज्य बाबासे कहा—बाबा! आशाकी सगाई नहीं होगी क्या?

पूज्य बाबाने तुरन्त उत्तर दिया—मैं तेरा बेटा अभी जीवित हूँ, तब तू चिन्ता क्यों करती है?

इस उत्तरसे पूर्ण सन्तुष्ट होकर कमली मैयाने कहा—मैं अब सचमुच बेफिक्र हो गयी।

और सचमुच ही वह निश्चिन्त हो गयी। इसके बाद विधिने ऐसी बात बनायी कि इस प्रकार आश्वासन दिये जानेके लगभग चार-पाँच दिन बाद ही आशाबाईकी सगाई गाजीपुर शहरमें हो गयी। सगाई हो जानेके कुछ दिन बाद विवाहकी तिथि भी निश्चित हो गयी। आशाबाईका विवाह गोरखपुरमें नहीं, कलकत्तेमें हुआ था। विवाहकी तिथि समीप आनेपर कमली मैयाने बाबासे एक दिन कहा—बाबा! क्या आप आशाके विवाहमें नहीं आइयेगा?

बाबाने कहा—मैया! मैं आऊँगा तो जरूर, पर मैं यह नहीं कह सकता कि तू मुझे देख पायेगी अथवा नहीं। यदि तेरे पास 'वे आँखें' होंगी तो मुझे देख भी लेगी।

सौभाग्याकांक्षिणी आशाका विवाह हुआ कलकत्तेमें और बाबा थे गोरखपुरमें। गोरखपुरसे बाबूजी जब गये ही नहीं, तब बाबाका जाना होता ही कैसे? बाबूजी जाते तो उनके साथ बाबाका जाना हो पाता।

विवाह हो जानेके बाद कमली मैया गोरखपुर आयी और बाबासे कहने लगी—बाबा! विवाहवाले दिन आप भी पधारे और श्रीभाईजी (रस-धन-मूर्ति श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) भी पधारे। भात भरनेका समय था। मैंने देखा कि आप आये हैं तथा एक स्थानपर आसन लगाकर बैठ गयें हैं। भात दोपहरके समय भरा गया था और आप दोपहरके बादसे तबतक बैठे रहे, जबतक वर-वधूके फेरोंका काम पूरा नहीं हो गया। भात भरनेसे लेकर भाँवर देनेके समयतक आप मुझे बैठे हुए दिखलायी देते रहे। इसी प्रकार श्रीभाईजी आये, श्रीभाईजी और आप दोनों ही साथ-साथ आये थे। श्रीभाईजीने भात भरनेके समय मुझको

चुनर ओढ़ाई, बहुत बढ़ियाँ चुनरी और फेरोंके कामतक विराजे रहकर विवाहके कार्यमें सहयोग देते रहे।

कमली मैयाको यह अनुभूति हुई, कोई एक मिनट या दो मिनटके लिये नहीं, अपितु लगातार अपराह्न कालसे लेकर मध्य रात्रितक। इन्हीं कमली मैयाका सन् १९६१ ई० के मई मासमें देहान्त हो गया। *'सुमन मानस जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग'*, उसी तरह वह पाञ्चभौतिक शरीरका परित्याग करके इस संसारसे विदा हो गयी। शामके समय बाबाकी भिक्षाके लिये चावलोंको चुग रही थी, चावलोंसे भरी थाली अपने हाथमें लिये कंकड़-कचरा साफ कर रही थी, उसी समय उसके पेटमें हलका-सा दर्द हुआ। हाथकी थाली नीचे रखकर वह कमरेकी जमीनपर ही लेट गयी। लेटनेके कुछ देर बाद ही उसने सदाके लिये विदाई ले ली। उसके लेटते ही डॉक्टर बुलाया गया, डाक्टर साहब पहुँच पायें, इसके पहले ही वह जा चुकी थी। यह सूर्यास्तका समय था। उसके जाते ही गीतावाटिकामें शोक छा गया।

बाबूजी और बाबा एक कार्यसे प्रयाग गये हुए थे। जिस समय कमली मैयाका देहान्त हुआ, उसी समय वे प्रयागसे प्रस्थान करनेवाले थे। तुरंत प्रयाग फोन किया गया। पता चला कि वे लोग ट्रेनद्वारा प्रयागसे प्रस्थान कर चुके हैं। ट्रेन प्रयागसे चलकर वाराणसी होते हुए गोरखपुर आती है। ट्रेनके वाराणसी पहुँचनेमें अभी कुछ देर थी। तुरंत ही वाराणसीमें एक व्यक्तिको फोन करके कहा गया—आप वाराणसी स्टेशनपर जाकर ट्रेनमें बाबा-बाबूजीसे मिलें और उनको कमली मैयाके निधनका समाचार दें। फिर यह बतायें कि हमलोग शव लेकर गोरखपुरसे वाराणसी पहुँच रहे हैं, बाबा-बाबूजी वाराणसी उतर जायें और कलकत्तेसे कमली मैयाके लड़के वाराणसी आ जायेंगे। फिर बाबा-बाबूजीकी उपस्थितिमें श्रीगंगाजीके तटपर मैयाका अन्तिम संस्कार उनके पुत्रके हाथों वाराणसीमें हो जायेगा। बाबा-बाबूजीसे बात कर चुकनेके बाद हमलोगोंको फोनसे उनकी सहमतिकी सूचना तुरन्त दें।

हमलोगोंका फोन पाकर वे व्यक्ति तुरन्त वाराणसी स्टेशनपर गये। वे वहाँ ट्रेनपर बाबा-बाबूजीसे मिले तथा उन्हें सारी बातें बतायी। बाबाने उनसे कहा—आप तुरन्त गोरखपुर फोन कर दें कि शवको वाराणसी नहीं लाना हैं। अन्तिम संस्कार गोरखपुरमें ही होगा। हमलोग इसी ट्रेनसे सबेरे गोरखपुर पहुँच रहे हैं।

उन व्यक्तिने वाराणसीसे फोन करके यह समाचार हमलोगोंको बता दिया। समाचार सुनकर हमलोगोंको आश्चर्य हो रहा था, आश्चर्य इसलिये कि कमली मैयाके परिवारके लोग कलकत्तेसे वाराणसी बहुत आसानीसे प्रात:कालतक पहुँच जाते, किन्तु गोरखपुर पहुँच सकना किसी भी प्रकारसे सम्भव नहीं था। बाबाका यह निर्णय हमलोगोंको बड़ा अटपटा लग रहा था और मन-ही-मन कह रहे थे कि बाबाका खेल बड़ा विचित्र है। अस्तु, सबेरे बाबा-बाबूजी गीतावाटिका पहुँचे। शव-यात्राकी तैयारी होने लगी। अब प्रश्न था कि चितामें अग्नि कौन देगा। बाबाने कहा—मैं दूँगा।

यह सुनते ही बाबूजी क्षुब्ध हो गये और क्षुब्ध स्वरमें ही बोले—यह कौन-सा धर्म है कि संन्यासी अग्निका स्पर्श करे और इससे भी आगे बढ़कर किसीकी चितामें अग्नि दे?

पूज्य बाबाने बड़े शान्त स्वरमें कहा—आद्य शंकराचार्यजीने भी अपनी माँकी चितामें अग्नि दी थी।

पूज्य बाबूजीने क्षोभ भरे स्वरमें कहा—वह तो उनकी जन्मदात्री माँ थी, पर यह क्या आपको जन्म देनेवाली माँ है? फिर उन आद्य शंकराचार्यजी द्वारा जो अग्नि दी गयी, वह प्रदत्त वचनके अनुसार असाधारण परिस्थितिमें उनके लिये एक विशेष धर्म था। क्या असाधारण परिस्थितिकी बातको साधारण स्तरपर उतार लेना चाहिये?

पूज्य बाबाने बड़े शान्त स्वरमें कहा—जिस तरह उनके लिये असाधारण परिस्थिति थी, वही बात मेरे साथ है। विशेष धर्मकी तो बात ही क्या, यहाँ मेरे साथ परम विशेष धर्म है और उस परम विशेष प्रेम धर्मके अनुसार यह मेरी जन्मदात्री माँसे बढ़कर है।

पूज्य बाबूजीने निराश स्वरमें कहा—आपको समझा सकना कठिन है।

वन्दनीया कमली मैयाके शवको राप्ती नदीके किनारे श्मशान भूमि राजघाटपर ले जाया गया। पूज्य बाबूजी और बाबा भी राजघाट गये। पूज्य बाबाने चिताको अग्नि दी और अग्नि दी पूज्य बाबूजीने भी। बाबाने दी चरणोंकी ओरसे और बाबूजीने दी मस्तक की ओरसे, बाबाने दी पुत्रके नाते और बाबूजीने दी भाईके नाते। गीतावाटिकाके इतिहासमें एकमात्र यही प्रसंग ऐसा है, जब कि किसीकी चितामें पूज्य बाबूजी और पूज्य बाबा, दोनों एक साथ अग्नि दे रहे

हों। वन्दनीया कमलड़ी मैयाके परम सौभाग्यकी सीमा नहीं, जिसकी चितामें एक नहीं, दो महान् सिद्ध-संत एक साथ अग्नि दें।

श्रीआशाबाई नेवटिया

पूज्या कमलड़ी मैयाकी बेटीका नाम आशाबाई था। आशा बाईका विवाह गाजीपुरके श्रीओमप्रकाशजी नेवटियासे हुआ था। इसका सारा विवरण पूज्या कमलड़ी मैयाके जीवन-वृत्तमें आ चुका है। पुनरावृत्तिकी आवश्यकता नहीं। एक बार आशाबाई गाजीपुरमें अत्यधिक बीमार पड़ गयी। यह रुग्णता उसके लिये विघातक सिद्ध हुई। जब वह बहुत कष्ट पा रही थी, तब पूज्य बाबाने बड़े ही विशुद्ध वात्सल्योचित प्यारमें भरकर आशा बाईको और उसके पतिदेव श्रीओमप्रकाशजी नेवटियाको पत्र लिखवाया था। वह पत्र नीचे दिया जा रहा है, जो अत्यधिक सान्त्वना, धैर्य और प्रेरणा प्रदान करनेवाला है। दिनांक १७ अक्टूबर, १९७१ के दिन पूज्य बाबाने लिखवाया—

आशा बहिन! भगवान्के मंगलमय विधानपर विश्वास करनेकी चेष्टा करो। तुम्हें रोगके रूपमें जो प्राप्त हो रहा है, उस रोगके कण-कणमें भगवान्की मंगलमयता भरी हुई है। मनमें भगवानके ऊपर विश्वास नहीं होनेके कारण तुझे प्रतिकूलताका भान हो रहा है, अतएव बड़े साहसके साथ बीमारीसे बिलकुल न घबड़ाकर अपना मन उस बीमारीकी हालतमें भी भगवान्में लगानेकी चेष्टा करो और हाय-तोबा न मचाकर तुम भगवान्से यह कहो कि हे नाथ, मैं अपनी मलिनतावश आपकी मंगलमयताको समझ नहीं पा रही हूँ। अब आप ही दया करके मुझे सँभाल लीजिये और इस प्रकारकी बुद्धि प्रदान कीजिये, जिससे मैं आपके सौहार्दका, अपरिसीम सौहार्दका अनुभव कर सकूँ। जब-जब तुम्हें कष्टका अनुभव हो, तब-तब भगवान्से ऐसी प्रार्थना करो। भगवान् बड़े दयालु हैं। वे प्रत्येक पुकारका उत्तर देते ही हैं।

इस पत्रके साथ-साथ पूज्य बाबाने श्रीओमप्रकाशजी नेवटियाके नाम जो पत्र लिखवाया, वह इस प्रकार है—

ओमप्रकाश! तुम्हारे पत्रको मैंने बड़े ध्यानसे सुना। तुम बिलकुल मत घबड़ाओ और इसीके साथ-साथ भगवान्पर अपना विश्वास बढ़ाओ। देखो,

अनहोनी होगी नहीं और होनी टलेगी नहीं। आशा बहिनकी अधिक-से-अधिक और अच्छी-से-अच्छी जो सेवा तुम कर सकते हो, वह कर रहे हो। मुझे तुम्हारी सेवासे पूर्ण संतोष है। तुमने कोई त्रुटि नहीं की है, किन्तु सेवाका फल क्या होगा, यह तो भगवान्‌के मंगलमय विधानपर निर्भर करता है। तुम शायद समझते हो कि भगवान् तुम्हारे मनके अनुसार कर दें तो यह बिलकुल नहीं होगा। भगवान्‌को तो प्रत्येक जीवपर दया करनी है और वे प्रत्येक जीवके लिये उसके मंगलको ध्यानमें रखकर ही सुन्दर-से-सुन्दर विधान करते हैं, अतएव आशा बहिनके लिये जो हो रहा है, वह बढ़िया-से-बढ़िया हो रहा है। इसीमें आशा बहिनका परम मंगल है। उसको कष्ट बहुत अधिक है, यह मैं ठीक-ठीक अनुभव कर रहा हूँ, परन्तु मेरे भैया! तुम्हीं सोचो, अगर गन्दे कपड़ेको साबुन लगाकर पटका न जाय तो उसका मैल निकलेगा कैसे? इसी प्रकार आशा बहिनकी कर्म जनित मन-बुद्धिकी सारी मलिनताको समूल नष्ट कर देनेके लिये भगवान्‌का मंगलमय विधान क्रियाशील हो रहा है। तुम घबड़ाओगे तथा आशा बहिन घबड़ायेगी तो भी खरादका यह चक्र तो चलेगा ही। भैया, इसी दृष्टान्तमें तुम सब समझ लेना।

परम पूज्या भक्तिपरायणा दिव्यभावस्वरूपा श्रीरुक्मिणीबाई

पूज्या श्रीरुक्मिणीबाई भागलपुरकी एक परमोच्च कोटिकी महिला संत थीं। मृत्युलोकमें उनके आविर्भावका हेतु सर्वथा लोकोत्तर है। इस तथ्यकी अभिव्यक्ति स्वयं उन्होंने अपने श्रीमुखसे की थी। वे गोलोकधाममें प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधवके निजी परिकरमण्डलकी एक सदस्या थीं। एक दिन आदरणीया श्रीचन्दाबाई ढाँढनियाको उन्होंने बतलाया था—

निकुञ्जमें युगल सरकार बैठे हुए थे। मैं उनके समीपमें थी। सखियाँ और मञ्जरियाँ सेवामें संलग्न थीं। श्रीप्रिया-प्रियतमके मध्य पृथ्वी लोकके कुछ ऐसे विशेष संतोंकी चर्चा चल पड़ी, जिनके द्वारा जन-जनमें भक्तिभावको प्रतिष्ठित करनेका महान् भगवदीय कार्य हो रहा है। उस संत-चर्चामें पूज्य श्रीसेठजी

(श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका), पूज्य श्रीभाईजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) एवं पूज्य श्रीबाबा (श्रद्धेय श्रीराधा बाबा)-का विशेष रूपसे गुणगान हो रहा था। उस सरस चर्चाको सुनकर मेरे हृदयमें उन संतोंके दर्शनकी उत्कट लालसा जाग्रत् हो गयी। इसीका यह मंगलमय परिणाम यह रहा कि मुझे यह मानव-शरीर मिला।

बहिन श्रीरुक्मिणीबाईको मानव-शरीर तो मिला, पर वह भी एक विशेष रीतिसे। बाईने स्वयं बतलाया है—इस बालिकाका जन्म मातृ-संधिको लेकर हुआ। इसके पिताजी बाल्यकालमें मातृ-उपासना करनेके लिये कलकत्तेमें निवास कर रहे थे। साधना चल रही थी। वहाँ श्रीश्रीमाँका आदेश हुआ कि तुम गृहस्थ-आश्रम स्वीकार करो। वे वहाँसे घर आ गये और फिर आदेशानुसार उनके सारे वैवाहिक कृत्य सम्पन्न हुए। विवाहोपरान्त उसी मातृ-सन्धिको लेकर प्रथम बालिकाके रूपमें इसका जन्म हुआ। इसीलिये इसका मातृ-पूजापर सदा इतना झुकाव रहता है।

मातृ-सन्धिका अर्थ है कि मर्त्यलोकमें अवतरण होनेकी अभिलाषाका परिज्ञान होनेपर भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीजीके अनुग्रह एवं सहयोगसे यह बालिका शरीर मिला है। बाईका आविर्भाव २ सितम्बर १९३९ को हुआ था। इनकी माता श्रीहिमांचलादेवी और पिता पूज्य श्रीछेदीप्रसादजी शुक्ल थे।

इनका शैशवकाल बड़े सुखसे बीता। पूज्य पिताजी वैद्यका एवं पुरोहितीका कार्य किया करते थे। बालिका इतनी रूपवती एवं लावण्यवती थी कि सभीके चित्तको आकृष्ट कर लेती थी। अपनी सहेलियोंमें ये सदा अग्रगण्या थीं। शैशवकालकी बात है, जब इनकी पूज्या माताजी, भगवती तुलसीरानीका पूजन कर रही थीं एवं जलार्चन कर रही थीं, तब इन्हें भगवती वृन्दादेवीका दर्शन हुआ था। बाई कहा करती थीं कि प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्णकी लीला-स्थली श्रीवृन्दावन है। उस वृन्दावनमें प्रवेश पानेके लिये वृन्दावनकी अधिष्ठात्री-देवीकी आज्ञा आवश्यक है। प्रत्येक साधिका और साधकको भगवती वृन्दाको प्रणाम करके आज्ञा लेनी चाहिये। इसके बाद स्थलीमें प्रवेश करना चाहिये।

सामाजिक परम्पराके अनुसार किशोरावस्थाकी देहरीपर पग धरते ही बाईका विवाह श्रीयदुनन्दनजी मिश्रसे हो गया। विवाह तो हो गया, परन्तु ईश्वरीय विधान कुछ और ही था। शीघ्र ही वैधव्यका सामना करना पड़ा। वैधव्यका वज्रपात

होते ही शोकका वातावरण सर्वत्र व्याप्त हो गया। सभी बालिकाके भविष्यके बारेमें सचिन्त हो उठे। परिवार और पुरके लोग शोकाकुल थे, परन्तु बाईकी विचारधारा कुछ अन्य ही थी। उसने निश्चय कर लिया कि मैं सती होऊँगी। कुछ लोगोंने बाईको अपना विचार परित्याग देनेके लिये कहा, परन्तु वह अपने निश्चयपर दृढ़ थी। अब समाजका वातावरण बदला। शोकके स्थानपर बाईके प्रति सभीकी पूज्य भावना लहराने लगी। शवके साथ जानेके लिये बाईने पूर्ण शृंगार किया।

शवको लिये हुए लोग श्मशान-भूमिपर पहुँचे। चिताको सजाया गया और शवको चितापर लिटा दिया गया। सती होनेका मनमें निश्चय किये हुए पूज्या बाईने चिताकी परिक्रमा लगायी। परिक्रमा कर चुकनेके बाद पूज्या बाई ज्यों-ही चितापर आरोहण करनेवाली थीं, वे एकदम ठिठक गयीं। बाईके नेत्र नभके शून्यमें किसीको एकटक देखते हुए पूर्णतः स्थिर हो गये। बाई चिताके पार्श्वमें पाषाणवत् खड़ी हो गयीं। लोग बाईको एकटक देख रहे थे और बाई एकटक निहार रही थीं किसीको शून्य नभमें। लोगोंको आकाशमें कुछ दिखलायी नहीं दिया, परन्तु बाईने स्पष्ट देखा कि एक गैरिक वस्त्र धारी तेजस्वी संन्यासी हाथमें कमण्डलु लिये हुए आये हैं और उनसे कह रहे हैं—***तुमको अपने पतिके शवके साथ सती नहीं होना है। नारीका सती होना श्रेष्ठ आदर्श है, परन्तु तुम्हारे द्वारा समाजमें इससे भी श्रेष्ठतर आदर्शकी प्रतिष्ठा होनेवाली है। इसके लिये तुमको अपने जीवनकी रक्षा करनी चाहिये।***

बाईके समक्ष उन तेजस्वी संन्यासीका अचानक प्रकट होना, वह भी ठीक चितारोहणके अत्यन्त संवेदनशील समय प्रकट होना और प्रकट होकर आदेशके रूपमें संदेश देना, यह सारा स्वयंमें एक विशेष महत्त्व रखता है।

बाईने उनका आदेश मान लिया। उसने अपने सारे वस्त्राभूषण उतार दिये। कण्ठका मंगलसूत्र चिताके शवपर रख दिया, फिर बाईने श्वेत वस्त्र धारण करके चितामें स्वयं ही अग्नि दी। यहाँ एक बात और कहनी है। सांसारिक लोगोंकी दृष्टिमें नारीके लिये वैधव्यको महा कष्टदायक माना गया है। यह इसलिये कि इस दुर्घटनाके बाद उसका भावी जीवन अन्धकारमय हो जाता है। यह मान्यता एक साधारण सांसारिक नारीके लिये हो सकती है, जिसने चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करती हुई मानवी शरीर पाया है, परन्तु यह तथ्य बाईपर लागू

नहीं होता। बाई दिव्य स्तरकी विभूति थी। ईश्वरीय योजनाके अनुसार वैधव्य इसलिये आया कि सांसारिक प्रपञ्चसे उसका पूर्णतः बचाव हो जाय, क्योंकि बाईके द्वारा भविष्यमें महान् कार्य होनेवाला था। इसी तथ्यके साथ एक सत्य और जुड़ा हुआ है। शीघ्र वैधव्य हो जानेके कारण बाईका पतिसे शारीरिक सम्बन्ध नहीं हो पाया। वस्तुतः बाई पवित्रताकी साक्षात् प्रतिमा थी।

श्रीयदुनन्दनजीके असामयिक आकस्मिक निधनसे सभी सगे-सम्बन्धी, बन्धु-बान्धव अति व्यथित थे। सभीके व्यथित हृदयमें बाईके लिये बड़ी ममता और सहानुभूति उमड़ रही थी। बाईके ननदोई थे श्रीसत्यव्रतजी मिश्र। उनका घर आलमशाही ग्राममें था। वे प्रायः श्रीवृन्दावन जाते रहते थे। श्रीराधा-कृष्णकी अष्टयामीय लीला-चिन्तनमें ही उनका अधिकांश समय व्यतीत होता था। वे भी श्रीयदुनन्दनजीके निधनका शोक-समाचार पाकर बाईसे मिलनेके लिये आलमशाहीसे बौसी आ गये। वे अपने साथ श्रीराधा-कृष्णका विग्रह और श्रीगिरिराजकी शिला भी लेते आये थे। उन्होंने वह युगल विग्रह और वह श्रीगिरिराज शिला बाईको दे दी। ये दोनों अभी भी बाईके पितृ-गृहमें सेवित हैं।

श्रीसत्यव्रतजी बाईके पास प्रतिदिन बैठकर बहुत-बहुत देरतक श्रीराधा-कृष्णकी मधुर लीलाओंकी चर्चा किया करते थे। अष्टयामीय लीलाओंका चिन्तन ही उनकी रसात्मक साधनाका मुख्य अंग था और ये सरस लीलाएँ ही उस सच्चर्चाका विषय रहती थीं। उन्होंने बाईका पथ-प्रदर्शन भी इसी पद्धतिसे किया। प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्णकी मधुर लीलाओंके वर्णनद्वारा जो पथ-प्रदर्शन मिला, उसे और भी सही रूपमें यह कहना चाहिये कि उससे बाईके अन्तरमें आत्मस्वरूपकी स्मृति कौंध उठी। पाञ्चभौतिक शरीरमें रहते हुए भी वे स्वयंको प्रिया-प्रियतमकी स्नेहास्पदा अनुचरीके रूपमें देखने लगीं। श्रीसत्यव्रतजी तो रसिक संतोंकी वाणीके आधारपर लीलाका वर्णन करते थे, परन्तु तथ्य यह था कि वे जिस लीलाका वर्णन जैसे-जैसे करते जाते थे, वैसे-ही-वैसे वह मधुर लीला बाईको प्रत्यक्ष दिखलायी देती जाती थी। इस तथ्यको बाईने अपने मुखसे स्वयं ही बतलाया है।

बाईद्वारा श्वेत वस्त्र धारण कर लिये जानेके बाद उनके मानसमें तीव्र विरक्तिकी जो भावना लहरा रही थी, उस भावधाराको श्रीराधा-कृष्णकी सरस और मधुर भक्तिकी दिशाकी ओर मोड़ देनेमें तथा आत्मस्वरूपकी स्मृति करा देनेमें यह सच्चर्चा बड़ी सहायक सिद्ध हुई।

श्रीयदुनन्दनजी मिश्रका श्राद्धकर्म ज्यों ही पूर्ण हुआ, त्यों ही उनके पिताजी बाईको ससुरालसे अपने घर नाथनगर ले आये। अब बाई अपने पीहरमें थी। एकान्त जीवन व्यतीत करती हुई बाई श्रीकृष्ण-भजनपरायणा रहा करती थी। भगवती तुलसीकी पूजामें कभी चूक नहीं होती थी।

नाथनगरमें एक अद्वैतवादी संत श्रीनारायणहरिजी रहा करते थे। एक बार बाईकी सहेली दीक्षा दिलवानेके लिये उनके पास ले गयी। अल्पावस्थाके कारण बाईको दीक्षाके सम्बन्धमें कोई जानकारी नहीं थी। एक दिन दीक्षाकी तिथि निश्चित हो गयी। जिस दिन दीक्षा होनेवाली थी, उससे पूर्व रात्रिमें बाईको स्वप्नमें एक संत दिखलायी पड़े। वे श्वेत वस्त्रधारी थे। उन्होंने बाईके कानमें एक मंत्र दिया। मंत्र दान करनेवाले ये श्वेत वस्त्रधारी संत कौन थे, इसका स्पष्टीकरण बहुत दिनों बाद भविष्यमें हुआ।

दूसरे दिन दीक्षा-पद्धतिके अनुसार गुरुजीने बाईसे कहा—बोलो! मैं ब्रह्म हूँ।

यह संकल्प तो उनको बड़ा ही प्रतिकूल लगा, पर बोलना आवश्यक था। वे मन-ही-मन 'मैं' के स्थानपर बोलीं—'श्रीकृष्ण ही' और फिर प्रकट रूपमें बोलीं—ब्रह्म हैं।

उन गुरुजीने फिर संकल्प लेनेके लिये कहा—आजसे मेरा श्रीकृष्णसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

बाईने अस्फुट स्वरोंमें मन्द रीतिसे उच्चारण करते हुए कहा—आजसे मेरा सम्बन्ध केवल-केवल श्रीकृष्णसे ही होगा।

यह संकल्प तीन बार दुहराया गया। गुरुजीने फिर दुहरानेके लिये कहा—आजसे हम तुलसी पूजन नहीं करेंगे और भगवच्चरणामृत नहीं लेंगे।

गुरुजीको यह ज्ञात हो गया था कि बाई भगवान् श्रीकृष्णकी उपासिका है, अतः वे बाईके हृदयमें प्रतिष्ठित सगुण साकार भगवान् श्रीकृष्णके स्थानपर निर्गुण निराकार अद्वय ब्रह्मको स्थापित करना चाहते थे और इसीलिये ऐसे संकल्प बाईसे करवा रहे थे, परन्तु बाईकी तुलसीजीके प्रति बचपनसे ही अगाध श्रद्धा थी। तुलसीजीके प्रति बाईके मनमें जो लगाव था, वह जीवनभर उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। वह लगाव आजीवन अत्यन्त घनिष्ठ रहा। बाईके निवास स्थानपर तुलसीजी अवश्य रहती थीं और बाई उनका प्रतिदिन सभक्ति अर्चन-वन्दन करती थीं। वे तुलसी पूजनके बिना रह ही नहीं सकती थीं

और इसी प्रकार भगवच्चरणामृतके बिना जल ग्रहण करना भी उनके लिये असम्भव था। अब अपनी निष्ठाके अनुसार बाईने गुरुजी द्वारा कथित संकल्पको ही बदल दिया और कहा—आजसे हम नित्य तुलसी-पूजन करेंगे और नित्य भगवच्चरणामृत लेंगे।

घरपर आकर बाई गम्भीर विचारमें पड़ गयीं कि श्रीकृष्ण-भक्तिका निषेध होनेके कारण मैं गुरुजीकी आज्ञाका पालन नहीं कर सकती, किन्तु गुरुकी आज्ञाकी अवहेलना भी तो एक अपराध है। इस घटनाके पश्चात् बाईके जीवनमें एक नया मोड़ आया और इस नये मोड़ने बाईको श्रीमहिला-संघसे जोड़ दिया।

महिला संघकी एक सदस्या नर्मदीबाई खेतान थीं, जिनका ससुराल नाथनगरमें था। ये बाईसे मिलीं। प्रथम मिलनमें ही श्रीनर्मदीबाईको ऐसा लगा कि यह मेरी सगी बेटी है और बाईको भी ठीक यही लगा कि ये मेरी सगी माँ हैं। इस माँ-बेटी-सम्बन्धका निर्वाह आजीवन रहा।

श्रीनर्मदीबाई पूज्य श्रीसेठजीके सत्संगके लिये जाने लगीं और साथमें बाईको ले जाना चाहती थीं, परन्तु पिताजीने आज्ञा नहीं दी। जब श्रीनर्मदीबाई जाने लगीं तब बाईने अपने दिवंगत पतिका चित्र दे दिया। स्वर्गाश्रम जाकर नर्मदीबाईने सेठजीको बाईका सारा वृत्त विस्तारसे सुनाया और दिवंगत पतिका चित्र दिखलाया। श्रीसेठजीने वह चित्र अपने पास रख लिया और भगवान् श्रीकृष्णका एक चित्र देकर कहा—उस बाईको यह चित्र दे देना और मेरी ओरसे यह संदेश देना कि ये भगवान् श्रीकृष्ण ही तेरे वास्तविक पति हैं।

स्वर्गाश्रमसे वापस आकर नर्मदीबाईने भगवान् श्रीकृष्णका चित्र बाईको दिया। वह अपनेको धन्य मानने लगी। भगवान् श्रीकृष्ण ही उसके पति हो गये। वह मञ्जरीभावसे भगवान् श्रीकृष्णकी सेवा करने लगी। पूज्य पिता श्रीवैद्यजी उसे दूल्हा सरकार कहने लगे। ये दूल्हा सरकार आज भी उनके घरमें विराजमान हैं।

एक दिन नित्य नियमानुसार प्रातःकाल उठकर बाई जलके लिये कुएँपर गयी, किंतु संयोग विचित्र था। वह कुएँमें गिर पड़ी। कुएँमें गिरकर भी उसे ऐसा लगा कि मैं किसीकी गोदमें आरामसे बैठी हूँ। यह बाईके आराध्यका चमत्कार था। फिर पिताजीने उसे कुएँसे बाहर निकाला।

इस प्रकारके अनेक चमत्कार बाईके जीवनमें घटित हुए। श्राद्ध-पक्ष था।

जन्मदात्री माँने श्राद्धकी रसोई खानेके लिये बाईको बुलाया। बाईने कहा—मैं यह भोजन नहीं करूँगी। मैं तो श्यामसुन्दर हूँ।

इसपर माँने कहा—यदि ऐसा है तो हमें दर्शन मिलना चाहिये।

इतना कहते ही बाईने श्यामसुन्दरके रूपमें दर्शन दिये। तब बाईकी माताजी और उनके पिताजीकी यह धारणा हो गयी कि अपनी बेटीके रूपमें किसी दिव्यात्माका अवतरण हुआ है।

महिला-संघकी मन्त्रिणी फूलबाई नाथनगरमें रहती थी। फूलबाई एक दिन बाईको साथ लेकर महिला-संघ आयी और श्रीचन्दाबाई ढांढनियासे भेंट करवायी। बाईकी श्रीचन्दाबाईसे बहुत देरतक बात होती रही। श्रीचन्दाबाईको ऐसा लगा कि यह कोई दिव्य स्तरकी संत है। श्रीचन्दाबाईके ससुर थे श्रीलोकनाथप्रसादजी ढांढनिया और पूज्य श्रीसेठजी उनके घरपर सत्संगके लिये आया करते थे। इस बार जब सेठजी आये, तब श्रीनर्मदीबाई सेठजीसे मिलानेके लिये बाईको ले गयी। बातचीतके बीच श्रीनर्मदीबाईने बाईके जीवनकी अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाएँ और बातें बतलायीं। इन सबको सुनकर श्रीसेठजीका भी बाईके प्रति आकर्षण हो गया और वे कहने लगे—यह बाई तो अपनी ही है। इसे महिलासंघमें रखकर इसकी बातोंको सुनना चाहिये।

फिर श्रीसेठजीने नर्मदीबाईसे कहा—तू भी महिला-संघमें रहा कर।

श्रीसेठजीकी बात सुनकर श्रीनर्मदीबाईने कहा—बाई तो नाथनगरके श्रीवैद्यजी महाराजकी सुपुत्री है। उनकी आज्ञाके बिना यह महिला-संघमें कैसे रह सकती है?

श्रीसेठजीने कहा—मैं वैद्यजीसे बाईको माँग लूँगा।

इसके बाद श्रीसेठजी, नाथनगर, श्रीवैद्यजीके घरपर गये। अपने घरपर एक महान् संतको आये हुए देखकर वैद्यजीके आनन्दकी सीमा नहीं थी। श्रीसेठजी तो एक विशेष उद्देश्य लेकर आये थे। उन्होंने वैद्यजीसे कहा—आप अपनी बेटी मुझे दे दीजिये।

श्रीवैद्यजीने तुरन्त अपनी जनेऊ अपने हाथमें ली और कहने लगे—यह बेटी तो आपकी ही है। आप सहर्ष ले जाइये।

इसके बाद बाई अपने घर नाथनगरसे महिला-संघमें सदाके लिये चली आयी। महिला-संघकी मन्त्रिणी श्रीफूलबाई यह चाहती थी कि यह नवागन्तुका बाई महिला-संघके कार्यमें हाथ बँटाया करे और कहा—इससे बर्तन मँजवाया करो।

रामप्यारी बाईका बाईसे बड़ा प्यार था। बाईसे रामप्यारी बाईने कहा—मैं बर्तन माँज दूँगी और तुम धो देना।

मँजे हुए बर्तनोंको बाई धोने लगी तो उसके हाथ काले हो गये। हाथकी कालिमाको देखकर वह फूट-फूट करके रोने लगी। बहुत पूछनेके बाद उसने बतलाया—मेरे हाथोंकी कालिमाको देखकर मेरे प्राणधन परम प्रियतम श्रीकृष्णको कितना कष्ट होगा?

बहुत समझाने-बुझानेके बाद उसका रोदन शान्त हुआ। अब महिला-संघकी बहिनें बाईको आदरकी दृष्टिसे देखने लगीं।

इसी प्रकार मन्त्रिणीजीने उसे आरती करनेके लिये कहा, पर वह आरती कर नहीं पायी। भावावेशमें सारा स्थगित हो जाता था।

पूज्य सेठजीने श्रीचन्दाबाईसे और अन्य बहिनोंसे कह रखा था कि तुम सभी जन बाईसे बात किया करो। बात तो होती ही थी, परन्तु एक दिन बाईने कहा—क्यों न हमलोग हवेलीमें बैठकर भगवच्चर्चा करें।

यह बात तो श्रीचन्दाबाईके मनकी थी। हवेलीमें सत्संगका क्रम चल पड़ा। उसमें बड़ा रंग आता था। कभी सच्चर्चा, कभी भगवन्नाम-कीर्तन, कभी नाचना और गाना होने लगा। जब ऐसा होता था, रसका सागर लहराने लगता था। उन सारे प्रसंगोंका विस्तृत वर्णन कर पाना अभी सम्भव नहीं है।

अब लेखकके नाते मेरा एक निवेदन है। आगेके वर्णनमें जहाँ-जहाँ 'भाभीजी' शब्दका प्रयोग दिखलायी दे, तब यही समझना चाहिये कि यह शब्द श्रीचन्दाबाई ढांढनियाके लिये प्रयुक्त हो रहा है।

बाईके जीवनमें भगवन्नाम-संकीर्तनका बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। सम्पर्कमें आनेवाली सभी बहिनों और माताओंको भगवन्नामके जप और संकीर्तनके लिये बाई प्रेरणा देती रहती थीं।

श्रीमहिला-संघमें बाईके साथ नर्मदीबाई सदा रहती थीं। रात-दिन साथ रहते-रहते नर्मदीबाईके ध्यानमें यह आने लगा कि रातमें सोते समय बाई अस्पष्ट स्वरमें प्रस्फुटित रूपसे कुछ-न-कुछ बड़बड़ाया करती है। उन्होंने यह बात भाभीजीको बतलायी—इस बातकी जाँच करनेके लिये भाभीजीने इन दोनोंको रात्रिमें हवेलीमें अपने पास बुलाकर सुला लिया। ध्यानपूर्वक सुननेपर यह ज्ञात हुआ कि बाई किसी मञ्जरीके भावमें आविष्ट होकर श्रीराधा-कृष्णके नित्य

धामकी लीला परिकर मञ्जरियोंसे वार्तालाप करती हैं। वे कभी नाचती हैं, कभी गाती हैं और कभी बातचीत करती हैं। भाभीजी इन बातोंको छिप-छिप करके चुपचाप सुनती थीं। बाईका दिव्य स्वरूप धीरे-धीरे प्रकट होने लगा और उनके प्रति माताओं-बहनोंकी श्रद्धा-भावना उत्तरोत्तर बढ़ने लगी।

धीरे-धीरे भेद खुलता जा रहा था और श्रीरुक्मिणी बाईके अन्तरंग ऐकान्तिक जीवनके सुगुप्त रहस्य प्रकट होते जा रहे थे। ज्ञान नहीं रहता था। इन दिनों बाईमें कभी किसी मञ्जरीका और कभी किसी मञ्जरीका भावावेश होता रहता। जिन मञ्जरियोंका भावावेश होता, उनमें कुछके नाम इस प्रकार हैं— कुन्दन-मञ्जरी, सौभाग्य-मञ्जरी, केलि-मञ्जरी, मदन-मञ्जरी, फूल-मञ्जरी, पुष्प-मञ्जरी, मधु-मञ्जरी, मधुकरी-मञ्जरी, कमल-मञ्जरी। जब जिस मञ्जरीका भावावेश होता, उस मञ्जरीके भावानुसार-सेवानुसार-अधिकारानुसार-पात्रानुसार बाईकी बोलन-हिलन-डुलन-चलन-खेलन-विलसन-विहसन-विहरन होने लगती। श्रीकृष्णके नाम पत्र भी लिखतीं।

श्रीमहिला-संघमें आनेके बाद बाईके जीवनका रंग कुछ और ही हो गया। वह रंग लोकोत्तर था, पूर्णतः अलौकिक था।

नर्मदीबाई चैत्र माससे आषाढ़ मासतक स्वर्गाश्रमके गीता-भवनमें रहा करती थीं। सन् १९५८ के चैत्र मासमें बाई श्रीमहिला-संघमें आयी थीं और अगले वर्ष १९५९ के चैत्र मासमें भाभीजीसे आज्ञा लेकर बाई भी उनके साथ गीता-भवन गयीं। गीता-भवनमें पूज्य श्रीसेठजीका दर्शन करके बाईको बड़ी प्रसन्नता हुई। पूज्य श्रीसेठजीसे तो बाई पहले मिल ही चुकी थीं। पूज्य श्रीभाईजी जब गोरखपुरसे गीता-भवन आये, तब बाईको अपने साथ लेकर नर्मदीबाई उनके पास गयीं। बाई तो श्रीभाईजीको देखते ही अवाक् रह गयीं। भागलपुरमें मन्त्रकी दीक्षा मिलनेवाला प्रसंग आँखोंके सामने तैरने लगा। श्रीनारायण हरिजी जिस दिन दीक्षा देनेवाले थे, उससे पहलीवाली रात्रिमें श्वेत वस्त्रधारी एक संतने स्वप्नमें आकर मन्त्र-दान दिया था। बाईकी प्रबल चाह थी कि कभी इन मन्त्र प्रदाता पूज्य संतका पावन दर्शन मुझे मिले। जीवनके विविध कार्योंको करते हुए बाईकी दोनों आँखें मन्त्र दीक्षा देनेवाले उन पूज्य संतको सदा खोजती रहती थीं। बाईका वह चिर प्रतीक्षित क्षण आज और अब आया। बाईके आश्चर्य और इसीके साथ आनन्दकी सीमा नहीं थी। बाई मन-ही-मन उन्हें बार-बार प्रणाम कर रही थीं।

पूज्य श्रीभाईजीने नर्मदीबाईको और बाईको अपने समीप बैठाया। लगभग एक-डेढ़ घण्टेतक बहुत प्यारपूर्वक बातचीत होती रही। नर्मदीबाईके द्वारा उकसाये जानेपर बाईने श्रीभाईजीको अपने जीवनकी प्रमुख-प्रमुख घटनाएँ अपने मुखसे स्वयं सुनायी। मन्त्र प्रदाता ही जब रुचिपूर्वक जीवनकी बातें सुन रहे हैं, तब कैसा छिपाव या दुराव? बाईने विभिन्न मञ्जरी-भाववाली अपनी आवेश-दशाओंकी भी कुछ बातें संक्षेपमें बतला दी। उन प्रसंगोंको और भाव-दशाओंको सुन-सुन करके श्रीभाईजीको ऐसा लग रहा था कि रुक्मिणी बाईका जीवन भगवत्कृपा और भगवत्प्रेमका मूर्तिमान् स्वरूप है। सिद्ध संतोंको भी ऐसे सरस प्रसंगोंको सुननेका चाव बना रहता है। भाईजीका बाईके प्रति बड़ा स्नेह उमड़ रहा था। उसी उमड़ते प्यारमें श्रीभाईजीने बाईसे कहा—चल, तुमको बाबासे मिला दूँ।

बाईको लेकर श्रीभाईजी बाबाके पास आये और बाबाको बाईका परिचय देते हुए कहने लगे—बाबा! यह वही बिहारवाली बाई है।

इन संतोंके एक शब्द कभी-कभी एक साथ अनेक अर्थोंकी ओर संकेत कर दिया करते हैं, परन्तु बाईको तो आज पदे-पदे, क्षणे-क्षणे विस्मय हो रहा था। जिन्होंने स्वप्नमें आकर मन्त्र प्रदान किया था, उनका दर्शन अभी कुछ क्षण पहले मिला और जिन्होंने चितारोहण करनेसे निषेध किया था, उन संन्यासी संतका दर्शन भी आज ही कुछ क्षणोंके अन्तरसे अभी मिल गया। संन्यासी-वेशमें ये ही श्रीराधाबाबा थे, जिन्होंने उस समय प्रकट होकर चितारोहण-निषेधका निर्देश दिया था। बाईके मनकी स्थिति अद्भुत-से-अद्भुत थी। उनके आनन्दकी सीमा नहीं थी। उनके आनन्दको परमानन्द कहें या महानन्द कहें या अद्भुतानन्द कहें, कुछ कह पाना कठिन हो रहा है।

श्रीभाईजी बाईको साथ लेकर जब श्रीबाबाके पास आये तब 'यह वही बिहारवाली बाई है' कहकर बाईका परिचय दिया था और बाईको देखते ही पूज्य श्रीराधा बाबा भी उमड़ पड़े। बाईको पास बैठा लिया और साथ बैठे श्रीभाईजी भी। श्रीभाईजीने बाईके सम्बन्धमें जितना सुन रखा था, उतना उन्होंने सुनाना आरम्भ किया। आरम्भ किया ही था कि श्रीभाईजीने कहा—बाई! तू ही सुना।

श्रीभाईजीका आदेश सिर माथे था। अब बाईने सुनाना आरम्भ किया। हाँ, बीच-बीचमें श्रीभाईजी वर्णनका स्पष्टीकरण करनेके लिये कभी-कभी

कुछ-कुछ बोलकर सहारा लगा दिया करते थे। यह सारा वर्णन पूज्य श्रीबाबाने सुना। बाईके जीवनकी घटनाको सुनकर बाबाके नेत्र छलक आये। सजल नेत्रोंसे बाबाने भाईजीसे कहा—यह तो मेरी सहोदरा छोटी बहिन है। मैं इसका सिर सहलाऊँगा।

चतुर्थाश्रमी संन्यासी होनेके कारण पूज्य श्रीबाबाका यह कठोर नियम था कि स्त्री और रुपयेका स्पर्श नहीं करना है। यदि भूलसे भी स्पर्श हो जाय तो चौबीस घण्टोंका उपवास करना पड़ता था। भाईजीने बाबाको उनके यति-धर्मकी कठोरताकी स्मृति दिलाते हुए कहा—यह स्त्री शरीरमें है। आप इसका स्पर्श कैसे कर सकेंगे? दिव्य भावसे भावित हुए बाबा अपनी सहोदरा बहिनके सिरको सहलानेके लिये अत्यधिक उत्सुक हो रहे थे। उन्होंने श्रीभाईजीके कथनकी और यति-धर्मके नियमकी रक्षा करनेके लिये एक मध्यम मार्ग सोच लिया। उन्होंने श्रीभाईजीके हाथको अपने हाथसे पकड़ लिया और श्रीभाईजीके करपल्लवसे बाईके शीशको भीगे मन और भीगी आँखोंसे कुछ क्षणोंतक सहलाते रहे।

निमित्त चाहे पूज्य श्रीबाबा ही बने, परन्तु यह बानक तो बन ही गया कि उन मंत्र-प्रदाता संतका वरद-हस्त बाईके शीशपर था। श्रीभाईजीका कर-पल्लव बाईके शीशपर तो था ही, प्रकारान्तरसे पूज्य बाबाका कर-पल्लव भी बाईके शीशपर था। प्रत्यक्ष रूपसे दिखलायी यह दे रहा है कि बाईके शीशपर केवल एकका ही कर-पल्लव है, परन्तु आभ्यन्तरिक स्तरपर परोक्ष तथ्य यह है कि एक ही क्रियामें दो सिद्ध संतोंके कर-पल्लव बाईके शीशपर हैं। बाईके उत्फुल्ल मनमें अमित उल्लास लहरा रहा था। उल्लसित भावोंकी लहरियोंपर कभी लहराती हुई और कभी उन लहरियोंमें डूबती हुई बाईके मनकी स्थिति अवर्णनीय थी।

घटनाओंके विकासने एक लोकोत्तर भव्यताका आलोकपूर्ण लोक सृष्ट कर दिया। पूज्य श्रीसेठजीने प्रथम मिलनमें ही बाईको आध्यात्मिकताके प्रसारके लिये माँग लिया, पूज्य श्रीभाईजीने प्रथम मिलनमें ही सांकेतिक शैलीका आश्रय लेकर बाईके जीवनके एक निकुञ्जात्मक रहस्यकी ओर इशारा कर दिया और पूज्य श्रीबाबाने प्रथम मिलनमें ही प्रकारान्तरसे अपना वरद-हस्त सहोदरा बाईके शीशपर रख दिया, ये प्रसंग स्वत: प्रमाणित करते हैं कि पूज्या बाईके रूपमें

निकुञ्ज-धामकी उस परम स्नेहास्पदा अनुचरीका ही अवतरण हुआ था। उसी दिन बाई पूज्य स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजसे भी मिलीं और उनके भावभरे उद्गारोंने इस तथ्यपर एक गहरी छाप लगा दी थी।

बाई ज्यों ही स्वामीजीके पास आयीं, उन्होंने पूर्णिमाके सिन्धुकी भाँति उमड़कर बाईको अपनी गोदमें खींच लिया और वात्सल्यसे नहला दिया। बाईपर उनका पुत्रीवत् प्यार बह पड़ा और बाई भी उन्हें पितातुल्य मानने लगीं। स्वामीजी महाराजकी परम कृपापात्रा भाव-सुपुत्री श्रीमुक्तेश्वरी बहिन हैं। बाईसे प्रथम मिलन होते ही बहिन मुक्तेश्वरीसे स्वामीजीने उमंगभरे स्वरमें कहा—मुक्ते! देखो!! तुम्हारी सहेली आयी है।

बाईके प्रति उनका वात्सल्य दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा था। इस प्रथम मिलनके बाद जब-जब बाई स्वामीजीसे मिलने जाती थीं, तब-तब उन्हें देखकर स्वामीजी महाराज गद्‌गद हो जाया करते थे। एक बार स्वामीजी अपने भावोंका संगोपन नहीं कर पाये और मुसकुराते हुए विभोर वाणीमें बोले—***बाई! तुम्हारा श्रीराधारानीके निज महलमें नित्य वास है। मैं तो भगवान् कृष्णका सखा हूँ। मेरी पहुँच तो केवल उनके द्वारतक ही है। तुम कृपा करके मुझे भी उनके महलमें प्रवेश करा देना।***

पूज्य स्वामीजीके इन भावभरे उद्गारोंको सुनकर बाई सकुचा गयीं। कुछ उत्तर देते बना नहीं। बाईको यह भावभरी बातचीत कभी विस्मृत नहीं हो पायी और न कभी विस्मृत हो पाया वह पावन दिवस, जब पूज्य श्रीभाईजी और पूज्य श्रीबाबाका दर्शन मिला था। यह निश्चित रूपसे बतला सकना कठिन है कि सन् १९५९ के उस चतुर्मासीय अवधिमें वह कौन-सी तिथि थी और वह कौन-सा वार था। अस्तु, जो भी दिवस रहा हो, वह बाईके जीवनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दिवस था। बाई रह-रह करके अपने भाग्यकी सराहना कर रही थी। ये दोनों सिद्ध संत कभी अलग होते ही नहीं, सदा साथ रहते हैं। ऐसा नित्य साहचर्य अभूतपूर्व ही है।

रंगभरे प्रसंग

पूज्य श्रीभाईजी और पूज्य श्रीबाबासे मिलन होना बाईके जीवनका एक अति महत्त्वपूर्ण प्रसंग है। इन विभूति-द्वयसे मिलकर बाईका मन आनन्दमें डूबा रहता था। वह अधिक समय अपने कमरेके एकान्तमें ही रहा करती थीं।

एक बार बाई गीता-भवनके अपने कमरेमें बिल्कुल अकेली थीं। नर्मदीबाई पूज्य श्रीसेठजीके सत्संगमें गयी हुई थीं। आकर उन्होंने देखा कि कमरेका दरवाजा बन्द है। कौतूहलवशात् नर्मदीबाई दरवाजेपर कान लगाकर टोह लेने लगीं कि कमरेके अन्दर क्या हो रहा है। दरवाजेसे घुँघरूके बजनेकी हल्की-हल्की आवाज आ रही थी, परन्तु बात बहुत स्पष्ट नहीं हो सकी। कुछ देर बाद बाईने दरवाजा खोल दिया। कमरेके भीतर जाकर नर्मदीबाईने पूछा—रुक्मा! तूने इतनी देरतक दरवाजा क्यों नहीं खोला?

प्रश्न सुनकर भी बाईने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वे मौन बैठी रहीं। तभी नर्मदीबाईको कमरेमें एक ओर छोटे-छोटे दो घुँघरू पड़े हुए दिखलायी दिये। नर्मदीबाईने तत्काल दूसरा प्रश्न किया—बाई! घुँघरू कहाँसे आये? जब मैं बाहर थी, तब कमरेमेंसे नृत्यकी हलकी-हलकी आवाज आ रही थी। तुम्हारे पास कौन था?

अब बाईने बतलाना आरम्भ किया—माँ! क्या बतलाऊँ? ***'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो ना कोई',*** यह जिन्होंने गाया है, वे ही मीरा बाई प्यारमें भरी-भरी आयी थीं। ज्यों ही आपने दरवाजा खटखटाया, त्यों ही वे अदृश्य हो गयीं। हड़बड़ाहटमें उनके दो घुँघरू गिर गये।

एक वर्षके बादकी एक और रोचक घटना है। उस समय गीता-भवनकी व्यवस्थाके अनुसार एक व्यक्ति प्रतिदिन प्रात:काल प्रत्येक कमरेमें आकर हर सत्संगी भाई-बहिनसे पूछता कि आपके लिये बाजारसे क्या सामान लाना है। वह व्यक्ति रोज नर्मदीबाईसे भी पूछने आया करता था और वे उसे आवश्यक सामान लानेके लिये कह दिया करती थीं। एक दिन वह व्यक्ति बतलाये हुए सामान लेकर शामके समय नर्मदीबाईके पास आया और साथमें आधा सेर काला जामुन भी लेते आया। वे जामुन खूब बड़े-बड़े थे और उनमें गुठली नहीं थी। ऐसे बढ़िया काले जामुन वह नर्मदीबाईको देने लगा। नर्मदीबाईने उस व्यक्तिसे कहा—जामुन लानेके लिये तो मैंने कहा ही नहीं था।

वह व्यक्ति बोला—आपने तो नहीं कहा पर आपके यहाँका एक छोरा कहनेके लिये आया था कि आप बाजारसे आधा सेर काला जामुन बढ़िया-बढ़िया देखकर लेते आइयेगा, भूलियेगा मत, अवश्य लाइयेगा। मैं पूजा करते समय मौन था, अत: सिर हिलाकर हाँ कह दिया। फिर वह चला गया, परन्तु

जाते-जाते एक बार फिर बोला कि बढ़िया काला जामुन लाना, भूल मत जाइयेगा।

रुक्मिणी बाईके पास आकर नर्मदीबाईने पूछा—ऐ रुक्मा! तुमने किसी लड़केको गीता-भवनवाले व्यक्तिके पास बाजारसे जामुन लानेकी बात कहनेके लिये भेजा था क्या?

बाईने कहा—माँ! मैंने तो किसीको भी नहीं भेजा, परन्तु एक बात है, आज प्रात:कालसे ही युगल सरकारको जामुनका भोग लगानेकी चाह मनमें रह-रह करके उठ रही थी। मैं आपको जामुन मँगवानेके लिये कहनेवाली थी। अब जामुन आ गया है तो उसका भोग लगा दिया जायगा।

नर्मदीबाईके मनमें एक प्रश्न खड़ा हुआ था कि वह बालक कौन था, पर मनने ही उसका समाधान दे दिया—होगा वही छोरा, जो गाय चराता है, गोबर उठाता है, घड़े उँचवाता है और अपने निजजनोंके लिये न जाने क्या-क्या करता रहता है। बाईके मनमें उठी हुई चाहको तुरन्त पूर्ण करनेके लिये ही उस छोरेने यह खेल रचा है। अचानक एक दिन अपराह्न कालके चार बजे ठाकुरके सामने किशमिश, हलुआ, पकौड़ी आदि स्वादिष्ट पदार्थ रखे हुए मिले। बाईने अपने साथ रहनेवाली बहिनोंसे पूछा—यह भोग किसने पधराया है?

सभी बहिनें मौन थीं। किसीने भी भोगके लिये वे सुन्दर पदार्थ नहीं पधराये थे। सभीसे नकारात्मक उत्तर मिलनेपर बाई ही बोल पड़ीं—मेरे मनमें ही यह बात आती थी कि मैं ठाकुरको मेवा, हलुआ, पकौड़ी आदिका भोग लगाऊँ। ठाकुरने मेरी इच्छा जानकर स्वयं ही यह ढंग बना लिया।

गीता-भवनकी एक और घटना उल्लेखनीय है। सुमित्रा बाईको साथ लेकर बाई पूज्य श्रीसेठजीका प्रवचन सुननेके लिये जाया करती थीं। सत्संग सुनकर बाई अपने निवास-स्थानपर आयीं। बाईने सुमित्रा बाईसे पानी माँगा। सुमित्रा बाई पानी लानेके लिये अन्दर गयीं। अंदर कई बक्स रखे हुए थे। बक्सके पास भूमिपर उन्हें एक काला पत्थर दिखलायी दिया। वे काला पत्थर हाथमें लेकर बाईके पास आयीं। बाईने पत्थर हाथमें ले लिया और गम्भीर हो गयीं। उस पत्थरपर लाल तिलक बना हुआ था। बाईने कहा—ये तो श्रीराधारमणजी प्रकट हुए हैं। इन्हें पूजाघरके सिंहासनपर विराजित कीजिये। तुरन्त सवा सेर दूधसे स्नान करवाइये। सवा सेर मिष्ठान्नका भोग लगाइये।

अभिषेक, पूजा, भोग आदिका तत्काल प्रबन्ध किया गया। जब बाई गीता-भवनसे भागलपुर लौट कर आयीं तब श्रीराधारमणजी भी उनके साथ थे। जो आजतक श्रीमहिला-संघमें पूजित हो रहे हैं।

बाई वृन्दावनमें रसिक शेखर श्रीहरिदासजी महाराजके सेव्य श्रीबाँके-बिहारीजीके दर्शनके लिये गयीं। बाईकी दर्शनकी पद्धति कुछ निराली ही थी। साधारण दर्शनार्थियोंकी तरह दर्शन करके तुरन्त चल देना बाईको कभी भी प्रिय नहीं रहा। बाईका स्वभाव था बहुत देरतक खड़ी रहकर दर्शन करना, वह भी भावपूर्ण मुद्रामें एकटक निहारते रहना। समीपस्थ नर्मदीबाईको सदा यही लगता था कि बाई श्रीबाँके बिहारीजीसे बात कर रही है।

एक दिन बाई श्रीबाँके बिहारीजीके दर्शन करके लौटकर आयीं तो नर्मदीबाईने उनके हाथमें मन्दिरके प्रसादकी एक कुलिया देखा और फिर प्रश्न किया—यह प्रसाद तुमको किसने दिया? मन्दिरके किस गोसाँईंसे तुमने बातचीत की थी?

बाईने मधुर स्वरमें उत्तर दिया—माँ! मैं न तो किसी गोसाँईंको जानती हूँ, न किसी गोसाँईंसे मैंने बात की और न किसी व्यक्तिने मुझे प्रसाद दिया। मैं खड़ी-खड़ी दर्शन कर रही थी, उसी समय एक छोटा-सा नीलसुन्दर बालक मन्दिरसे बाहर निकला, मेरे पास आया और मेरे हाथपर यह प्रसाद रखकर वह झट अदृश्य हो गया। बाईका उनके प्राण-प्रियतम श्रीकृष्णके साथ अनोखा प्यारभरा सम्बन्ध है और इसीसे वह रंगभरे, उमंगभरे विलास बाईके साथ करता रहता है।

निर्धारित कार्यक्रमके अनुसार वृन्दावनसे गोरखपुर जानेकी घड़ी समीप आ गयी। ज्यों ही प्रस्थानका समय आया, वे एक वृक्षको पकड़ कर रोने लगीं—क्या मुझे श्रीधाम छोड़ना पड़ेगा? क्या श्रीबाँके बिहारीजीके नित्य-दर्शनसे वंचित होना पड़ेगा?

प्राण-प्रियतम श्रीकृष्णके लिये उनका रोदन असह्य हो गया। तत्काल उस वृक्षसे श्रीबाँके बिहारीजी प्रकट हो गये और बड़ी लटकभरी भाषामें बोले—क्यों रोती हो? चलो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।

यह तो बाईकी मनचाही बात थी। श्रीबाँके बिहारीजीको देखते ही और उनकी वाणी सुनते ही बाई अपना रोना भूल गयीं।

भगवन्नाम-संकीर्तनका प्रवाह

पूज्य श्रीभाईजी तथा पूज्य श्रीबाबासे मिलन होनेके बाद बाईके जीवनमें भगवन्नाम-संकीर्तनका ज्वर-सा आ गया। पूज्य श्रीभाईजी स्वयं मुक्त स्वरसे कहा करते थे कि मेरे जीवनमें जो कुछ उपलब्धि या अच्छाई है, वह सब भगवन्नामका चमत्कार है और भगवन्नामके आश्रयसे जीवनमें महान्-से-महान् वस्तुकी प्राप्ति हो सकती है। स्वर्गाश्रमके गीता-भवनमें पूज्य श्रीभाईजी तथा पूज्य श्रीबाबासे मिलकर जब बाई भागलपुर वापस आयीं, उसके बादसे भगवन्नाम-संकीर्तनके आयोजनका ताँता ही लग गया। भगवन्नाम-संकीर्तनमें अनोखा उत्साह दिखलायी देने लगा। कभी सात दिनका, कभी नौ दिनका, कभी तेरह दिनका और कभी सोलह दिनका अखण्ड भगवन्नाम-संकीर्तन होने लगा। एक बार संकल्पके अनुसार सोलह दिवसीय अखण्ड भगवन्नाम-संकीर्तनका शुभारम्भ श्रीमहिला-संघमें हो गया। सोलह दिवसीय अवधिके बीच एक दिन संकीर्तन बहुत उल्लासके साथ हो रहा था। बाई ऊपरी मंजिलके अपने कमरेमें थीं। उस समय सभी बहिनें एक-दूसरेसे होड़ लगाकर कीर्तन कर रही थीं। कीर्तन करनेवाली सब बहिनें जानती थीं कि संकीर्तन जितनी जोरसे होता है, बाईको उतनी ही अधिक प्रसन्नता होती है तथा उल्लासमय कीर्तनसे बाई शीघ्र और सहज ही भावावेशमें आ जाती हैं। बाईकी भावावेशमयी स्थितिका दर्शन करनेका चाव सभीमें बना रहता था। इसी चावको लिये-लिये बहिनोंद्वारा जो संकीर्तन हो रहा था, उससे सारा श्रीमहिला-संघ गूँज रहा था। कीर्तनके बोल थे—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

एकादशीका दिन था। रात्रिके लगभग ग्यारह बज रहे होंगे। दिशा-दिशाको प्रतिगुञ्जित करती हुई संकीर्तन-ध्वनिने बाईको आकृष्ट कर लिया। कीर्तन-स्वरपर विलुब्ध और विमुग्ध बाई ऊपरसे नीचे आ गयीं। बाईके आते ही कीर्तनका स्वर और अधिक ऊँचा हो गया। एक ओर स्वर तुमुलतर हुआ और दूसरी ओर इसीके साथ नृत्य भी होने लगा। सभी बहिनें हॉलमें घूम-घूम करके नृत्य कर रही थीं और उच्च स्वरसे कीर्तन भी हो रहा था।

अचानक तुमुल स्वरके मध्य एक मन्द और मधुर स्वर सबके कानमें पड़ा। यह मन्द और मधुर स्वर कीर्तनके तुमुल घोषसे सर्वथा अलग था और ऐसा

लग रहा था, मानो यह स्वर पीछेकी ओरसे धीरे-धीरे बहता हुआ चला आ रहा है। इस स्वरके बोल थे—*'राधे-राधे-राधे-राधे'*। यह भी स्पष्ट लग रहा था कि स्वर दो कण्ठोंसे आ रहा है, मानो एक महिला और एक पुरुष परस्पर मिलकर मधुर-मधुर, धीरे-धीरे कीर्तन कर रहे हैं। आश्चर्य इस बातका था कि तुमुल ध्वनिसे होते हुए कीर्तनके बीचमें भी वह मन्द-मन्द, मधुर-मधुर स्वर सभी बहिनोंको स्पष्ट सुनायी दे रहा था। बाईके मनमें जिज्ञासा जाग उठी कि श्रीराधा नामका मधुर संकीर्तन कौन कर रहा है? बाईने अपने हाथके इशारेसे सभी बहिनोंको मन्द स्वरमें संकीर्तन करनेका संकेत दिया। संकीर्तनकी ध्वनि और गति दोनोंके मन्द होनेपर भी श्रीराधा-नाम-संकीर्तनका मन्द और मधुर स्वर वैसे ही सुनायी देता रहा। अब संकीर्तन स्वरके साथ-साथ घुँघरूकी भी मीठी-मीठी आवाज आने लगी, मानो कीर्तनके साथ-साथ नृत्य भी हो रहा हो। सभीके मनकी उत्सुकता यह जाननेके लिये बढ़ती चली जा रही थी कि श्रीराधा-नामका यह कीर्तन कहाँ हो रहा है और कौन कर रहा है? बाईने सभी उपस्थित बहिनोंसे कहा—आज हमलोगोंको श्रीराधे-नाम-महामन्त्र मिल गया है। यह मन्त्र प्रछन्न रूपसे स्वयं श्रीराधा-कृष्णने दिया है।

इतना कहकर बाई मौन हो गयीं और फिर श्रीराधा-नामका संकीर्तन होने लगा। आज अद्भुत उल्लास था। श्रीराधा-नामका संकीर्तन उफनते उत्साहके साथ होने लगा। अब महामन्त्रके स्थानपर राधे-राधे-नामके संकीर्तनकी धारा बह चली। बीच-बीचमें कभी-कभी *'हरि बोल, हरि बोल'* का संकीर्तन भी होता था।

एक बार श्रीमहिला-संघमें *'हरि बोल हरि बोल,'* का कीर्तन हो रहा था। कीर्तनके समय अचानक एक मटकी आकर फूट गयी। बाईने कहा—यह मटकी चिन्मय वृन्दावनसे आयी है। फिर तो सभी बहिनें चटसे मटकीके टुकड़ोंको उठा-उठा करके दही चाटने लगीं।

अब तो भगवन्नाम-संकीर्तनमें प्राय: ही कुछ-न-कुछ अप्रत्याशित-अनुमानातीत घटनाएँ होने लगीं। एक बार कीर्तनके मध्य दो सुपारी आकर गिरी। उनमेंसे एक श्याम वर्णकी थी और दूसरी पीत वर्णकी। युगल वर्णको देखकर बाईने तुरन्त कहा—यह तो दिव्य लोकसे आयी है। इनका वर्ण अद्भुत है। यह सुपारी नहीं है, बल्कि इस रूपमें श्रीराधारानी और श्रीश्यामसुन्दर ही पधारे हैं।

ये दोनों सुपारियाँ पूजाघरमें पधरा दी गयीं। एक बार श्रीमहिला-संघमें

इक्कीस दिनका अखण्ड श्रीराधा-नाम-संकीर्तन प्रारम्भ हुआ। कीर्तनमें एक-दो नहीं, झुण्ड-की-झुण्ड स्त्रियाँ और लड़कियाँ भाग लिया करती थीं और मिलकर कीर्तन करती थीं। उस समुदायमें मञ्जु-नामकी भी एक लड़की थी। वह सात वर्षकी थी। वह रात्रिके समय कीर्तन कर रही थी। प्राय: रात्रिके समय कीर्तन करनेवाली स्त्रियों और लड़कियोंकी संख्या दिनकी अपेक्षा अधिक रहा करती थी। सभी स्वर-से-स्वर मिलाकर जोर-जोरसे कीर्तन करती थीं। कीर्तनमें झाँझ, घण्टा, करताल आदि वाद्योंका भी उपयोग होता था।

कीर्तनका यह उल्लास श्रीमहिला-संघकी चहारदीवारीको पार करके नगरके कई घरोंको पवित्र बनाने लगा। नगरमें जहाँ भी श्रीराधा-नाम-संकीर्तन होता, बाई वहाँ ही पहुँच जातीं। वे स्वयं भी कीर्तन करतीं, कीर्तनका नेतृत्व करतीं और उल्लासमें नृत्य करने लगतीं। सभीके मनमें यह स्पृहा बनी रहती कि यदि हमारे घर कीर्तन होगा तो बाई अवश्य आयेंगी। इस सात्त्विक स्पृहाका परिणाम यह होता कि वह बहिन कीर्तनका कार्यक्रम बनाकर बाईको सूचना देती कि आज मेरे यहाँ चौबीस घण्टेका अखण्ड कीर्तन है। इस कार्यक्रमके सम्पन्न होते-न-होते दूसरा निमंत्रण आ जाता। अब निमंत्रण-पर-निमंत्रण आने लगे। कोई निमंत्रण एक दिवसीय, कोई दो दिवसीय, कोई तीन दिवसीय और कोई सप्त दिवसीय होता था। नगरमें कीर्तनकी धूम मच गयी। श्रीमहिला-संघमें तो जब-तब दिन या रातमें कीर्तन-ध्वनि गुञ्जित होती ही रहती थी, परन्तु अब नगरके अनेक घर श्रीराधा-नामकी परम पावनी संकीर्तन-ध्वनिसे गुंजित होने लगे। नगरमें राधा-नाम-संकीर्तनकी सरिता बह चली। कोई-कोई बहिन अपने घर और आँगनको विविध प्रकारसे सजाती। आँगनमें अल्पना, द्वारपर वन्दनवार, मंदिरमें फूलमाला आदिकी छवि बहुत मन मोहिनी होती। बहिनोंका उल्लास ऐसा होता कि किसीको दिनका और रातका ज्ञान नहीं रहता। कब दिन हुआ कब रात हुई, कब सोना है, कब खाना है। इन सबको भुलाकर बस एक ही मद चढ़ा रहता और वह मद था श्रीराधा-नाम-संकीर्तनका तथा प्रिया-प्रियतमकी सेवाका।

बाईकी अभिलाषाने एक नया कार्यक्रम और अपना लिया। संकीर्तनकी भिक्षा माँगनेके लिये दो बहिनें घर-घर जातीं और अपनी झोली फैलाकर गृहस्वामिनीसे याचना करतीं—*'भिक्षां देहि, भिक्षां देहि'*।

वे माताएँ समझ नहीं पातीं कि याचनाका आशय क्या है। गृहस्वामिनीके पूछनेपर वे दोनों कहतीं—हमें श्रीराधा-नामकी भिक्षा चाहिये। आप अपने घरमें श्रीराधा-नामका-संकीर्तन करवाइये।

इस प्रस्तावको वे सहर्ष स्वीकार कर लेतीं और तीन या पाँच या सात दिनोंके अखण्ड कीर्तनके आयोजन रूपी भिक्षा माँग लातीं। एक पुस्तिकामें आयोजनका विवरण लिख लिया जाता कि किस घरमें किस दिनसे कितनी अवधिका श्रीराधा-नाम अखण्ड संकीर्तन होगा। जब-जब आयोजनके अनुसार अखण्ड कीर्तनका शुभारम्भ होता, बाई किसी न किसीको कीर्तनके संचालनके लिये अवश्य भेजती थीं। इस कीर्तनका प्रचार इतना व्यापक हुआ कि केवल भागलपुर ही नहीं, आस-पासके कुछ नगरोंमें भी अखण्ड श्रीराधा-नाम-संकीर्तनकी धारा बह चली। जहाँ-जहाँ संकीर्तन होता वहाँ-वहाँ हृदयस्पर्शी सात्त्विकता व्याप्त रहती।

विरहाकुल अन्तर

संकीर्तनमें नामामृतका जो सतत पान हुआ, गाये गये पदोंमें वर्णित लीलाओंका जो सुखद श्रवण हुआ और जीवनमें समय-समय पर जो दिव्य अनुभूतियाँ हुई, उन सबने बाईकी जीवन-धाराको प्रभावित तो किया ही, परन्तु सबसे अधिक प्रभावित किया पूज्य श्रीभाईजीकी भक्ति-भावपूर्ण पद रचनाओंने। पूज्य श्रीभाईजीका एक पद है—

एक लालसा मन महँ धारौं।
बंसी-बट कालिन्दी-तट नट-नागर नित्य निहारौं॥

पूज्य श्रीभाईजीके एक पदको बाई बराबर गाया करतीं। वह पद है—

प्रियतम से मिलने को जिसके प्राण कर उठे हाहाकार।
गिना नहीं उसने पथ की दूरी को, भय को किसी प्रकार॥

अब बाईके प्रेमातुर मनकी भीतरी माँग कुछ और ही हो गयी थी। पुनरावृत्ति-दोष तो होगा, परन्तु इस दोषको सहन करते हुए फिरसे कहा जा सकता है कि बाईकी भीतरी माँग थी ***'परमानन्द भूलि जग सगरौ स्यामहिं स्याम पुकारौं'।*** दिन-प्रतिदिन बाईकी एकान्त-प्रियता बढ़ती जा रही थी। श्रीमहिला- संघके अपने कमरेमें बैठकर कपाट बन्द कर लेतीं और प्रियतम श्रीकृष्णको आर्त-स्वरसे पुकारने लगतीं। जब वेदना बहुत बढ़ जाती, तो वे पत्र लिखने बैठ जाती।

पत्रोंको लिखनेका क्रम कई वर्षोंतक चला। कमरेका एकान्त अन्तरके भावोंको उद्दीप्त कर देता था और आँसुओंकी सरितामें बहते-बहते वे यमुना-तट-स्थित निकुञ्ज-द्वारपर पहुँच जाती थीं। अन्तमें विरह-व्यथिता बाई परम प्रेमास्पद श्रीकृष्णके चरणोंपर अपना सर्वस्व समर्पित करती हुई पूज्य श्रीभाईजीके शब्दोंमें बोल पड़ती—

सौंप दिये मन प्राण तुम्हीं को सौंप दिये ममता अभिमान।
जब, जैसे, जी चाहे बरतो, अपनी वस्तु सर्वथा जान॥

बाई पत्र लिखनेमें कितनी ही व्यस्त हों, किन्तु उनके मनमें तो पूज्य श्रीभाईजी और पूज्य श्रीबाबाके प्रति एक अनोखा चुम्बकीय आकर्षण था और कुछ ही दिनों बाद नर्मदीबाई और कुछ अन्य बहिनोंके साथ बाई स्वर्गाश्रम चली आयीं। बाई गीता-भवनके कमरेमें ठहरी थीं और यदा-कदा पूज्य श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये डालमिया कोठी जाया करती थीं।

एक दिन बाई सत्संगके लिये गीता-भवन गयी हुई थीं। उसी समय पूज्य श्रीभाईजी उनसे मिलनेके लिये उनके कमरेमें आये। संयोगवशात् श्रीभाईजीकी दृष्टि सामने रखी उस कापीपर पड़ गयी, जिसमें बाई अपने प्रियतम श्रीकृष्णके नाम पत्र लिखा करती थीं। श्रीभाईजीने उस कापीके पत्रोंको पढ़ना आरम्भ कर दिया। एक-एक करके कई पत्र श्रीभाईजी पढ़ गये, बाई सहमी-सी खड़ी रहीं। श्रीभाईजीने कहा—इन परम पवित्र भावोंका ग्राहक कामलोलुप जगत्‌में भला कौन है? पत्र तो लिखो, पर इस कागजपर नहीं, मानस-पटलपर और मन-ही-मन चुपचाप उन युगल चरणोंके प्रति अर्पित करती रहो।

बाई नतमस्तक थीं। उन्होंने पूज्य श्रीभाईजीके निर्देशको सदैवके लिये स्वीकार कर लिया। फिर बाईने जीवनमें कभी न लिखनेका संकल्प भी ले लिया।

दिव्य श्रीकृष्ण-भावावेश

स्वर्गाश्रमसे लौटकर आनेके बाद बाईकी भावना यही थी कि सम्पर्कमें आनेवाली प्रत्येक महिलाका जीवन जागतिकतासे ऊपर उठकर श्रीराधा-कृष्णकी अमला प्रीतिसे सुवासित हो जाय। भगवन्नाम-संकीर्तनके प्रचारके साथ-साथ बाईके जीवनके जो प्रसंग सामने आये, उनसे नवीन परिवर्तनकी झलक मिलती है।

अब बाईके आचार-विचार-व्यवहारमें एक परिवर्तन स्पष्ट रूपसे दिखलायी देने लगा। उनका बोलना, उनका देखना, उनका चलना, उनका कहना, उनका

मिलना ऐसा होता था, मानो बाईके भीतर प्रियतम श्रीकृष्ण विराजित हैं और वे भीतर बैठे हुए सम्पूर्ण बाह्य चेष्टाओंको संचालित, नियन्त्रित कर रहे हैं।

मञ्जरी भावसे प्रियतम श्रीकृष्णका सतत चिन्तन करते-करते बाईमें श्रीकृष्ण-भावका उन्मेष हो गया।

श्रीराधाष्टमी-महोत्सवके अवसरपर सभी बहिनें पूज्य श्रीभाईजीसे एकान्तमें बातचीत कर रही थीं। बातचीतके प्रवाहमें नर्मदीबाईने पूछा—भाईजी! मेरी रुक्मा, जो अभी आपके सामने बैठी है, इसमें समय-समयपर भिन्न-भिन्न आवेश होते रहते हैं। कभी इस मञ्जरीका, कभी उस मञ्जरीका, कभी चैतन्य महाप्रभुका, कभी श्रीकृष्णका, इसमें भी कभी छोटे श्रीकृष्णका, कभी बड़े श्रीकृष्णका आवेश होता है। जैसा आवेश होता है, उसीके अनुसार बोलना, उठना, बैठना, खाना, पीना होने लगता है। यह सब क्या है? मैं तो बहुत दिनोंसे इस बारेमें आपसे पूछताछ करना चाहती थी, संयोग आज बन पाया।

प्रश्नको सुनकर पूज्य श्रीभाईजीके अधरोंपर हलकी सी मुसकान फैल गयी। थोड़ी देर मौन रहकर फिर बोले—***इन भावावेशोंके प्रति अनास्था नहीं होनी चाहिये और न रुक्मिणी बाईके प्रति अनादर। इस रुक्मिणीमें कोई दिखावा या बनावट नहीं है। रुक्मिणीसे किसी प्रकारकी अन्यथा चेष्टा हो ही नहीं सकती। जिन-जिन आवेशोंकी चर्चा तुम कर रही हो, ये वस्तुतः आवेशावतार हैं। परम सात्त्विक जीवनमें ही इन आवेशोंका अवतरण होता है, परन्तु एक सावधानी बहुत आवश्यक है। इसे जहाँतक हो सके, जगत्‌की दृष्टिसे बचाकर रखना चाहिये। यह प्रचार या दिखावेकी चीज है ही नहीं।***

पूज्य श्रीभाईजीके विचारोंको सुनकर नर्मदीबाई और भाभीजीका मन पूर्ण रूपसे सन्देह रहित हो गया। उनके कथनने एक ऐसी छाप लगा दी, जिससे सभी प्रकारके तर्क, संदेह सदाके लिये समाप्त हो गये।

श्रीमहिला-संघमें बाईका रसमय व्यक्तित्व सबके लिये आकर्षणका बिन्दु बना हुआ था। जो भी आती, चाहे किसी कामसे आयी हों, वे कुछ देरके लिये बाईके समीप बैठना चाहतीं। उस समय जो रंग उछलता था, जो उमंग व्याप्त रहती थी, उस उमंगको और रंगको वही जानती है, जिसने अपनी आँखोंसे देखा हो। अब तो बाईका शृंगार करना और श्रीकृष्ण-वेशमें सजना एक प्रकारसे दैनिक जीवनका सहज क्रम ही बन गया था।

श्रीकृष्ण-भावमय हास-परिहास और लीला-विलासमें समय व्यतीत हो रहा था, तभी स्वर्गाश्रमकी यात्राका समय समीप आ गया। सन् १९६१ की राधाष्टमीकी बात है, जब बाई गोरखपुरमें थीं और उनके कानोंमें षोडशगीतकी चर्चा पड़ी। इन सोलह पदोंके प्रति पूज्य श्रीबाबाका आन्तरिक लगाव था। पूज्य श्रीभाईजीकी कृति, पूज्य श्रीबाबाद्वारा वस्तु-गुण-गरिमा-गायन और सोलह पदोंके अन्तर्गत भावधाराकी दिव्यता, इन सभीने बाईके मनको मोह लिया और अब बाईका पूर्ण प्रयास रहने लगा कि ये षोडशगीत साधक-साधिकाओंकी साधनाका एक प्रमुख अंग बन जाय। बाईके प्रयाससे षोडशगीतके पाठका खूब प्रचार हुआ।

बाई जब-तब अवसर देखते ही बहिनों और माताओंसे कहा करती थीं—जहाँ श्रीराधा-नाम-संकीर्तन होता है, जहाँ श्रीमद्भागवतका पाठ होता है, जहाँ श्रीठाकुरजीकी सेवा होती है, जहाँ जप-ध्यान होता है, वहाँ श्रीकृष्ण सदैव विराजते हैं और जहाँ श्रीकृष्ण विराज रहे हों, वहाँ वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा न हों, ऐसा हो ही नहीं सकता। हमलोग देखनेकी चेष्टा करें तो अवश्य दिखलायी देंगे। जहाँ भी भगवदीय अनुष्ठान होते हैं, वहाँ श्रीप्रिया-प्रियतम विराजते हैं। तुमलोग उन्हें देखना चाहोगी, उनसे खेलना चाहोगी तो वे निरावरण रूपसे तुम्हारे सामने होंगे और प्रत्यक्ष रूपमें विहार करेंगे।

अब बाईके प्रयाससे स्थान-स्थानपर भगवदीय अनुष्ठान एवं भगवन्नाम-कीर्तनका क्रम चल पड़ा। सभी जगह प्रेमोल्लासकी मेघमाला रसकी वर्षा करती रहती थी। बाईने बहुतोंको ठाकुर-सेवा प्रदान की।

भागलपुर रहकर भी बाईके मनमें गोरखपुर जानेकी ललक बनी रहती थी। जीवन-सर्वस्व पूज्य श्रीभाईजीके सांनिध्यको वे एक स्पृहणीय सौभाग्य समझती थीं। बाईने पूज्य श्रीभाईजीको एक नहीं दो पत्र लिखकर यह अनुरोध किया कि आप मुझे एक बार गोरखपुर बुला लीजिये। जब दूसरा पत्र मिला तो रुक्मिणी बाईको पूज्य श्रीभाईजीने एक पत्र लिखा। पत्र लिखनेका उद्देश्य यह था कि अभी गीतावाटिकामें परिस्थितिकी अनुकूलताका अभाव है। तुम्हारा व्यक्तित्व जैसा अनुपम है, उसके अनुरूप अभी परिस्थिति नहीं है। पूज्य श्रीभाईजीने जो पत्र लिखा, उसका मुख्य अंश नीचे दिया जा रहा है—

तुम्हारे दो बड़े सुन्दर, मधुर पत्र मिले। तुम्हारे पवित्र भाव विशुद्ध रस पूर्ण

होनेके कारण बड़े ही आनन्ददायक होते हैं। इधर बहुत अधिक व्यस्त रहनेके कारण पत्र नहीं लिख पाया। कागज-कलमका उपयोग ही नहीं कर सका, पत्रके लिये। मानसिक पत्र बहुत शीघ्र-शीघ्र बहुत-से लिखे, अब भी लिखता रहता हूँ और उनका मानस उत्तर भी मिलता है। बीचमें मेरा तथा सावित्रीकी माँका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहा तथा बाबासे मिलने आनेवालोंकी बेहद भीड़ रही। तुमको जान-बूझकर ही आनेके लिये नहीं लिखा। बहुत तरहके लोगोंकी भीड़-भाड़में तुम्हारा आना, तुम्हारी स्वरूप स्थितिके अनुकूल मुझे नहीं जँचा। तुम भीड़-भाड़की बाजारू साधिका नहीं हो। तुम्हारा अपना एक ऊँचा स्थान है और उसकी मर्यादाका संरक्षण होना चाहिये। इसीसे तुमको शरीरसे नहीं बुलाया।

फिर शरीरके मिलने-बिछुड़नेका महत्त्व ही क्या है? वास्तविक मिलन वही है जो इस शरीरकी सीमामें आबद्ध नहीं है। स्थान समयके आधीन नहीं है। जो नित्य है, सर्वत्र है और असीम है, वह मिलन अति पावन, अत्यन्त मधुर तथा परमाह्लादमय है। उसमें कभी वियोग-बिछोहकी कल्पना ही नहीं है, न कभी उसकी मधुरतामें ही कहीं कोई कमी हो सकती है। कोई भी बाहरी व्यवधान उसमें तनिक भी बाधक नहीं हो सकता। उसमें न दूरी है, न संकोच है, न भय है, न शंका है, न सहम है, न वहम है, न जरा भी कहीं कुछ भी छिपाव-अलगाव है। वह सदा ही निरावरण सत्य है। उसी मिलनकी अनुभूति सदा होनी चाहिये।

भागलपुर आनेका विचार बहुत दिनोंसे है, प्रयास भी किया गया पर पाञ्चभौतिक शरीर प्रारब्धाधीन है। पता नहीं, कब आना होगा, होगा या नहीं होगा। मनसे तो आना-जाना होता ही है। सदा ही।

तुम्हारी मधुर रस-भावना, निरन्तर पवित्रतम प्रेम-समुद्रकी ओर बढ़ती ही रहे।

इस पत्रमें बाईके परम दिव्य भावमय स्वरूप-स्थितिकी पूज्य श्रीभाईजी-जैसे रसमार्गके चूडान्त मर्मज्ञद्वारा स्पष्ट स्वीकृति है तो इसीके साथ संत-साधक-सांसारिकके समक्ष यह स्पष्ट घोषणा भी है कि बाईका व्यक्तित्व जागतिकतासे बहुत-बहुत ऊँचा है, जिसकी अन्तरकी रसधारा सदैव श्रीप्रिया-प्रियतमके रससिन्धुकी ओर अविरल कल-कल प्रवाहित होती रहती है। परम पैनी दृष्टि रखनेवाले महाभावोदधि स्वरूप पूज्य श्रीभाईजीने बाईके भावमय व्यक्तित्वका जैसा मूल्यांकन इस पत्रमें अपनी लेखनीद्वारा किया है, उसके बाद कुछ कहनेके लिये शेष रहता ही नहीं। जगत्‌की नजर न लगे, इसीलिये श्रीभाईजीका सदैव

सतत प्रयास रहता था कि यह सलोना व्यक्तित्व स्त्रियोचित घूँघटके अन्दर ही छिपा रहे और इसीका सहज परिणाम यह था कि जीवनके अन्ततक बहुतोंको बाईके उस व्यक्तित्वका सही परिचय मिल ही नहीं पाया।

बेगुसरायमें एक दिन शिवरात्रिके पावन दिवसपर श्रीराधानामका पूर्ण उत्साहके साथ संकीर्तन हुआ। संकीर्तनके उपरान्त बाईने प्रिया-प्रियतमकी पावन होली-लीलाका जीता-जागता वर्णन सुनाना शुरू कर दिया। उसके बाद होलीके पदोंका गायन शुरू हुआ। पदोंके गायनसे सारा वातावरण गूँज उठा।

'आज बिरजमें होरी रे रसिया' उसके बाद *'होरी खेलन आयो श्याम, आज याहि रंगमें बोरौ री'*।

एकके बाद एक अनेक पद गाये गये। भाव-विभोरा बहिनोंके समक्ष रसमयी लीलाका वर्णन करते हुए बाईने कहा—बड़े-बड़े सोनेके पात्रोंमें रंग घोला हुआ है। गुलाल, इत्र, फुलेल उड़ रहा है। सोनेकी रत्नजटित पिचकारी श्रीराधा और श्रीकृष्णके हाथमें है। वे एक-दूसरेपर पिचकारीसे रंग डाल रहे हैं। बीच-बीचमें सखियोंकी पिचकारी भी चल रही है। श्रीराधारानीपर प्रियतम श्रीकृष्णकी पिचकारीका रंग गिरते ही रंगकी कुछ बूँदें उनकी आँखोंमें पड़ जाती हैं, अतः उनकी आँखें नहीं खुल पाती हैं। अवसरका लाभ उठाकर श्रीकृष्ण उनके गोरे-गोरे गालपर गुलाल मल देते हैं। श्रीराधारानी बिना देखे ही प्रियतम श्रीकृष्णपर पिचकारी चला देती हैं। इस बार श्रीकृष्ण बच जाते हैं। दोनों दिशाओंसे रंगकी मार और गुलालकी उछाल मची हुई है। आकाशमें गुलालके बादल छा गये हैं। बादलोंके बीचसे आती हुई पिचकारियोंकी रंगभरी झड़ीको देखकर ऐसा लगता है, मानो अनेक रंगोंके बादलोंसे रंग-बिरंगे फुहारोंकी बरसात सब ओर हो रही है। समझमें नहीं आ रहा है कि रंग पिचकारीसे गिर रहा है या बादलोंसे। पिचकारीसे रंगकी धार निकल कर शरीरका स्पर्श तो करती हैं, पर आश्चर्य यह है कि स्पर्शकी अनुभूति किसीको नहीं होती। फूलोंकी पंखुड़ियोंका स्पर्श होनेसे शरीरमें जैसे मृदुल-मञ्जुल अनुभूति होती है, वैसी अनुभूतिकी प्रतीति भी रंगीले फुहारोंके पड़नेपर नहीं होती, पर उससे भी बड़ा आश्चर्य यह है कि उस प्रतीतिके अभावमें भी सभी रंगमें और भीगी हुई दिखलायी देती हैं और देते हैं। होलीके रंगसे बहुत अधिक सुगन्ध फैल रही है। सुगन्ध इतनी अधिक है मानो इत्रकी सैकड़ों शीशी एक साथ

उड़ेल दी गयी हो। रंगसे भीगे गोल-गोल गालोंपर जगह-जगह जो रंग-बिरंगी गुलाल चिपक जाती है, उसकी लोनी-लोनी शोभ अद्भुत रूपसे निराली है।

यह कैसा आश्चर्य है कि गुलालके रंग-बिरंगे चित्र कमरेकी चारों दीवालोंपर अंकित हो गये थे। उपस्थित बहिनोंसे बाईने कहा—आज महाशिवरात्रि है। आज रात्रिमें जागरण होना चाहिये। यह भी बंद कमरेमें। रात्रि जागरणका शुभारम्भ हुआ श्रीराधानाम संकीर्तनसे। कीर्तनने अपना अनोखा रंग दिखलाया और बाई पूर्ण रूपसे बाह्य ज्ञान शून्य हो गयी। बाई कीर्तन करते हुए अबाध गतिसे तीव्र नृत्य कर रही थीं। बाईका यह अद्भुत नृत्य कई घण्टे तक अविराम और अनवरत चलता रहा। इसके थोड़ी देर बाद ही एक और दृश्य दिखलायी दिया कि कमरेकी दीवालें आर्द्र हो उठी हैं, कमरेकी ड्रेसिंग टेबुलके शीशे भी नमीके कारण भीगे-भीगे लगने लगे। देखते-देखते कमरेकी सारी भूमि जलसे तर हो गयी और कमरेको ब्राह्म मुहूर्त्त होते-होते लघु कुंडके रूपमें परिणत कर दिया। कीर्त्तन करते-करते बाई उच्च स्वरमें बोल पड़ी—'यमुनारानीकी जय' प्रातःकाल पाँच बजे कमरेका द्वार खुला। सभी कमरेकी भीतर आकर कमरेको प्रणाम करके और दीवारकी आर्द्रताको छूकर स्वयंको कृतार्थ मानने लगी।

लौकिकतामें अलौकिकता

बेगुसरायके उत्सवके बाद बाई भागलपुर चली आयी। फाल्गुनी पूर्णिमाको बाईने श्रीगौरांग महाप्रभुका जन्मोत्सव बड़े उत्साहसे मनाया। जोर-जोरसे 'हरि बोल' कीर्तनके बीच बाईका आह्लाद दर्शनीय था। अब बाईके विविध आवेशोंके कारण यात्राके कार्यक्रमोंमें शिथिलता आने लगीं, किन्तु पूज्य श्रीभाईजी और पूज्य श्रीबाबाके प्रति जो समर्पण और आकर्षण था, उसके कारण गोरखपुरकी यात्राका कार्यक्रम बन ही जाता था।

इन दिनों पूज्य बाबा षोडशगीतके पाठ और अर्चनाकी प्रायः चर्चा करते रहते थे। पूज्य बाबाके प्रयाससे षोडशगीतका चतुर्दिक् प्रचार हो रहा था। पूज्य बाबाके प्रयाससे षोडशगीत ताम्रपत्रपर खुदवाये गये, अब बाई यह चाहने लगी कि षोडशगीतके ताम्रपत्र श्रीमहिला-संघके मंदिरमें भी प्रतिष्ठित किये जायँ।

बाई पूज्य श्रीबाबाके पास पहुँच गयीं और षोडशगीतके ताम्रपत्र देनेके लिये आग्रह करने लगीं। पूज्य बाबाने पूछा—रात्रिमें दो बजेसे साढ़े चार बजेतक ताम्रपत्रोंके समक्ष बैठकर षोडशगीतका पाठ कौन करेगी?

बाईने कहा—बाबा! हमारे श्रीमहिला-संघकी बहिनें पूर्ण सहयोग देंगी। पूज्य बाबाने बाईको षोडशगीतके पाँच ताम्रपत्र पूज्य श्रीभाईजीके कर-कमलोंद्वारा दिलवा दिये। भागलपुर आकर श्रीमहिला-संघके कमरेमें ताम्रपत्रोंके प्रतिष्ठित होते ही रातमें दो बजेसे साढ़े चार बजेतक षोडशगीतका पाठ होने लगा।

षोडशगीतके ताम्रपत्रोंकी प्रतिष्ठा और उसके पाठने श्रीमहिला-संघके वातावरणकी दिव्यताको बढ़ाया ही।

एक दिन रात्रिमें बाईको स्वप्न आया—पूज्य श्रीभाईजी एक कमरेमें बैठे हैं, जिसमें सोलह दरवाजे हैं। श्रीभाईजीके हाथमें बड़ा-सा एक माइक है। उस माइकके सामने बैठे हुए वे श्लोक पढ़ रहे हैं—

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं।
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः॥

प्रातःकाल बाईने सबको बैठाकर पूछा—यह श्लोक कहाँका है? सब निरुत्तर थीं। अब एक प्रश्न और रह गया कि ऐसा स्वप्न क्यों आया। यह स्वप्न किस लक्ष्यकी ओर इशारा कर रहा है। बाईके मनमें एक समाधान तत्काल स्फुरित हुआ—लगता है, श्रीभाईजीने श्रीमद्भागवतका श्लोक सुनाकर श्रीमद्भागवतका पाठ करनेका संकेत दिया है। अब तो श्रीमद्भागवतके सप्ताह-पाठ भी होने लगे। श्रीराधा-सुधा-निधिके पाठ भी प्रारम्भ हो गये।

लगभग बीस वर्षोंतक हॉलमें उसी प्रकार नियमित मासिक पारायणके रूपमें श्रीमद्भागवतका पाठ होता रहा। उस पाठका क्रम किसी-न-किसी रूपमें आजतक चल रहा है।

एक दिन अचानक कीर्तन करते-करते बाई हॉलके पीछे पहुँच गयीं और बालूके टीलेपर चढ़कर कीर्तन करने लगीं। बाईने बतलाया—श्रीगिरिराज महाराज कृपा करके प्रकट हुए हैं। आजसे इनका नियमित पूजन होगा।

एक दिन कीर्तन करते-करते बाई नृत्य करने लगीं। उनके हाथमें सिन्दूर कहाँसे आया कोई समझ नहीं सकी। हाथकी छाप लगवाकर श्रीश्रीमाँकी स्थापना की और पूजन करके जय-जयकार किया। एक बहिनको स्वप्नमें श्रीराधाकुण्ड

और श्रीकृष्णकुण्डके दर्शन होनेपर उनकी भी स्थापना की गयी। स्थापनाके बाद सभी बहिनें श्रीराधानाम-संकीर्तन करते हुए नृत्य करने लगीं।

संघमें कीर्तन, पाठ-सत्संग आदिके कार्यक्रमोंका जैसे-जैसे विस्तार होता गया, सबके हृदय विनत होकर स्वत: ही बाईकी ओर आकर्षित होने लगे। श्रीमहिला-संघके वातावरणमें श्रीराधा-नाम गुञ्जित होता ही रहता था। श्रीराधा-नामका रसायन पाकर और पीकर भी दोनों कर्ण-कुहर सदा अतृप्त रहते थे। न चाहते हुए भी श्रीराधा-नामके तालपर पाँव थिरकने लगते थे। जब देखो तब कण्ठ-कण्ठसे नि:सृत होनेवाले श्रीराधानामके स्वर श्रीमहिला-संघकी चहार दीवारीके भीतर मधुधारा बहा देते थे। जो भी आता था, वह नामामृतका पान करके उन्मत्त हो ही जाता था।

कीर्तनको नियमित बनानेकी योजनासे एक संयोजित रूपरेखाका शुभारम्भ हुआ। बाईको कीर्तन-मण्डली बनानेकी त्वरा लगी हुई थी। बात-की-बातमें अठारह सदस्योंवाली कीर्तन-मण्डली बन गयी।

कीर्तन-मण्डलीका मूल मन्त्र था *'राधे-राधे'* हर परिस्थितिमें राधे-राधे बोलना था। हर प्रश्नके उत्तरमें राधे-राधे कहना था।

कीर्तन-मण्डलीमें जो-जो बहिनें सम्मिलित हुई थीं, उनको करना था केवल संकीर्तन, गिरिराजजीकी परिक्रमा और षोडशगीतका पाठ। कीर्तन-मण्डलीकी बहिनें प्रात:काल चार बजकर पच्चीस मिनटपर श्रीबरसानेवालीके समक्ष पहुँचकर वन्दन-प्रणामके उपरान्त पूज्य श्रीभाईजीद्वारा रचित पद—*'स्वामिनी हे वृषभानुदुलारि।'* सस्वर गाया करतीं। बाईने बतलाया—यह पद गाकर हम सभी श्रीराधारानीसे यही निवेदन करती हैं कि आप हम सभीपर कृपा करें। हे वृषभानु बाबाकी दुलारी, हे कीर्तिदा मैयाकी प्यारी और हे श्रीकृष्णकी प्राण-आधारी ऐसी कृपा कीजिये, जिससे हमारे जीवनका प्रत्येक क्षण आपकी सेवामें व्यतीत हो।

बाई जो भी उद्बोधन देती थीं, वह हृदयसे देती थीं। जो वाणी वक्ताके हृदयकी गहराईसे उभरेगी, वह वाणी श्रोताके हृदयकी गहराईतक उतरेगी भी। यही सत्य बाईके साथ था।

उत्सव-शृंखला

श्रीकीर्तन-मण्डलीके निर्माणसे एक ओर श्रीमहिला-संघमें होनेवाले दैनिक

कार्यक्रमोंमें नियमितता आयी, अब बाईकी प्रेरणासे उनकी देख-रेखमें कुछ नये उत्सवोंका शुभारम्भ हुआ। वर्षभर मनाये जानेवाले उत्सव इस प्रकार हैं—

(१) हरियाली तीज, (२) श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी, (३) श्रीराधा-अष्टमी, (४) श्रीअष्टमीव्रत, (५) आश्विन-नवरात्रमें मानसपाठ, (६) शरद् पूर्णिमा, (७) दीपावली, (८) अन्नकूट, (९) श्रीश्रीकात्यायनी माँका पूजन एवं व्रत, (१०) श्रीविहार-पञ्चमी, (११) गीता-जयन्ती, (१२) वसन्त पञ्चमी, (१३) रंगीली होली, (१४) श्रीगौरांग-जन्मोत्सव, (१५) चैत्र नवरात्र, (१६) अक्षय तृतीया, (१७) गुरु पूर्णिमा।

एक बार किसी परिस्थितिवश बाईने श्रीमहिला-संघमें न रहनेका मन बना लिया और वे अनमनी रहने लगीं। इसी बीच अचानक गोरखपुरसे पूज्य श्रीभाईजीका पत्र आया। वह इस प्रकार है।

प्रिय रुक्मिणी,

सप्रेम हरिस्मरण।

बहुत दिनोंसे तुम्हारा कोई समाचार नहीं मिला। तुमने पत्र भी नहीं लिखा। स्वभाव-दोष तथा अस्वस्थताके कारण मैं भी पत्र नहीं लिख सका। तुम स्वस्थ और सानन्द होओगी। नर्मदी प्रसन्न होगी। चन्दा राजी होगी। तुम्हारा भगवत्प्रेमका सत्संग-सुधा-प्रवाह चलता होगा। तुम्हारे कारण वहाँ बहुत-सी बहनोंको पारमार्थिक लाभ तथा सात्त्विक आश्वासन प्राप्त हो रहा है। यह भगवान्‌की बड़ी सेवा है। तुमपर भगवान्‌की अत्यन्त अनुकम्पा तथा प्रीति है, तभी तुम्हें ऐसी सेवाका सुअवसर मिला है।

संसारकी सर्वथा विस्मृति तथा भगवान्‌की नित्य-निरन्तर अखण्ड मधुर स्मृति रहनी चाहिये। यही सबसे बड़ा लाभ है। यही परम कर्त्तव्य है। ऐसे स्मृतिमय व्यक्तिके पास नित्य-निरन्तर भगवान् रहते ही नहीं, अपना अनुभव कराते रहते हैं।

महिला-संघका कार्य ठीक चलता होगा। सबसे मेरा सादर सप्रेम यथायोग्य कहना। फूलबाईजी प्रसन्न होंगी। उनको सादर यथायोग्य कहना। पत्र जरूर देना।

शेष भगवत्कृपा।

तुम्हारा

हनुमानप्रसाद

पूज्य श्रीभाईजीका पत्र अचानक पाकर बाईका हृदय प्रसन्नतासे भर गया। बाई उनके पत्रका उत्तर न दें, यह कैसे हो सकता है। बाईने इस बार अपने मनकी खिन्नतापूर्ण स्थितिको श्रीभाईजीके सामने स्पष्ट करनेके लिये एक पत्र लिखा। बाईने पत्रमें क्या-क्या लिखा, यह तो श्रीभाईजी ही जाने, परन्तु बाईने अपनी उलझनपूर्ण मन:स्थितिका उल्लेख करके अपना यह निश्चय भी बतला दिया कि यहाँ श्रीमहिला-संघमें अब मैं नहीं रहना चाहती।

पूज्य श्रीभाईजीने पुन: बाईको पत्रद्वारा बहुत आश्वासन दिया। श्रीभाईजीका जो पत्र आया, वह यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

प्रिय रुक्मिणी,

सस्नेह हरि स्मरण।

तुम्हारा पत्र बहुत समयके बाद मिला। तुमने जो कुछ लिखा उसे पढ़कर हँसी आती है। तुम अपनेको भगवान्‌को समर्पण कर चुकी हो। समर्पण एक ही बार होता है और वह मनका होता है। जब मन उनका है तो वे ही पूरे मालिक हैं उसके। वे मनसे चाहे किसीको भुलायें या याद रखायें। चाहे किसीमें मनको खिचायें चाहे ऊँबायें। तुम कौन सोचनेवाली, कहनेवाली होती हो कि मैं भूल गयी, मैं ऊब गयी। मुझसे लोग ऊब गये। तुम तो कठपुतलीकी भाँति नाचती रहो उनके सूत्रके इशारेपर, परवश जड़की भाँति। जरा भी मालकिन बननेकी कल्पना मत करो। वे स्वामी हैं—मनके, बुद्धिके, आत्माके। जीवनमें वे जब जो चाहें करें, जैसे चाहें मनसे करवायें। तुम तो उनकी ओर देखती रहो बस। अपनी ओर देखनेसे उनकी ओर देखनेमें रुकावट आती है। अत: अपनी ओर कभी देखो ही मत। वे भूल गये या भूल जायँ, यह प्रश्न तो नहीं बनता। अपने अंगको भूलने या स्मरण रखनेकी कल्पना ही नहीं होती। वह तो अपना है। समर्पित वस्तु उनकी है। तुम तो बस सदा मौज करो। चिन्ता करें वे, सोचें वे, चाहे जैसी व्यवस्था करें वे। अपनी चीजको जैसे व्यवहारमें लावें। हानि होगी तो उनकी, लाभ होगा तो उनका, वे सोचें।

अपने हानि-लाभको और उसके कारण यदि दु:ख-सुख होता हो तो उसको भोगें भी वही। तुम तो आनन्दमें मस्त रहो, उनकी होकर फिर हमें चिन्ता क्यों? उनके चिन्तनमें ही चित्तको अवकाश नहीं मिलना चाहिये।

रही मेरी बात सो मैं तो भूला नहीं हूँ। भूलनेकी कोई कल्पना भी नहीं है। प्रिय नर्मदी प्रसन्न होगी। उससे मेरा यथायोग्य कहना और सभी महिला-संघकी बहिनोंसे सस्नेह यथायोग्य। मेरा शरीर पहलेकी अपेक्षा ठीक है। चिन्ता मत करना। शेष भगवत्कृपा।

तुम्हारा

हनुमानप्रसाद

पूज्य श्रीभाईजीका पत्र पाकर बाईके मनको बहुत शान्ति मिली, बाईने यह निर्णय लिया कि मुझे कुछ दिनोंके लिये मौन लेना चाहिये। मौन-व्रतकी सूचना सभीकी भावनाओंको मथ रही थी। सूर्योदय होते ही बाईने मौन ले लिया। बाईका यह मौन-व्रत इक्कीस दिनतक रहा।

श्रीराधाष्टमी-महोत्सवका अवसर समीप था, अत: बाई मौन-व्रतका विसर्जन करके भागलपुरसे गोरखपुर आ गयीं। अब बाईकी भावधाराने एक नया ही मोड़ लिया। गीतावाटिकाके समक्ष स्थित नयी कोठीके एक कमरेमें बाई रहने लगीं। इस प्रकार रहते-रहते सात मास बीत गये। पूज्य श्रीभाईजी अपनी खुली आँखोंसे देख रहे थे कि रुक्मिणी बाईका जीवन कितना भक्तिमय और रसार्द्र है।

अब चाहे गुरु-शिष्यका सम्बन्ध मान लें अथवा पिता-पुत्रीका भाव मान लें, बाई संकोच रहित होकर खुले मनसे उन्मुक्त स्वरमें श्रीभाईजीसे कहने लगीं मैं आपकी गोदमें खेलती हुई और आपकी छायामें रहती हुई यहाँ हमेशाके लिये रहना चाहती हूँ, परंतु यहाँ रहनेमें भी कोई बाधा हो तो फिर वृन्दावन ही चली जाऊँगी।

गम्भीर स्वरमें आदेश देते हुए पूज्य श्रीभाईजीने बाईसे कहा—

अब तू मेरी बात सुन। ध्यान देकर सुनना। तुमको भागलपुर जाना है। तुम वृन्दावन जाना चाहती हो ना! भागलपुरके श्रीमहिला-संघमें ही तुम्हारे लिये श्रीधाम वृन्दावनका प्राकट्य हो जायगा। तू मेरी बातपर विश्वास कर। मेरी वाणी व्यर्थ नहीं जायगी। तुम स्वयं देखोगी कि श्रीमहिला-संघकी दीवाल-दीवालमें, खम्भे-खम्भेमें मैं ही हूँ। पूज्य श्रीभाईजीने अत्यधिक प्यारमें भरकर भाभीजीसे कहा—चन्दा! देख!! मैं मेरे हृदयका एक अमूल्य रत्न तुम्हें सौंप रहा हूँ। तुम इस रुक्मिणीको सँभाल कर रखना।

पूज्य श्रीभाईजीके ये भाव भरे उद्गार भाभीजीके हृदय-पटलपर सदाके लिये अंकित हो गये। उस समय भाभीजी कुछ अधिक बोल तो नहीं पायीं,

किन्तु उनके दिलकी एक-एक धड़कनमें श्रीभाईजीके शब्द अनुगुञ्जित हो रहे थे। भाभीजीके शरीरका एक-एक रोम संकल्प ले रहा था कि श्रीभाईजीद्वारा दिये गये रत्नकी सँभालके लिये मैं सर्वस्वकी आहुति दे दूँगी। भाभीजीका हृदय पुकार-पुकार कर कह रहा था, न जाने किस-किस जन्मका कौन-कौन-सा पुण्य उदित हुआ है, जो श्रीभाईजीने रुक्मिणी बाईको देते हुए इन उद्‌गारोंको व्यक्त किया।

पूज्य बाबाने भी चन्दा बाईकी ओर उन्मुख होकर प्यारमें उमड़ते हुए कहा—**चन्दा बहिन! रुक्मिणी मेरे हृदयकी मणि है। इसे मैं ही स्वच्छ करता हूँ। जैसे हीरेको जौहरी ही स्वच्छ कर सकता है, वैसे ही मैं इसको सँवारता हूँ। लेकिन तुमलोगोंको इसे डाँटनेका कोई अधिकार नहीं है। चन्दा बहिन! तुम इसे ले तो जा रही हो, पर रखना बहुत सँभाल कर। यह मेरी सहोदरा बहिन है। मैं निरन्तर इसके साथ रहता हूँ। यह भगवती गंगाके समान परम पवित्र है। यह मेरे हृदयकी मणि है। इसे मैं तुम्हें सौंप रहा हूँ। रखना सँभाल कर। प्राणोंकी बाजी लगाकर सँभालना।**

पूज्य श्रीबाबाने तो वही कह दिया, जो श्रीरुक्मिणी बाईको सौंपते हुए पूज्य श्रीभाईजीने कहा था। भाभीजीके दिलकी एक-एक धड़कनमें और शरीरके एक-एक रोममें जो चिन्तन और संकल्प था, उसपर एक स्थायी मोहर लगा दी पूज्य श्रीबाबाके इन उद्‌गारोंने। भाभीजीका बाह्याभ्यन्तर बलिहार था श्रीबाबाके आदेशपर। समर्पितहृदया भाभीजी रह-रह करके अपने सौभाग्यकी मन-ही-मन सराहना कर रही थीं कि पूज्य श्रीभाईजीके समान पूज्य श्रीबाबाने भी मुझे बड़ा सम्मान दिया और मुझे परम निजजन मानकर अपनी परम निधि सौंपी। भाभीजीके आन्तरिक उल्लासकी सीमा नहीं थी।

भागलपुर आनेके बाद बाईकी उपरामता क्रमशः बढ़ती जा रही थी। मिलना-जुलना रुचिकर नहीं लग रहा था। उनका अधिकांश समय एकान्तमें व्यतीत होता था। उन बहिनोंका ध्यान जा ही नहीं रहा था कि हमारी श्रद्धेया बाईके भीतर भी कोई चटपटी लगी हुई है।

जगमें कोउ न संगी-साथी, कोउ न बूझन हारौ।
अपने-अपने पंथ चलत सब, पंथ सबनि को न्यारौ॥

जिस प्रकार पूज्य श्रीभाईजी रुक्मिणी बाईके जीवनको देख रहे थे, उसी प्रकार रुक्मिणी बाई भी पूज्य श्रीभाईजीके जीवनको देख रही थीं कि ये किस प्रकार सोलह-सोलह घण्टे समाधिस्थ बैठे रहते हैं। लीला-सिन्धुमें डूबे हुए पूज्य श्रीभाईजीने अपनी उस चिन्मयी स्थितिका यत्किञ्चित् संकेत अपने स्वरचित पदमें स्वयं ही किया है।

हटे वह सामने से, तब कहीं मैं अन्य कुछ देखूँ।

बाई पूज्य श्रीभाईजीकी इस दिव्य स्थितिको देख रही थीं और मन-ही-मन चाह रही थीं कि मेरा भी जीवन ऐसा ही हो जाय। श्रीभाईजीके पदोंको पढ़कर बाई मन-ही-मन अभिलाषा कर रही थीं।

देखा करूँ तुम्हारी लीला, गाया करूँ तुम्हारा नाम।
सुना करूँ नित मुरली की धुन, वचन तुम्हारे परम ललाम॥

बाई बलिहार थीं पूज्य श्रीबाबाकी भाव-निमग्नता-जैसी भागवती स्थितिपर। भाव-राज्यकी परमोच्च स्थितिपर आरूढ़ इन दोनों महान् विभूतियोंकी जीवन-शैलीका आदर्श स्वरूप बाईके सामने था।

अब भागलपुर आकर बाईने अपने एकान्तवासके लिये श्रीमहिला-संघकी एक कुटियाका चुनाव किया। जब रसोद्रेककी अधिकता होती, तब बाई उस कुटियामें स्वयंको कई घण्टोंके लिये बन्द कर लेतीं। आकुल और आतुर अन्तरसे 'हा प्रियतम! हा कमलनयन!!' बोल पड़तीं। लगता था मानो उनका श्वास-श्वास पुकार रहा है—

कब चरण रज सिर चढ़ाकर, धन्य हूँगी मैं अमर।
कब करूँगी नेत्र शीतल निर्निमेष मुख देख सुघर॥

प्रियतम श्रीकृष्णके विरहमें उनके नेत्र झरते ही रहते थे। रोते-रोते आँखें सूज जाती थीं। खाने-पीनेकी सुधि तो रहती ही नहीं थी। नर्मदीबाई प्रतीक्षा करती रहती थीं कि कब कुटियाके कपाट खुलेंगे और कब इसके गलेमें कुछ कौर उतार पाऊँगी। बाईकी यह अत्यधिक अन्तरंग स्थिति लगभग दो-तीन मासतक बनी रही।

वे यही समझती थीं कि मेरा तन, मेरा मन, मेरा धन, मेरा जीवन, मेरा रोम-रोम सब कुछ एकमात्र मेरे ममतास्पद श्रीकृष्णके लिये ही है। प्रियतमके युगल चरणोंपर उनके सर्वस्वका सहज समर्पण हो गया था। उन प्रियतमसे न कोई आकांक्षा थी, न कोई अनुरोध था। बस, रह गया था, स्वरोंमें आर्त क्रन्दन,

प्राण-प्रियतम तुम कब मिलोगे? कब अपना दर्शन दोगे? कब तुम्हारे युगल चरणोंपर सुमन समर्पित कर पाऊँगी।

एक-एक पल बना युगों-सा, दारुण पीड़ाका आगार।

लगभग दस-ग्यारह सप्ताहतक विरह-भावका प्रवाह बड़ा प्रबल रहा। किसी अचिन्त्य प्रेरणासे बाईके जीवनमें ऐसा परिवर्तन और प्रयास दिखलायी देने लगा कि वे श्रीमहिला-संघके आध्यात्मिक वातावरणको सुन्दर-से-सुन्दर बनाना चाहती हैं, जिससे अधिक-से-अधिक संख्यामें बहिनें मम-पर-द्वन्द्वात्मक जगत्से ऊपर उठकर आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करते हुए श्रीराधा-कृष्णकी भक्तिमें लग जायँ।

पूज्य श्रीभाईजीने गोरखपुरमें बाईको यह आश्वासन दिया था कि वहीं श्रीमहिला-संघमें वृन्दावनका प्राकट्य हो जायगा और तुम्हारा वास वृन्दावनमें ही होगा। पूज्य श्रीभाईजीके ये शब्द बाईके लिये मात्र शब्द नहीं थे, अपितु बाईकी दृष्टि ही पूज्य श्रीभाईजीने बदल दी थी। अपने श्रद्धेयके श्रीचरणोंपर सर्वथा समर्पित बाईको उनसे जो दृष्टि मिली, उसीका परिणाम था कि बाई अपनी आस्थाके अनुसार श्रीमहिला-संघकी चहारदीवारीके भीतर रहते हुए भी वृन्दावनमें वास कर रही थीं। दूसरे यह भी दिखलायी दे रहा था कि व्रज-मण्डलकी अनेक स्थलियोंका प्राकट्य वहाँ हो गया है। जहाँ सूर्य है वहाँ दिन होगा ही, अतः जहाँ व्रजकी स्थलियाँ हैं वह व्रज होगा ही और अन्तिम महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि प्रिया-प्रियतमके दिव्य-भाव-राज्यकी सखियाँ, मञ्जरियाँ, सहचरियाँ बाईके माध्यमसे संकेत दे-दे करके इस नव-वृन्दावनको सजा-सँवार रही थीं। क्रमशः सँवरते हुए इस आश्रमको बाई अब नव-वृन्दावन ही कहने लगीं।

सत्रह वर्षकी अवधिमें बाईके जीवनका प्रवाह मन्थर गतिसे बहता रहा और बहता रहा एकान्त-प्रियता और सार्वजनिकता इन दो तटोंकी मर्यादाको स्वीकार करते हुए। वह अनवरत प्रवाह इतना मन्थर, इतना सौम्य, इतना शीतल था कि समीप आनेवाले प्रत्येक नर-नारीको अतुल आनन्द प्रदान करता रहा और वह जीवनके लक्ष्य श्रीप्रिया-प्रियतमकी ओर दिन-रात बहता ही रहा।

बाईकी अद्भुत और विलक्षण भावस्थितिको समझ सकना या समझा देना एक बड़ी कठिन पहेली है। बाईके अन्तरके कपाट सभी भावोंके लिये सदैव

खुले रहते थे और भिन्न-भिन्न भाव भिन्न-भिन्न समयपर बाईके तन-मनपर छाये रहते थे। इसीका सहज परिणाम यह था कि बाईके दिव्य-जीवनमें दिव्य भावोंके दिव्य दर्शन प्रायः होते रहते थे। बाईका सर्वथा अनुपम नित्य निकुञ्जमें प्रिया-प्रियतमको परमाह्लादित करनेके लिये दिव्य विहार था।

अनेक बार भावाविष्ट बाई चेष्टा-शून्य हो जाती थीं। चेष्टा-शून्य स्थितिमें समीपस्थ बहिनें *'जय जय प्रियतम, जय जय प्रियतम'* या *'श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण'* कीर्तन करती थीं। कीर्तन सुनकर भावके कुछ शमित होते ही बाई पूर्ववत् हो जाती थीं।

जय जय प्रियतम जय जय प्रियतम।
सब सुख के सागर हो प्रियतम॥ जय॥

संतकी दृष्टि बड़ी सूक्ष्म और बड़ी समर्थ होती है। वर्तमानके इस पार और उस पार अर्थात् भूत और भविष्यके गर्भमें झाँककर बहुत-सी बातोंको वह दृष्टि जान लेती है।

श्रीमहिला-संघमें एक कमरा है, जिसे श्रीषोडशगीत-मन्दिर कहा जाता है। इस मंदिरमें पूज्य श्रीभाईजीके कर-कमलोंद्वारा प्रदत्त श्रीषोडशगीतके पाँच धातु-पत्र प्रतिष्ठित हैं।

एक बार बाईके मनमें ऐसे मनोरथका उदय हुआ कि षोडशगीत-मन्दिरमें श्रीमद्भागवतका साप्ताहिक पाठ हो, यह अनुष्ठान सर्वथा-सर्वथा भगवत्प्रीत्यर्थ था और यह नितान्त ऐकान्तिक कार्यक्रम सप्ताहपर्यन्त सोत्साह-सोल्लास श्रीमहिला-संघके श्रीषोडशगीत-मन्दिरमें चलता रहा। इसी समय एक बड़ी विचित्र बात हुई। इधर तो पाठ-अनुष्ठानकी पूर्णाहुति हुई और उधर डाक-घरके डाकियेने आकर एक लिफाफा दिया। यह लिफाफा आया था गोरखपुरसे और लिफाफेमें पत्र था श्रीभाईजीके हाथका लिखा हुआ। लिफाफेमें केवल एक पत्र नहीं, बल्कि उनके हाथके लिखे हुए तेरह पत्र थे। यह तेरह पत्र थे इस सप्ताह अनुष्ठानमें भाग लेनेवाली हर एक बहिनके लिये अलग-अलग। जिन-जिन बहिनोंने भाग लिया था, पत्रमें श्रीभाईजीने आशीर्वाद दिया था कि यह बड़ा सुन्दर कार्यक्रम तुमलोगोंके द्वारा हुआ है तथा इससे भगवान् श्रीकृष्णको परम प्रसन्नता हुई है। तुम सभी अतीव भाग्यशालिनी हो।

आश्चर्यकी बात यह है कि इस कार्यक्रमकी रञ्चमात्र सूचना भाभीजीने

श्रीभाईजीको नहीं दी थी, बाईने सभीसे कहा—इन तेरह पत्रोंका अचानक आगमन हमारे अनुष्ठानकी सफलताका प्रबल प्रमाण है।

एक बार आरोग्य-भवनमें प्राकृतिक चिकित्सा करानेके लिये भाभीजी जसीडीहमें आयीं। भाभीजी और बाईको ज्ञात था कि जसीडीहके समीपकी एक पहाड़ीपर ही पूज्य श्रीभाईजीको सन् १९२७ में भगवान् विष्णुके दर्शन हुए थे। वह पहाड़ी आरोग्य-भवनके पासमें ही थी। बाई कभी अकेले और कभी अनेक बहिनोंके साथ उस पहाड़ीपर जातीं और घण्टों-घण्टों भाव-निमग्न रहतीं। जिन पूज्य श्रीभाईजीसे मन्त्र प्राप्त हुआ था, उन्हींके आध्यात्मिक जीवनका यह एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। यह विचार बाईको भाव-सिन्धुमें गहरे उतार दिया करता था।

बाई जहाँ भी रहती थीं, अपने भाव-राज्यमें डूबी रहती थीं। लोकमें रहकर भी उनका जो लोकोत्तर जीवन था, इसका एक ही अनुपम उदाहरण है जलमें कमलवत् रहना।

बहुत-सी बातें जिन्हें संसारके लोग नहीं देखते, नहीं जानते, नहीं समझते, उन अनेक तथ्योंका बाईको भलीभाँति परिज्ञान मानवातीत परोक्ष स्तरद्वारा हो जाया करता था। बाईका सतत प्रयास यही रहता था कि सम्पर्कमें आनेवाली प्रत्येक बहिनका जीवन अत्यधिक सुन्दर हो। वह सुन्दर जीवन ऐसा सद्‌गुणी हो कि घरमें, पड़ोसमें दैवी भावका साम्राज्य हो जाय। बाई नहीं चाहती थीं कि मैं किसीमें दोष-दर्शन करूँ, बाई चाहती थीं कि सभी बहिनोंका जीवन सद्‌गुणोंसे भरपूर हो, इसलिये इन भूल-चूककी ओर संकेत करना पड़ता था।

सन् १९८१ की बात है। बाई वृन्दावन गयी हुई थीं। वहाँ बाई श्रीसदन नामक मकानमें ठहरी हुई थीं। जो श्रीबिहारीजीके मंदिरके लगभग पास है। रात्रिके समय बाई श्रीसदनसे बिहारीजीका दर्शन करनेके लिये गयीं। साथमें भाभीजी थीं। रात्रिके लगभग नौ बजे थे। श्रीबिहारीजीके दिव्य सौन्दर्यका दर्शन करते-करते बाई अत्यधिक अन्तर्मुखी हो गयीं। बाह्य जगत्‌का भान रहा ही नहीं। अपने भावमें डूबी-डूबी बाई भाभीजीसे कहने लगीं—मैं श्रीयमुनाजी जाऊँगी।

बाह्य ज्ञान भूली हुई बाईका भावराज्यकी कलित सलिला यमुनाका रमणीय तट बार-बार मन-ही-मन बुलावा दे रहा था और उसी भावधारामें निमग्न बाईका

बार-बार आग्रह था यमुना-तटपर चलनेके लिये। एक बहिनने सारी परिस्थिति समझ ली और बोली—बाई! चलिये यमुनाजी चलते हैं। रात्रिका घोर अन्धकार छाया हुआ था, अतः यमुनाजीके दर्शनका आग्रह देखकर उस बहिनने कलशके यमुना-जलसे स्नान करवा दिया। यमुना-जलका स्पर्श होते ही बाईको ऐसा अनुभव हुआ, मानो वे यमुनाजीका आलिंगन कर रही हैं। अब उनका यमुना-तट जानेका आग्रह विलुप्त हो गया।

बाई जब-जब वृन्दावन रहती थीं, तब-तब बरसाने जाया करती थीं। बाई बरसाना आकर उन्मुक्तरूपसे हास-विलास करती रहती थीं, मानो पीहरमें आ गयी हों।

बरसाना पहुँचकर बाई भाभीजीको साथ लेकर ऊपर श्रीजीका दर्शन करनेके लिये गयीं। दर्शन करके बाई कुछ देरके लिये श्रीजीके प्रांगणमें बैठ गयीं और व्रजवासी महिलाओंसे पद सुनती रहीं।

सायंकाल पुनः ऊपर मन्दिर जानेके लिये तैयार होकर बाई भाभीजीसे बोलीं—भाभीजी! चलिये, लाड़िलीके पास चलते हैं।

भाभीजीने कहा—बाई! मैं तो दोबारा चढ़कर ऊपर मन्दिरमें नहीं जा सकूँगी। जा, तू दर्शन कर आ। मैं तो पहलेसे ही बहुत थकी हुई हूँ।

बाईने जिद्द करके भाभीजीको भी साथ ले लिया और ऊपर मन्दिरमें आ गयीं। श्रीजीके शयन हो जानेके बाद बाई, भाभीजी आदि सभी नीचे आ गयीं। रात्रिमें सोते समय बाईने भाभीजीसे पूछा—आपके पाँवमें दर्द हो रहा है तो तेल लगवा लीजिये।

भाभीजीने कहा—बाई! जो-जो बहिनें अपने साथ आयी हैं, वे सभी तो थक गयी हैं। मेरे पाँवमें तेल कौन लगायेगा?

बाईने चटसे हँसते हुए कहा—भाभीजी! आपके पाँवमें तेल तो मैं ही लगा दूँगी।

इस प्यारभरे प्रस्तावने भाभीजीके हृदयके तारोंको छू कर छेड़ दिया। देह दर्दसे पस्त थी, परन्तु भाभीजीका रोम-रोम स्नेहसे सिहर उठा। भाभीजीको यह स्वीकार था ही नहीं कि बाईसे मैं कोई अपनी शारीरिक सेवा करवाऊँ। पूज्य श्रीभाईजीने जो दिव्य धरोहर बाईके रूपमें सौंपी थी, उसकी वे मन-ही-मन वन्दना किया करती थीं। प्रसंगको टालनेके लिये पुलकित-मुकुलित अधरोंसे

विकलित-विगलित स्वरोंमें भाभीजीने धीरे-से कहा—बाई! तेरे प्यारसे दर्द अपने-आप ठीक हो जायगा।

बाईके लिये भाभीजीकी पीड़ा अनदेखी करना असह्य हो उठा। उन्होंने मन- ही-मन निश्चय कर लिया कि मालिशकी कोई व्यवस्था कर देनी चाहिये। भाभीजी मन मारकर बिस्तरपर चुपचाप लेट गयीं। आधा घण्टा ही बीता होगा कि दो किशोरियाँ आयीं। उनके हाथमें तेलकी शीशी थी। नख-शिख ब्रजवासी वेश था। भाभीजीने इतना ही देखा कि उन गोरी-गोरी किशोरियोंने घाघरा पहन रखा है और सिरपर चुनरी डाल रखी है। वे दोनों किशोरियाँ उस कमरेके द्वारपर आयीं, जहाँ भाभीजी लेटी हुई थीं। कमरेके द्वारपर आकर दोनोंमेंसे एक किशोरीने मधुर स्वरमें पूछा—कोई तेल लगवायेगी क्या?

उस प्रश्नकी बोलन ऐसी थी जिसके शब्द-शब्दमें शील और मिठास भरी हुई थी। उस बोलनकी मधुरतामें मनसे डूबी हुई और शरीरसे थकी हुई भाभीजीने कहा—भीतर आ जाओ।

वे दोनों किशोरियाँ छम-छम करती अन्दर आ गयीं। एक तो अन्दर आते ही बैठ गयी और दूसरी तेल लगाने लगी। तेल लगवाते समय भाभीजीने उससे पूछा—तुम्हारा घर कहाँ है?

किशोरी—मैं यहीं पासमें रहती हूँ।

भाभीजी—तुम्हारे घरमें कौन-कौन हैं?

किशोरी—मैया, बाबा, बहिन, भैया सभी हैं।

भाभीजी—तुम्हारी शादी हो गयी क्या?

इस प्रश्नसे वह किशोरी शरमा गयी।

तेल मालिश होनेसे दस मिनटके अन्दर ही भाभीजीको नींद आ गयी। वे किशोरियाँ कब गयीं, भाभीजी जान नहीं सकीं। प्रात:काल उठकर भाभीजीने कहा—बाई! रातमें जो छोरियाँ तेल लगाने आयी थीं, उन्होंने इतनी बढ़िया मालिश की कि मुझे तो शीघ्र ही नींद आ गयी और अब मेरे पाँवका दर्द बिलकुल ठीक है।

बाईने कहा—भाभीजी! उन्हें जो बुलाकर लाया था, उसीसे कह दीजिये कि रोज बुलवा देगा।

भाभीजी आश्चर्यसे बाईको देखते हुए बोलीं—उनको तो तुमने ही बुलवाया होगा? अब तो सबसे पूछताछ होने लगी।

बाईने साश्चर्य भाभीजीसे पूछा—भाभीजी! वे किशोरियाँ कैसी थीं?

भाभीजी बोलीं—बाई! वे थीं तो लगभग तेरह-चौदह वर्ष आयुकी परन्तु गोरी-गोरी घाघरा पहने, छम-छम करती चल रही थीं और मेरे विचारसे वे अभी नव-विवाहिता ही थीं।

भाभीजी बड़े भोलेपनसे सारी बातें बता रही थीं। उनकी भोली-भाली बातें सुनकर बाई खिलखिलाकर हँसती हुई बोलीं—भाभीजी! आप लाडिलीके पीहर आयी हैं ना! कहीं लाडिलीने आपके आतिथ्यहेतु तेल मालिश करनेके लिये तो उनको नहीं भेज दिया था?

भाभीजी तो लाडिलीके प्यारकी स्मृतिमात्रसे गद्‌गद हो रही थीं।

कुछ दिनों बादकी बात है। एक दिन बाईने भाभीजीसे कहा—भाभीजी! मेरे घर बरसाने चलिये। देखिये, आपकी कैसी खातिरदारी होती है। सभी बरसानेके लिये चल पड़े। सीढ़ियोंके मध्यमें, प्रौढ़ आयुके एक ब्रजवासी बोले—मैया! मेरे घर आज छप्पन भोगका उत्सव है। अन्दर आकर दर्शन कर लो। सीढ़ियोंसे नीचे आते-आते एक अन्य वृद्ध ब्रजवासी बोला—मैया! थोड़ा-सा दही खा लो। तीसरी-चौथी सीढ़ीपर कोई-न-कोई मनुहार आ ही जाती थी। मट्ठा पी लो, छाछ पी लो, माखन खा लो।

जब भी मनुहार आती, भाभीजी नेहभरी विनम्र वाणीमें अपनी विवशता बतलातीं। डेरेके कमरेमें घुसते-घुसते प्रफुल्ल स्वरमें भाभीजीने कहा—बाई! आज-जैसा स्वागत तो कभी नहीं हुआ।

एक बारकी बात है। स्वास्थ्यको कुछ अच्छा देखकर भाभीजीने वापस भागलपुर जानेका कार्यक्रम बना लिया। वे १७ मई १९८१ को वापस जानेवाली थीं। उसी दिनका एक विशेष प्रसंग है। इसी दिन प्रात:काल बाईकी तबियत अचानक खराब हो गयी। बाईने भाभीजीसे कहा—मैं नहीं कह सकती कि यह जीवन कितने दिन रहेगा, परन्तु एक बार आप मुझे पूज्य बाबाका दर्शन करवा दीजिये। आप मेरे साथ गोरखपुर चलिये।

भाभीजी बाईको लेकर गोरखपुर आ गयीं। गीतावाटिकामें रहनेसे स्वास्थ्यमें कुछ सुधार आया। भाभीजीकी भावनाओंको बड़ा चैन मिला। भाभीजीने मान लिया कि पूज्य बाबाकी कृपासे यह सुधार आ रहा है। वे १७ मई १९८१ को वापस जानेवाली थीं। उसी दिन बाईकी तबियत अचानक बहुत ज्यादा खराब

हो गयी। आज उसने भीषण रूप धारण कर लिया। सारा शरीर बुरी तरह काँप रहा था। मुख तो वक्र हो ही गया था, वह विघातक वक्रता शरीरमें भी आ गयी थी। आँखें उलट गयी थीं। मुखसे फेन आने लग गया था। बाईकी ऐसी स्थिति देखकर सभी घबरा उठे। भाभीजी तथा अन्य कई लोग दौड़ते-दौड़ते पूज्य श्रीबाबाके पास गये। बाबा बाईके पास आये। रोगकी भीषणताको भाँप करके और अपना मौन तोड़ करके पूज्य श्रीबाबाने पूछा—क्यों बहिनी! जाना चाहती हो?

बाईने सिर हिलाकर इशारेसे हाँ कह दिया। इसपर पूज्य श्रीबाबा बोले—**देखो! यदि तुम्हारे मनमें सचमुच यह बात हो कि अब मुझे जाना है तो मैं अभी अपने हाथमें गंगोत्रीका गंगाजल लेकर श्रीकृष्णसे कहूँगा तो वे तुझको ले जायँगे। आज या कलमें तुम चली जाओगी। श्रीकृष्ण मेरी बात टालेंगे नहीं, पर मेरी राय यह है कि अभी कुछ दिन तुम यहाँ और रहो। तुम्हारे द्वारा बहुत-से लोग भगवान्‌की ओर लगे हैं और अध्यात्म-पथपर चल रहे हैं। लोगोंको भगवदुन्मुखी बनाना भगवदीय कार्य है। यह एक असाधारण कार्य है। तुम्हारे द्वारा यह महान् कार्य हो रहा है। अभी मुझको तुमसे बहुत काम करवाना है। मेरी राय है कि तुमको अपना शरीर अभी रखना चाहिये। इसपर भी यदि तुम जाना चाहती हो तो मैं श्रीकृष्णसे कह सकता हूँ।**

समर्पण-भावकी साकारस्वरूपा बाईने तुरन्त कहा—आपकी जैसी इच्छा।

पूज्य श्रीबाबाने सराहना करते हुए कहा—तुमसे इसी उत्तरकी अपेक्षा थी और यही उत्तर शोभा भी देता है।

यथोचित उपचार आरम्भ हो गया और क्रमशः तबियत ठीक होने लगी। फिर लगभग डेढ़-दो माह गीतावाटिकामें रहना पड़ा।

अब सन् १९८४ का प्रसंग है। भाभीजीके पेटमें बड़ा दर्द रहने लगा। उनका एक्सरे करवाया गया। डॉक्टरोंने बतलाया—पेटमें एक गाँठ है और ऐसा सन्देह हो रहा है कि गाँठके रूपमें कैंसरका रोग शरीरमें जड़ पकड़ रहा है। बाईने मन-ही-मन कुछ संकल्प किया और बाईने भाभीजीका कैंसर-रोग अपने ऊपर ले लिया और इसीका परिणाम था कि दोबारावाली एक्सरे प्लेटमें वह गाँठ नदारद थी। इस गाँठने बाईके शरीरमें अपना स्थायी स्थान बना लिया और पेटमें ट्यूमरका रूप धारण कर लिया। आगे चलकर भविष्यमें यह रुग्णता ही बाईके जीवनके लिये विघातक सिद्ध हुई।

आषाढ़ी पूर्णिमाका दिन था। इस दिन गुरु स्वरूपा प्रिय सखी श्रीललिताजीका उत्सव सोत्साह मनाया गया। बाईके निर्देशानुसार इस दिन हलुएका भोग लगता था। हाथके पीसे हुए तेरह सेर आटेका हलुआ बनता था, प्रसाद-वितरणका समय होते ही भक्तोंके मध्य प्रसाद बाँटनेके लिये बाई आगे आयीं। यह तो सर्वथा नवीन बात थी। बाईने आजतक तो स्वयं कभी प्रसाद नहीं बाँटा था।

बाई उन्मुक्त भावसे प्रसाद बाँटने लगीं। जो भी प्रसाद लेने आती, उससे बाई पूछतीं कि आपके घरमें कितने व्यक्ति हैं? कोई चार या पाँच या छः या सात बताती, तो बाई उनको उतना ही प्रसाद देतीं।

आज प्रसादका वितरण रहस्यात्मक ढंगसे हो रहा था, बाई मुसकुराती हुई बोलीं—आज तो अन्तर्जगत् हमारे नव-वृन्दावनपर बड़ा प्रसन्न है, मनसे बलिहार है, तभी तो भक्तिका उन्मुक्त दान सबको मिला है।

बाई एक दिन बगीचेमें घूमनेके लिये चली गयीं। बगीचेमें हरिजनकी पञ्चवर्षीया बालिका सिरपर लकड़ियोंका छोटा-सा गट्ठर लेकर आ रही थी। उस हरिजन बालिकाको देखते ही बाई भावाविष्ट होकर वहीं बैठ गयीं।

बाईने कहा—यहाँ श्रीराधारानीका दिव्य किञ्चिदंश ही प्रछन्न रूप धारण करके विहरण कर रहा है।

घर आकर भी बाई हरिजन बालिकाकी चर्चा बहुत देरतक भाभीजीसे करती रहीं और कहा—भाभीजी! आपको उसकी पूजा करनी है।

बाईकी प्रत्येक अभिलाषाको पूरा करना ही भाभीजीका जीवन था। प्रसन्नतापूर्वक भाभीजीने कहा—हाँ बाई! तू जैसे बतलायेगी, वैसे ही पूजा हो जायेगी।

बाईने पुनः कहा—भाभीजी! आप एक बात सोच लीजिये कि वह हरिजन बालिका है।

भाभीजीने मुसकुराते हुए कहा—वह कौन है, इससे मेरा कोई मतलब नहीं। मुझे तो तुम्हारे बतलाये अनुसार पूजा करनी है। मेरी दृष्टि तो वहाँतक नहीं पहुँच सकती, जहाँतक तेरी पहुँच है। मैं तो इसीमें अपना सौभाग्य समझती हूँ कि तुम यत्र-तत्र छिपी हुई विभूतियोंको ढूँढ़-ढूँढ़ करके हमें दर्शन कराती हो।

हरिजन बालिकाके पूजनके बाद सभीने उसका सभक्ति वन्दन किया।

संतके हृदयोदधिमें उठनेवाली भाव-तरंगोंकी विपुलता-विविधता-विचित्रता आदिका अनुमान साधारण सांसारिक प्राणियोंके लिये अगम्य ही है।

पूज्या बाईके महाप्रयाणका विवरण अति अद्भुत तथा अति विस्तृत है। उस विवरणको पूज्या बाईकी जीवनीमें पढ़ना चाहिये।

श्रीचन्दाबाई ढाँढनियाँ

भागलपुरकी आदरणीया चन्दाबाईका जन्म १४ नवम्बर १९१८ में हुआ था। इनके माता-पिता श्रीप्रभावतीजी और श्रीरामगोपालजी पोद्दार थे। वे काफी धनाढ्य व्यक्ति थे। जब चन्दाबाईकी बाल्यावस्था थी, तब एक बार पूज्य बाबूजी रतनगढ़से रामगढ़ सत्संगके लिये गये। बाईकी आयु लगभग दस वर्षकी रही होगी। बाईका बड़ा भाई बाबूजीके सत्संगमें गया। वहाँसे लौटकर भाईने बाबूजीके प्रवचनकी भूरी-भूरी सराहना की। उस सराहनाको सुनकर बाईने उपालम्भ देते हुए भाईसे कहा कि मुझे अपने साथ क्यों नहीं ले गये।

बाईको इस बातका बड़ा खेद था कि यह सुन्दर अवसर मेरे हाथसे निकल गया। यही बाईके लिये पूज्य बाबूजीका प्रथम शाब्दिक परिचय था। बाई मन-हन-मन सोचने लगी कि क्या कभी मुझे उन महान संतके दर्शन हो पायेंगे। इसके बाद बाईका विवाह हो गया और वह अपने ससुराल भागलपुर चली आयी। तेरह सालकी आयुमें बाईका विवाह श्रीबद्रीविशालजी ढाँढनियाँके साथ हुआ। श्रीबद्रीविशालजी रायबहादुर श्रीलोकनाथप्रसादजी ढाँढनियाँके सुपुत्र थे। घरमें कठोर पर्दा-प्रथा होनेके कारण इनका कहीं भी सत्संगमें आना-जाना सम्भव नहीं हो पाता था। बाईके ससुरजी धार्मिक प्रवृत्तिके व्यक्ति थे। घरमें ठाकुरबाड़ी थी। ठाकुरजीकी पूजा बहुत विधि-विधानसे होती थी। उनके ससुरजी प्रतिवर्ष पूज्य श्रीसेठजी, स्वामी श्रीरामसुखदासजी, स्वामी श्रीशरणानन्दजी आदि महान संतोंको बुलाकर घरके आँगनमें हर सत्संगका आयोजन किया करते थे। बाई मन लगाकर प्रवचनोंको सुना करती थी। इसका बाईके मनपर बड़ा प्रभाव पड़ा।

बाईके ससुर भजनपरायण जीवनके प्रति महत्त्वपूर्ण बुद्धि होनेके कारण सेठजी तथा बाबूजीकी और 'कल्याण' पत्रिकाको मँगाया करते थे तथा बाईको स्वाध्यायके लिये कहा करते थे। उनके ससुरजी अवसर मिलते ही सत्संगके लिये सेठजीके पास जाया करते थे। सन् १९२७ में जब जसीडीहमें सेठजीकी उपस्थितिमें बाबूजीको भगवान विष्णुके दर्शन हुए थे, उस समय उनके ससुरजी वहीं थे। इसका विवरण ससुरजी बाईको सुनाया करते थे।

भागलपुरमें गणमान्य वैद्य श्रीदेवीदत्तजी त्रिवेदीकी सुपुत्री श्रीशान्तिदेवी बियाला थी, जो छोटी उम्रमें ही विधवा हो गयी थी। उसका चन्दाबाईके घर बहुत आना-जाना था। उससे इन्होनें श्रीगीताजी एवं श्रीविष्णुसहस्रनाम पढ़ना आरम्भ किया। अध्ययनके दौरन ही शान्तिबाईने इसे ध्यान लगाना भी सिखाना प्रारम्भ कर दिया। बाई घंटों ध्यानावस्थामें बैठकर नामजप किया करती। इसकी छोटी ननद श्रीज्ञानबाई भी इसका सहयोग करने लगी। ससुरालमें बहुत देरतक ध्यान लगा पाना सम्भव नहीं हो पाता था, अत: जब इनकी सासजी घरपर नहीं होती थी, ये दोनों ननद और भाभी अलग-अलग कमरेमें बैठकर पंखेकी ध्वनिके आधारपर नापजप किया करती थीं।

घरमें पर्दा-प्रथा थी। कमरोंमें नौकरोंका प्रवेश वर्जित था। सफाईके लिये केवल दाई कमरेमें जा सकती थी। बाईकी हवेलीमें सात आँगन थे। घुड़सालकी जगह अलग थी। हवेलीके सामने एक विशाल बगीचा था। घरमें कुछ दूरपर सुन्दरवन नामका एक बगीचा था। वह बगीचा बीस बीघा जमीनमें था। इस तरहकी कई जमीनें थी। घरमें एक व्यक्तिपर एक नौकर रहता था। स्त्रियोंके लिये दाई अलग रहती थी। चौकेके नौकर अलग थे और सफाई करनेवाले नौकर अलग थे। सुन्दरवनमें कई तरहके पेड़ थे। उसमे एक-दो पेड़ ऐसे थे, जिनपर सात सौ या आठ सौ ग्रामका आम्रफल होता था। उसकी क्वालिटी बहुत बढ़िया थी। जब आम पक जाते थे तो आम्रफलोत्सव मनाया जाता था। यह उत्सव कई बार मनाया जाता था। इसमें बड़े-बड़े अफसर कलक्टर, मजिस्ट्रेट, डी.एम., एस.पी. आदि हर विभागके उच्चाधिकारी आया करते थे।

घराना अत्यधिक धन-सम्पन्न होनेपर भी माँजीके पास बैठकर बहू-बेटियोंको सिलाई, कढ़ाई, बुनाई, अचार, पापड़ आदिका काम सबेरे नौ बजेसे लेकर शामके पाँच बजेतक कराना पड़ता था। इन कामोंको करते हुए भी बाई मन-ही-मन नाम-जप करती रहती थी। घरमें पर्दा-प्रथा अवश्य थी, पर श्वसुरजी इनसे बात किया करते थे। पुत्रीवत् प्यार करते थे और उसके हर रुचिका ध्यान रखते थे। श्वसुरजी बाईको 'चन्दा बेटा' कहकर सम्बोधित किया करते थे।

बाईके सास-ससुर प्रतिवर्ष गीताभवन पूज्य श्रीसेठजी तथा पूज्य बाबूजीके सत्संगमें जाया करते थे। बाईकी सादगी एवं भजन-निष्ठाको देखकर ये लोग इन्हें भी गीताभवन ले जाने लगे। कभी-कभी एक महीनेसे अधिक भी रह जाना हो जाया करता था।

बाई अपने श्वसुरजीको बाबूजी कहा करती थी। बाई बाबूजीके साथ स्वर्गाश्रम गयी हुई थी। पूज्य श्रीसेठजीके सत्संगमें तीन सप्ताह रहनेके बाद बाबूजीने भागलपुर वापस जानेका कार्यक्रम बना लिया। तभी ज्ञात हुआ कि तीन दिन बाद पूज्य बाबूजी स्वर्गाश्रम आनेवाले हैं। बाईकी बड़ी चाह थी कि हमलोग एक सप्ताह और ठहर जायँ, जिससे पूज्य बाबूजीका दर्शन और प्रवचन-श्रवणका अवसर मिल सके। बाल्यावस्थाकी उस पुरानी चाहके पूर्ण होनेका यह सुन्दर अवसर था। ऐसा सोचकर बाईने बाबूजीसे एक सप्ताह और ठहरनेके लिये अनुरोध किया, किन्तु कार्यक्रम बन जानेके कारण बाबूजी सहमत नहीं हुए।

उधर बाबूजी पूज्य सेठजीके पास गये और इधर बाईके मनमें व्यथाका ज्वार उमड़ आया। आँखोंसे आँसू झर-झर बह रहे थे। रो-रोकर भगवानसे प्रार्थना कर रही थी। अपना दर्द भगवानको सुना रही थी। बाईको समयका भान नहीं रहा। थोड़ी देर बाद बाबूजी आये और कहने लगे—बेटा चन्दा! तुम्हारे मनकी बात हो गयी। सेठजीने कहा है कि आप सात दिन और रुक जाइये क्योंकि हनुमान गोरखपुरसे आ रहा है।

इस संवादसे बाईके आनन्दकी सीमा नहीं थी। पूज्य बाबूजी स्वर्गाश्रम आये और वे मिलनेके लिये हमारे कमरेमें आये। पूज्य बाबूजीके आते ही बाबूजीने (श्वसुरजीने) उनसे कहा—पहले आप इससे मिल लीजिये। यह आपसे मिलनेके लिये बहुत विकल है।

तुरन्त एकान्त स्थानमें पूज्य बाबूजी बाईसे मिले। बाबूजीसे भला क्या पर्दा? बाईने बाबूजीके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम किया। उनका दर्शन पाकर बाईके आनन्दकी सीमा नहीं थी। बाबूजीने पूछा—बोलो, क्या पूछना चाहती हो?

सरलमति बाई भोलेपनके साथ मधुर स्वरमें कह बैठी—ऐसा सुना है कि आपको जसीडीहमें भगवानके दर्शन हुए थे। मुझे वह बात बतलाइये।

बाबूजीने सहज ढंगसे दर्शनके बारेमें बतलाया कि अब भी होते हैं। इतना कहते ही बाबूजीके नेत्रोंसे ऐसा प्रकाश उद्‌भासित हो उठा, जो वर्णनातीत है।

इसके बाद बाबूजी इससे सम्बन्धित कई बातें बड़े स्वाभाविक रीतिसे बतलाते चले गये। उनके श्रीमुखसे इस प्रसंगको सुनकर मुझे तृप्ति ही नहीं होती थी। उनका भगवापर विश्वास, उनके बोलनेकी मिठास, उनके व्यवहारकी सरलता और उनके स्वभावकी मधुरता देखकर मन बरबस उनके श्रीचरणोंपर न्यौछावर होता चला गया। स्वर्गाश्रमकी इस यात्रामें और भी कई बार बाबूजीसे मिलनेका अवसर मिला और जब-जब अवसर मिला, तब-तब मन अधिकाधिक उनके प्रति झुकता चला गया।

लगभग एक सप्ताह बाद जब हमलोग स्वर्गाश्रमसे भागलपुर जाने लगे तो हमें विदाईके लिये तथा नावपर चढ़ानेके लिये बाबूजी घाटपर आये। नावपर चढ़ते समय मैंने श्रीभाईजीको मन-ही-मन प्रणाम किया। श्रद्धेयको प्रणाम करते समय मन इतना भावविभोर हो रहा था कि थोड़ी असावधानी हो गयी और एक बार पैर आगे रखते समय लड़खड़ा गया। पैरमें काफी चोट आयी और पीड़ा आरम्भ हो गयी, परंतु अपने माँ-बाबूजीसे बहुत संकोच होनेके कारण मैंने उनसे कुछ कहा नहीं। मैंने मन-ही-मन यह भी मान लिया कि किसीने मेरे लड़खड़ानेको देखा ही नहीं। यदि कोई देख लेता तो मुझ कुल-वधूके बारेमें न जाने क्या सोचता। नावसे हम लोग गंगाजीके पार उतरे, पर पैरकी पीड़ा बढ़ती ही जा रही थी। हरिद्वार पहुँचते-पहुँचते पैरमें बहुत सूजन आ गयी। इससे बाबूजीको बड़ी विकलता हुई और उन्होंने हरिद्वारमें ही डॉक्टरको बुलाकर पैर दिखलाया। भागलपुर आनेके बाद भी एक-डेढ़ मासतक पैरका कष्ट भोगना पड़ा। भागलपुर पहुँचनेपर मुझे बाबूजीका पत्र मिला, जिसमें बड़ी चिन्ता व्यक्त की गयी थी मेरे पैरके लड़खड़ानेके बारेमें। घाटपर मेरे पैरके लड़खड़ानेको उनकी पैनी दृष्टिने देख लिया था। मैं तो यह मान बैठी थी कि किसीने देखा ही नहीं होगा, पर मुझे आश्चर्य हो रहा था बाबूजीकी पैनी दृष्टिपर। क्या उनकी दृष्टि इतनी पैनी है कि उन्होंने एक क्षणमें देख लिया मेरे लड़खड़ानेको? इसीके साथ-साथ मेरे कष्टका अनुमान भी उन्होंने कर लिया। श्रीभाईजीने पत्रमें जितनी, जितनी सहानुभूति और जितनी आत्मीयता थी, वह मेरे लिये एक अमिट स्मृति है, मनपर एक स्थायी छाप है। समय बीत गया, पर उस समयकी बात यादके रूपमें सदा मनपर छायी रहती है। बाबूजीकी वह आत्मीयता कभी भुलायी जा सकती है?

गीताभवनकी रहनेकी अवधिमें पूज्य बाबूजी एवं पूज्य बाबाने बाईको

बहिनी कहकर सम्बोधित किया था। गीताभवनसे भागलपुर वापस आनेके बाद बाईकी साधना विकसित होने लगी। भोगोंसे उपरामताके कारण राजसी खान-पानके प्रति उपेक्षा बुद्धि हो गयी। बाजारकी वस्तु खाना छोड़ दिया। भोजनमें रूखा फलका और आलूका भर्तू मात्र लिया करती थी। एक वर्षतक किसीको पता ही नहीं चला। जब बाबूजीको पता चला तो उन्हें असहनीय हो गया। घरमें गायें थी। अब इनके लिये अलगसे गायके घीसे भोजन बनता। बाबूजीका बाईके प्रति अपार वात्सल्य था। बाईके मनमें सत्संगकी चाह रहा करती थी, परंतु पर्दा-प्रथाके कारण कहीं जाना नहीं हो पाता था। भगवानने चाहकी पूर्तिका मार्ग निकाल दिया। एक बार पूज्य सेठजी भागलपुर आये और बाईकी भावनाको आदर देनेके लिये बाबूजीके आग्रहपर सेठजीके द्वारा सन् १९४८ में महिला संघकी स्थापना भागलपुरमें हुई।

महिला संघके लिये जमीन खरीद ली गयी। उसी स्थानपर महिला संघके भवनका निर्माण हुआ। महिला संघमें श्रीराधाकृष्णके श्रीविग्रह विराजित हो गये और पूजा-अर्चा होने लगी। महिला संघमें एक-दो बहिनें नित्य रहने लगीं।

बाबूजीको एक घनिष्ट मित्रने कागजी जालसाजी करके उस सुन्दरवनपर अपना अधिकार कर लिया। इसका बाबूजीको बड़ा मानसिक धक्का लगा। एक दिन इनकम टैक्सकी माँग आ गयी। रकम अधिक थी। रकमकी व्यवस्थाकी समस्या सामने थी। बाबूजीको चिन्तित देखकर बाई अपने कुछ गहने लेकर उनके पास आयी और कहने लगी—आप इतनी चिन्ता क्यों कर रहे हैं? मैं इन गहनोंको लेकर क्या करूँगी? इन गहनोंको बेचकर इस विपत्तिसे निपटिये।

बाबूजीने कहा—घरकी बहूका गहना मैं बेचूँ, यह मुझे शोभा नहीं देता।

बाई अपने गहने लेकर वापस चली आयी। किसी प्रकारसे रकमकी व्यवस्था करके आयकरको चुकाया गया। घनिष्ट मित्रने कागजी जालसाजी करके जो धोखा दिया, उसका बाबूजीके मनपर बड़ा असर पड़ा और उसके फलस्वरूप उन्होंने भागलपुरका परित्याग करके काशीवासका नियम ले लिया। अब तो चन्दाबाई बिलकुल अकेली हो गयी। उनके नहीं रहनेसे भागलपुरमें होनेवाले सत्संगके आयोजनमें व्यवधान आ गया। अब बाईने महिला संघकी सेवाको ही अपना मुख्य भजन बना लिया। सन् १९५८ में रुक्मिणीबाई महिला

संघमें आकर रहने लगी थी। संघमें श्रीफूलबाई चौधरी रहा करती थी। उनसे बाईकी साधनामें बड़ी सहायता मिली।

बाईके पूज्य पति श्रीबद्रीविशालजीका व्यापार ठीकसे चल नहीं पाता था। पदे-पदे घाटा हो रहा था। इस संकटकालमें धीरे-धीरे सब जमीन बिक गयी। गोलाघाटमें एक बगीचा था। जिसको बाबूजीने बाईके नाम कर दिया था। परिस्थितिवशात् यह बगीचा भी एक दिन बिक गया। इसकी सूचना वाराणसीमें जब श्रीलोकनाथजीको मिली, तब उन्होंने बाईसे कहा—चन्दा बेटा! तुमने यह क्या किया?

बाईने हँसकर कहा—जब घरपर विपत्ति है, तब वह बगीचा लेकर मैं क्या करती?

चन्दाबाईके तीन पुत्र थे। बड़े पुत्रको चीनी मिलका काम सौंप दिया गया। जब दोनों पुत्र पढ़कर बड़े हुए तो द्रव्यार्जनके लिये उनको साधारण-सी नौकरी करनी पड़ी। उन पुत्रोंकी व्यवस्था करनेके लिये बाईको कलकत्ता जाना पड़ा। ऐसी पारिवारिक स्थितिमें गोरखपुर यात्राका कार्यक्रम शिथिल पड़ गया किन्तु उनका भजन अक्षुण्ण चलता रहा और वे यह हमेशा अनुभव करती रहती थी कि मैं पूज्य बाबूजी एवं पूज्य बाबाकी बहिन हूँ।

शीघ्र ही उनके मझले पुत्रका सम्बन्ध तय हो गया। सम्भवत: सन् १९६३ की बात है। प्रिय नरेश बड़ा संस्कारी बालक रहा है। जब यह दो-तीन वर्षका था, तब यह खेलते-खेलते तिमँजिले मकानकी खिड़कीसे अचानक बाहर नीचेकी ओर गिर पड़ा। जिस मकानमें हमलोग सपरिवर रहते थे, उस मकानमें ठीक नीचे बर्छीनुमा रेलिंग लगी थी। नीचे गिरते ही हमलोगोंके होश गुम हो गये कि पता नहीं, उस बालकपर क्या बीती होगी। सीढ़ीसे जल्दी-जल्दी उतरकर उसे सँभाला गया। मामूली क्या, अत्यन्त साधारण खरोचके अलावा उसे कहीं तनिक भी चोट नहीं आयी थी। उससे हमलोगोंने पूछा—क्या तुमको कहीं चोट लगी है?

प्रिय नरेशने कहा—माँ! मुझे कहीं भी चोट नहीं लगी और माँ! मुझे लगती कैसे, जब मुझको एक छोटे-से लड़केने अपनी गोदमें रोक लिया। उनके काले-काले घुँघराले बाल बड़े चमक रहे थे। आँखोंकी चमक और भी न्यारी थी। पीले-पीले कपड़े पहने हुए वह बड़ा ही प्यारा लग रहा था। उसकी कमरमें धोतीके पास एक वंशी भी चमक रही थी।

प्रिय नरेशके मुखसे तोतली भाषामें यह वर्णन सुनकर हमलोगोंको अपार सुख मिल रहा था और यह देखकर हमलोगोंको अपार आनन्द भी हो रहा था कि भगवान श्रीकृष्णकी इस बालकपर असीम कृपा है, जो उन्होंने स्वयं पधारकर इसके जीवनकी रक्षा की।

इसी संस्कारी पुत्रके बड़े होनेपर इसकी विवाह-तिथि निश्चित हो गयी तो बहिनके नाते भात भरनेके लिये पूज्य श्रीभाईजीको न्योता देना ही था। प्रिय नरेशके पिताजी और हम दोनों वाराणसीसे गोरखपुर गये और श्रीभाईजीको निमंत्रण दिया। श्रीभाईजीने बड़े प्रसन्न मनसे वह निमंत्रण स्वीकार किया। इसके बाद हमलोग पूज्य बाबाके पास गये। यह एक प्रकट सत्य है कि पूज्य बाबा श्रीभाईजीके साथ आयेंगे ही, इसके बाद भी प्यारकी प्रबलताने अनुरोध करनेके लिये विवश कर दिया और उन्हें भी विवाहके अवसरपर पधारनेके लिये निमंत्रण दिया। पूज्य बाबाने भी बड़े प्रसन्न मनसे निमंत्रण स्वीकार किया। श्रीभाईजी एवं पूज्य बाबाकी प्रसन्न स्वीकृतिसे हमदोनोंको बड़ी प्रसन्नता हुई और प्रारम्भमें ही यह प्रसन्न स्वीकृति एक अति श्रेष्ठ शुभ शकुन था। बड़े प्रसन्न मनसे हम दोनों गोरखपुरसे वाराणसी लौट आये।

दिन जाते क्या देर लगती है। विवाहकी तिथि समीप आ गयी और मांगलिक अवसरपर उपस्थित होनेके लिये गोरखपुरसे समाचार भी आ गया कि पूज्य श्रीभाईजी और बाबा अमुक दिन प्रात:काल ट्रेनसे वाराणसी आनेवाले हैं। मेरी बड़ी चाह थी कि उनका स्वागत करनेके लिये स्टेशन जाऊँ, पर जानेके लिये घरवालोंने अनुमति नहीं दी। अनेक वैवाहिक नेगचारोंको समपत्र करनेका कार्य-भार अधिक होनेके कारण मुझे स्टेशन जानेसे रोक दिया गया। स्टेशन जानेके लिये मेरे मनमें बड़ी आतुरता थी, पर रोक दिये जानेसे मन आकुलतासे भर उठा। इसके बाद भी मैंने किसी प्रकारसे अपने मनको समझा लिया और मैं स्टेशन नहीं गयी।

पूज्य श्रीभाईजी और पूज्य बाबा निश्चित तिथिको निश्चित समयपर वाराणसी आये और उन्हें गायघाट स्थित डालमिया कोठीमें ठहरा दिया गया। उनके निवासकी व्यवस्था डालमिया कोठीमें ही की गयी थी। मेरे मनमें आया कि भले, मुझे स्टेशन नहीं जाने दिया गया, पर मैं डालमिया कोठी जाकर पूज्य श्रीभाईजी और पूज्य बाबाके दर्शन कर आऊँ। ज्यों ही मैंने डालमिया कोठी

जानेकी इच्छा व्यक्त की, वहाँ भी मुझे जानेसे रोक दिया गया और रोका गया वैवाहिक कार्योंका विस्तार बताकर। वैवाहिक कार्योंका आधिक्य चाहे जितना हो, पर इस बारका प्रतिबन्ध मुझे बड़ा अप्रिय लगा। इतना अधिक अप्रिय लगा कि मन पूर्णत: खिन्न हो गया और मैं अपने ऐकान्तिक पूजाघरमें बैठकर आराध्यके सामने रोने लगी। आँसुओंका प्रवाह रुक ही नहीं रहा था। यह प्रतिबन्ध भी भला क्या माननीय है, जो संत दर्शनमें बाधक सिद्ध हो? अबलाका बल अश्रु ही है। मेरा हृदय श्रीभाईजीके दर्शनके लिये छटपटा रहा था और झर-झर आँसू गिर रहे थे। मैं अनुमान लगाती हूँ कि वे करुणासागर आराध्य मेरे आसुओंको देखकर अवश्य पसीज गये होंगे। इसी समय मेरी बहिन श्रीसावित्री बाई सेकसरिया पूजाघरमें आयी और मुझे रोते देखकर उसने सारी स्थितिका अनुमान लगा लिया। वह तुरन्त डालमिया कोठी गयी और वहाँ उसने श्रीभाईजीसे कहा—आप स्टेशनसे उसके पास नहीं जाकर सीधे डालमिया कोठी चले आये और वह वहाँ बैठे-बैठे अपने आँसू बहा रही है।

यह सुनते ही श्रीभाईजी डालमिया कोठीसे चल दिये और मेरे घरपर मेरे पास आये। उनको देखकर मैं और भी फफक पड़ी। वे बड़ी देरतक मेरे पास बैठे रहे और मुझे सहलाते रहे। बार-बार मेरी पीठपर हाथ फेरकर वे समझाते रहे और मुझे धीरज देते रहे। सचमुच उनकी वाणी और उनके स्पर्शमें कोई जादू ही रहा होगा। उसीका प्रभाव था कि मनकी सारी खिन्नता न जाने कहाँ चली गयी और मनमें भर गयी असीम मधुरता।

इन पुरानी बातोंकी स्मृति आते ही बार-बार यही भाव मनमें आता है कि उन जैसा स्नेह तो वे ही दे सकते थे। जैसा स्नेह उन्होंने दिया, उसके मिठासकी याद आते ही उनके द्वारा रचित पदकी कुछ पंक्तियाँ याद आने लगती हैं।

स्याम- सो साँचो स्नेही कौन?
को चित देइ सुनै सब मन की, मन की राखै कौन?
को मो दृगन सलिल-कन देखत ही ह्वै जाय अधीर।
को निज कर सौं पौंछि अश्रु-जल, सुहृद बँधावे धीर॥
कोमल हाथ पीठ पर फेरै, धीरज दै पुचकारै।
मम आसा-लतिका की जड़ में मधुर अमी-रस ढारै॥

उस प्रसंगको बताते-बताते ऐसे भाव उमड़े कि मैं बीचमें ही श्रीभाईजीके

स्नेहकी बात कहने लग गयी। मुझको सान्त्वना देनेके बाद श्रीभाईजी परिवारके अन्य लोगोंसे व्यक्तिगत रूपमें मिले और फिर वे डालमिया कोठी चले गये।

अपराह्नकालमें मैं श्रीभाईजीको 'भात' का निमंत्रण देनेके लिये गयी। गोरखपुरमें तो मौखिक रूपसे कहा था, पर अब तो वैवाहिक नेगचारके रूपमें विधिवत निमंत्रण देना था। पूज्य श्रीभाईजीने निमंत्रण स्वीकार किया। इसके बाद मैं पूज्य बाबाके पास गयी और उनसे प्रार्थना की—बाबा! मैं तो आपकी बहिन हूँ और आपके लिये भात भरनेका निमंत्रण है।

पूज्य बाबाने कहा—हाँ बहिनी! तू मेरी बहिन है और मेरी ओरसे तुझको भातकी चुनरी ओढ़ायी जायेगी।

इतना कहकर पूज्य बाबाने उसी समय पूज्या माँको और पूज्य श्रीभाईजीको अपने पास बुलाया। जब वे आ गये तो पूज्य बाबाने कहा—मैया, एक चूनरी तो तू गोरखपुरसे तैयार करके ले आयी हो, जिसे श्रीभाईजी ओढ़ायेंगे, पर इसके अलावा एक और चूनरी अभी बाजारसे मँगवाकर तैयार करवा दें। वह चुनरी मेरी ओरसे मेरे प्रतिनिधि बनकर श्रीभाईजी चन्दा बहिनको ओढ़ायेंगे।

माँसे इतना कहकर फिर पूज्य बाबाने मुझसे कहा—चन्दा बहिनी! श्रीभाईजीको दो टीका करना, एक उनके लिये ओर एक मेरे निमित्तसे।

मैंने पूज्य बाबासे कहा—बाबा! ऐसा ही होगा।

इस समय मेरे आनन्दकी सीमा नहीं थी। पूज्या माँका उत्साह, पूज्य बाबाकी उमंग और पूज्य श्रीभाईजी का उल्लास देखकर मेरी प्रसन्नता पराकाष्ठापर थी। शामको भात भरनेके लिये पूज्य श्रीभाईजी मेरे घर पधारे। मांगलिक गीतोंसे घरका द्वार गुञ्जित हो रहा था। मैंने श्रीभाईजीको टिका किया और श्रीभाईजीने मुझे चूनरी ओढ़ायी। जब श्रीभाईजीका नेगचार हो गया तो फिर श्रीभाईजीने कहा—बाई! एक टीका बाबाके निमित्तका करो।

वह तो मुझे करना ही था। टीका करनेके बाद श्रीभाईजीने पूज्य बाबाके प्रतिनिधिके रूपमें चूनरी ओढ़ायी। मैं रह-रह करके अपने सौभाग्यकी सराहना कर रही थी। फिर तो सारे वैवाहिक कार्य एक-एक करके सम्पन्न हुए और लगभग सभी मुख्य कार्योंमें श्रीभाईजी उपस्थि रहे। विवग्ह जैसे मांगलिक कार्यके अवसरपर परम सिद्ध महान संत पधारें और वह भी एक भाईके रूपमें पधारें, उस कार्यको भली प्रकार सम्पन्न होना ही था। विवाहोत्सवकी व्यस्तता और

जिम्मेदारी कम नहीं होती, प्रतिक्षण कोई-न-कोई बात सामने आती ही रहती है, साँस लेनेकी फुरसत नहीं मिलती, पर इस सारी घनी व्यस्ततामें एक भाव आदिसे अन्ततक मेरे मनपर छाया ही रहा कि प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधवके लीलारसमें नित्य निमग्न रहनेवाले सिद्ध संत श्रीभाईजीका मेरे पुत्रके विवाहमें शुभागमन हुआ और सभी मुख्य मांगलिक अवसरोंपर वे उपस्थित रहे, यह कितना महान सौभाग्य है। उनके प्यारको याद करके मेरा रोम-रोम पुलकित हो रहा था। *'किमि कहि जात मोदु मन जेता'*। सचमुच मनमें अपार आनन्द उमड़ रहा था श्रीभाईजीके अपार स्नेहको देखकर। उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्वकी अमित महत्ता सर्वजन-वन्दनीय है, परन्तु उस महत्ताको भुलाकर, प्रियतामें डूबकर समस्तरतापर आकर उन्होंने मुझ साधारण-सी बहिनके अनुरोधको आदर दिया और 'भूल उच्चता भगवत्ता सब' वे मेरे द्वारपर पधारे, इस भावानन्दमें मन सराबोर था और उसकी स्मृति आज भी सराबोर कर देती है।

पूज्य सेठजी (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) बहुत अस्वस्थ थे। उनके रोगका निदान करवानेके लिये उनको बाँकुड़ा (पश्चिम बंगाल) से वाराणसी लाया गया। यह बात सन् १९६४ के अगस्त मासकी है। रोग निदानका कार्य भली प्रकारसे हो सके, एतदर्थ पूज्य बाबूजी एवं पूज्य बाबा भी गोरखपुरसे वाराणसी गये और वाराणसीमें ठहरे डालमीया कोठीमें, जो गाय घाटपर स्थित है। रोग-निदान तो ठीक प्रकारसे हुआ ही, किन्तु मिलनेके लिये आनेवाले साधु-संतों-सज्जनोंकी संख्या भी कम नहीं थी। पूज्य बाबूजी एवं पूज्य बाबाके दर्शनार्थ आदरणीया श्रीचन्दाबाई भी डालमिया कोठी गयीं।

पूज्य बाबा श्रीचन्दाबाईको अपनी सहोदरा बहिन ही मानते थे और सम्मान तथा स्नेह भी उसी स्तरका देते थे। श्रीचन्दाबाई दिनमें जब मिलने गयीं, तब मिलनेवालोंकी संख्या अधिक देखकर अपने निवास-स्थानपर वापस चली आयीं।

वे वापस चली तो आयीं, पर उनको एक दृश्य भूल नहीं रहा था। पूज्य बाबाके पास जो भी मिलने जाता, वे मिलने वालेको भूमिपर माथा टेक करके प्रणाम करते। बार-बार माथा टेकनेसे ललाटपर एक गोली-सी बन गयी थी, जो एक स्पष्ट संकेत था कि त्वचामें पर्याप्त सूजन आ गयी है। मनमें विचार हो रहा था कि इससे उनको कष्ट हो रहा होगा। पूछनेपर पूज्य बाबूजीने बतलाया कि पूज्य बाबा प्रत्येक मिलने वालेको साक्षात् श्रीकृष्ण मानकर प्रणाम करते हैं।

पूज्य बाबाके इस भगवद्भावको देखकर श्रीचन्दाबाईको यदि एक ओर बड़ा विस्मय हो रहा था तो दूसरी ओर बड़ी स्फूर्ति मिल रही थी कि जीवन हो तो ऐसा हो।

स्फूर्ति-विस्मय-वन्दन-स्मृति-अनुरक्ति आदि भावोंमें निमग्न श्रीचन्दाबाई अपने निवास स्थानपर लौट आयीं अपनी वृद्धा सासूजीकी सँभालके लिये। उनकी वृद्धा सासूजी इन दिनों काशीवास कर रही थीं सही सोच करके कि जीवनके शेष दिन भगवान् विश्वनाथके समीप व्यतीत करना है और पूज्या सासूजीकी सेवाके लिये श्रीचन्दाबाई भागलपुरसे वाराणसी आ गयी थीं।

उस दिन रातको श्रीचन्दाबाई पुनः पूज्य बाबाके दर्शनार्थ डालमीया कोठी गयीं। जब बाई पहुँचीं तो पूज्य बाबा भिक्षा करके अपने शयन-कक्षमें चले जा चुके थे। कोठीमें पहुँचते ही पूज्य बाबूजी सामने खड़े हुए मिले थे। उन्होंने बाईसे पूछा—अब रातको आठ बजे कैसे आयी?

बाईने कहा—पूज्य बाबाका दर्शन करनेके लिये और मैं उनके लिये फूलमाला भी लायी हूँ।

पूज्य बाबूजीने सुनते ही कहा—बाबा तो भिक्षा करके अभी अपने कमरेमें सोनके लिये गये हैं। मैं जा कर देखता हूँ। यदि सोये नहीं होंगे तो मिलना हो सकता है।

पूज्य बाबूजी कमरेमें गये। पूज्य बाबा अभी सोये नहीं थे। उन्होंने बाबासे कहा—श्रीचन्दाबाई आयी है और आपके लिये फूलमाला लायी है।

यह सुनते ही पूज्य बाबा अपने बिस्तरपर उठे, हँसते हुए बाहर आये और फिर श्रीचन्दाबाईसे कहा—यदि थोड़ी देर और नहीं आती तो फिर आज मिलना नहीं हो पाता। मैं न जाने किस लोकमें होता। तुम माला लायी हो, दो मुझे।

पूज्य बाबाने फूलमाला, फूल कंगन तथा इत्र बड़े प्रसन्न मनसे स्वीकार किया। उनकी सहज प्रफुल्लताको देखकर बाईने उनसे कहा—मेरी वृद्धा सासूजी यहींपर हैं। वे काशीवास कर रही हैं। वे आपका दर्शन करना चाहती हैं। आपसे मिलनेकी उत्कट चाह है। रुग्णताके कारण वे आ नहीं सकती। आप ही हमारे निवास-स्थानपर पधारनेकी कृपा करें।

बाईकी बात सुनकर पूज्य बाबूजीकी ओर देखते हुए वे बोले—तुम जब बोलो, तभी मैं आ जाऊँगा।

बातचीतमें यह तय हो गया कि कल सबेरे दस बजे बाईके घर जाना है। बाईके घरतक गलीमें चलते हुए पैदल जाना पड़ता है। कारकी तो बात ही क्या, वहाँतक रिक्शा भी नहीं जा सकता। पूज्य बाबा और पूज्य बाबूजी दोनों पैदल चलते हुए बाईके घर गये। पूज्य बाबाको गलीके पथरीले और ऊँचे-नीचे मार्गपर खड़ाऊँ पहन करके चलना पड़ रहा था। उनके इस प्यारको देखकर बाईका अन्तर भर आया और उसकी छलक आँखोंतक उमड़ आयी। दर्शनोत्सुका सासूजीके सामने एक गद्देपर कम्बल बिछा दिया गया। उसीपर पूज्य बाबा और बाबूजी विराज गये। पूज्य बाबा सासूजीसे बहुत देरतक बात करते रहे। सासूजीने अपनी साधना-भजनकी प्रणालीको बतलाते हुए कहा कि वे नित्य सवा लाख नाम जप, श्रीरामचरितमानसका पाठ और स्तोत्र पाठ किया करती हैं। यह सुनकर पूज्य बाबाने उनसे पूछा—तुम किस लोकमें जाना चाहोगी।

सासूजीने कहा—मैं तो गोलोक धाममें जाना चाहती हूँ और आपसे यही आशीर्वाद भी चाहती हूँ।

पूज्य बाबाने प्रसन्न मनसे कहा—ऐसा ही होगा। ऐसा ही होगा।

श्रीचन्दाबाईने स्वागतमें शर्बत बना रखा था। बाईने पूज्य बाबूजीको शर्बत पिलाया। यह देखकर पूज्य बाबाने उनसे कहा—आपने छोटी बहनके घरका शर्बत पीया है। अब इसका मूल्य चुकाइये। छोटी बहनसे लेना नहीं होता, अपितु उसे देना होता है।

पूज्य बाबूजीने मूल्य न जाने कितना अधिक दे डाला। इस भाव-व्यापार और स्नेह-व्यवहारको देखकर श्रीचन्दाबाईकी आँखें रह-रह करके भर-भर आ रही थीं। पूज्य बाबाने मात्र गंगाजल स्वीकार किया। उसी भवनमें संस्कृत भाषा और साहित्यका अध्ययन करनेवाले अनेक विद्यार्थी रहते थे। पूज्य बाबाने सबको दक्षिणा दिलवायी। वहाँसे चलते-चलते उन्होंने एक बड़ी गम्भीर बात कही, कही एक दोहेके माध्यमसे कि प्रेमके पथपर जिसे आत्मोसर्ग करना हो, वह मेरे साथ चले।

राधा खड़ी बाजार में लिये लुकाटी हाथ।
जो घर फूँको आपना चलो हमारे साथ॥

एक बार पूज्य सेठजी भागलपुर आये। उस समय श्रीसेठजीने बाईसे कहा—तू रुक्मिणीबाईसे बात किया कर। इससे तुझको प्रेरणा मिला करेगी।

तबसे बाई सत्संगके लिये प्रायः रुक्मिणीबाईसे मिला करती थी और भगवत्त्चर्चा किया करती थी। बातचीत करते-करते बाईको यह अनुभूति है। एक बार बाबूजीने बाईसे कहा भी था—देख! चन्दा बहिनी! मैं मेरे हृदयका एक अमूल्य रत्न बाई रुक्मिणीके रूपमें तुमको सौंप रहा हूँ। इस रत्नको बहुत सँभाल कर रखना।

इसी प्रकारके उद्गार व्यक्त करते हुए बाबाने बाईसे कहा था—चन्दा बहिनि! यह रुक्मिणी मेरे हृदयकी मणि है। मैं ही इसे स्वच्छ करता हूँ। जौहरीकी भाँति इस मणिमें निखार और उभार लाता रहता हूँ। मैं निरन्तर इसके साथ रहता हूँ। यह भगवती गंगाकी तरह पवित्र है। तुम अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर इसकी सुरक्षा और सँभाल करना।

पूज्य बाबूजी एवं पूज्य बाबाके ऐसे भावोद्गारोंके उपरान्त बाईके हृदयके एक-एक स्पन्दनमें, शरीरके एक-एक रोममें, चिन्तनके एक-एक कणमें, भावोंके एक-एक प्रवाहमें रुक्मिणी बाई समायी रहती थी। बाईका सर्वस्व रुक्मिणीबाई पर बलिहार था। बाई मन-ही-मन सराहना कर रही थी कि पूज्य बाबूजी एवं पूज्य बाबाने मुझे जो सम्मान दिया और जो निधि दी, उसका वर्णन नहीं हो सकता। बाईके आन्तरिक उल्लासकी सीमा नहीं थी।

अगले साल राधाष्टमी-महोत्सवका अवसर आया। इन दिनों बाई माँजीकी सेवाके लिये वाराणसी रह रही थी। जब श्रीराधाष्टमी-महोत्सवका अवसर आया। मैं चाह रही थी कि इस अवसरपर गोरखपुर श्रीभाईजीक पास जाऊँ। जानेसे एक पंथ दो काज सिद्ध होते। श्रीभाईजीका सांनिध्य और महोत्सवका आनन्द, ये दोनों लाभ प्राप्त होते, पर मन चाहा सदा कब हो पाता है? ये भी गोरखपुर जाना चाह रहे थे, अतः इन्होंने माँजीकी सेवाके लिये मुझे घरपर ही रहनेके लिये कह दिया। माँजीकी सेवाका दायित्व मुझे सौंपा गया था, अतः मैं कुछ बोल नहीं पायी। मुझे वाराणसीमें घरपर रखकर ये अपनी बहिनके साथ गोरखपुर चले गये। मेरी ननद और ये श्रीराधाष्टमी-महोत्सवके दर्शनके लिये गये हैं। इस बातसे मुझे बड़ी प्रसन्नता थी, पर मनमें यह कसक भी थी कि मुझे भी साथ क्यों नहीं ले गये? केवल तीन-चार दिनकी बात थी। माँजीकी सेवा सँभालकी अल्पकालिक व्यवस्था आसानीसे की जा सकती थी। इस शुभ अवसरपर मैं गोरखपुर नहीं जा सकी, इसके लिये मनमें बड़ी

विकलता छायी हुई थी। छटपटी ज्यादा होनेसे मैं मन-ही-मन श्रीभाईजीसे प्रार्थना करने लगी कि आप मुझे किसी प्रकार गोरखपुर उत्सवमें बुला लीजिये। आँसू-भरी आँखोंमें नींद कहाँ? न जाने कब तक यह प्रार्थना चलती रही।

दूसरे दिन प्रातःकाल ये लोग ट्रेनसे गोरखपुर पहुँचे और गीतावाटिका, श्रीभाईजीके पास गये। ज्यों-ही प्रणाम किया, श्रीभाईजीका पहला प्रश्न था—चन्दाबाई कहाँ है?

इन्होंने कहा—माँजीकी सेवाके लिये वाराणसी छोड़ आये हैं?

श्रीभाईजीने उलटकर कुछ नहीं कहा, पर इस उत्तरको सुनकर उन्हें अच्छा नहीं लगा। अब मैं ऐसा अनुमान लगाती हूँ कि इस उत्तरको सुनकर श्रीभाईजीने मन-ही-मन कोई बात सोच ली। क्या बात सोची, इसे कहनेके लिये व्यक्त स्तरपर कोई प्रमाण नहीं है, पर आगे जो घटित हुआ, उसे देखकर अनुमान करनेके लिये मन बाध्य होता है कि भावी घटना-क्रमका सूत्र श्रीभाईजीने परोक्ष रूपसे अपने हाथमें ले लिया। श्रीभाभीजी इन्हें और मेरी ननद, दोनोंको पूज्य बाबाके दर्शनार्थ जानेके लिये कह सकते थे अथवा किसी व्यक्तिके साथ इन्हें पूज्य बाबाके पास भेज सकते थे, परंतु वे स्वयं इनके साथ पूज्य बाबाके पास गये। इन्हें लेकर श्रीभाईजी ज्यों-ही पूज्य बाबाके पास पहुँचे, पूज्य बाबाका भी प्रश्न यहीं था—चन्दाबाई कहाँ है?

पूज्य बाबासे भी इन्होंने यही कहा—माँकी सेवाके लिये वाराणसी छोड़ आये हैं।

पूज्य बाबाने उसी समय श्रीभाईजीसे कहा—आप अभी वाराणसी टेलीफोन करके चन्दाबाईको आनेके लिये कहें।

यही तो श्रीभाईजीकी परोक्ष योजनाका सुगुप्त अंग था। पूज्य बाबाके पाससे आकर श्रीभाईजीने वाराणसी माँजीको फोनपर कहा—आप किसी विश्वस्त व्यक्तिके साथ चन्दाबाईको श्रीराधाष्टमी-महोत्सवके लिये गोरखपुर भेज दें। तीन-चार दिन बाद वह पुनः आपकी सेवामें पहुँच जायेगी।

माँजीकी भी श्रीभाईजीपर अपार श्रद्धा थी। उन्होंने तत्काल मेरे गोरखपुर जानेकी व्यवस्था कर दी। उनको इसी बातसे प्रसन्नता हो रही थी कि बुलानेके लिये स्वयं श्रीभाईजीने फोनपर कहा है। उन्होंने मुझसे कहा भी—अरी देख, यह कितनी बड़ी बात है कि तुमको बुलानेके लिये स्वयं श्रीभाईजीने फोन किया। चली जा, तू अवश्य जा और जब श्रीभाईजी भेजें, तभी आना।

अगले दिन गोरखपुर पहुँचकर जब मैंने श्रीभाईजीको प्रणाम किया तो उन्हें अपार प्रसन्नता हुई। वे उसी क्षण मुझे साथ लेकर पूज्य बाबाके पास गये। पूज्य बाबाको भी सीमातीत प्रसन्नता हुई। पूज्य बाबाने बड़ा स्नेह दिया, बहुत सम्मान किया। उन्होंने अपने हृदयके स्नेहसे मुझे सरोबार कर दिया। आज पूज्य बाबाका प्यार बहुत अधिक उमड़ रहा था। पासमें श्रीभाईजी बैठे हुए थे। उन्होंने श्रीभाईजीकी धोतीका अगला भाग अपनी ओर खींच लिया और उसमेंसे तीन-चार अँगुल छोर फाड़कर मुझे प्रसादी रूपमें दे दिया। प्रसादी-छोर देकर पूज्य बाबाने कहा—बहिनी! इस वस्त्रको साधारण वस्तु मत समझना। इस वस्त्रके कण-कणमें दिव्य व्रजरस है। मेरी बातपर विश्वास कर सको तो कर लो कि यह छोर उन वृन्दावनेश्वर श्रीकृष्णके वस्त्रका छोर है, जो वृन्दावनेश्वरी नीलाम्बरा श्रीराधाके साथ नित्य-निरन्तर विलास-विहार करते रहते हैं।

मैं तो इस प्रसादी-छोरको पाकर धन्य हो गयी। यह तो मेरे जीवनकी एक परम मूल्यवान वस्तु है।

आदरणीया बहिन श्रीचन्दाबाई ढाँढनियाँने भागलपुरसे पूज्य बाबाके पास भेंट स्वरूप कुछ चीजें भेजी और एक पत्र दिया। वस्तुओंको प्राप्त करके और पत्रको सुन करके पूज्य बाबान जो उत्तर लिखवाया, वह नीचे दिया जा रहा है। उत्तर स्वरूप भेजे गये पत्रकी पंक्तियोंको पढ़कर मनमें आस्था जमती है कि जीवनमें आस्तिक भाव होनेसे सब कुछ सम्भव है। यह पत्र १३ अप्रैल १९८७ को भेजा गया था।

॥ श्रीहरिः ॥

आदरणीया चन्दा बहिन,

तुम्हारा भेजा हुआ सामान चिउड़ा, फल, इलायची, फूल माला और तुम्हारा पत्र प्राप्त हो गया है, पर तुम्हारे स्वास्थ्यका समाचार सुनकर मनमें चिन्ता हो गयी। कई सौ मील दूर तुमको क्या भेज सकता हूँ? सोचनेपर मनमें यही स्फुरणा जागृत हुई कि मन-ही-मन तुम्हार चिन्तन करके भगवान्‌के चरणोंमें निवेदन कर दूँ कि प्रभु, चन्दा मेरी धर्मकी बहिन है, उसके कष्टके रूपमें आप ही उसकी परीक्षा ले रहे हैं, लेकिन मन घबड़ा उठना स्वाभाविक है। इसलिये मैंने यही उचित समझा कि सबसे अच्छा है भगवान्‌के चरणोंमें तुम्हें समर्पित करके मैं उन्हींको कह दूँ कि हे प्रभो, हमारी धर्मकी चन्दा बहिनको सर्वथा सर्वांशमें निश्चिन्त बना दें। सबसे बढ़िया उपाय मेरे पास यही था। उसीका आश्रय लेकर सुन्दर-से-सुन्दर जो उपाय था, वही मैं कर गया हूँ। मन इतना शान्त हो गया है कि पत्र लिखाते समय भी याद नहीं रहता कि क्या बोल गया हूँ, क्या लिखा गया हूँ, यद्यपि मुझे किसी प्रकारका दुख नहीं है, किंतु मन सर्वथा शान्त हो जानेके कारण ऊहापोहकी गन्ध भी नहीं रह गयी है। पत्रके माध्यमसे बहिन! यही कहना है कि अनुकूल परिस्थितिका अनुभव होनेपर तो सभी आनन्दसे भर जाते हैं, पर हमारे ही कर्मफलके रूपमें जब कोई दुःख आकर पीड़ित करने लगता है, तब हाय-तौबा मचाने लगते हैं। ऐसा न होकर यदि हम भगवानके चरणोंमें कह बैठते कि प्रभो! आपकी मंगलमयी इच्छा पूर्ण हो तो उस समय ठीक-ठीक अनुभव भगवान्‌की कृपा करा देती कि भगवान जो करते हैं, मंगल ही करते हैं।

एक बारकी बात है। प्रयागके संगमपर मैं स्नान कर रहा था। अचानक धाराने मुझे गहरे पानीमें खींच लिया। मैं तैरनेमें बड़ा सुपटु हूँ, अतएव धारापर ही तैरना लगा, किन्तु धारा इतनी तेज थी कि हमें निकलने नहीं दे रही थी। लगभग आधा घंटा प्रयास करनेपर भी और अपनी सारी शक्ति लगा देनेपर भी धारासे छूट न सका। उस समय मनमें यह बात आयी कि सम्भवतः मेरे महाप्रयाणका समय हो रहा है। ऐसा विचार आते ही मैंने अपनेको धारापर छोड़ दिया, दोनों हाथ पैर फैलाकर जैसे बिस्तरपर लेटते हैं, लेट गया और मन-ही-मन कह उठा कि हे प्राण बन्धो! आपकी मंगलमयी इच्छा पूर्ण हो। यह विचार आते ही जैसे कोई अपने दोनों हाथोंपर मुझे उठा ले, ऐसा अनुभव होकर लगभग बीस गज मेरे बायें हाथकी ओर जैसे कोई उठा लाया और कण्ठभर पानीमें तैर रहा था। एक सेकेण्ड भी इसमें नहीं लगा। यही ठीक-ठीक मुझे अनुभव हुआ। जहाँ पानी बिलकुल शान्त था, वहाँ मैं तैर रहा था। मन-ही-मन आश्चर्यमें डूब गया। आजसे लगभग बाइस वर्ष पहलेका अनुभव है। ऐसे ही न जाने कितनी बार भगवान्‌ने मुझको कहाँ-कहाँ कैसे-कैसे बचाया है। यदि लिखवाने बैठ जाऊँ तो एक पोथा बन जायगा। इसलिये इस प्रसंगको यहीं छोड़ यही कह रहा हूँ कि बिलकुल घबड़ाना मत बहिनी! सम्पूर्ण साहसको बटोरकर हँसते-हँसते इस कष्टको सह लेना। बस, तुमको

अनुभव हो जायेगा कि मेरा कहना कितना अधिक मूल्यवान है। जीवनभर मैंने यही अनुभव किया है। सदा यही अनुभव मुझे हुआ कि भगवान्के मंगलमय विधानपर अपनेको छोड़ देनेके पश्चात् कुछ भी बाकी नहीं रहेगा। सब कर्तव्य पूर्ण हो जायेंगे और हँसते-खेलते मृत्युकी शान्तिमयी गोदीमें चिरकालतक विश्राम करने लगोगी। हो सके तो इस ओर ही चेष्टा करना।

राधा राधा राधा राधा

रुक्मीणीबाईके हर प्रकारके खर्चोंका दायित्व बाईने अपने ऊपर ले लिया था। उस दायित्वको निभानेक लिये बाईने अपने गहने बेच-बेच करके बाबूजी, बाबाकी आज्ञाका पालन किया। महिला संघमें रहनेवली एक बहिन थी। उसकी बहिनका विवाह था। महिला संघवाली बहिन बाईके पास आयी और बोली—मेरे पास कोई गहना नहीं है, विवाहमें कैसे जाऊँ?

बाईने उसको अपने अँगुलीकी कीमती हीरेवाली अँगूठी, जिसकी कीमत पाँच-छः लाखके बराबर होगी, उसको दे दी। वह लेकर चली गयी। बादमें जब वापस करने आयी तो बाईने कहा कि अब यह तेरी है। बाईकी उदारताकी सीमा नहीं थी।

एक बार बाईके दामादकी मृत्यु हो गयी। बाईको बेटीके ससुराल जाना था। रुक्मिणी बाईने कहा—दामादकी मृत्यु विदेशमें हुई है। यदि आप उसकी मुक्ति चाहती हैं तो बेटीके घर नहीं जाना चाहिये।

बाईने रुक्मिमीबाईकी बात ज्यों-की-त्यों मान ली। डेढ़ महीने बाद रुक्मिणीबाईने कहा—अब बात बन गयी है और आप जाकर बेटीसे मिल आइये।

रुक्मिणी बाईने अपने जीवनके अन्तिम तीन वर्ष वृन्दावनमें बिताये थे। ये भी अधिकांश समय उनके संग वृन्दावनमें रहती थीं। लीला-संवरणके पूर्व रुक्मिणीबाईने बाईको दस-पन्द्रह दिन पहले कलकत्ता इसलिये भेज दिया कि बाईके रहते मैं इस भूलोकसे गमन नहीं कर सकती।

श्रीरुक्मिणीबाईने ३ मई १९९५ को अपनी इहलीलाका संवरण कर लिया। इसके बाद बाईने अपना जीवन पूर्णत: ऐकान्तिक बना लिया। एकान्तमें निरन्तर भजन ही एकमात्र कार्य था। बाईका स्वास्थ्य उत्तरोत्तर गिरता जा रहा था। चिकित्साके लिये कलकत्ता जाते समय एक-दो बहिनोंसे बाईने कहा था—अब मैं भागलपुरसे वापस नहीं आ पाऊँगी।

मृत्युलोकसे विदाई लेनेके समय बाई अपने बड़े पुत्र महेशके घरपर थीं। पुत्र, पुत्र-वधू, पौत्र एवं पौत्र-वधू भोजन कर रहे थे। बाईने पुकारकर पौत्र-वधू श्रीमनीशाको बुलाया और कहा—बाई (अर्थात् श्रीरुक्मिणीबाई) मुझे लेनेके लिये आ गयी है और अब मैं जा रही हूँ।

इतना कहकर श्रीचन्दाबाई 'बाई! बाई! बाई! बाई!' कहती हुई अपने पार्थिव शरीरका परित्याग करके सदाके लिये अपनी प्राणप्यारी और बाबूजी-बाबाकी परमनिधि परमादरणीया श्रीरुक्मिणीबाईसे जा मिलीं।

आदरणीया नर्मदीबाई खेतान

श्रीनर्मदीबाई खेतानका जन्म बेगूसराय नगरमें श्रीसरस्वती देवी-श्रीपालीरामजी मैंगोतियाके घर हुआ था। विवाह तेरह वर्षकी आयुमें हो गया था। पूज्य पतिका नाम श्रीछेदीलालजी खेतान था जो नाथनगरमें रहते थे। पतिकी मृत्युके बाद बाई अपने पीहर बेगूसरायमें रहने लगी। उनकी दोनों लड़कियोंकी मृत्यु भी हो गयी। इसके बाद वे अपनी दादी-दादाके संग चारों धामकी यात्राके लिये चली गयीं। तीर्थयात्राके बाद जब बनारस आयीं, तब बाईने अपने दादी-दादाजीसे कहा कि मैं बनारसमें रहूँगी। अब वे बनारसके मारवाड़ी-सेवा-संघमें रहने लगीं।

कुछ दिनों बाद पूज्य श्रीसेठजी बनारस आये। सत्संगके बाद उनसे एकान्तमें मिलीं और कहने लगी—मेरे पीहर और ससुरालमें कोई नहीं है। मैं आपकी शरणमें हूँ।

अब सेठजी जहाँ भी जाते, बाईको अपने साथ ले जाते। एक बार सेठजीको सत्संगके लिये भागलपुर जाना था। भागलपुरका नाम सुनते ही बाईने कहा कि मैं भागलपुर नहीं जाऊँगी, किन्तु सेठजीके आग्रहपर उसे भागलपुर जाना पड़ा। सेठजीके सत्संगमें बेगूसरायसे बाईके पीहरवाले आये थे। उन्होंने सेठजीसे कहा—यह कुलपुत्री हो करके इधर-उधर घूमती है। इससे हमारी इज्जत जाती है। इसे घरपर रहना चाहिये।

सेठजीने बाईसे कहा—तुमने झूठ क्यों कहा कि मेरे पीहर और ससुरालमें कोई नहीं है। अब तुमको इनके साथ रहना चाहिये।

सेठजीके आदेशानुसार बाई अपने ससुराल नाथनगरमें रहने लगी। नाथनगरमें

इनके घरके पास ही पूज्य पण्डित श्रीछेदीलाल शुक्लाका घर था। श्रीशुक्लजी की ही सुपुत्री दिव्यभावस्वरूपा श्रीरुक्मिणीबाई थी, जिनको विवाहके तुरन्त बाद वैधव्य भोगना पड़ा था। श्रीनर्मदीबाई श्रीशुक्लजीके घरपर आदरणीया बाईसे मिलनेके लिये आयी। प्रथम मिलनमें ही श्रीरुक्मिणीबाईको ऐसा लगा यह मेरी माँ है और श्रीनर्मदीबाईको ऐसा लगा कि यह मेरी पुत्री है।

चैत्र शुक्ल नवमीकी रात्रिमें श्रीनर्मदीबाई प्रथम बार श्रीरुक्मिणीबाईको लेकर महिला संघमें आयीं। इसके कुछ ही दिन बाद श्रीसेठजी सत्संगके लिये भागलपुर आये और श्रीनर्मदीबाईने पूज्य श्रीसेठजीसे आदरणीया बाईको मिलाया। बाईके वृत्त और प्रकृतिको देखकर सेठजीका बाईके प्रति आकर्षण हुआ। सेठजीने बाईके पिता श्रीशुक्लजीसे आदरणीया बाईको सदाके लिये माँग लिया और आदरणीया बाई महिला संघमें आकर रहने लगी। आदरणीया बाई महिला संघमें रह रही थीं और श्रीनर्मदीबाई नाथनगरसे आदरणीया बाईके पास महिला संघमें आयीं। महिला संघ भागलपुरमें था। जब रात्रिके समय श्रीनर्मदीबाई अपने घर नाथनगर जा रही थीं, तब आदरणीया बाईने उनस कहा—माँ! आप कहाँ जा रही हैं? आप तो सदा अब मेरे साथ रहिये।

इसी क्षणसे श्रीनर्मदी बाईका महिला संघमें स्थायी निवास हो गया। श्रीनर्मदीबाईका जीवन त्यागमय था। उन्होंने अपने जीवनका उद्देश्य बना लिया कि आदरणीया बाईकी सँभाल करना ही मेरा एकमात्र कार्य है और इस दायित्वका निर्वाह उन्होंने आजीवन किया।

श्रीनर्मदीबाईकी पूज्य बाबूजी एवं पूज्य बाबाके प्रति अगाध श्रद्धा थी। ये प्रतिवर्ष सत्संगके लिये गीता-भवन जाया करती थीं और गोरखपुरके राधाष्टमी-महोत्सवमें भाग लिया करती थीं। 'कल्याण' पत्रिका एवं गीताप्रेसकी पुस्तकोंके प्रति अगाध श्रद्धा थी। श्रीनर्मदीबाईके जीवनमें गरीबोंके प्रति बहुत दयाभाव था। जो भी बहिन महिला संघमें आती थी, श्रीनर्मदीबाईका प्रयास रहता था कि यह बहिन आदरणीया बाईके निकट सम्पर्कमें आ जाय। कभी-कभी बाईकी आदरणीया बाईसे नोंक-झोंक भी हो जाया करती थी। वह इसलिये कि इन आनेवाली बहिनोंसे तुम मिलनेसे क्यों आनाकानी करती हो? बाईने कहा—माँ! अब मैं मेरे हाथमें नहीं हूँ। मेरा नियन्त्रण दूसरेके हाथमें है। इसीलिये ऐसा होता है।

समय-समय पर आदरणीया बाईके व्यक्तित्वमें दिव्य भावोंका परिवर्तनावेश हुआ करता था। इन आवेशोंके कारण पूजन-विधानमें तनिक भी हेरा-फेरी असह्य थी। पूजनके विधि-विधानमें त्रुटि होनेपर उस बहिनको कोई प्रायश्चित बतलाकर सेवासे विरत कर देती थीं। यह देखकर एक ओर नर्मदीबाई उस बहिनसे कहती कि चरणोंमें पड़कर माफी माँग ले और इधर आदरणीया बाईसे कहती—रुक्मा! इतना कठोर मत बन। क्या बाबूजी और बाबाके स्वभावमें इतना कठोरपन है? तू उनको आदर्श मानती है। उनके अनुसार अपने जीवनको ढाल।

आश्रममें रहनेवाली बहिनोंके प्रति इनके हृदयमें बड़ा ममत्व था। ये चाहती थीं कि आदरणीया बाई सभीसे प्यारपूर्वक बातें करें। ये आदरणीया बाईसे छिपकर कभी किसी बहिनकी सेवामें हाथ बँटा दिया करती थीं।

आदरणीया बाईके भावमें जब परिवर्तन आया, तब वे बहुत सरल हो गयीं और वे अपनी मातृस्वरूपा बाईकी बातें मान लिया करती थीं। इसके बाद भी माँ-बेटीमें कभी-कभी टकराव हो ही जाता था। इतना होनेके बाद भी आदरणीया बाईकी सार-सँभालमें बाईने कभी कमी नहीं आने दी।

दिव्य भावस्वरूपा श्रीरुक्मिणीबाईने जब इहलीलाका संवरण कर लिया, उस समयकी घटना है। जब उनके पार्थिव शरीरका स्नान करवाया जा रहा था, तब बाईके निष्प्राण पार्थिव शरीरकी अँगुलियोंमें बाईका आँचल था। यह आँचल वह पार्थिव शरीर चौदह घंटेतक पकड़े रहा। इस दृश्यको सबने देखा। यह प्रसंग आदरणीया बाईका अपनी माँके प्रति अगाध समर्पण और स्नेहका द्योतक था। बादमें उपालम्भ भरे स्वरमें बाई झर-झर आँसू बहाते हुए कहने लगीं—बाई! जब तुम हम सब लोगोंको छोड़कर चली गयी, तब आँचलको इस प्रकारसे पकड़े रहनेमें क्या रखा है?

आदरणीया बाईने जिस कुञ्जमें अपने शरीरका परित्याग किया था, वहाँ सुबहसे दोपहर तक कीर्तन हुआ करता था। श्रीनर्मदीबाईने इस नियमका निर्वाह किया। इसके कुछ दिनों बाद नर्मदीबाई भी अपने शरीरका परित्याग करके अपनी वात्सल्यभाजना एवं ममतास्पदा दिव्यभावस्वरूपा रुक्मिणीबाईके पास सदाके लिये चली गयीं।

काँटा और फूल

बात स्वर्गाश्रमकी है। श्रीभाईजी सत्संग हेतु गीताभवन आये हुए थे।

गीताभवनमें श्रीभाईजीका प्रवचन तो हुआ ही करता था, कभी-कभी आस-पासके साधु या महात्मा या महन्त या संस्थावाले भी श्रीभाईजीको अपने यहाँ बुलाया करते थे। अपना बस चलते श्रीभाईजी कभी किसीको निराश नहीं करते थे। एक बार श्रीभाईजीका सत्संग लक्ष्मण-झूलामें हुआ। श्रीभाईजी तो निमन्त्रणपर वहाँ गये थे, पर उनका प्रवचन सुननेके लिये गीताभवनके अनेक भाई-बहिन भी वहाँ पहुँच गये।

लक्ष्मण-झूला और स्वर्गाश्रमस्थित गीताभवनके बीच लगभग डेढ़-दो मीलका अन्तर होगा और रास्ता ठीक गंगाजीके किनारे-किनारे था। गंगाजीकी पावन धारा, तटपरके छोटे-बड़े पत्थर-कंकड़ और मार्गके दोनों ओर आम-बेल आदिके विशाल वृक्षोंकी हरी-भरी कतार, यह सारा रमणीय दृश्य मनको लुभा लेता था। लक्ष्मण-झूलाका कार्यक्रम समाप्त होनेके बाद श्रीभाईजी वहाँसे गीताभवनके लिये पैदल चल दिये। उनके साथ गीताभवनके सभी सत्संगी भाई-बहिन भी चल दिये। मार्गमें भी लोग कुछ-न-कुछ श्रीभाईजीसे पूछते रहते थे और वे उनका संक्षिप्त उत्तर भी देते रहते थे। सहजता पूर्ण वातावरण और आत्मीयता पूर्ण सम्बन्ध होनेके कारण किसी प्रकारका संकोच तो था नहीं, अतः जिसके मनमें साधना सम्बन्धी जो प्रश्न उड़ता, वही वह पूछ लेता थ। हम लोगोंके बीच नापासरवाले श्रीहरिप्रसादजी पारीक भी थे। उन्होंने श्रीभाईजीसे बड़ी जिज्ञासा भरे स्वरमें पूछा—भाईजी! भगवद्दर्शन और भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो?

उनके पूछनेका ढंग उनके अनतरकी आकुलताको व्यक्त कर रहा था और उस आकुलताने श्रीभाईजीके अन्तरको छू भी लिया। श्रीभाईजीने एक विशेष दिशाकी ओर संकेत करके कहा—उधर वह देखिये।

उस ओर श्रीपारीकजीने देखा और बड़ी आशा भरी दृष्टिसे देखा, परन्तु उन्हें कुछ दिखलायी नहीं दिया। उन्होंने श्रीभाईजीसे कहा—मुझे तो कुछ भी नहीं दीख रहा है।

श्रीभाईजीने कहा—उस लड़केको देखिये, जो खड़ा-खड़ा आम खा रहा है। उस लड़केने आमके पेड़पर ढेला मारा। निशाना सही था और पेड़से आमका फल टूटकर उसके सामने गिर पड़ा। वही आम वह खा रहा है। जिस प्रकार ढेला मारने वालेको आमका पेड़ अपना मधुरतम फल भेंट करता है, उसी प्रकार

अपकार करने वालेके प्रति प्यार भरा मधुरतम व्यवहार जब हमारे द्वारा होगा, तब भगवद्दर्शनके होनेमें और भगवत्प्रेमकी प्राप्तिमें विलम्बका प्रश्न कहाँ? जो हमारे मार्गमें काँटा बिछाता है, उसके मार्गमें हम फूल बिछायें, ऐसा जीवन बन जानेपर क्या भगवान हमसे दूर रह सकते हैं?

श्रीभाईजीकी ये मर्मभरी बातें श्रीपारीकजीके हृदयमें पैठती चली जा रही थी। केवल श्रीपारीकजी ही क्यों? हम जितने लोग आस-पास थे, उन सभीको इस बातने झकझोर दिया। अब कोई क्या प्रश्न करे ? श्रीभाईजीके साथ-साथ अब लोग मौन चल रहे थे। सबको यह मौन ही मनकी आत्म-ग्लानिका एक सांकेतिक लक्षण था, न जाने हमारा जीवन ऐसा कब होगा?

श्रीभाईजीने अपने इन्हीं भावोंको एक पदमें भी व्यक्त किया। उनका स्वरचित पद इस प्रकार है:—

राह पड़े सूखे तृणसे भी जो समझे नित निजको नीच।
जिसको हो संकोच बेठते महिमामय गुणियोंके बीच॥
तरुवत् सहनशील हो, नीरव सहे शीत-वर्षा औ घाम।
पत्थर फैंक मारनेवालेको दे मीठे जामुन-आम॥
कट-छिद-जलकर भी स्वाभाविक ही जो करे सहज उपकार।
कीर्तन करे सदा ऐसा जो, प्राप्त करे वह प्रभुका प्यार॥

बात छोटी, पर सीख बड़ी

एक बार हमलोग गीतावाटिकाके कमरेमें श्रीभाईजीके पास बैठे हुए बात कर रहे थे और कमरेके बाहर श्रीभाईजीके दौहित्र प्रिय सूर्यकान्त और चन्द्रकान्त परस्परमें खेल रहे थे। तब वे दोनों छोटे-छोटे बालक थे। उनके शरीरकी स्थूलताको देखकर कोई भी यह सोच सकता था कि दो गज-शावक मस्त होकर खेल रहे हैं। वे बच्चे ही तो ठहरे, खेलते-खेलते आपसमें कुछ नोक-झोंक हो गयी। वहींसे चन्द्रकान्त अपने बड़े भाईकी शिकायत करते हुए जोर-जोरसे श्रीभाईजीसे कहने लगा—नानाजी! नानाजी! यह मुझे तंग कर रहा है।

उसकी बात सुनकर कमरेमेंसे बैठे हुए श्रीभाईजीने चन्द्रकान्तसे कहा—तुम तंग होते ही क्यों हो? तुम तंग मत होवो।

श्रीभाईजीने यह छोटी-सी बात तो प्रिय चन्द्रकान्तके प्रति कही, पर छू गयी मेरे हृदयको। इस उत्तरमें कितनी बड़ी सीख भरी हुई थी? जगत् तो व्यक्तिको

तंग करना चाहता है, परंतु व्यक्ति उस ओर ध्यान ही क्यों दे? यदि व्यक्ति जगतकी ओर न देखकर अपने लक्ष्यपर दृष्टि टिकाये रखे तो क्रमशः वही जगत सहयोगी बन जाता है। यह सत्य ही है कि श्रीभाईजीकी बात-बातमें एक शिक्षा रहा करती थी।

मधुर स्वभाव सहज व्यवहार

पूज्य श्रीभाईजीने सन् १९७१ के मार्च मासमें महाप्रस्थान किया। इसके पहले उन्हें भीषण उदर-शूल रहा करता था। विविध प्रकारके उपचार भी हो रहे थे, परंतु उनसे अपेक्षित लाभ नहीं हो पा रहा था।

सन् १९७० के श्रीराधाष्टमी महोत्सवके बादकी बात है। सम्भवतः आश्विन मास था। हम कई बहिनें पूज्य श्रीभाईजीके पास बैठी हुई थीं। यद्यपि श्रीभाईजी कठिन शारीरिक कष्टसे पीड़ित थे, इसके बाद भी वे हमलोगोंसे प्रसन्न चित्तसे सच्चर्चा कर रहे थे।

रातके आठ बजे होंगे, उसी समय एक युवक श्रीभाईजीके कमरेमें आया। मैं उसे नहीं पहचानती थी कि वह कौन था, परंतु जिस निस्संकोच भावसे उसने कमरेमें प्रवेश किया और श्रीभाईजीसे बात की, इससे लगता था कि वह कोई परम आत्मीय जन है। उसकी आयु लगभग १८-१९ वर्ष थी। उसके हाथमें एक बेल्ट था, जिसे पैंटमें पहनकर कमरपर कस दिया जाता है। उस युवकने वह बेल्ट श्रीभाईजीको देकर कहा—इसे आप पहनकर देख लीजिये कि ठीक है या नहीं। इसे पहननेसे उदर-शूलमें आराम होना चाहिये।

श्रीभाईजीने उस युवकसे कहा—भैया! यह तो बतलाओ कि इसे कैसे पहना जाता है। मैं तो मूर्ख हूँ। मुझे इसके प्रयोगका पता नहीं।

मूर्ख शब्दको सुनकर वह युवक थोड़ा हँसा और बोला—बाबूजी! आप भी कैसी अटपटी बात कह रहे हैं? मूर्ख और आप? आपकी बातपर भला कौन विश्वास करेगा?

श्रीभाईजी पलंगपर उतर कर खड़े हो गय और उस युवकके कन्धेपर स्नेहपूर्वक हाथ रखकर बड़े सहज ढंगसे कहने लगे—भैया! जो जिस बातका जानकार नहीं होता, वह उस विषयमें मूर्ख ही होता है। मैं बेल्ट पहनना नहीं जानता, अतः मूर्ख ही तो हुआ। तुम बतलाओगे तो मैं सीख लूँगा। मनुष्यको तो अपने जीवनके अन्तिम समयतक सीखते रहना चाहिये।

युवकने बेल्ट बाँधकर दिखा दिया, परंतु श्रीभाईजीके मधुर स्वभावके उस भोलेपनकी, उस सरलताकी, उस सहजताकी, उस अपनेपनकी छवि अभीतक मेरे मनपर छायी हुई है और बिना बात ही, बातकी बातमें उन्होंने यह बतला दिया कि हर व्यक्तिको अपना हृदय सदा खुला रखना चाहिये किसी भी सुन्दर सीखको ग्रहण करनेके लिये।

श्रीविद्याबाई मस्करा

यह ठीक ही कहा गया है कि पारसका स्पर्श पाकर लोहा स्वर्ण बन जाता है और इसका जीता-जागता प्रमाण है मेरी अभिन्नहृदया श्रीविद्याबाई मस्करा। विद्याबाई पूज्य श्रीभाईजीसे अपने जीवनमें केवल एक बार मिली और उस प्रथम और अन्तिम मिलनने ही उसके जीवनमें आमूल परिवर्तन ला दिया।

मेरी ननदके द्वारा ही श्रीविद्याबाईसे परिचय हुआ और यह परिचय क्रमशः प्रगाढ़ होता चला गया। माताओं एवं बहिनोंके सर्वविध मंगलके लिये हमलोगोंने भागलपुरमें श्रीमहिला संघकी स्थापना कर रखी है और वे श्रीमहिला संघके कार्यमें अधिकाधिक रुचि लेने लग गयीं।

सन् १९६८ की श्रीराधाष्टमी महोत्सवकी बात है। हमलोग भागलपुरसे गोरखपुर आयी हुई थीं और श्रीविद्याबाई भी सपरिवार कलकत्तेसे गोरखपुर आयीं। विद्याबाईने हमलोगोंके पास भगवत्सेवार्थ पूजनकी अनेक सामग्री भेजी। सामग्रीकी श्रेष्ठता, सुन्दरता और बहुलताको देखकर हम सभीको बड़ा विस्मय हुआ। प्रत्येक रुमालपर श्रीराधानाम बड़ी सुन्दर रीतिसे लिखा हुआ था। रेशमी माला भी अपने ढंगकी थी। इत्र, गुलाबजल, चित्रित घट, वस्त्र, मेवे, यह सारी सामग्री विद्याबाईके निर्मल एवं उर्मिल अन्तरकी झलक प्रस्तुत कर रही थी। हमलोगोंने सोचा कि ऐसी सुन्दर और श्रेष्ठ सामग्रीका सदुपयोग तो इस राधाष्टमी महोत्सवके अवसरपर होनेवाले देवार्चनमें ही होना चाहिये, अतः वह सारी सामग्री पूज्य श्रीभाईजीके पास भिजवा दी गयी और यह भी कैसी उत्तम बात बन गयी कि उस भेजी गयी सामंग्रीकी प्रत्येक वस्तु भगवती श्रीराधाके प्राकट्यके समय होनेवाले पूजन-अर्चनमें अथवा बधाई उत्सवमें काम आयी।

श्रीराधाष्टमी महोत्सवके सम्पन्न हो जानेके बाद आरदणीया श्रीरुक्मिणीबाई,

विद्याबाई आदि हमलोग श्रीभाईजीके पास दर्शनार्थ गयीं। श्रीभाईजी अपने कमरेमें पलंगके पास बैठे हुए थे। इस समय श्रीभाईजीके पास अन्य कोई भी व्यक्ति नहीं था। श्रीभाईजीने अपने नेत्रोंकी प्रसन्नतासे हम सबका प्यारभरा स्वागत किया। श्रीरुक्मिणीबाई तो श्रीभाईजीके चरणोंके पास नीचे गद्देके पास बैठ गयीं, जो भूमिपर बिछा हुआ था और श्रीविद्यावाई श्रीरुक्मिणीबाईके पीछे खड़ी रहीं। श्रीविद्याबाई पहली बार आयी थीं, अत: श्रीभाईजीसे परिचय कराना था। विद्याबाईने वृन्दावनके किसी संतसे दीक्षा ले रखी थी। उसका उल्लेख करते हुए श्रीरुक्मिणीबाईने श्रीभाईजीसे कहा—इन्होंने वृन्दावनके अमुक संतसे दीक्षा ले रखी है और…………

श्रीरुक्मिणीबाई कुछ और आगे कहें, इसके पहले ही श्रीभाईजी पलंगसे नीचे उतरकर खड़े हो गये और एक कदम आगे बढ़कर विद्याबाईके पास गये यह कहते हुए—इसे मंत्र तो मैं दूँगा।

हम सब विस्फारित नेत्रोंसे देखने लगीं कि यह सब क्या हो रहा है। श्रीभाईजीने आगे बढ़कर अपना एक हाथ विद्याबाईके कंधेपर रखा और उनके कानके पास अपना मुख ले जाकर मन्त्र-दान दे दिया। हम सभी प्रतिपल विस्मयमें गहरे-से-गहरे डूबती जा रही थीं कि आज यह क्या हो रहा है। श्रीभाईजी तो कभी किसीको दीक्षा देते नहीं, फिर यह नयी बात कैसे घटित हो गयी। इतना ही नहीं, विद्याबाईसे प्रथम मिलनमें ही ऐसे महान सौभाग्यकी अद्भुत वर्षा और अनन्त वर्षा? एक बात और, दीक्षितको पुनः दीक्षा देते हुए देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा था। मनको तत्काल कुछ समाधान हो गया कि गुरुभावके भी कई स्तर होते हैं। विद्या-गुरु वह, जो विद्याका दान करे। शिक्षा-गुरु वह, जो किसी सीखका दान करे। दीक्षा-गुरु वह, जो मन्त्रका दान करे और सद्गुरु वह, जो भगवद्भावका दान करे। सच्चा सद्गुरु तो जीवनमें भगवद्दर्शनकी लालसाको जगा देता है और भगवत्प्रेमका पिपासु बना देता है। विद्याबाईके महान सौभाग्यको देखकर मुझे परमाश्चर्य और परमाह्लाद, दोनों ही हो रहे थे। हमलोग उनको अपने साथ ले आयी थीं आरम्भिक सामान्य-सा परिचय करानेके लिये और उनको मिल गयी आन्तरिक असामान्य निधि। हमलागोंके अन्तरकी भावनाएँ विद्याबाईको बार-बार 'महाभाग्यशालिनी', 'परम भाग्यशालिनी', 'परम धन्य', 'धन्यातिधन्य' कह रही थीं।

ज्यों ही श्रीभाईजीने विद्याबाईको मन्त्र-दान दिया, उसकी स्थिति विचित्र हो गयी। पहले तो वे खड़ी-खड़ी मन्द-मन्द·विहस रही थीं और अब श्रीभाईजीसे मन्त्र मिलते ही सारे शरीरमें कम्पन्न छा गया। भावोंकी विह्वलताने उसके मनको-तनको झकझोर दिया। वह भावावेशमें रोने लगी। अश्रुधारा उसके कपोलोंको निरन्तर भिगो रही थी। उसके लिये खड़ा रह सकना असम्भव हो गया। विद्याबाई वहीं बैठ गयी और उसीके पास बैठ गये श्रीभाईजी। अति-विह्वला, भाव-विभोरा, अश्रु-वदना विद्याबाईके मस्तकको श्रीभाईजीने अपनी गोदमें रख लिया और जैसे वात्सल्य-मूर्ति पिता अपनी पुत्रीको सहलाता है, उसी प्रकार श्रीभाईजी उसके मस्तकपर अपना कर-पल्लव फिरा-फिराकर वात्सल्य भरे शब्दोंसे उसे सान्त्वना देते रहे। लगभग एक-सवा घंटेके बाद विद्याबाईके भावोंकी उमड़न कुछ प्रशमित हुई। तब तक तो उनका मस्तक श्रीभाईजीकी गोदमें ही रहा।

उसके किंचित् प्रकृतिस्थ होनेपर श्रीभाईजीने उसे कुछ बड़ी महत्त्वपूर्ण बातें बतलायीं। श्रीभाईजीने कहा—घरमें ठाकुर-सेवा बड़े भावसे करना और ठाकुरजीका उत्सव भी बड़े उत्साहसे मनाना। सदा सत्संग करना और सत्संगमें लोगोंको लगाना। इसके अलावा लोगोंकी सेवा करना।

श्रीभाईजी जब इस प्रकार बता रहे थे, तभी बीचमें बड़ी दीनता पूर्वक विद्याबाई कहने लगी—मैं अबला और सरला भला क्या सत्संग करूँगी-कराऊँगी? बस, आपको जो सेवा मुझसे लेनी हो, वह करवा लीजिये।

तुरन्त श्रीभाईजीने कहा—तुम मेरी थी, मेरी हो और मेरी ही रहोगी। तुम स्वयंको असहाय क्यों मानती हो? तुम करो तो सही, तुम कदम तो बढ़ाओ। फिर तुम देखना कि किस प्रकार सारी बात बनती चली जायेगी। लोगोंकी सेवा करनेमें निर्धन विद्यार्थी, असहाय रोगी, आसन्न प्रसवा और सयानी कन्याका विशेष ध्यान रखना। ब्राह्मणकन्याके विवाहके लिये धन व्यय करनेवाले लोग फिर भी मिल जाते हैं, परंतु ब्राह्मणेतर जातिके लोग तो कुछ माँग भी नहीं सकते। ऐसे विवश माता-पिताकी सयानी कन्यापर विशेष ध्यान देना चाहिये।

इस प्रकार श्रीभाईजी उसे कुछ देरतक समझाते-बतलाते रहे। अब यहींसे विद्याबाईके जीवनमें आमूल परिवर्तनका शुभारम्भ होता है। सांसारिक दृष्टिसे

देखा जाय तो पहले उसका गृहस्थजीवन अन्य जागतिक लोगोंके समान ही था। घरमें सास-श्वसुर, पति-देवर, जेठानी-देवरानी, बेटी-बेटे आदि-आदि थे ही, उनके साथ उठना-बैठना, लेना-देना, सोना-जागना, खाना-पीना, हँसना-रोना आदि सारा कार्य-व्यापार और जीवन-धारा वैसी ही थी, जैसे अन्य घरों होती आयी है, परंतु अबसे विद्याबाईका संसार कुछ दूसरा ही हो गया। उसके आहार-आचार-विचार-विहार-व्यवहारमें परिवर्तन आ गया, वह इसीलिये कि गोरखपुरकी यात्राने विद्याबाईके विचारोंको एक नयी दिशा प्रदान कर दी थी।

घरमें प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्णके श्रीविग्रहोंकी प्रतिष्ठा थी। अब उनकी पूजा-सेवाका· रंग कुछ और-से-और ही हो गया। श्रीकृष्णजन्माष्टमी और श्रीराधाजन्माष्टमीकी स्मृतिके रूपमें प्रत्येक मासके कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथी उसके लिये विशेष उपासना तिथि बन गयी थी। सत्संगके लिये प्रत्येक शुक्रवारको महिलाओंका सत्संग अपराह्नकालमें होने लगा और इस सत्संगके प्रति विद्याबाईकी अनन्त और अनन्य निष्ठा थी। शुक्रवासरीय सत्संगके प्रति उसका आग्रह इतना अधिक था कि परिवारमें विवाह या तिलक या अन्य कोई भी कौटुम्बिक विशेष कार्य शुक्रवारको नहीं ही होना चाहिये। यदि किसी कारण शुक्रवारको ये कार्य होते थे तो विद्याबाई उसमें भाग नहीं लेती थी। एक बारकी बात है। शुक्रवारीय सत्संग चल रहा था, तभी फोनसे समाचार आया कि कार-दुर्घटनामें उनके पति बहुत घायल हो गये हैं और ऐसा लगता हैं कि उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी है। फोनपर यह समाचार सुन करके भी वे दुर्घटना स्थलपर नहीं गयीं। जब सत्संग अपने समयसे पाँच बजे समाप्त हुआ, तब वे जानेको तैयार हुई और उसी समय लोग उनके घायल पतिको लेकर घर पहुँचे।

वसंत पंचमी, हरियाली तीज, श्रीराधाष्टमी और विहार पंचमी, ये चार उत्सव तो वे बड़े उत्साहके साथ मनाती थीं। प्रत्येक उत्सवके अवसरपर तीन दिनतक श्रीराधानामका अखण्ड नाम-कीर्तन हुआ करता था। उत्सवके एक दिन पहले आरम्भ होकर उत्सवके अगले दिन सम्पन्न होता था। तब घरमें कई सौ लोग प्रसाद पाया करते थे।

इसके अतिरिक्त अक्षय तीज, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, रास-पूर्णिमा आदि कई उत्सवोंको वे मनाया करती थीं। जब-जब वे उत्सव मनाती, तब-तब

एक अनहोनी बात घट जाया करती थी। उत्सवके लिये उन्होंने अपने पतिसे रुपया माँगा और वह रुपया वे उत्सवके निमित्तसे पर्समें रख देती थीं। उसी पर्समें उत्सव-कार्यके लिये रुपया खर्च होता रहता। उत्सवके बादमें जब सारा खर्च जोड़ा जाता तो यही ज्ञात होता कि जितना रुपया पर्समें रखा गया था, उससे तीन-चार गुना अधिक व्यय हुआ है और पर्समें रखे हुए धनसे जो अधिक धन व्यय हुआ, वह धन कहाँसे आया, इसका कोई उत्तर नहीं। इन सामुदायिक कार्यक्रमोंमें उनकी व्यस्तता बहुत अधिक रहा करती थी। इस प्रकारके बड़े-बड़े कार्यक्रमोंमें भाग लेनेवाले सभी लोगोंका मानसिक धरातल एक-सा होता नहीं है। विभिन्न स्तरके लोगोंको साथ लेकर चलनेमें विविध और विचित्र बाधाओं और उलझनोंका काफी सामना करना पड़ता था, परंतु श्रीभाईजीकी कृपासे विद्याबाईका उत्सव कभी कम नहीं हुआ। उसके मनकी भावना यही रहती थी कि श्रीभाईजीके आदेशके पालनमें परेशानी या भारीपनकी बात भला कैसी? उनके अनुभवमें बार-बार यही आता कि मैं तो निमित्त मात्र हूँ। बस, श्रीभाईजी पद-पदपर सारी सँभाल कर रहे हैं और श्रीभाईजीका अनुग्रह हर उत्सवको आशातीत सफलता प्रदान कर देता है।

जिस प्रकार साधन-भजनमें, ठाकुर सेवामें, सत्संगमें और उत्सवमें विद्याबाईका उत्सव रहा करता था, उनका वही उत्साह निर्धनकी-निर्बलकी, असहायकी-असमर्थकी, पीड़ितकी-पंगुकी सेवामें भी रहा करता था। सबकी सेवा करनेवाली जो बात श्रीभाईजीने कही थी, वह बात तो ईश्वराज्ञाके समान विद्याबाईके हृदयमें बैठ गयी थी।

जब-जब उनसे श्रीभाईजीके बारेमें बात चलती तो श्रीविद्याबाईकहा करती थीं—गोरखपुरकी वह यात्रा क्या कभी भुलायी जा सकती है? श्रीभाईजीकी वे बातें, वह दृश्य, वह प्रसंग हृदयमें स्थायी रूपसे अंकित हो गया है। गोरखपुरकी उस यात्रामें ही तो मुझे श्रीभाईजी मिले, उनसे मन्त्र मिला, प्रिया-प्रियतमका युगलचरणानुराग मिला और सेवोत्साह मिला। गोरखपुरमें ही तो जीवनको वास्तविक जीवन मिला।

एक बार एक परमात्मीया बहिनने विद्याबाईसे पूछा था—क्या कभी श्रीभाईजी तुम्हारे पास आते हैं?

यह प्रश्न पूछा गया था श्रीभाईजीके नित्यलीलामें लीन हो जानेके बाद।

इसे सुनकर विद्याबाईने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए संक्षिप्त-सा उत्तर दिया—हाँ, वे कभी-कभी आया करते हैं।

उनसे पुनः पूछा गया—क्या वे अकेले आते हैं?

विद्याबाईने उल्लसित स्वरमें कहा—अरे! अपनी तो युगलोपासना है। वे अकेले भला क्यों आयेंगे? साथमें पूज्य बाबा भी रहते हैं।

यह सुनकर सबको अतीव प्रसन्नता हुई।

सन् १९८६ में भागलपुर स्थित श्रीमहिला संघकी ओरसे कलकत्ते नगरमें श्रीमद्भागवत परायण एवं कथा-यज्ञका संयोजन हुआ, जिसमें भागवत कथा कहनेके लिये पधारे थे परमपूज्य श्रीडोंगरेजी महाराज। इस महान कथा-यज्ञको सफलता मिली प्रभु-कृपासे ही, परंतु प्रभुने जिन-जिनको निमित्त बनाया, उनमेंसे एक विद्याबाई भी थीं। विद्याबाईने भरपूरसे सहयोग दिया और अपने सारे परिवारको सेवा-कार्यमें लगा दिया। स्वयंको लगाया और सारे परिवारको लगाया, यह कथन भी उनके सेवोत्साहको व्यक्त नहीं कर पा रहा है। 'लगाया' शब्दके स्थानपर यह कहना चाहिये कि उन्होंने परिवार सहित स्वयंको झोंक दिया।

इस कथा-यज्ञमें किसी माध्यमसे विद्याबाईको संकेत मिल गया—अब 'जाने' का समय समीप लग रहा है, अतः जो भी लेना-देना हो, सबको सलटा दो।

इस संकेतके मिलते ही वे उसी समय 'विदाई'के लिये मनसे प्रस्तुत हो गयीं। सब ओरसे उन्होंने अपने मनको समेट लिया और अपने सारे जागतिक कार्य-दायित्वको, कार्य-व्यवहारको तत्काल सलटाना आरम्भ कर दिया। घरवाले पूछते कि तुम यह क्या कर रही हो तो वे कुछ भी न बतलाकर केवल यही कहती—सबका हिसाब तो नक्की करना ही चाहिये।

जिसको जो देना था, वह दे दिया, जिसके निमित्तसे कुछ करना था, वह कागज लिखकर रख दिया और कुछ समय बाद ही वे हार्टअटैकसे परमधाम सिधार गयीं।

निधनका समाचार मिलते ही मनको बड़ा धक्का लगा। शोकाकुल मन अपनी अभिन्न हृदया विद्याबाईके प्रति भाव-सुमन चढ़ाने लगा। उनकी याद हमेशा बनी रहती थी। उनकी सुगतिके बारेमें हमें सन्देह नहीं था, पर वृन्दावनके एक प्रसंगने हमारी भावनाओंको उल्लासपूर्ण बना दिया। एक बार मेरी एक

आदरणीया बहिन हितकुलावतंस श्रीहितहरिवंशके सेव्य श्रीराधावल्लभजीके मन्दिरके पासवाली गलीमें जा रहीं थीं, वहींपर श्रीविद्याबाईके दिव्य रूपमें दर्शन हुए। भगवान श्रीकृष्णके पीताम्बर जैसे चमकदार वस्त्रकी साड़ी उन्होंने पहन रखी थी, जिसमें चौड़ी-चौड़ी लाल किनारी थी। आकृति तो पहले जैसी थी, परंतु मुख-मण्डल, भुज-लताओंकी, पद-पल्लवकी कान्ति दिव्य थी। दिव्य ही नहीं, परम दिव्य थी। अंग-प्रत्यंगकी दीप्ति अनोखी थी। यह स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि अलौकिक आभासे उनका सम्पूर्ण वपु आवृत्त है। उस रूपमें देखकर ऐसा लगता था मानो आह्लाद और उल्लासने साक्षात् शरीर धारण कर लिया हो। नखसे शिखतक सुन्दर-से-सुन्दर आभूषणोंसे वे समलंकृत थीं। मिलते ही श्रीधाम-निवासिनी दिव्य-स्वरूपा भाव-भरिता श्रीविद्याबाईने सभक्ति वन्दन किया। केवल वन्दन ही नहीं वे कुछ दूरतक साथ-साथ चलीं, और बातचीत की। इसके बाद वे अदृश्य हो गयीं।

विद्याबाईके जीवनमें जो परिवर्तन आया, वह अपने ढंगका अनोखा ही था। संतकी अहैतुक कृपा क्या चमत्कार उत्पन्न कर सकती है, इसीका उदाहरण हैं श्रीविद्याबाईका जीवन। उस अहैतुक कृपाके अवतरणका ही यह अद्भुत परिणाम था कि विद्याबाईका जीवन यदि इस पार साधारणसे असाधारण बन गया तो उस पार भी असाधारण स्थितिका अधिकारी बन गया।

पूर्णाहुतिके समय तेरह पत्र

हमारे श्रीमहिलासंघमें एक कमरा है, जिसे हमलोग श्रीषोडशगीत मन्दिर कहते हैं। इस मन्दिरमें पूज्य श्रीभाईजीके कर-कमलों द्वारा प्रदत्त श्रीषोडशगीतके पाँच धातु-पत्र प्रतिष्ठित हैं। इन पाँच-धातु-पत्रोंपर सम्पूर्ण षोडशगीत खुदे हुए हैं। इन षोडशगीत-पत्रोंके एक पार्श्वमें पूज्य श्रीभाईजीका और दूसरे पार्श्वमें पूज्य श्रीबाबाका चित्रात्मक श्रीविग्रह भी प्रतिष्ठित है। इन प्रतिष्ठित श्रीपत्रों एवं श्रीविग्रहोंका पूजन-अर्चन नित्य ही विधिवत् हुआ करता है।

एक बार इसी श्रीषोडशगीत मन्दिरमें श्रीमद्भागवत-महापुराणके सप्ताह-पारायणका कार्यक्रम आयोजित किया गया। सप्ताह-पाठ कार्यक्रममें कुल तेरह माताओं-बहिनोंने भाग लिया। एक बहिन जप करती थी, एक श्रीविष्णुसहस्रनाम-स्तोत्रका पाठ, एक श्रीमद्भगवद्गीताजीका पाठ और शेष श्रीमद्भागवतजीका पाठ करती थीं और यह सारा जप और पाठ होता था श्रीषोडशगीतपत्रोंके सम्मुख

बैठकर। सभी माताएँ-बहिनें एक साथ बैठती थीं और सभीके पास श्रीमद्भागवतजीका अपना-अपना ग्रन्थ रहता था। सप्ताह-पारायणके इस पाठ-अनुष्ठानमें वस्त्रादिकी शुचिता, नियमानुवर्तनमें तत्परता, स्थानकी शुद्धता, वातावरणकी पवित्रता, पाठमें नियमितता आदि अनेक बातोंका विशेष ध्यान रखा जाता था और यह आयोजित अनुष्ठान था एक मात्र भगवत्प्रीत्यर्थ।

पाठ और जप करनेवाली माताओं-बहिनोंने बड़े उत्साहसे कार्यक्रममें भाग लिया और वे बड़े भावके साथ पाठ-जप करती थीं। ऐसे अहैतुक निष्काम कार्यक्रम प्रचारकी वस्तु नहीं हुआ करते। प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधवकी प्रसन्नताकी प्राप्ति ही जिसका एकमात्र हेतु हो, ऐसे शुद्ध साधनात्मक कार्यक्रमका विज्ञापनसे भला क्या सम्बन्ध? यह अनुष्ठान सर्वथा-सर्वथा भगवत्प्रीत्यर्थ था और यह नितान्त ऐकान्तिक कार्यक्रम सप्ताह-पर्यन्त सोत्साह-सोल्लास श्रीमहिलासंघके श्रीषोडशगीत मन्दिरमें चलता रहा।

पूर्णाहुतिके दिन एक बड़ी विचित्र बात हुई। इधर तो पाठ-अनुष्ठानकी पूर्णाहुति हुई और उधर डाकघरके डाकियेने आकर एक लिफाफा दिया। यह लिफाफा आया था गोरखपुरसे और लिफाफेमें पत्र था श्रीभाईजीके हाथका लिखा हुआ। लिफाफेमें केवल एक पत्र नहीं, बल्कि उनके हाथके लिखे हुए तेरह पत्र थे। यह तेरह पत्र थे इस सप्ताह-अनुष्ठानमें भाग लेने वाली हर एक बहिनके लिये अलग-अलग। जिन-जिन बहिनोंने भाग लिया था, उन-उन बहिनोंके नामसे अलग-अलग व्यक्तिगत पत्र श्रीभाईजीने लिखे थे। पत्रमें श्रीभाईजीने आशीर्वाद दिया था कि यह बड़ा सुन्दर कार्यक्रम तुम लोगोंके द्वारा हुआ है तथा इससे भगवान् श्रीकृष्णको परम प्रसन्नता हुई है। तुम सभी अतीव भाग्यशालिनी हो।

आश्चर्यकी बात यह है कि हमलोगोंने इस कार्यक्रमकी रंचमंच सूचना श्रीभाईजीको नहीं दी थी, फिर भाग लेनेवाली बहिनोंके नामको बतलानेकी बात ही कहाँ आती है? न पाठानुष्ठानकी सूचना और न भाग लेनेवाली बहिनोंके नामकी सूचना, इसके बाद भी श्रीभाईजीके पत्र सभी बहिनोंके नामसे व्यक्तिगत रूपसे आये। इस सारी घटनाके बारेमें सोच-सोचकर आश्चर्यमें डूब जाना पड़ता है, पर आश्चर्य भी उनके लिये क्या किया जाय, जो घट-घटकी और क्षण-क्षणकी जाननेवाले हैं।

साधारण जीवनमें सावधान

एक बार हम कई लोग पूज्य श्रीभाईजीके पास बैठे हुए थे। उनके श्रीमुखसे भगवत्तत्त्वकी, श्रीराधाकृष्णकी लीलाओंकी और प्रेमराज्यकी अनेक बातें सुनते हुए मनको तृप्ति होती ही नहीं थी। उनके प्रसन्न मुखमण्डलकी आकर्षण छविमें एक अनोखा दिव्यत्व भरा हुआ था। जब इस प्रकार सरस बातोंमें हम सभीका मन डूबा हुआ था, तभी श्रीरामसनेहीजी बाँयें हाथमें गमछा और दाहिने हाथमें जल-भरा गिलास लेकर आये श्रीभाईजीको जल पिलानेके लिये। रामसनेहीजीको देखते ही श्रीभाईजी तुरन्त मौन हो गये। केवल मौन ही नहीं, कुछ गम्भीर भी हो गये। मुखमण्डलपर जो प्रसन्नता छायी हुई थी, वह एक बार छिप गयी। श्रीभाईजीकी मुखाकृतिकी यह गम्भीरता देखकर मुझे थोड़ा आश्चर्य हुआ। यदि कोई नवीन व्यक्ति अथवा अनधिकारी व्यक्ति कमरेमें प्रवेश करता तो उसके आनेसे उस सरस चर्चाको बन्द करके गम्भीर हो जानेकी बात तो समझमें आती है, परन्तु रामसनेहीजी तो श्रीभाईजीके परम निजजन हैं, अन्तरंग-से-अन्तरंग व्यक्ति हैं और उनका सारा जीवन ही श्रीभाईजीके श्रीचरणोंपर समर्पित है, ऐसे रामसनेहीजीके प्रवेश करते ही श्रीभाईजी गम्भीर क्यों हो गये? मेरे मनको किसी प्रकार समाधान नहीं हो पा रहा था, इसके बाद भी मैं मौन ही रही।

रामसनेहीजी जल लेकर श्रीभाईजीके सामने कुछ क्षण खड़े रहे, इसके बाद श्रीभाईजीने रामसनेहीके हाथसे गमछा लिया, गमछेपर जल-भर गिलास लिया और जल पी लेनेके बाद वह गिलास और गमछा रामसनेहीजीको वापस कर दिया। इसके बाद रामसनेहीजी वहाँसे चले गये।

रामसनेहीजीके चले जाते ही पुनः वैसी ही बातोंका क्रम चल पड़ा। मुखमण्डलपर वैसी ही प्रसन्नता और बातोंमें वैसी ही सरसताको जानकर मेरे मनका कौतूहल बढ़ता ही चला जा रहा था। मैंने भाईजीसे पूछा—रामसनेहीजीके आते ही आप एकदम मौन और गम्भीर कैसे हो गये? क्या वे इन बातोंके सुननेके अधिकार नहीं थे? उनके चले जाते ही आपने पुनः सुन्दर चर्चा आरम्भ कर दी।

मेरे प्रश्नको सुनकर श्रीभाईजी थोड़ा मुस्कुराये और कुछ क्षण रुककर बोले—यह मेरी अपनी निजी बात है, जिसको बताना उचित नहीं, फिर भी

तुम्हारी जिज्ञासाको देखकर बतला रहा हूँ। रामसनेही अपने-से-अपना व्यक्ति है। उससे दुराव अथवा छिपावका कोई प्रश्न नहीं। जब पिला चुकनेके बाद यदि वह यहाँ बैठता तो वह भी इन बातोंको सुनता। बात यह है कि जो भी मेरे सामने सेवा-चर्याको सम्पन्न करनेके लिये आता है, उस समय मेरा भाव यह रहता है कि मेरे आराध्य ही ऐसा वेष धारण करके मेरी सेवा करने आये हैं। भले रामसनेही मुझसे बहुत छोटा है, परन्तु उसके प्रति भी मेरा भगवद्भाव था। ज्यों ही वे आये, त्योंही उनको सम्मान प्रदान करनेके लिये मैंने उनको मन-ही-मन प्रणाम किया और मानसिक रूपसे उन्हें पुष्प-माला पहनायी। यह भगवदर्चना सम्पन्न करनेके लिये ही मैं कुछ क्षणोंके लिये मौन हो गया था।

पूज्य श्रीभाईजीके श्रीमुखसे उनके मौन होनेका रहस्य सुनकर मुझे बड़ी प्रेरणा मिली। श्रीभाईजी छोटी-छोटी बातोंके प्रति भी कितने अधिक सावधान रहा करते थे, उसका यह एक अद्भुत उदाहरण है।

सम्मान्या बहिन सावित्रीबाई सेकसरिया

आदरणीया बाई प्रिय भाई श्रीओमप्रकाशजी सेकसरियाके परिवारकी थीं। इतना ही नहीं, भागलपुरकी चन्दाबाई और बहिन सावित्रीबाई दोनोंका पीहर पक्ष एक ही था। दुर्भाग्यसे शीघ्र ही वैधव्यका सामना करना पड़ गया। सेकसरिया परिवार सदैव ही पूज्य बाबूजीसे जुड़ा रहा है। यह भगवत्कृपा थी कि सम्मान्या बहिन सावित्री बाई शीघ्र ही पूज्य बाबूजीके निकट सम्पर्कमें आ गयी। उसे न केवल बाबूजीका, अपितु पूज्य बाबाका भी सीमातीत वात्सल्य मिला। वह अपना अधिक-से-अधिक समय पूज्य बाबूजीके पास बिताया करती थी। पूज्य बाबूजीके लिये वह इतनी अधिक लाडली थी कि बाबूजीने उसको स्नेहातीत स्नेह और सीमातीत समय दिया। शायद ही ऐसा कोई सौभाग्यशाली होगा, जिसे पूज्य बाबूजीका इतना अधिक सामीप्य मिला हो। पूज्य बाबूजीने अनेक महज्जनों, संतों, साधकों, भक्तों, श्रद्धालुओं, विद्वानों, लेखकों आदि-आदिको पत्र लिखे हैं, किन्तु बहिन सावित्री बाईको लिखे गये पत्रोंकी संख्या सीमातीत है। उन पत्रोंमेंसे कुछ पत्र उदाहरण रूप यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

॥ श्रीहरि ॥

गीताप्रेस, गोरखपुर ६। १। ६४

प्रिय सावित्री,

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला। एक दिन मेरा दिमाग कुछ खराब था। पूरा नहीं। उस दिन कुछ पत्र लिखे थे। मालूम होता है उसी दिन तुम्हारे नामके लिफाफेमें भाई जयदयालका आया हुआ पत्र डालकर तुमको भेज दिया। मेरे मस्तिष्क दोषसे तुम परिचित ही हो। कोई विचार मत करना। पं० रामजीलालजीकी पत्नी आदि बनारस थे। वहाँ उनके लड़केके गिर पड़नेसे चोट आ गयी थी। अब ठीक है।

तुम स्वस्थ और सानन्द होओगी। बनारस कबतक पहुँचोगी। साथ और कोई भी आयेंगे क्या?

मेरा स्वास्थ्य ठीक है। सावित्रीकी माँके पहलेसे ठीक है। नीचे आने-जाने लगी है।

इधर मेरा मस्तिष्क फिर कुछ ज्यादा गड़बड़ रहने लगा है। मन एकान्तवास चाहता है। शरीर कामसे उपरत होना चाहता है। पर होगा तो वही जो श्रीभगवान्ने रच रखा है। तुम बहुत-बहुत प्रसन्न रहना। विशेषांक १६ तारीखको निकलेगा। इस बार देर हो गयी।

जीवनके दिन बीते जा रहे हैं, पता नहीं कब किसकी इहलीला समाप्त हो जाय। अतएव जिस किसी प्रकारसे हो, जीवन केवल भगवान्में लगना आवश्यक है। संसारके सुखों-दुःखोंका ताँता तो कभी टूटनेवाला है ही नहीं। इसे मनसे छोड़ना ही होगा। नहीं तो इसीके फंदेमें फँसे रहो। गाँठ उलझती ही रहेगी। संसारसे वैराग्य और भगवान्में अनुराग होना चाहिये। सचमुच जीवनकी गति केवल भगवान्की ओर ही हो जानी चाहिये। विचार करो—संसार कितना क्षणभंगुर है। हमारा वास्तवमें यहाँ कोई भी सम्बन्ध नहीं है। झूठे ही सम्बन्ध बनाकर जालमें फँस रहे हैं। यह ममता छोड़नी ही है। ममताके सारे पदार्थ छूटेंगे ही। पहलेसे ही ममता छोड़ दी जाय तो अच्छा है।

आज बड़ी विरक्ति मनमें आ रही है। जगत्का यह जाल सुहाता नहीं है। क्या किया जाय?

तुम्हारा
हनुमान

॥ श्रीहरिः ॥

गीताप्रेस, गोरखपुर ३०-४-६४

प्रिय सावित्री,

सप्रेम हरिस्मरण। तुम सकुशल होओगी। स्वास्थ्य अच्छा होगा। मेरा स्वास्थ्य साधारण चल रहा है। भगवान्के मंगलविधानके अनुसार सब ठीक ही होता है। मनुष्यकी चाहका न कोई मूल्य है, न वह सर्वथा मंगलमयी ही है। भगवान्की चाह ही सर्वोत्तम, श्रेष्ठ तथा परमहितकर है, उसीके प्रति हमें आत्मसमर्पण करना चाहिये। उनसे यही प्रार्थना करनी चाहिये—'भगवन्! तुम्हारी चाहके विपरीत हमारे मनमें कोई चाह उत्पन्न ही न हो, यदि हो तो कभी पूरी न करना। तुम्हारी चाह ही पूर्ण हो।' वे जिसको, जहाँ, जैसे रक्खें—वे जिसके लिये जो कुछ सोचें, जो करें—उसीमें परम मंगल है।

मेरा स्वास्थ्य साधारण चल रहा है। सावित्रीकी माँका स्वास्थ्य ढीला ही है। पुष्पाको समझा-बुझाकर वापस भेज सकती तो अच्छा था। पर यहाँ भी भगवान्का मंगल विधान ही तो काम करता है। तुम क्या करती?

प्रिय नरेश, इन्द्रा, बच्ची प्रसन्न होंगे। मेरा आशीर्वाद कहना।

कमलीबाईसे मेरा सप्रेम राम-राम कहना। तुम रहोगी तबतक तो वह तुम्हारे साथ है ही। पीछे उसका मन निस्संकोच जहाँ जानेको हो, वहीं जाना चाहिये। मेरी ओरसे उसकी राजीमें राजी है। पत्र देना। शेष भगवत्कृपा।

॥ श्रीहरिः ॥

गीताप्रेस, गोरखपुर १-८-६४

प्रिय सावित्री,

सप्रेम हरिस्मरण। पत्र लिखा था सो पहुँचा होगा। राधाजीकी पोशाकके बाबत बाईने तथा उसकी माँने कहा है कि नीले रंगकी तो बहुत पोशाकें इकट्ठी हो गयी हैं। इसलिये तुम्हारे पसंदके किसी हल्के रंगकी पोशाक बनवा लेना।

तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा। सिरदर्द नहीं होगा। मेरा स्वास्थ्य ठीक है। कोई चिन्ता मत करना। सावित्रीकी माँका आजकल ठीक है। यहाँ वर्षा बराबर हो रही है। बाढ़ आनेका भय हो रहा है। गरीब बहुत कष्टमें हैं।

तुमने प्रेम देनेकी बात लिखी सो प्रेम दिया जाता नहीं। प्रेम किया जाता है और किया भी जाता है इसलिये कि वह अपने आप होता है। रहा नहीं जाता। इसीसे प्रेमास्पद प्रेमीपर कभी कोई यह अहसान नहीं करता कि मैं प्रेम देता हूँ। सच्ची बात यह है कि वह प्रेमीके द्वारा निरन्तर प्रेम प्राप्त ही करता रहता है। प्रेमी ही वह तत्त्व है जो अपने स्व-सुखवाञ्छा रहित जीवनसे प्रतिक्षण प्रेमास्पदको सुख पहुँचाता रहता है अर्थात् प्रेमदान करता रहता है। पर कभी अभिमान नहीं करता; क्योंकि वह देता है, ऐसा उसे अनुभव ही नहीं होता। वह तो सहज स्वाभाविक देता है। इसीसे प्रेमास्पद सदा उनका ऋणी रहता है। कभी उऋण होता ही नहीं, वरं उसका ऋण सदा सर्वदा बढ़ता ही रहता है। अब तुम्हीं समझ लो, कौन प्रेम देता है और कौन लेता है। पर इस प्रेमराज्यकी यही विलक्षणता है कि इसमें दोनों ही ओर देनेवाले अपनेको सदा लेनेवाले ही मानते हैं। उनको देनेका ज्ञान ही नहीं रहता। शेष भगवत्कृपा।

तुम्हारा

॥ श्रीहरिः ॥

गीताप्रेस, गोरखपुर २०-७-६६

प्रिय सावित्री

सप्रेम हरिस्मरण। तुम स्वस्थ और सानन्द होओगी। तुम्हारा पत्र फिर नहीं मिला। तुम सदा प्रसन्न रहना। जहाँ तक बने निरन्तर मनको श्रीभगवान्के नाम-रूप-गुण चिन्तनमें लगाये रखना। यहाँका सभी कुछ क्षणभंगुर है। सारे सम्बन्ध ही अनित्य हैं। मिथ्या ममता तथा आसक्तिमें हम फँसे हैं। बुद्धिमानी इसीमें है कि तुरन्त इस ममता आसक्तिको यहाँसे हटाकर एकमात्र भगवान्में ही कर लें। यहाँका संयोग-वियोग-प्राणि-पदार्थोंका मिलना-बिछुड़ना प्रायः प्रारब्धाधीन है, जैसा होता है, होता रहे। पर मनका सम्पर्क सदा श्रीभगवान्के साथ रहे। जगत्की स्मृति कम-से-कम हो तुम यही चेष्टा करना। इसीमें परम मंगल है। मैं हृदयसे सदा यही चाहता हूँ कि तुम परम सुखी हो जाओ और यह परम सुख इस द्वन्द्वात्मक जगत्में है ही नहीं, वह तो केवल नित्य सत्य चिन्मय आनन्द स्वरूप सौन्दर्य-माधुर्य निधि एकमात्र भगवान्में है। अतएव उन्हींको सोचो, उन्हींका चिन्तन करो, उन्हींमें नित्य चित्तका समर्पण करो, उन्हींका जीवन बना दो। जगत्के चिन्तनको भगवच्चिन्तनके द्वारा सदा हटाती रहो।

मेरा स्वास्थ्य साधारण चल रहा है। बाई चन्दाका इधर कोई पत्र नहीं मिला।

कैलाश, गीता, बच्चे सब प्रसन्न होंगे। सावित्रीकी माँका स्वास्थ्य वैसे ही चल रहा है।

तुम्हारा हनुमान

॥ श्रीहरिः ॥

नई दिल्ली ९-११-६६

प्रिय सावित्री

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र कल मिला। फोनपर बात हुई। तुम कोई चिन्ता मत करना। कल कुछ लोगोंको पकड़ा गया है। मेरे सम्बन्धमें कुछ भी बात नहीं है। रातको लोग आशंका कर रहे थे। पर रात्रिको कुछ नहीं हुआ। अतएव अब ऐसी बात नहीं मालूम होती कि कोई पकड़नेकी घटना हो। पर यदि हो भी तो डरने तथा चिन्ता करनेकी क्या बात है। सब जगह भगवान् हैं, सबमें भगवान् हैं। अपने मनमें किसीसे भी कोई द्रोह-द्वेष है नहीं। यहाँ हिंसात्मक जो कुछ हुआ वह भारतके पतनका चिह्न है। यद्यपि प्रदर्शनकारियोंपर अधिकांशमें मिथ्या दोष ही लगाया गया है। करनेवाले दूसरे ही थे। पर सब हमी लोग तो थे। पुलिसके आदमी भी हमीं थे, जनताके भी हमीं थे। जेलमें रहना और बाहर रहना कोई भेद नहीं रखता। जबतक मनुष्य भगवान्का नहीं हो जाता तबतक बन्धन ही बन्धन है। भगवान्के होनेपर कहीं भी बन्धन नहीं, एकमात्र भगवान्में ही बन्धन है। ब्रह्माजी कहते हैं—

तावद् रागादयःस्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम्।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः॥

'श्रीकृष्ण! जबतक मनुष्य तुम्हारे नहीं हो जाते, तभीतक रागद्वेष आदि पीछे लगे रहते हैं, तभीतक घरका जेलखाना रहता है और तभीतक पैरोंमें मोहकी बेड़ियाँ पड़ी रहती हैं।'

इसलिये न तो इस जेल जानेकी इच्छा है, न इस जेलका डर है। अपने लिये यहाँकी जेल है ही नहीं, रही ही नहीं। आज दिनमें कोई बात नहीं हुई तो रात्रिको यहाँसे चलकर कल शामको गोरखपुर पहुँचनेका विचार है। तुम बहुत प्रसन्न रहना। प्रिय कैलाश, गीता······सब राजी होंगे। सबसे यथायोग्य कहना। शेष भगवत्कृपा।

तुम्हारा हनुमान

बहिन सावित्रीबाईसे सम्बन्धित एक मधुर प्रसंग स्वर्गाश्रमका है। वह नीचे दिया जा रहा है।

एक बार सन् १९६६ में बाबा और बाबूजीको अपनी-अपनी भावनाका आग्रह हो गया था। वही सरस प्रसंग यहाँ लिखनेका प्रयास कर रहा हूँ। प्रसंग गीता-भवन (स्वर्गाश्रम) का है, जो ऋषिकेशके उस पार गंगाजीके तटपर स्थित है। एक बार बहिन सावित्रीबाई अपने कमरेमें बैठी हुई श्रीगंगाजीकी धाराको देख रही थी। उसका कमरा एकदम गंगाजीके तटपर ही था। हिमालयके शिखरसे उतरकर और घाटियोंको पीछे छोड़कर उसका जल-प्रवाह निरन्तर आगे मैदानी भागकी ओर तीव्र गतिसे बहता चला जा रहा है। पर्वतीय घाटियोंसे उतरकर आनेके कारण उस जल-प्रवाहमें बहुत वेग है। उस अविरल प्रवाहको देखकर वह बाई मन-ही-मन कहने लगी—यह भी कैसी बात है कि यह सरिता सागरकी ओर सदा-सदा बहती ही रहती है। कभी एक क्षण ठहरनेका नाम भी नहीं लेती।

निरन्तर बहते रहनेकी भावनासे बहिन सावित्रीबाई इतनी अभिभूत हुई कि उसने अपने मनके भावोंको बाबाके समक्ष व्यक्त किया। बाबाने इन भावोंकी बड़ी सराहना की और वे उससे कहने लगे—यही तो राधा-भाव है। सिन्धु अत्यन्त खारा है, परन्तु सिन्धु-पक्षकी इस न्यूनताकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते हुए सरिता निरन्तर सागरकी ओर बहती ही रहती है। सरिता तो समर्पणकी साक्षात् प्रतीक है। प्रेमास्पदके गुण-अवगुणकी ओर तनिक भी दृष्टिपात न करते हुए प्रेमास्पदके प्रति प्रेमीका सर्व समर्पण, यही राधा-भाव है। प्रेमकी पाठशालाका यही प्रथम और यही अन्तिम पाठ है। अविरल प्रवाहके अन्तरालसे सरिताके समर्पणकी जो झलक तुमको मिली है, वह सर्वथा प्रशंसाके योग्य है।

बाबाने उन बहिन सवित्रीबाईकी भाव-धारा सराहना हृदयसे की थी। इस सराहनासे उत्साहित होकर एक-दो दिन बाद अनुकूल अवसर मिलनेपर उसने वही बात बाबूजीसे भी कह दी, जो उसने बाबासे कही थी। बाबूजीसे उसने यह भी बता दिया कि बाबा तो श्रीगंगाजीके निरन्तर बहते रहनेकी बड़ी महिमा बता रहे थे और वे यह भी कह रहे थे कि भक्तकी भाव-धारा बस, इसी प्रकार भगवान्के प्रति होनी चाहिये।

बहिन सावित्रीबाईके द्वारा ऐसा कह दिये जानेपर बाबूजीने बाबाके विचारोंका अनुमोदन तो किया ही, पर फिर बाबूजी सागरका पक्ष लेकर कहने लगें—उस

सागरकी भी तो देखो, जो युग-युगसे सरिताकी राह देख रहा है, निरन्तर प्रतीक्षा कर रहा है।

यदि सरिताका पक्ष लिया बाबाने तो बाबूजीने लिया सागरका पक्ष। उस दिन बाबूजीने तो गीताभवनके सत्संगमें प्रवचन देते हुए इसी बातकी चर्चा छेड़ दी। उन्होंने सागरकी प्रशंसा की और कहने लगे—सागरके दर्शनकी आकुलतामें यदि सरिता निरन्तर बहती रहती है तो सरितासे मिलनकी आतुरता लिये सागर निरन्तर उमड़ता रहता है। सरिताकी आकुलता अनन्त है तो सागरकी आतुरता भी अनन्त है। तटोंका सहारा लेकर यदि सरिता सदा बढ़ती रहती है तो कभी-कभी तट-रेखाका अतिक्रमण करके आगे बढ़कर लहरोंका हाथ उठाये सागर सदा प्रतीक्षा करता रहता है। सरिताका कल-कल क्रन्दन यदि असीम है तो सागरका हा-हा गर्जन भी अनन्त है। सरिताकी प्रतीक्षामें रात-दिन लहरोंके रूपमें अपने हाथ उठाये-उठाये हाहाकार करनेवाले अनन्त सागरकी आतुरता किसी भी प्रकार न उपेक्षणीय है और न किसी प्रकार न्यून है। जगत्‌के साधारण प्राणी कभी अनुमान कर ही नहीं सकते कि सच्चे प्रेमीके लिये भगवान्‌के हृदयमें कैसी अनन्त आतुरता और कैसी अनवरत प्रतीक्षा बनी रहती है।

सरिता और सागरका, प्रेमी तथा प्रेमास्पदका, भक्त और भगवान्‌का यह रसमय विवाद कई दिनतक चलता रहा। विवादके स्थानपर इसे संवाद कहना चाहिये। यह सरस संवाद था अभूतपूर्व और इसका आस्वादन भी था लोकोत्तर।

प्रेमी और प्रेमास्पदके परस्पराकर्षणका बड़ा सुन्दर चित्रण एक स्थानपर बाबूजीने किया है। महाभावमयी श्रीराधाके श्रीमुखके उद्‌गारोंको शब्द-बद्ध करते हुए बाबूजीने बताया—

होता जब वियोग, तब उठती तीव्र मिलन-आकांक्षा जाग।
पल-अमिलन होता असह्य तब, लगती हृदय दहकने आग॥
चलती मैं रस-सरि उन्मादिनी विह्वल, विकल तुम्हारी ओर।
चलते उमड़ मिलाने निजमें तुम भी रस-समुद्र तज छोर॥

(जब वियोग होता है, तब अत्यन्त तीव्र मिलनाकांक्षाका उदय हो जाता है, फिर एक-एक पलका अमिलन असह्य हो उठता है और हृदयमें ज्वाला धधक उठती है। उस समय मैं रस-सरिता उन्मादिनी और विह्वल-विकल होकर तुम्हारी ओर चल पड़ती हूँ, उधर तुम रस-समुद्र कूल-किनारा त्यागकर मुझे अपनेमें मिला लेनेके लिये उमड़ चलते हो।)

'प्रेमी पक्ष' की भाव-धारापर उन दिनों मेरे द्वारा एक कविताकी रचना हुई थी। यह रचना तो भावग्राही बाबाको अत्यन्त प्रिय लगी ही, 'प्रेमास्पद-पक्ष' का समर्थन करनेवाले बाबूजीका रसमय हृदय भी इस रचनापर बहुत अधिक रीझ गया था। वह कविता इस प्रकार है—

अनुपम धारा सुर-सरिताकी।
प्यार भरी अतुलित गति अविरल, सागर-लक्ष्य स्नेह-भरिताकी॥
कहा शिलाने—'तुम मधु-सलिला और पुञ्ज वह खारेपनका।
सोचो तनिक, तुली हो क्यों तुम करने शेष मधुर जीवनका'?
कहा तटोंने—'कहाँ चली तुम? क्या पाओगी उससे मिलकर?
क्यों खोती अस्तित्व स्वयंका, नाम-रूपका सिन्धु-चरणपर'?
शिला खण्डको, युगल तटोंको, मिला न कुछ सरिताका उत्तर।
सुना तनिक-सा कल-कल स्वरमें विकल हृदयका कल क्रन्दन वर॥
'कितनी दूर अभी बहना है? कितनी दूर सिन्धुका तट है?
दूर भला क्यों मिलन घड़ी है? मधुर मिलन क्यों नहीं निकट है'?
पथके पत्थर रोक न पाये सरिताकी उस धार प्रखरको।
विविध प्रश्न भी मोड़ न पाये, विरत न कर पाये पल भरको॥
भले क्षारमय उसे कहें सब, सिन्धु रूप बस, बसा नयनमें।
एक निरन्तर सिन्धु-मिलनकी छायी बस, उत्कण्ठा मनमें॥
सिन्धु-पुलिनका बस, अन्वेषण, एक साध्य बस, सिन्धु-देश है।
अविरल बहना, बहते जाना, बहना ही बस, कार्य शेष है॥

सावित्रीबाई समझ गयी कि व्यस्तता और समयाभावके कारण लिख सकनेमें विवशता है। इसीलिये ऐसा उत्तर दिया। फिर बाई मौन रही।

७ मई १९६७ को स्वर्गाश्रम, गीताभवनके रात्रिके प्रवचनमें बाबूजीने श्रीरवीन्द्र बाबूकी गीताञ्जलिके एक गीतको सुनाया और साथ ही अर्थ भी बताया—हे नाथ! विपत्तिके आनेपर मेरी यह प्रार्थना नहीं है कि तुम मेरी विपत्तिको दूर कर दो, अपितु वह शक्ति देना, जिससे विपत्तिको सह सकूँ, विपत्तिके पार जा सकूँ।

पदकी व्याख्या भी उतनी ही भावपूर्ण और प्रभावपूर्ण थी, जितना कि वह

स्वयं पद था। कई श्रोता रीझ गये। प्रवचनकी समाप्तिपर गीताभवनसे बाबूजी अपने वासस्थान डालमिया कोठीपर आ रहे थे। गीताञ्जलिके उस पदपर बाबूजीकी रीझन अभी अन्दर-ही-अन्दर सरसा रही थी। वे लगे गीताञ्जलिके भावोंकी सराहना करने कि प्रभुके प्रति विनय अनोखा है। उन्होंने रास्तेमें चलते-चलते सबको बताया कि कुछ वर्ष पूर्व गीतावाटिका, गोरखपुरमें गीताञ्जलिपर बँगला भाषामें ही कथा कही थी, जिसे सुननेके लिये बंगाली प्रोफेसर, डॉक्टर, विद्वान् आदि आया करते थे।

बाबूजी कोठीपर आ गये। कोठीमें फिर गीताञ्जलिके भावोंकी चर्चा चल पड़ी। बाबूजी कमरेके दरवाजेपर खड़े हो गये। खड़े-खड़े ही फिरसे गीताञ्जलिके सबसे पहले पदको सुनाया और उसका अर्थ करने लगे। घरके हम सभी सदस्य वहीं खड़े थे।

श्रीरामसनेहीजीने बाबूजीके भोजनके लिये कमरेके भीतर पाटा बिछा दिया। इतनेमें आदरणीया श्रीसावित्रीबाई सेकसरिया भी आ गयी। बाईने बाबूजीसे कहा—रवीन्द्र बाबूका यह पद लिखकर दे दीजिये।

बाई इस पदकी व्याख्या प्रवचनमें सुन चुकी थी। बाबूजीने बड़े स्नेहसे कहा—लेकर तुम क्या करोगी? यह तो बँगला भाषामें है।

बाईने कहा—उसकी हिन्दी भी साथ-साथ लिख दीजियेगा।

बाबूजीने कहा—इसके भावोंको अपने हृदयमें लिख लो।

श्रीसावित्री समझ गयी कि व्यस्तता और समयाभावके कारण लिख सकनेमें विवशता है। इसीलिये ऐसा उत्तर दिया। फिर बाई मौन ही रही।

जब-जब वह गोरखपुर रही, तब-तब वह पूज्य बाबूजीके लिये कोई-न-कोई स्वादिष्ट आहार बनाकर ले जाती थी और पूज्या माँको दे देती थी। उसके लिये पूज्य बाबूजीने नयी कोठीमें दो कमरोंकी स्वतन्त्र व्यवस्था कर रखी थी। वहीं वह पूज्य बाबूजीके लिये रसोई बनाया करती थी और वहींसे बनाकर लाया करती थी। उसके निर्माण कार्यमें बहुधा बहिन मुन्नी सहयोग दिया करती थी। जिस तल्लेमें सावित्रीबाई थी, उसी तल्लेके एक कमरेमें बहिन कमल और मुन्नी रहती थी। तीनोंकी पारस्परिक रस-चर्चामें समयका ध्यान नहीं रहता था। बहिन सावित्रीबाईने बाबूजीके द्वारा लिखे पत्रोंकी अमूल्य निधि बहिन कमलके पास धरोहरके रूपमें रख रखी थी। यह पारस्परिक आत्म विश्वासका परिचायक है।

जीवनके अन्तिम दिनोंमें बहिन सावित्रीबाई अत्यधिक रुग्ण हो गयी। मेरी अल्प जानकारीके अनुसार सम्भवतः वह कैंसरसे ग्रस्त थी। यह रोग उसके जीवनके लिये घातक सिद्ध हुआ। सूर्योदयका आन्तरिक अर्थ है सूर्यास्त और जीवनास्तके होते ही वह पूज्य बाबूजी और बाबाके पास चली गयी।

पूज्य बाबूजीके महाप्रयाणके सम्मान्या बहिन श्रीसावित्रीबाईने जो भाव-भरे उद्‌गार लिखे हैं, वे इस प्रकार हैं—

वे सबके अपने थे। सबके प्राणोंके स्पन्दन थे। गीतावाटिकाके प्राण थे। आज उनके अभावमें गीतावाटिकाका पत्ता-पत्ता कण-कण उनके लिये क्रन्दन कर रहा है। उनके अभावकी पूर्ति संसारमें हमलोगोंके लिये तो करनेवाला कोई भी नहीं है। वे चलते-फिरते भागवत-शास्त्र थे। अष्टादश पुराणों, सारी श्रुतियों एवं उपनिषदोंका सार उनके अन्दर मूर्त था। वे वाणीसे अमृत उँड़लते रहते थे। जिसकी ओर एक बार देख लेते, उसे ऐसा लगता मानो कोई निधि-सी मिल गयी। वह सदाके लिये निहाल हो जाता। ऐसा उनका अनोखा और अमित प्यार।

उनकी पावन स्मृति हो, यह हमलोगोंके लिये परम धर्म है। उनकी पावन स्मृतिमें ही सुखानुभूति होती है। अब वे उस रूपमें हमारे साथ नहीं हैं, यों तो वे नित्य ही हमलोगोंके साथ है।

दैवीशक्तिसम्पन्ना बहिन श्रीविमलादेवी भारद्वाज

बहिन विमला भागवतीशक्ति-सम्पन्ना थी। दैवी सम्पत्तिकी मूर्तिमान् प्रतिमा थी। आध्यात्मिक गौरवसे नित्य परिमण्डिता विमला गीतावाटिकामें जन-जनको आत्मस्वरूपा लगती थी। पूज्या माँ तो परमवत्सला माँ थी ही, विमला भी गीतावाटिकाके सभी नौकर-चाकर, श्रमिकजनोंके लिये मातृस्थानीया थी। उन सभीके दुःख-दर्दके निवारण करनेके लिये विमला प्रतिपल प्रयत्नशील रहा करती थी। मैं उसे मात्र विमला कह करके सम्बोधित किया करता हूँ। इसके पीछे एक भावपूर्ण हेतु है। एक बार मैं और विमला पूज्य बाबाके पास खड़े थे। विमलाकी ओर उन्मुख होकर पूज्य बाबाने कहा—विमला! यह राधेश्याम है न? यह तेरा छोटा भाई है, इसका ख्याल रखा करना।

पूज्य बाबाका इतना कहना पर्याप्त था। आयुकी दृष्टिसे विमला मुझसे छोटी है, परन्तु भाव-सम्बन्धमें आयुका महत्त्व नगण्य हो जाता है। तबसे वह मुझको अपना सगा छोटा भाई मानने लगी और मैं उसे अपनी बड़ी बहिन मानने लगा और सदा उसे 'विमला' कह करके सम्बोधित किया करता था।

बहिन विमलाका जन्म बुलन्दशहरके ग्राम ईटारोड़ी स्थानके एक मकानमें हुआ था। बचपनसे ही विमला बड़ी प्रतिभाशालिनी थी। भक्तिभावकी ओर अत्यधिक झुकाव था। जब विमलाकी आयु सात वर्षकी थी, उस समयका एक प्रसंग है। इसके घरपर एक संत आये। संतने बालिकाके मुखमण्डलको गौरपूर्वक देखा। ललाटकी कुछ रेखाओंको देख करके वे संत माता-पितासे कहने लगे—तुम लोग अत्यन्त भाग्यशाली हो। यह बालिका बड़ी होनहार है। इस बालिकामें देवीका अंश है। इस बालिकाके प्रभावसे आपके कुलकी इक्कीस पीढ़ियाँ तर जायगी। यह सुनकर माता-पिताको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने संतजीके श्रीचरणोंमें प्रणाम किया।

उटरावलीके पूज्य पण्डित श्रीचिरंजीलालजीके ज्येष्ठ पुत्र श्रीअमीचन्दजी शर्मासे बहिन विमलाका मंगल-परिणय १७ मई सन् १९५५ में हुआ। श्रीअमीचन्दजी रेलवेमें सर्विस करते थे। पहली नियुक्ति बरेलीमें हुई। फिर बरेलीसे गोरखपुर ट्रान्सफर हो गया। गोरखपुरमें पैडलेगंज मोहल्लेमें रहते थे, जो गोरखपुर विश्वविद्यालयके समीप है। उसी स्थानपर रहते हुए एक दिन परम सौभाग्यका उदय हुआ। महासिद्ध संत श्रीमहावतार बाबाजीने विमलाको दीक्षा दी। इसका विस्तृत विवरण आगे पढ़नेको मिलेगा। दीक्षाके बाद स्थिति यह थी कि यदि कोई भी 'माँ' शब्दका उच्चारण कर लेता था तो 'माँ' शब्दको सुनते ही विमला समाधिमें निमग्न हो जाया करती थी। बाह्य चेतना लुप्त हो जाया करती थी। विमलाकी ऐसी भावमयी स्थिति देख करके श्रीअमीचन्दजी बहुत परेशान थे। घरमें छोटे-छोटे बालक थे। उनकी देख-रेख और सँभालका प्रश्न था। जब श्रीअमीचन्दजीकी चिन्ता बहुत बढ़ गयी, वे भगवान्से इससे उबरनेके लिये प्रार्थना करने लगे। प्रार्थनामें पूर्ण सच्चाई थी और प्रार्थनाका समुचित परिणाम सामने आया। अब इससे आगेका विवरण भाई श्रीअमीचन्दजीके शब्दोंमें पाठकगण पढ़नेकी कृपा करें।

दिव्यादेश और दिव्याश्रय

मैं एक साधारण स्थितिका व्यक्ति हूँ। रेलवेमें नौकरी करता हूँ। जो वेतन

मिलता है, उसीसे परिवारका भरण-पोषण सामान्य रीतिसे हो पाता है। अवश्य ही पूर्व-जन्मका कोई ऐसा महान् पुण्य रहा होगा कि जिसके फलस्वरूप मुझे जीवनसंगिनी सात्त्विक स्वभाववाली मिली है। मात्र सात्त्विक स्वभाव नहीं, मेरी धर्मपत्नी संत ही है, गृहस्थाश्रमी होते हुए भी वह संतत्वकी मूर्ति है। हमारे घरमें ठाकुर श्रीराधाकृष्णकी आराधना है। ठाकुर-सेवा वह बड़े भावसे करती है। पूजा-पाठ, व्रत-उत्सव, साधु-सत्कार आदिमें उसका बड़ा चाव रहता है। दुखियोंकी, रोगियोंकी, पड़ोसियोंकी और असहायोंकी सेवा-सहायताके समय उसे न अपना और न अपने परिवारका ध्यान रहता है। उसकी उमंग तो इतनी रहती है कि सेवा-सहायतामें अपना सारा स्वाहा कर दूँ।

सन् १९६९ की बात है। उन दिनों पूजा करते-करते वह प्रायः समाधिस्थ हो जाया करती थी। उस स्थितिमें कितना समय बीत जायेगा, कहा नहीं जा सकता था। कभी दो घंटा, कभी तीन घंटा और कई बार तो वह आठ-नौ घंटेतक समाधिस्थ रही। समाधिस्थ हो जानेपर न शरीरकी सुधि रहती थी और न बाह्य जगत्का भान रहता था। मैं तो प्रायः इसके पास बैठा रहता था, कई बार मेरे घनिष्ठ मित्र भी रहते थे। उस समय हमलोगोंको बड़ी विचित्र आवाज सुनायी देती थी। कभी कर्कश, कभी चीख, कभी रोदन, कभी भयावह, इस प्रकार मनको आतंकित करनेवाले स्वर सुनायी दिया करते थे। उन भयप्रद स्वरोंको सुनकर हमलोग भयभीत हो जाया करते थे। जब उसकी समाधि टूटती थी, तब मैं उसे भयावह स्वरोंके बारेमें बतलाता था। मेरी बात सुनकर वह यही बताया करती थी कि मुझे न तो कुछ सुनायी दिया और न कुछ पता ही है।

हमलोग समझ नहीं पाते थे कि यह सब क्या हो रहा है। मेरी धर्मपत्नीकी इच्छा थी कि यदि कोई सद्गुरु मिल जाय तो समस्याका समाधान मिले। उसकी चाहको जानकर मेरे एक मित्रने स्वामी श्रीयोगानन्दजीकी आत्मकथा (Autobiography of Yogi) लाकर मेरी धर्मपत्नीको दी और कहा—इनकी पूजा करनेसे तुम्हें महान् सद्गुरु महाराजकी प्राप्ति हो जायेगी।

मेरी धर्मपत्नीने पुस्तकमेंसे पूज्य श्रीबड़े महाराजजीका चित्र निकाल लिया और उसकी पूजा करनी आरम्भ कर दी। पूजा करते-करते दस-पन्द्रह दिन व्यतीत हुए होंगे कि पूज्य श्रीबड़े महाराजजीने स्वप्नमें आकर मेरी धर्मपत्नीको दीक्षा दी। जब मैं सबेरे उठा तो देखा कि उसके ललाटपर बहुत लम्बा

टीका लगा हुआ है। मैंने उससे पूछा—आज यह लम्बा टीका ललाटपर कैसा लगा है?

उसने प्रश्न किया—कैसा टीका?

मैंने कहा—जो तुम्हारे ललाटपर लगा है।

मेरी बात सुनकर उसे आश्चर्य हुआ। आश्चर्य हुआ यह देखकर कि जो टीका श्रीबड़े महाराजजीने स्वप्नमें लगाया था, वह एक वास्तविक तथ्य है। फिर सारी बातोंको बतलाते हुए उसने कहा—श्रीबड़े महाराजजी स्वप्नमें पधारे थे। उन्होंने मन्त्र बतलाकर दीक्षा दी और भालपर तिलक किया था। लगता है कि यह वही तिलक है।

उसकी बात सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरी धर्मपत्नीको श्रीबड़े महाराजजीने दीक्षा तो दी, परंतु अपनी सरलतामें वह उस मंत्रको थोड़े दिन बाद भूल गयी। गृहस्थीके कार्योंमें उसे मन्त्र विस्मृत हो गया। श्रीबड़े महाराजजी इतने दयालु थे कि उन्होंने अपने प्रधान शिष्य श्रीलाहिड़ी महाशयसे पुनः दीक्षा दिलवाकर मन्त्र-दान किया। यह हुआ आश्विन शुक्ल तृतीया, मंगलवार १४ अक्टूबर १९६९ के दिन। इस बार भी एक चमत्कार हुआ। पूजाघरमें उनके चित्रके पास एक बहुत बड़ा अंगूर रखा हुआ मिला। इतना बड़ा अंगूर पहले कभी देखा नहीं था। जिस तरह भालपर तिलक देखकर आश्चर्य हुआ था, उसी प्रकार इस अंगूरको देखकर भी हुआ। वह प्रसादी अंगूर मेरी धर्मपत्नीने पा लिया।

पुनः दीक्षा मिलनेसे मेरी धर्मपत्नीको प्रसन्नता तो हुई, परंतु ये सद्गुरुदेव ऐसे थे, जिनसे सदा बात नहीं हो सकती थी। वह तो अपने मनमें ऐसे सद्गुरुदेवकी चाह लिये हुए थी, जो पद-पदपर आनेवाली कठिनाइयोंको सुन सकें और उनका उचित समाधान दे सकें। वह अपने गुरुदेवसे मन-ही-मन ऐसी प्रार्थना करने लगी—मुझे तो ऐसा आश्रय चाहिये जो मेरे जीवनकी समस्याओंको सुन सके और हल कर सके।

उसकी यह प्रार्थना कई दिनोंतक चलती रही। एक दिन उसको ऐसा दिखलायी दिया—एक बहुत बड़ा लम्बा कागज आकाशमें लटक रहा है और उसपर लिखा है कि तुम हनुमानप्रसाद पोद्दारसे मिलो। वे तुम्हारी सँभाल करेंगे। उनसे तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा। वैसे वे पके आमके समान हैं, पता नहीं कब चू जायें।

तबतक हमलोगोंने श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका नाम नहीं सुन रखा था। गोरखपुरमें रहते हुए भी हमें उनका परिचय नहीं था। एक धार्मिक संस्थाके रूपमें गीताप्रेसका नाम तो हमारी जानकारीमें था, पर पूज्य श्रीपोद्दारजी उसके कर्णधार हैं, 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादक हैं और वे एक आध्यात्मिक विभूति हैं, इसकी तनिक भी जानकारी नहीं थी। श्रीबड़े महाराजजीसे जो लिखित संदेश कागजपर मिला, उसके अनुसार हमने पूछताछ आरम्भ कर दी और धीरे-धीरे पूज्य श्रीपोद्दारजीसे सम्बन्धित पर्याप्त बातें सुननेको मिलीं। अब हमलोग उस अवसरकी ताकमें थे कि उनसे भेंट हो सके।

लोगोंसे बात करते-करते तथा सम्पर्कसूत्रको टटोलते-टटोलते क्रमशः ढंग बैठने लगा। पूज्य श्रीबड़े महाराजजीका जब आदेश था, तब पूज्य श्रीभाईजी (अर्थात् पूज्य श्रीपोद्दारजी)-से भेंट हो जानेके ढंगको बैठना ही था। वे ही परोक्ष रूपसे सक्रिय रहकर सारी परिस्थितिको अनुकूलताके साँचेमें ढालते चले जा रहे थे। प्रयास करनेपर एक दिन कल्याण-विभागके सम्मान्य सदस्य श्रीशर्माजी हमारे घरपर पधारे। उनसे हमने प्रार्थना की—आप हमारी भेंट श्रीपोद्दारजीसे करवा दें।

श्रीशर्माजीने कहा—पहली बात तो यह है कि वे प्रायः भाव-समाधिकी स्थितिमें रहते हैं और इसके फलस्वरूप उनका कमरा जब-तब बन्द ही रहता है। दूसरी बात यह है कि उनका शरीर अति रुग्ण है, अतः उनसे मिल सकना सम्भव नहीं है।

मेरी धर्मपत्नीने बड़े विश्वासपूर्वक कहा—वे मुझसे अवश्य मिलेंगे। आप उनसे एक बार निवेदन तो करें।

श्रीशर्माजीने हमलोगोंको हतोत्साहित करनेके लिये कहा—अति घनिष्ठ लोगोंको भी उनसे मिल सकनेका अवसर नहीं मिल पाता। आपलोग तो सर्वथा नवीन व्यक्ति हैं, अतः भेंट कैसे सम्भव हो पायेगी? क्या आपके मनमें उनसे मिलनेकी जिद्द है?

मेरी धर्मपत्नीने बड़े विनयके साथ अपनी बात रखी—जिद्द रंचमात्र नहीं, पर मेरा मन कहता है कि यदि उनसे प्रार्थना की गयी तो वे अनसुनी नहीं करेंगे।

अस्तु, अगले दिन श्रीशर्माजी, पूज्य श्रीभाईजीसे मिले और हमारी प्रार्थना उनके समक्ष निवेदित की। निवेदन करते ही उन्होंने स्वीकृति प्रदान कर दी।

संतकी बातको संत ही समझता है और समादर करता है। हमारे मनमें पूर्ण आस्था थी कि मिलनेके लिये हमें स्वीकृति अवश्य मिलेगी। यह तो हो सकता है कि रुग्णताके कारण कुछ देर हो जाय, पर स्वीकृतिके मिलनेमें हमें संदेह नहीं था। हमारे सौभाग्यसे यह स्वीकृति तत्काल मिल गयी। हमलोग पूज्य श्रीभाईजीके दर्शनार्थ गीतावाटिका गये।

पूज्य श्रीभाईजीके कमरेमें हमलोगोंने प्रवेश किया। उन्होंने बड़े स्नेह और सम्मानके साथ हमलोगोंको बैठाया तथा पूछा—आपलोग क्या कहना चाहते हैं?

मेरी धर्मपत्नीने अपनी समाधिकी, विभिन्न आत्माओंके आनेकी, उन आत्माओंके चिल्लाने-चीखनेकी, उनके भयावह स्वरसे परिवारके लोगोंके भयभीत होनेकी और आठ-नौ घंटेतक समाधिस्थ रहनेसे घर-गृहस्थीके चौपट होनेकी, ये सब बातें उन्हें बतलायी। इस सारे विवरणको सुनकर पूज्य श्रीभाईजीने कहा—अभी तो मैं कोई निर्णय नहीं दे सकता। तीन दिन बाद आप लोग आइये, तब शायद कुछ बतला सकूँ।

तीसरे दिन हमलोग गये, परंतु श्रीभाईजी भाव-समाधिमें थे। उनका कमरा बहुत देरसे बन्द था और यह भी पता नहीं था कि कब खुलेगा। हमलोग अपने घर वापस चले आये। फिर दूसरे दिन गये। आज भी कमरा बन्द था। कमरा बन्द देखकर हमलोग बाबाकी कुटियाकी ओर चले गये। आजकल जहाँ श्रीभाईजीकी समाधिस्थली है, वहाँपर पहले श्रीमोती महाराजकी छोटी-सी कुटिया थी। पूज्य श्रीभाईजीके प्रति समर्पित जीवन व्यतीत करनेवाले श्रीमोती महाराज गीतावाटिकामें स्थायी रूपसे रहते थे और वे पूजा-पाठ आदिके अच्छे जानकार व्यक्ति थे। उनकी उस कुटियाके सामने टिनका एक छोटा-सा शेड था। हमलोग टिन-शेडमें खड़े हो गये। उसी समय पूज्य बाबा अपनी कुटियासे निकले शौचालय जानेके लिये। शौचालयकी ओर जानेके स्थानपर वे हमारे पास टिन-शेडमें चले आये तथा हमलोगोंसे बात करने लगे। इससे सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ कि आज बाबा इन सर्वथा अपरिचित लोगोंसे कैसे बहुत हिल-मिलकर बात कर रहे हैं। सबसे अधिक आश्चर्य तो श्रीभगतजीको हुआ। बादमें श्रीभगतजीने एकान्तमें बाबासे पूछा—शौचालय जाते-जाते आप इन लोगोंसे कैसे बात करने लगे?

बाबाने श्रीभगतजीसे कहा—यह मेरी बिटिया है। यह मुझे नहीं जानती, पर

मैं इसे जानता हूँ। यह मेरे पास बहुत दिनों बाद आयी है। अब उससे मैं बात क्यों नहीं करता?

हमलोगोंसे बात करके बाबा शौचालय चले गये और हमलोग श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये चल पड़े। आकर देखा तो कमरा बन्द था। पुनः निराश होकर हमलोग अपने घर वापस चले गये। फिर तीसरे दिन आये। जब आये, तब तो कमरा बन्द ही था, पर थोड़ी देर बाद वह खुल गया और हमलोग श्रीभाईजीके पास गये।

हमलोगोंको देखते ही श्रीभाईजीके मुखपर अतीव और अतीन्द्रिय प्रसन्नता छा गयी, जो उनके उमड़ते हुए प्यारकी सूचिका थी। उन्होंने बड़े प्यारसे बैठाया और कहा—तुमने जो भी अपने बारेमें बतलाया है, उसमें रंचमात्र भी न बनावट है और न पाखण्ड। मुझे ज्ञात हो गया है कि तुम्हारे कथनका अक्षर-अक्षर सत्य है।

पूज्य श्रीभाईजीके मुखसे इन शब्दोंको सुनकर हमलोगोंको बड़ी ही सान्त्वना मिली। यदि वे कहीं किसी प्रकारका संदेह कर बैठते तो उनके निवारणका हमारे पास कोई उपाय था ही नहीं। हमारे द्वारा तो वही कहा गया था, जो जीवनमें सचमुच बीत रहा था। इसके बाद श्रीभाईजी हमारे परिवारके बारेमें, नौकरीके बारेमें, आर्थिक स्थितिके बारेमें, माता-पिता, भाई-बहिन आदिके बारेमें पूछने लगे। उन्होंने बड़ी रुचि ली और स्वयं ही बड़े ही विस्तारसे सारी बातें एक-एक करके पूछीं। जब मेरी धर्मपत्नीने अपने भाई-बहिनोंका परिचय दिया तो श्रीभाईजीने कहा—अरी! वे लोग तो सांसारिक हैं। उनका सम्बन्ध तो कच्चे धागेके समान है। तेरा असली भाई और अंततक काम आनेवाला भाई तो मैं ही हूँ।

इन उद्‌गारोंको सुनकर मेरी धर्मपत्नीको कितनी विह्वलता हुई और मुझे कितना आह्लाद हुआ, यह तो मात्र अनुभवकी वस्तु है। उस दिन श्रीभाईजी बड़े प्रसन्न मनसे आवरणरहित होकर बात कर रहे थे। हमारी बातोंको सुननेके बाद उन्होंने अपने जीवनकी अनेक बातें बतलायीं। उन्होंने यह भी बतलाया कि श्रीराधाकिशोरी और श्रीनन्दनन्दन किस प्रकार प्रकट होकर कैसे-कैसे लीला-सुखका विस्तार करते हैं। श्रीराधा-माधवकी दिव्य लीलाके कुछ प्रसंग भी उन्होंने सुनाये। जिस प्यारके साथ वे बतला रहे थे, उसकी स्मृतिमात्रसे दिव्यानन्दकी बाढ़-सी आ जाती है।

उस दिन श्रीभाईजीसे लगभग तीन घंटेतक बातें होती रहीं। उस बातचीतमें भ्रातृत्वके नवीन सम्बन्धका केवल आरम्भमात्र नहीं हुआ, अपितु उन्होंने अनेकानेक भूरि-भूरि आशीर्वाद भी दिये, जो जीवनकी वास्तविक निधि है, एक ऐसी निधि, जो जीवनके इस पार और उस पार, दोनों ओर काम देती रहेगी।

बातचीतके बीचमें श्रीभाईजीने मुझे एक शक्ति-मन्त्र बतलाया और कहा—इसके जपके प्रभावसे वे सब उपद्रव शान्त हो जायँगे, जो भयावह स्वरके रूपमें सामने आते हैं।

इसके बाद उन्होंने मेरी धर्मपत्नीको कुञ्जिकास्तोत्रका पाठ करनेके लिये कहा। मेरी धर्मपत्नी साधारण पढ़ी-लिखी है। उसके लिये संस्कृत पढ़ सकना कठिन है। उसने श्रीभाईजीसे कहा—मैं तो संस्कृत पढ़ ही नहीं सकती।

श्रीभाईजीने कहा—जैसा पढ़ सकती हो, वैसा ही पढ़ो। गलती ही सही, पर उसको पढ़ो। यह बात ध्यानमें रखो कि माँको बालककी तोतली बोली बड़ी प्यारी लगती है।

श्रीभाईजीने जप तथा पाठके लिये जो बतलाया, उससे लाभ प्रत्यक्ष रूपमें दिखलायी दिया।

जब हमलोग चलने लगे तो श्रीभाईजीने अपने निजी परिचारक भाई श्रीहरिकृष्णजी दुजारीसे कहा—यह जब भी आवे, इसको आनेसे मत रोकना। मैं चाहे किसी भी स्थितिमें रहूँ, इसके लिये प्रवेश वर्जित नहीं है। यह कुछ नहीं चाहती और न चाहेगी। यह आकर प्रणाम करके चली जायेगी।

इसके बाद श्रीहरिजीने कभी भी हमलोगोंको नहीं रोका। श्रीभाईजीके उन्मुक्त प्यारने और उनके अगाध वात्सल्यने हमारे संकोचको दूर कर दिया था। हमलोग प्रायः समय-समयपर श्रीभाईजीके दर्शन करने गीतावाटिका आते रहते थे। जब-जब आते थे, तब-तब कुछ-न-कुछ भावात्मक निधि मिलती ही थी। एक बार मेरी धर्मपत्नी दोपहरके समय श्रीभाईजीके पास गयी। उस समय पूज्या मैया श्रीभाईजीको भोजन करा रही थी। भोजनकी जो सामग्री श्रीरामसनेहीजी लाते थे, उसे मैया थालीमें परोस दिया करती थी। उसी अवसरपर मेरी धर्मपत्नीने कमरेमें प्रवेश किया। उसे अनुभव हुआ कि श्रीभाईजीके सम्पूर्ण अंगसे और मुखमण्डलसे विशेष रूपसे दिव्य प्रकाश फूट रहा है। उस दिव्य प्रकाशसे सारा कमरा भरा

हुआ है, अपितु सारा कमरा जगमगा रहा है। भोजनके अवसरपर उसने रुकना उचित नहीं समझा। अपने अनुभवको तथा अपनी विभोरावस्थाको छिपाये-छिपाये उसने श्रीभाईजीको प्रणाम किया और वह वहाँसे चली आयी। उन्हीं प्रारम्भिक दिनोंकी एक विशेष बात और है। एक बार हमलोग बाबाके पास गये। बाबाको घेर करके बहुत-से लोग बैठे हुए थे। हमलोग बहुत दूर एक कोनेमें बैठे थे। हमलोगोंके बैठनेके बाद बाबा कहने लगे—मेरे लिये कोई कुछ वस्तु ले आया है क्या? कौन है वह? जो लाया है, वह मुझे दे।

बाबाने बड़े ऊँचे स्वरसे पूछा और कई बार पूछा, पर कोई कुछ बोल ही नहीं रहा था। फिर बाबाने एक-एक करके पास बैठे हुए व्यक्तियोंसे पूछा, परंतु सभीने नकारात्मक उत्तर दिया। मेरी पत्नीके पास एक नारियल था और वह अपने आँचलमें लिये हुए बैठी थी। हममेंसे एकने उससे कहा—कहीं बाबा तुम्हारे नारियलके लिये तो नहीं कह रहे हैं?

मेरी पत्नीने उत्तर दिया—हम तो साधारण व्यक्ति हैं और नये व्यक्ति हैं। हमसे भला बाबा क्यों कहने लगे? हमारी गिनती भला कहाँ?

मेरे मित्रने पुनः कहा—कौन जाने इसीके लिये वे कहते हों? इन संतोंकी लीलाका पता नहीं चलता। एक बार आगे जाकर पूछ तो लो।

उत्साहित किये जानेपर मेरी धर्मपत्नीने आगे जानेका साहस किया और बाबाके पास जाकर कहा—बाबा! मेरे पास एक नारियल है।

बाबाने कहा—मैं तबसे पूछ रहा हूँ और तुमने कुछ उत्तरतक नहीं दिया। तनिक बताया भी नहीं।

बाबाकी बात सुनकर मेरी धर्मपत्नी चुपचाप खड़ी रही। बाबाने ज्यों ही अपने दोनों हाथ फैलाये, उसने वह नारियल बाबाको दे दिया। बाबाने वह नारियल एक बहिनको दे दिया और कहा—रातको भिक्षाके समय यह नारियल मेरी पत्तलमें परोस देना।

उसी समय बाबाने पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीको बैठाकर उनकी साक्षीमें मेरी धर्मपत्नीको अपनी बेटीके रूपमें स्वीकार किया। इस सम्बन्धको मेरी पत्नीने अपना सौभाग्य माना। वह तो बार-बार अपने भाग्यको धन्य-धन्य कह रही थी। उस समय बाबाने मेरी धर्मपत्नीको 'सत्संग-सुधा' नामक अपनी एक पुस्तक दी। यह पुस्तक उसके लिये नित्य-पाठकी वस्तु बन गयी है।

अद्यावधि वह नित्य पाठ करती है। रात्रिको जब मेरी धर्मपत्नी सोयी हुई थी तो उसने स्वप्नमें देखा कि किस प्रकार वह नारियल तोड़ा गया है, किस प्रकार उसका जल भूमिपर बहने लगा है और किस प्रकार उसकी गिरि बिखर गयी है। दूसरे दिन आकर उसने अपने स्वप्नकी बात बाबाको बतायी। बाबाने कहा—तुमने स्वप्नमें वही देखा, जो यहाँ भिक्षाके समय घटित हुआ।

एक दिन बाबाके पास मेरी धर्मपत्नी बैठी हुई थी। वहाँ और कई लोग बैठे हुए थे। सबको बाबा व्रजरसकी तथा व्रजलीलाकी बातें बतला रहे थे। उन बातोंको सुनकर मेरी धर्मपत्नीके मनमें बड़ी ग्लानि होने लगी। वह उन बातोंको समझ नहीं पा रही थी, पर उन बातोंका असर उसके मनपर गहरा पड़ रहा था। उसे बड़ी खिन्नता हो रही थी कि जीवनके दिन बीतते चले जा रहे हैं और इस व्रजरससे जीवन पूर्णत: रिक्त है। ग्लानि इतनी अधिक हो गयी कि वह चेतनाशून्य होकर वहीं भूमिपर गिर पड़ी। उसे लिटाया गया तथा कुछ प्रारम्भिक उपचार भी किया गया। लगभग आधा घंटा बाद उसे कुछ होश आया। होश आनेके बाद हमलोग घरके लिये चल पड़े। गीतावाटिकासे विदा होनेके पहले हमलोग श्रीभाईजीको प्रणाम करनेके लिये गये। श्रीभाईजी अपने कमरेमें खाटपर बैठे थे और नीचे बैठे थे फर्शपर नगरके एक व्यक्ति। हमलोगोंने जाकर श्रीभाईजीको प्रणाम किया। श्रीभाईजी मेरी धर्मपत्नीको 'पगलिया' कहा करते थे। प्यारमें उन्होंने इसका यही नाम रख रखा था। उसी नामको लेकर उन्होंने पूछा—पगलिया! आज तू इतनी उदास क्यों है?

मन और मतिकी अति सरला मेरी धर्मपत्नीने कहना आरम्भ कर दिया—अभी हमलोग बाबाके पास बैठे थे। वे व्रजभावकी साधनाके बारेमें तथा वहाँकी लीलाके बारेमें कुछ बता रहे थे, पर मैं कुछ समझ नहीं पा रही थी। मनमें बड़ा दु:ख हुआ कि सारा जीवन बेकार चला जा रहा है। ग्लानिके मारे मैं तो बेहोश होकर वहीं गिर पड़ी।

इतना सुनकर श्रीभाईजीने कहा—तू यहाँ बैठ। मेरी आँखकी ओर लगातार आधा घंटातक देखती रहना।

श्रीभाईजीकी हर बात उसके लिये तो प्राणके समान थी। वह वहीं बैठ गयी। वह लगातार श्रीभाईजीकी ओर देखने लगी। श्रीभाईजी भी उसकी ओर देखते रहे। लगभग पच्चीस मिनट परस्पर देखना होता रहा। उस समय कमरेमें

हम केवल चार ही व्यक्ति थे—पूज्य श्रीभाईजी, मेरी धर्मपत्नी, मैं और वे व्यक्ति। उस समय मेरी धर्मपत्नीके मानसमें विचित्र परिवर्तन एवं विचित्र भावोल्लासकी अनुभूति होने लगी। श्रीभाईजीने उन सब बातोंको बतलानेसे मना कर रखा है, अत: उसकी ओर संकेत कर सकना भी सम्भव नहीं है। इतना ही कहा जा सकता है, शक्तिपात करनेकी यह एक अति अनोखी प्रक्रिया थी और हमारे जीवनका यह एक अति अनोखा क्षण था।

एक दिव्य क्षण यह था, जब शक्तिपातकी प्रक्रिया सम्पन्न हुई थी और एक दिव्य क्षण वह था, जब पूज्य श्रीबड़े महाराजजीने पूज्य श्रीभाईजीके पास जानेका आदेश दिया था। पूज्य श्रीभाईजीके पास आकर और उनका आश्रय पाकर हमारा जीवन धन्य हो गया। उनका आश्रय, उनका प्यार, उनका वात्सल्य, उनका अपनत्व और उनके श्रीचरणोंकी स्मृति तो हमारे जीवनका आधार है।

गीतावाटिकामें श्रीराधाकृष्णके एक विशाल मन्दिरका शिलान्यास पूज्या माँके कर-कमलोंसे १३ दिसम्बर १९७५ को हुआ और इसी अवसरपर आदरणीय भाई श्रीरामस्वरूपजी अपनी रासमण्डलीसहित यहाँ १३ दिसम्बरको आये तथा १६ दिसम्बरकी रातको चले गये। इस बार चार दिनकी अवधिमें उन्होंने सात बार श्रीराधाकृष्ण-लीलाके भावमय दृश्य प्रस्तुत किये और अन्तिम दिन जानेसे पहले उन्होंने बाबाको सम्भवत: दो घंटेतक अनेक सरस पद सुनाये। इन चार दिनोंमें भाई श्रीरामस्वरूपजीकी उपस्थितिसे जैसा वातावरण बना, उसे वर्णन करनेकी शक्ति मेरे पास नहीं है। यह एक परम्परा-सी पड़ गयी है कि यदि किसीकी गरिमाका बखान करना हो तो कह देना चाहिये कि मैं करनेमें अक्षम हूँ। मैं उस परम्पराका निर्वाह नहीं कर रहा हूँ। मैं सच कह रहा हूँ कि भाई श्रीरामस्वरूपजीने अद्‌भुत वातावरण उपस्थित कर दिया। यह कहना तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं होगा कि उन्होंने और उनके श्रीप्रिया-प्रियतमने चमत्कार कर दिया।

हम लोगोंकी चाह थी कि जब बाबा परिक्रमा लगा रहे हों, उस समय परिक्रमा-स्थलीमें रास हो, जिससे वे भी रासलीलाका दर्शन कर सकें। बाबा परिक्रमा प्रात:काल लगाया करते हैं और प्राय: परिक्रमा साढ़े आठ बजेके आसपास आरम्भ होती है। परिक्रमामें लगभग एक या डेढ़ घण्टा लगा करता है। हम लोगोंने यही सोच रखा था कि बाबा परिक्रमा देते रहेंगे, उस समय

लीला भी होती रहेगी तथा सारी रासलीला डेढ़-दो घंटेमें पूरी कर दी जायेगी, पर जो सोचा गया था, उससे सर्वथा अलग बात घटित हो गयी। बाबा परिक्रमा देते-देते ठहर गये और लगातार तीन घण्टेतक खड़े-खड़े रासलीला देखते रहे। यह सर्वथा नयी बात थी। इसके बाद श्रीप्रिया-प्रियतमने बाबाको दोनों ओरसे पकड़कर साथ-साथ श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा की। यह तो बड़ा ही अद्भुत दृश्य था। सबके हृदयमें भावकी लहरें तरंगित होने लग गयीं। दूसरे दिनकी रासलीलामें प्रसंगके अनुसार प्रियतम श्रीकृष्णमें श्रीराधा-विरह ऐसा उमड़ा और भावावेश इतना हुआ कि श्रीठाकुरजी बाबाको श्रीराधा समझकर दौड़कर उनसे लिपट गये। बहुत देरतक बाबासे लिपटे खड़े रहे। उस आलिंगनका दृश्य बड़ा ही भावपूर्ण था। एक दिन होली-लीला हुई। उस दिन श्रीप्रिया-प्रियतमने बाबाको अबीर-गुलालसे भर दिया और फूलोंकी पंखुरियोंसे ढक दिया। बाबाके चारों ओरकी परिक्रमा-स्थली रंगसे रंगीन हो गयी। भूमिपर फूलकी पंखुरियोंका अम्बार लग गया। आदरणीया बाई (श्रीसावित्रीबाई फोगला) बता रही थी कि विगत पचास वर्षोंमें बाबाने होली नहीं खेली। निकट-से-निकट व्यक्तिको भी यह साहस ही नहीं था कि बाबाको अबीर या गुलालकी एक बिन्दी भी लगा दे। बाबाके नियमोंकी दृढ़ताको देखकर कोई ऐसा साहस नहीं कर सकता था, पर जो नहीं हो सकता था, वह आज हो गया। श्रीप्रिया-प्रियतमके लीला-रसका प्रवाह ऐसा प्रबल था कि होली-लीलामें अनहोनी हो गयी। अन्तिम दिन झूलन-लीला थी। जब श्रीप्रिया-प्रियतम सर्वप्रथम झूलनेके लिये पधारे तो उन्होंने बाबासे साथ झूलनेके लिये अनुरोध किया। यह अनुरोध तो ऐसे कार्यके लिये हो रहा था, जो सर्वथा असम्भव था। वस्तुत: बाबाका झूलना एक असम्भव कार्य ही है। उसी असम्भव कार्यके लिये श्रीप्रिया-प्रियतमका अनुरोध चल रहा था। परिक्रमा-स्थलीपर बैठे हुए सारे वाटिकावासी बड़ी उत्सुकतासे, बड़ी अधीरतासे, बड़े चावसे, बड़े कौतूलसे देख रहे थे, अपितु निहार रहे थे इस अनुरोधको कि आज यह क्या हो रहा है? दर्शकोंके मनमें बड़ी चटपटी थी यह जाननेके लिये कि इस अनुरोधका अन्त किस रूपमें होगा। लोगोंको अपनी आँखोंपर विश्वास नहीं हो रहा था कि आज ये नेत्र क्या देख रहे हैं? इधर तो बाबा मनुहार कर रहे हैं कि आप दोनों झूलिये और उधर श्रीप्रिया-प्रियतमका अनुरोध

चल रहा था; नहीं, नहीं, उस अनुरोधको अब तो आग्रह कहना चाहिये, उनका आग्रह चल रहा था कि आप आज हम दोनोंके साथ झूलें। सारे दर्शकोंकी आँखें विस्फारित हो गयीं, सबकी दृष्टि झूलेके निकट चल रहे मनुहार और आग्रहपर टिक गयी। माइकपर खड़े हुए भाई रामस्वरूपजी 'जय-जय' बोल करके तथा इशारा कर-करके मना कर रहे थे, पर श्रीप्रिया-प्रियतमका ध्यान उस ओर गया ही नहीं। उनका आग्रह चलता ही रहा। अन्तमें श्रीप्रिया-प्रियतमके आग्रहकी जीत हुई। श्रीप्रिया-प्रियतमने कल होली-लीलाके मध्य जिस समय बाबापर अबीर-गुलाल गिरा दिया था, उस समयके लिये कहा जा सकता है कि पूज्य बाबा तो चुपचाप खड़े लीला देख रहे थे, अत: श्रीप्रिया-प्रियतमने जाकर अबीर-गुलाल गिरा दिया, उसमें बाबा क्या कर सकते थे, पर सह-झूलनके बारेमें तो ऐसा नहीं ही कहा जा सकता। बाबाको अपनी स्वीकृति देनी पड़ी। तभी बाबाका श्रीप्रिया-प्रियतमके साथ झूलन हो सका। ज्यों ही बाबा श्रीप्रिया-प्रियतमके साथ झूलेपर बैठे, सारा वायुमण्डल जय-जयकारके उल्लसित नादसे गुञ्जित हो उठा। श्रीप्रिया-प्रियतमके अत्यधिक भावमय आग्रहके प्रवाहमें आज बाबाके नियमकी कठोरता बह गयी। गीतावाटिकाके इतिहासमें यह एक अति महान् आश्चर्य था। वह बड़ा ही अनोखा दृश्य था। उस दृश्यकी भव्यताको, वातावरणकी दिव्यताको, प्रसंगकी भावमयताको, अनुभूतिकी अलौकिकताको, मैं प्रयास करके भी व्यक्त कर नहीं पा रहा हूँ। सारे लोग रसमें बह चले। सारा वातावरण रसमें झूम उठा, सारी स्थली रसमें डूब गयी। परिक्रमा-स्थलीमें बैठे हुए व्यक्तियोंके सम्बन्धमें मैं क्या कहूँ?

'बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्ह सुरमनि ढेरी॥'

सर्वथा कल्पनातीत वस्तु आज प्रत्यक्ष थी। बाबा कभी-कभी कहा करते हैं कि माखन मैं निकालूँ और आस्वादन तुम लोग करो। आज वह साक्षात् था। यह देखकर बहिन विमलाने अपनी ठेठ ब्रज भाषामें कहा—'हाय, हाय, इन लोगनने तो मेरे बाबा कूँ सबनके देखते-देखते भए लूट लीनो। हम तो इतने दिनन सौं बाबाके पास रहि रहे हैं, पर हम तो कोरी-की-कोरी ही रह गयीं और इन नये-नये आइबे वारेन ने न जाने कहा जादू करि डारो। इनननें बाबा कूँ ऐसो रिझाय लीनो कि जाकी सीमा नाँय रही।'

विमलाके इन भावोद्गारोंको सुनकर मन रीझ उठा। ऐसे उद्गार भावुकहृदया विमला ही कह सकती थी।

जाड़ेके दिनोंकी बात है। अब बहिन विमला गोरखपुरके पैडलेगंज मुहल्लेसे आकर गीतावाटिकाके दक्षिण ओर स्थित उस मकानमें आकर रहने लगी थी, जिसमें पहले पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी रहा करते थे। मकानके अन्दर पश्चिमकी ओर एक बहुत बड़ा कमरा था। इसी कमरेमें सूर्यास्तके बाद मिट्टीवाले स्टोव पर तवा चढ़ाकर विमला परौठे बना रही थी। पासमें उसके कई छोटे-छोटे बालक और एक बेटी थी। वहींपर मैं (राधेश्याम बंका) भी बैठा हुआ था। एक परौठा बन जानेके बाद उसके दो-तीन टुकड़े करके कभी किसीको, कभी किसीको बारी-बारीसे दे रही थी और मेरी बारी आनेपर मुझे भी एक टुकड़ा मिल जाया करता था। परौठे बड़े स्वादिष्ट थे। बातचीतमें मशगूल और परौठेके स्वादमें निमग्न सभीके चेहरोंपर प्रसन्नता छायी हुई थी।

इसी प्रसन्नताके वातावरणके मध्य पूज्य बाबाके निजी सेवक भगतजीने प्रवेश किया और कहा—विमला! तुमको बाबाने याद किया है।

इतना सुनना था कि विमला चट खड़ी हो गयी। तवेपर पड़ा हुआ परौठा भी नहीं पलटा। उसने अपनी ऊनी चादर ली और ओढ़कर भगतजीके साथ चल दी। जाते-जाते अपनी बेटी अंजलीसे कहा—लाली! परौठा देख लेना।

यह कहकर वह चल दी और कुछ क्षणोंमें ही भवनके द्वारसे निकलकर अदृश्य हो गयी और चली गयी पूज्य बाबाके पास। भगतजीका आना, भगतजी द्वारा बाबाके संदेशको कहा जाना और संदेशको सुनते ही न थी तवेकी चिन्ता, न था परौठेका खयाल और न थी हम बैठे हुए लोगोंकी याद। वह एकदम अतीत थी। इस दृश्यको देखकर मैं आश्चर्य कर रहा था और मुझे रह-रह करके द्वापर युगका एक प्रसंग याद आ रहा था। शरद् पूर्णिमाके दिन मध्यरात्रिके समय यमुना-तटपर खड़े प्रियतम श्रीकृष्णने ज्यों ही अपनी वंशी बजायी, उस ध्वनिको सुनकर व्रजकी गोपियाँ अपने-अपने घरोंसे दौड़ पड़ीं। न पुत्र-पतिका खयाल, न सास-ससुरकी लिहाज और न घर-गृहस्थीके विविध काजोंकी परवाह, वंशीकी ध्वनि सुनकर गोपियाँ अस्त-व्यस्त स्थितिमें उलटे-पलटे शृंगार करके वंशीकी ध्वनिसे आकृष्ट होकर यमुना-तटकी ओर दौड़ पड़ीं। विद्वज्जनोंका ऐसा कथन है कि ऐतिहासिक प्रसंगोंकी आवृत्ति नवीन रूपमें सदैव होती रहती है।

विद्वज्जनोंकी इस वाणीका प्रत्यक्ष प्रमाण आज देखनेको मिला। जैसे वंशीकी ध्वनि सुनते ही गोपियाँ दौड़ पड़ी थीं, उसी प्रकार बाबाका संदेश मिलते ही विमला चट चल पड़ी थी। पूज्य बाबाके प्रति विमलाका पूर्ण समर्पण था और इसी समर्पणका पूर्ण प्रमाण यह चटपट चल देना था। इस समर्पण, अभिगमनकी जितनी सराहना की जाय कम है।

२९ अक्टूबर सन् १९७८ का प्रसंग है। गत तेरह वर्षोंतक मैंने कुमारी-पूजन-व्रतका अखण्ड निर्वाह किया था। प्रत्येक शुक्रवारको पूर्वाह्नमें नौ वर्षसे कम आयुवाली बालिकाका भगवती श्रीमन्महात्रिपुर-सुन्दरीकी भावनासे पूजन करता था। इस अर्चनाका उद्देश्य सर्वथा निष्काम था। कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी, जिसे धनतेरस भी कहते हैं और जो दीपावलीके दो दिन पूर्व यह पावन दिवस आता है, इसी पावन दिवसपर भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीका आविर्भाव हुआ था। इसी पावन दिवसपर मैंने अपने तेरह वर्षीय पूजन-क्रमकी सम्पन्नता करनेका विचार किया, एतदर्थ पूर्ण तैयारी कर ली।

धनतेरसके दिन एक ब्राह्मण कन्याका भगवती-भावनासे विधिवत् पूजन हुआ। यह पूजन उस भवनमें हुआ, जिसे आजकल 'भाईजी-स्मृति-भवन' कहा जाता है। इस भवनके पूजा-घरमें भगवतीका पूजन-क्रम सम्पन्न हुआ था। सम्पन्नताके उपरान्त सबको प्रसाद देना था। योजना यह थी कि सबको एक-एक दोना प्रसाद दे दिया जायेगा; परन्तु जितने आगन्तुक श्रद्धालु निजजन थे, सभी लोग भवनके हालमें खानेके लिये पत्तल लेकर बैठ गये। मेरे तो होश ही उड़ गये, अब क्या होगा? मैंने इसके बारेमें विमलासे कहा। मेरी बात सुनते ही विमलाको दैवी-आवेश हो आया और कहने लगी—यह भला कैसे हो सकता है कि भगवतीका प्रसाद कम हो जाय? मैं ही अब प्रसाद-वितरण करनेवालोंको सामग्री दूँगी। वे परोसनेवाले आगन्तुक भक्तोंको पत्तलमें परोसना आरम्भ करें और मुझसे माँग-माँगके ले जायँ।

उसके बाद विमलाने पीतलके बहुत बड़े टोपियेपर अपनी चादर रख दी। टोपिया चादरसे ढका हुआ था। विमला अपने हाथसे टोपियेमेंसे पूड़ी निकाल-निकालकर दे रही थी। एक ओर पूड़ियोंको कड़ाहीमें तलती और दूसरी ओर परोसनेवालोंको अपेक्षित सामग्री देती चली जा रही थी। सभी आगन्तुक भोजन करके तृप्त हो गये। इसके बाद भी पर्याप्त प्रसाद बच रहा, यह विमलाकी भागवती-शक्तिका चमत्कार था।

एक बार प्रात:काल मैं (राधेश्याम बंका) अपने कमरेमें बैठा हुआ अपने दैनिक पूजन-क्रममें संलग्न था। उसी समय बहिन विमलाने मेरे कमरेमें प्रवेश किया। प्रात:काल अचानक आ जाना मुझको आश्चर्यान्वित कर रहा था। पूजाके आसनपर बैठा मैं विमलाकी ओर देखने लगा। बहिन विमला मेरे कमरेके दरवाजेका सहारा लेकर बैठी हुई थी और मुझसे कहने लगी—भइया! कोई व्यक्ति तुमपर 'कुप्रयोग' कर रहा है। मैं जानती हूँ कि तुम्हारा कुछ बिगड़ेगा नहीं फिर भी आत्म-सुरक्षाके लिये इस स्तोत्रका पाठ कर लो। यह स्तोत्र सारे कुप्रभावोंकी काट है।

मैंने बहिन विमलासे कहा—मैं स्तोत्रका पाठ अवश्य करूँगा।

फिर थोड़ी देरतक इधर-उधरकी कुछ बातें पूज्य बाबाके बारेमें होती रही और इसके बाद वह चली गयी। स्तोत्रके पाठके फलस्वरूप और इससे अधिक जिसके सिरपर परमसमर्था भागवती-शक्ति सम्पन्ना बहिन विमलाके आँचलकी छाया हो, उसका भला अमंगल कैसे हो सकता है? इसके अतिरिक्त सर्वोपरि छाया थी महासिद्ध संत पूज्य बाबूजी एवं बाबाकी, जिनका निजजन हितकारी करपल्लव शीश पर था। जिस व्यक्तिने जिस बदनीयतीसे जो कुप्रयोग किया था, वह असफल रहा और उसका मनोरथ सिद्ध न हो सका।

एक बारकी बात है। विमलाके घरके सामने एक छोटा-सा लान है जिसमें कुछ पेड़ एवं फूलोंके पौधे लगे हुए थे। विमलाके घरका द्वार पश्चिम दिशाकी ओर था। लॉनके अन्तमें छोटी घरेलू सड़क थी, यहींपर भवनका प्रवेश-द्वार था। प्रवेश-द्वारपर दक्षिण दिशाकी ओर आमका पेड़ था।

अपराह्न कालमें सूर्यास्त होनेके पूर्व ही विमला उस आमके पेड़के नीचे एक कुर्सीपर बैठ जाया करती थी। लगभग एक-डेढ़-दो घण्टे बैठी रहती थी। परिवारके लोग उसको छेड़ते नहीं थे। पारिवारिक सदस्योंको यह ज्ञात था कि कुर्सीपर बैठी-बैठी वह कुछ कर रही है। क्या कर रही है इसकी जानकारी नहीं थी।

इस प्रकार लगभग वह दो-ढाई महीनेतक प्रति संध्या आमके पेड़के नीचे कुर्सीपर बैठती रही। यह क्रम जब समाप्त हो गया तब मैंने ही उससे जिज्ञासा की कि प्रति संध्या आमके पेड़के नीचे बैठनेका क्या उद्देश्य था?

मेरी जिज्ञासाका समाधान करते हुए बहिन विमलाने बताया—एक तान्त्रिककी

मेरी एक पुत्र-वधू जो गौरवर्णा और सुन्दरी थी; उसपर उसकी कुदृष्टि थी। वह तान्त्रिक मेरी पुत्र-वधूपर सम्मोहन मंत्रका प्रयोग कर रहा था, जिससे वह पुत्र-वधूको आकृष्ट कर सके। इसकी जानकारी पराम्बा भगवतीपार्वतीके अनुग्रहसे मुझे हो गयी थी। मैं भवनके द्वारपर बैठती थी और इसके फलस्वरूप सम्मोहन-मन्त्रके प्रबल तान्त्रिक कू-लहरियाँ घरके भीतर प्रवेश नहीं कर पाती थी। जब करते-करते वह सफल नहीं हो पाया, तब उसको अपने प्रयाससे विरत हो जाना पड़ा। जब मुझे यह ज्ञात हो गया कि अब वह अपने कार्यमें असफल हो गया है, तब उसको विरत होना ही था।

विमला जानती थी कि वह तान्त्रिक कौन है? वह तान्त्रिक कई बार विमलासे मिला भी था। मिल करके अटपटे प्रश्न किया करता था। उसके प्रश्नोंको सुनकर बहिन विमलाने उससे कहा—भइया! मैं तो एक साधारण नारी हूँ, मुझे शास्त्रोंका अध्ययन नहीं है। आप मेरे साथ मेरे बंका भइयाके पास चलिये। वे उत्तर देनेमें चतुर हैं।

बहिन विमला उन तान्त्रिक महोदयको साथ लेकर मेरे पास आती थी और मैं पूज्य बाबूजी एवं पूज्य बाबाद्वारा लिखित साहित्यके आधारपर उनका उत्तर दिया करता था। मैं भी उनके प्रश्नोत्तरोंसे चिढ़ गया था कि व्यर्थकी बात करते हैं और जीवनमें यथार्थत: कुछ है नहीं। एक बार उन्होंने मुझसे प्रश्न किया—आजकल आप क्या करते हैं?

मुझे उनको उलझाना था और वैचारिक भँवर जालमें फँसाना था, अत: मैंने उत्तर दिया—मैं अपने भाग्यकी वक्र रेखाओंको पढ़नेका प्रयास करता रहता हूँ।

इस उत्तरने सचमुच उनको चक्करमें डाल दिया और वे पूछने लगे—मैं आपके कथनका क्या अर्थ लगाऊँ?

मैंने विनम्र शब्दोंमें कहा—मैंने वास्तविकताका निवेदन किया है। आप बुद्धिमान् है इसका अर्थ आप ही लगाइये।

अव एक विनोदकी बात लिख रहा हूँ, बंकाका अर्थ होता है 'टेढ़ा'। यदि 'बंका' शब्दको बाँका कोई कहने लगे तो कोई आश्चर्य नहीं। अँग्रेजीमें BANKA लिखे गये शब्दको कई अपरिचित लोग BANKA शब्दको "बाँका" कहकर उच्चारण किया करते थे, अब वर्ण्य-विषयकी ओर आइये। उन तान्त्रिक

महोदयने समझ लिया और मान लिया कि बंकाजीसे मेरी कोई बात बननेवाली नहीं है। भविष्यमें उन तान्त्रिक महोदयने बहिन विमलाके पास और मेरे पास आना बन्द कर दिया, फिर वे कहाँ चले गये पता नहीं।

इन दिनों भागलपुरसे दिव्यभावस्वरूपा श्रीरुक्मिणी बाई गोरखपुर कुछ दिवसोंके लिये आ गयी थी। फिर लम्बी अवधितक रहना हो गया। बाई अस्वस्थ थी, पर उनमें यह भी क्षमता थी कि रुग्णतासे ऊपर उठकर आवश्यक कर्त्तव्यके पालनमें पूर्णतः संलग्न हो जाना। इन दिनों पूज्य श्रीबाबाका भी स्वास्थ्य गड़बड़ ही रहता था। जब बाबा अधिक बीमार पड़ जाते थे, तब उनके स्वास्थ्य-लाभके लिये बाई देवाराधन करवाया करती थी। बाईका सबसे अधिक विश्वास बहिन विमलादेवी भारद्वाज पर था, जो सात्त्विकता और सेवा-परायणताकी साकार प्रतिमा है। उसे नख-शिख श्रद्धा और सेवा ही कहना चाहिये। पूज्य श्रीबाबाके प्रति उनकी श्रद्धा और सेवाका जो रूप रहा है, वह अत्यन्त ही सराहनीय है। इसी स्तरकी रही है विमलाजीकी सेवा बाईके प्रति भी। बहिन विमलाजीसे बाईका मन इतना अधिक मिला हुआ था कि जो काम बाई अन्य किसीसे नहीं करवाती थीं, वह बहिन विमलाजीसे सहज ही करवा लेती थीं। एक बार बाईने पूज्य श्रीबाबाके स्वास्थ्य-लाभार्थ विमलाजीसे इक्कीस दिनका एक अनुष्ठान करवाया। यह अनुष्ठान विमलाजीने स्वयं किया। वे बाईके द्वारा बतलाये गये कठोर नियमोंका अक्षरशः पालन करती हुई श्रद्धा-भक्तिसहित अनुष्ठान कर रही थीं। बीचमें अशुचिताके कारण तीन दिन अनुष्ठानमें बाधा आ गयी, अतः उन्हें किसी अन्य बहिनका सहारा लेना पड़ा और इस प्रकार अनुष्ठानका क्रम अखण्ड रूपसे चलता रहा। क्रमशः अनुष्ठानके बीस दिन बीत गये। केवल एक दिन शेष था। बहिन विमला बाईके पास गयी और कहा—बाई! कल अनुष्ठान पूर्ण हो जायेगा। पूर्णताके अवसरपर मुझे क्या करना चाहिये?

बाईने कहा—पूर्ण होनेपर पञ्चोपचारसे देवाराधन करके तीन ब्राह्मणोंको भोजन करवा देना, फिर वस्त्रसहित दक्षिणा देकर प्रणाम कर लेना और मन-ही-मन पूज्य श्रीबाबाके स्वास्थ्यकी याचना करना।

आवश्यक निर्देश प्राप्त करके बहिन विमला अपने घर आ गयीं और अनुष्ठानकी पूर्णतासे सम्बन्धित कार्यमें संलग्न हो गयीं। इधर रात्रिके समय बाईके जीवनाराध्य बालकृष्णने आकर बाईको बतलाया—बाई! विमलाजीवाला

अनुष्ठान अभी अपूर्ण है। उसने तीन दिन अनुष्ठान नहीं किया है। उसे तीन दिन और करना चाहिये तभी अनुष्ठान पूर्ण होगा।

प्रातःकाल बाईने तुरन्त विमलाजीको बुलवा लिया और कहा—मुझे रात्रिके समय यह बतलाया गया है कि अनुष्ठानमें अपूर्णता है। तीन दिन और करनेसे अनुष्ठान पूर्ण होगा।

विमलाजीके आश्चर्यकी सीमा नहीं थी कि क्या अनुष्ठानकी सांगोपांगता पर इतना अधिक ध्यान अन्तर्जगतद्वारा दिया जा रहा है। विमलाजीने तीन दिनतक जिस बहिनसे सहारा लिया था, वह बात बतला दी और तुरन्त बाईके सामने निश्चय किया—बाई! मैं तीन दिन और अनुष्ठान करूँगी, तभी इस अनुष्ठानकी विधिवत् पूर्णता समझी जायेगी।

तीन दिन बाद अनुष्ठानकी विधिपूर्वक सम्पन्नता हुई और उसका परिणाम भी सामने दिखलायी दिया कि पूज्य श्रीबाबाके स्वास्थ्यमें पर्याप्त सुधार आया है। बाबाके स्वास्थ्यमें सुधारका समाचार सुनकर बाईकी आँखोंमें जो उल्लास छा जाता था, उसका वर्णन तो वही कर सकता है जिसने देखा हो। बाई अपने पास आनेवाली माताओं और बहिनोंसे पूज्य श्रीभाईजी और पूज्य श्रीबाबाके दिव्यस्वरूपकी चर्चा किया करती थीं, जिससे वाटिकाकी इन युगल महाविभूतियोंके प्रति वे श्रद्धान्वित हो सकें। इतना ही नहीं, पासमें आनेवाली बहिनों-भाइयोंको भजनपरायण जीवन व्यतीत करनेके लिये प्रेरणा देती।

मेरठके परम सम्मान्य भाई श्रीधर्मेन्द्रमोहन सिन्हाकी पूज्य बाबाके प्रति अगाध श्रद्धा थी। श्रीसिन्हा साहब प्रायः अपनी धर्मपत्नीसहिता गीतावाटिकामें आया करते थे। जब पूज्य बाबा श्रीगिरिराजभगवान्की परिक्रमा किया करते, तब उनकी धर्मपत्नी एक किनारे ध्यान लगा करके बैठ जाया करती थी। उस समय मच्छर अथवा मक्खी उनको तंग परेशान न करें, अतः विमला पंखा डुलाती रहती थी। श्रीसिन्हा साहबकी धर्मपत्नीको हमलोग माताजी कह करके पुकारा करते थे।

शरीरको व्याधिका घर कहा गया है और माताजीको आगे चलकर कैंसर रोग भी हो गया। यह बड़ा भयानक रोग है। चिकित्साके लिये माताजीको तीन बार अस्पतालमें भर्ती करवाना पड़ा। तीसरी बार भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन करते हुए उन्होंने अपने पाञ्चभौतिक चोलेका सदाके लिये परित्याग कर दिया।

माताजीने मेरठमें सदाके लिये अपनी 'आँखें बन्द' की और गोरखपुरमें आँख बन्द किये हुए पूज्य बाबाको मेरठका विचित्र दृश्य दिखलायी दिया। देखे हुए दृश्यका वर्णन बाबाने सामने बैठे हुए कुछ लोगोंको बतलाया। उनके मध्य विमला बहिन भी थी। वह मेरे पास आयी और कहने लगी—मुझे ठीकसे लिखना नहीं आता। मैं जैसे बतलाती जाती हूँ, उसी प्रकारसे तुम पत्र मेरठ श्रीसिन्हा साहबको लिख दो। बहिन विमलाको जब-जब आवश्यकता होती थी, तब-तब वह पत्र अपने मुझको बुलवा करके लिखवाया करती थी। बहिन विमलाने जो बतलाया, उसके अनुसार पत्र भेजा गया, वह पत्र इस प्रकार है।

गीतावाटिका, गोरखपुर

सं० २०४६ वि०, ज्येष्ठ कृ० ९, सोमवार, २९-५-८९

परमादरणीय श्रीसिन्हा साहब,

सादर प्रणाम।

जबसे माताजीके निधनका समाचार आया है, सभी स्नेहीजन बड़े खिन्न और बहुत उदास हैं। परिक्रमामें ध्यानस्थ बैठी हुई माताजीकी छवि बार-बार मेरे मनमें उभर रही है। उनकी वात्सल्यभरी निगाहें रह-रह करके भावनाओंको झकझोर रही हैं।

यह पत्र मैं वस्तुतः बहिन विमलाके कहनेसे लिख रहा हूँ। बहिन विमला न जाने कितनी बातें, एकके बाद एक, इस प्रकार अनेकानेक बातें सुनाती रही। माताजीका सरल स्वभाव और उनकी सौम्य दृष्टि भुलाये नहीं भूलती। आज दोपहरके समय जब पूज्य बाबा भिक्षा कर रहे थे तो बहिन विमला वही थी। पूज्य बाबाने जो उद्‌गार व्यक्त किये, उनको बहिन विमलाने सुना और फिर वह मुझसे कहने लगी—बंका भइया! मुझे लिखना नहीं आता। तुम वह सब लिख दो, जो मैं बतला रही हूँ।

बहिन विमलाने जो बतलाया, उसीको मैं यहाँ लिखनेका प्रयत्न कर रहा हूँ। शायद बहिन रजतने टेलीफोनपर माताजीके निधनका समाचार दिया था। उस समय लगभग आठ बज रहे होंगे। पूज्य बाबा भिक्षा करते समय कह रहे थे कि उस शोक समाचारको सुनते ही मेरी आँखें बन्द हो गयीं और मैं मेरठ पहुँच गया। वहाँ मुझे धर्मेन्द्र मोहन सिन्हा मिले। धर्मेन्द्र मोहनने मेरा हाथ पकड़ा और मुझे घरके भीतर ले गया। वहाँका शोकपूर्ण करुण वातावरण देखकर मैं एकदम सहम गया। मैं एकदम ठिठक गया। बाबाने कहा कि मुझे जीने-मरनेसे कोई मतलब नहीं है, कोई लगाव नहीं है, यह तो संसारमें होता ही है, पर वहाँका करुण वातावरण देखा नहीं गया। वे दोनों बच्चीयाँ बड़ी विलख रही थीं। बाबाने उन दोनों बच्चियोंसे कहा कि तुम रोओ मत। मैं जबतक जीवित हूँ, तबतक सँभालूँगा।

बाबाने कहा कि धर्मेन्द्र मोहन सिन्हाके धैर्यकी जितनी सराहना करूँ, वह कम है। धर्मेन्द्रकी आँखोंमें उदासी थी, पर मनमें बड़ा धीरज था। धर्मेन्द्र मोहनने बड़े धैर्यके साथ कहा कि प्रभु-कृपासे जो होना था, वह हो गया। ऐसा वाक्य धर्मेन्द्र जैसा धीर-वीर ही बोल सकता हैं। उसमें ऐसी योग्यता है कि वह अपने साथ कई लोगोंको आगे ले चल सके। अपने जीवनकी चिरसंगिनीके चले जानेसे उसके मनमें व्यथा कम नहीं थी, पर उसमें धैर्य भी कम नहीं था। जीवन हो तो धर्मेन्द्र मोहन जैसा हो। उसकी धर्मसंगिनी देवी थी। ऐसी देवी महिला मेरी नजरमें नहीं आयी। उसकी विदाईका समाचार मिलते ही बड़ा धक्का लगा।

बाबाने बतलाया कि मैं मेरठमें ग्यारह बजेतक रहा। उसके बाद मैं वहाँ पहुँच गया, जो मेरा नित्य स्थान है, नित्य धाम है। जबतक मैं मेरठमें रहा, कई बातें मेरे अनुभवमें आयीं और कई सुन्दर दृश्य मैंने देखे, पर वे सब कहनेकी चीज नहीं है।

बहिन विमलाने बतलाया कि दोपहरके समय भिक्षाके अवसरपर बाबाके नेत्र लगातार झर-झर झरते ही रहे। आज उन्होने भिक्षा भी ठीक प्रकारसे नहीं की।

बहिन विमलाने जो बतलाया है, उसीको मैंने शीघ्रतामें थोड़ा-बहुत लिखनेका प्रयास किया है। कोई भूल हो तो मुझे अबोध मानकर क्षमा कीजियेगा। बहिन विमला यह सब बातें बड़े ही विकल स्वरमें भरे-भरे मनसे बतला रही थीं।

आपका भाई—

राधेश्याम बंका

ऐसी एक और घटनाकी २२ जून, सन् १९९१ की है। प्रातःकालका समय है। सूर्य काफी चढ़ आया था। सेवापरायणा बहिनें पूज्य बाबाकी भिक्षाके निमित्त आहारकी व्यवस्था कर रही थीं। पूज्य बाबाको खिलानेके लिये डॉ० एल० डी०

सिंह भी आ गये। जब यह सारा कार्य हो गया और जब डॉक्टर साहब खिलानेके लिये प्रस्तुत हुए तो पूज्य बाबाने आहार लेना सर्वथा अस्वीकार कर दिया। अस्वीकार कर दिये जानेका कोई कारण समझमें नहीं आ रहा था। आहार न सही, पूज्य बाबा रस ले लें तो भी ठीक है, पर पूज्य बाबाने रसको भी अस्वीकार कर दिया। यहाँ तक कि गंगाजल भी स्वीकार नहीं किया। इससे भक्त-समुदायमें बड़ी चिन्ता व्याप्त हो गयी। कई व्यक्तियोंने कई प्रकारसे प्रयास किया, पर सारे प्रयास असफल हो गये।

वहींपर प्रिय जयराम भी था। उसने डॉ एल० डी० सिंहसे पूछा—डाक्टर साहब! क्या बाबाको ज्वर है?

डॉक्टर साहबने कहा—ज्वर एकदम नहीं है और नाड़ीकी गति भी ठीक है।

यह उत्तर सुनकर प्रिय जयरामने अनुरोधात्मक स्वरमें निवेदन किया—तब हमलोगोंको कोई छेड़-छाड़ नहीं करनी चाहिये। बाबा अपने किसी 'विशेष कार्य' में लगे हैं। हमारी छेड़-छाड़ उनके उस 'काम' में बाधा ही पहुँचायेगी।

कुछ लोग प्रिय जयरामके कथनके प्रति उपराम रहे और कुछ लोगोंने उस कथनकी उपेक्षा की। भले सभी उपराम रहें या उपेक्षा करें, पर पूज्य बाबाने तो एक बूँद जल भी नहीं लिया। किसीका साहस नहीं हो पाया कि दुराग्रह करें। पूज्य बाबाके कड़े रुखको देखकर कोई कुछ भी खिलाने या पिलानेका साहस नहीं कर पाया। पूज्य बाबाके कड़े रुखका क्या कारण है, यह कोई समझ नहीं पाया और सब मन मार करके चुप बैठ गये।

चुपचाप बैठ जानेवाले इस भक्त-समुदायको कारणका परिज्ञान हो पाया लगभग एक सप्ताह बाद। उस कारणका विवरण इस प्रकार है।

बहिन विमलादेवी भारद्वाज पूज्य बाबाकी भिक्षा बनाया करती हैं। इनका सुपुत्र कमलनयन अपनी बहिन अञ्जलीदेवी और जीजाजी श्रीहेमन्तकुमारके साथ बुलन्दशहर जा रहा था। बुलन्दशहर जानेके लिये अलीगढ़में ट्रेनकी बदली करनी थी। उन दिन वैशाली ट्रेन विलम्बसे चल रही थी। उसी ट्रेनमें कमलनयन था। अलीगढ़ स्टेशन अब आनेवाला था। शायद एक-दो मील दूर रहा होगा कि युवक कमलनयन चपलतावशात् ट्रेनका दरवाजा खोलकर द्वारपर खड़ा हो गया। ट्रेन अपनी रफ्तारसे चल रही थी। उसी समय कमलनयनको चक्कर आया और वह चलती ट्रेनसे नीचे गिर पड़ा। उसके गिरते ही ट्रेनके डिब्बेमें

हाहाकार मच गया। श्रीहेमन्त बाबूने चट जंजीर खींची। जंजीर खींचनेके बाद भी ट्रेन कुछ दूर जाकर ठहरी। श्रीहेमन्तबाबू ट्रेनसे उतरकर और दौड़कर प्रिय कमलनयनके पास गये। इसमें कुछ समय तो लगा ही और इनके लौटनेकी प्रतीक्षा किये बिना ही ट्रेन चल दी। घबड़ाये हुए श्रीहेमन्तबाबूको बार-बार यही लग रहा था कि मुझे कमलनयनकी लाश ही मिलेगी और यदि सौभाग्यसे वह जीवित होगा तो उसकी हड्डी पसली चूर-चूर हो गयी होगी। श्रीहेमन्त बाबूने जब कमलनयनको देखा तो पता लगा कि साँस भली प्रकार चल रही है। इतना ही नहीं, सारे अंग-प्रत्यंग ठीक-ठीक हैं। हाँ, जगह-जगह चोट और खरोंच अवश्य लग गयी हैं और वह खूनसे लथपथ होकर पड़ा है। कमलनयनके जीवनकी सुरक्षा हो गयी, इसके लिये वे प्रभुको बार-बार प्रणाम कर रहे थे और साधुवाद दे रहे थे। श्रीहेमन्तबाबूने सहारा देकर कमलनयनको उठाया और रिक्शेपर बैठाकर अलीगढ़ स्टेशनपर ले आये। उपचारसे फिर वह कुछ दिनोंमें ठीक भी हो गया।

उधर जिस समय प्रिय कमलनयन ट्रेनसे गिरा था, इधर उसी समय पूज्य बाबाने खाने-पीनेके लिये सर्वथा अस्वीकार कर दिया था। उस समय बाबाने एक बूँद जल भी नहीं लिया था। खान-पानकी अस्वीकृतिके गुप्त हेतुका परिज्ञान एक सप्ताह बाद हुआ, जब प्रिय कमलनयनवाली दुर्घटनाकी जानकारी हुई। जानकारी मिलते ही सभी प्रिय जयरामकी सराहना करने लगे कि उसने उस समय जो कहा था, वह सही ही कहा था।

एक बार श्रीराधाकृष्ण-साधना-मन्दिरमें मार्गशीर्ष शुक्ल पञ्चमीके पावन दिवस श्रीसीताराम-विवाहोत्सव मनाया जा रहा था। प्रश्न था कि भगवती श्रीसीताजीकी पूज्या माता श्रीसुनयनाजी तथा पिता श्रीजनकजीके स्थानपर उनका प्रतिनिधित्व करते हुए किसे बैठाया जाय। वहीं पर बहिन विमला तथा श्रीअमीचन्दजी शर्मा उपस्थित थे। पुजारीजीने कहा इन दोनोंसे कहा—आप युगल इस आसन पर बैठ करके पूजन-विधि सम्पन्न करें तथा पुत्री सीताका कन्या दान करें।

यह भी एक उल्लेखनीय बात है कि विमलाका भगवती श्रीसीताके प्रति 'पुत्री भाव' था। पूजाके समय संकल्प होता है। उस संकल्पमें कुछ रखना पड़ता है। उस समय पासमें कुछ था नहीं। विमलाने कहा—संकल्पमें मैं नथ दे रही हूँ।

पूजा पूर्ण हो गयी। अगले दिन विमलाने अपनी नथ मन्दिरमें प्रतिष्ठित श्रीसीताके श्रीविग्रहको धारण करवा दी। अगले श्रीअमीचन्दजी बाबाके पास गये। बाबा कहने लगे—'कन्या-दानकी थाली' तो मैंने किसी और के लिये भेजी थी। तुम लोग भाग्यशाली हो कि वह तुम लोगोंको मिल गयी।

पूज्य बाबाने अपनी इह-लीलाका संवरण १३ अक्टूबर १९९२ को किया था। इससे बहुत पहलेकी बात है। पूज्य बाबाने दोपहरके समय एक बहिनको श्रीमद्‌भागवत महापुराणका दशम स्कन्ध, षोडश-गीत तथा अन्वय-अर्थवाली रासपञ्चाध्यायी, ये तीन पुस्तकें अपने हाथसे प्रदान की। फिर बाबाने कहा—कहो, अब तुम्हें और क्या दूँ?

बहिनने पुलकित स्वरमें कहा—बाबा! एक वस्तु माँगती हूँ। बस, आप ठीक हो जाइये।

इतना कहकर वह बहिन रोने लग गयी। बाबाने उस बहिनसे कहा—अब मेरे 'जाने' का समय आ गया है। जिस कार्यके लिये भेजा गया था, वह कार्य हो चुका है। जितने समयतक शरीरको रहना है, रहेगा।

यह सब कहते समय पूज्य बाबा पूरे भावावेशमें बोल रहे थे। ऐसा लग रहा था मानो उनके अधरोंसे भगवदीय वाणीका निर्झरण हो रहा हो। फिर पूज्य बाबाने उस बहिनको भाँति-भाँतिसे आशीर्वाद देते हुए कहा—मैंने तुमको भगवान्‌के हाथोंमें सौंप दिया है। तुम अब सब ओरसे सर्वथा सुरक्षित हो। कोई तुम्हारा अहित न सोच सकता है और न कर सकता है। तुमको प्रिया-प्रियतम मिलेंगे।

अपने आँचलमें उन परम पावन तीन पुस्तकोंको सँभालती हुई उस भाव-विभोर बहिनने माथा टेककर पूज्य बाबाको प्रणाम किया और कुटियापरसे चली आयी।

बहिन विमलाका जीवन विविध अनुभूतियोंका सागर है। उसका वर्णन असम्भव है। होलीके अवसर पर श्रीराधा-कृष्ण-मन्दिरमें श्रीप्रिया-प्रियतमपर खूब गुलाल उड़ाती थी, पिचकारी मारती थी। हरियाली तीजपर आदरणीया सावित्री बाई फोगला ठाकुरके कमरेमें उससे नृत्य करवाती थी। ब्रजवासिनी होनेके कारण उसे नृत्य आता था। तब सभी बहनें झूम उठा करती थीं और कहाँतक वर्णन किया जाय?

१३ अक्टूबर १९९२ को पूज्य बाबाने अपनी इहलीलाका संवरण किया था। इसके एक साल बादका प्रसंग है। मैं अपने कमरेमें अपनी खाट पर बैठा हुआ था उसी समय बहिन विमलाने मेरे कमरेमें प्रवेश किया और कहने लगी—भइया! पूज्य बाबाकी कृपासे आज एक अनोखा चमत्कार हो गया।

मेरे मनमें जिज्ञासा उमड़ने लगी की वह चमत्कार कौन-सौ है और उसका क्या विवरण है?

विमला कहने लगी—मेरी बेटीका नाम है अंजलि, किन्तु उसका दुलरुआ नाम चुक्कल है' मैं उसके पास गयी थी, वह तीन-चार दिनसे ज्वर ग्रस्त थी। उसको देखना आवश्यक था। उसके पास जाने पर अनोखी बात सुननेको मिली। विमलाने जो बताया उसको मैं अब अपनी भाषामें लिख रहा हूँ। चुक्कलने विमलासे कहा—अम्मा! मैं सबेरे अपने केशोंमें कंघी कर रहीं थी, तभी उन्होंने 'अर्थात् उसके पतिदेव श्रीहेमन्त बाबूने' प्रश्न किया कि आज सिरेके बालोंके बीच बालूके कण कैसे दिखलाई दे रहे हैं?

उसके ऐसे कहने पर चुक्कलने अपने सिरके केशोंके बीच अँगुली फिराने लगी। सचमुच उसे लगा कि सिरमें बालुके कण भरे पड़े हैं। फिर उसने अपने पतिदेवसे कहा—न जाने सिरमें ये बालूके कण कैसे आ गये। मैं तो तीन-चार दिनसे ज्वरसे परेशान हूँ, कहीं गयी भी नहीं।

श्रीहेमन्त बाबूने सोचा कि कुछ हो गया होगा। कौन बातको बढ़ाये? फिर चुक्कल सोचने लगी कि ये क्या हुआ? बहुत सोचते-सोचते उसको अपने स्वप्नकी बात याद आयी। १४ जनवरी १९१३ के दिन गीतावाटिकामें मकर संक्रान्तिका उत्सव मनाया गया। चुक्कलको स्वप्नकी बात याद आयी कि मैं, जहाँ शिवरात्रिके दिन और प्रति सोमवारके दिन संध्याके समय भगवान् शंकरकी पूजा होती है, वहीं पर बाबाकी कुटियाके सहारे पीठ टेके हुए खड़ी हूँ। उसी समय पूज्य बाबा दक्षिण दिशासे परिक्रमा-पथपर चलते हुए अपनी कुटियाकी ओर चले जा रहे हैं। बीचमें पुनः स्मरण दिला देना आवश्यक है कि एक वर्ष पहले पूज्य बाबा महाप्रयाण कर चुके थे। परिक्रमा-पथके ओरसे चलकर आते हुए ज्यों ही बाबा चुक्कलके पास आये, वहीं कुछ क्षण ठहर करके चुक्कलसे प्रश्न किया—क्यों बिटिया! क्या तुमको किसीने मकर संक्रातिका प्रसाद दे दिया?

चुक्कलने कहा—बाबा! मैं तो तीन दिनसे ज्वर-ग्रस्त थी। प्रसाद कहाँसे लेती?

बाबाने कहा—लो बिटिया! मैं तुमको प्रसाद देता हूँ।

ऐसा कहकर बाबा परिक्रमा-पथकी ओर झुके, परिक्रमा पथकी पावन-रज अपनी मुट्ठीमें ली और फिर मुट्ठीकी रज चुक्कलके सिरपर फेंक दी।

यह सब चुक्कलने स्वप्नमें देखा था और जो स्वप्नमें देखा था, वह आज भौतिक जगतमें एक यथार्थ सत्य था। स्वप्नकी यथार्थ सत्यताका भान होते ही चुक्कल अत्यधिक भाव विह्वल हो उठी। इस घटनाकी स्मृति होनेके थोड़ी देर बाद ही विमला अपनी बेटी चुक्कलसे मिलने गयी थी। अम्माके आते ही चुक्कलने उसको सारा वृत्त बतलाया और कहा—किसीको बात मत बतलाना।

बहिन विमलाने कहा—कम-से-कम बंका भैयाको तो जरूर बतलाऊँगी।

विमला कुछ देरतक अपनी बेटीके पास रही और फिर मेरे पास आयी। प्रसंगके आरम्भमें ही उल्लेख कर चुका हूँ कि विमलाने कहा कि आज एक चमत्कार हो गया है। मेरे पूछने पर उसने सारा वृत्त बतलाया। मुझे उसके बात पर विश्वास था। वह कभी असत्य भाषण नहीं करती। इस तथ्यकी जानकारी होते हुए भी कुछ गहराईमें जानेके लिए और कुछ खरोचनेके लिये मैंने उससे कहा—अरी विमला! क्या ऐसा कभी सम्भव हो सकता है? जो भी सुनेगा, वह इस बातको काल्पनिक कहेगा।

मेरी बात सुनकर विमलाको कुछ आवेश हो आया और उसने मुझसे कहा—भइया! ठहरो। मैं अभी आती हूँ।

इतना कहकर विमला अपनी बेटीके पास गयी। विमलाने अपने हाथमें एक बड़ा-सा कागजका टुकड़ा लिया और अपनी बेटीसे कहा—अपने सिरकी रज इस कागज पर झाड़ दे।

चुक्कलने अपने सिरके केशोंमें अँगुली फेरी और रजके ढेर सारे कण उस कागज पर झर आये। विमलाने उसकी पुड़ियाँ बना ली। पुड़िया लेकर विमला मेरे पास आयी। मेरे सामने बैठकर उसने कागजकी पुड़िया खोली और कहा—देख, ये वे रजकण हैं, जो चुक्कलके सिरमें थे। उसके केशोंसे झरवा कर लायी हूँ।

मैने छूकर देखा! सचमुच वे बालूके कण थे। मैं भी आश्चर्यमें डूबा हुआ था। अब मन-ही-मन चुक्कल दीदीकी सराहना कर रहा था, जिसको ऐसी दिव्य अनुभूति हुई।

एक और पावन संस्मरण देना आवश्यक है—

दिव्य भावस्वरूपा बहिन रुक्मिणी बाईको वृन्दावन धाममें २ मई १९९५ को 'नित्य वृन्दावन' की प्राप्ति हो गयी। बहिन विमला अत्यधिक शोक-व्यथित हो उठीं। उसने मुझसे संवेदना-पत्र लिखवाया। वह इस प्रकार है।

सर्वप्रथम पूज्या बाईके दर्शन मैंने गोरखपुरमें पूज्य बाबूजीके पावन कक्षमें किए। उस समय वे प्रणाम कर रही थी। प्रणाम करके उठी तो उनकी कोहनी मेरी नाकसे छू गयी। उनके उस स्पर्शसे मुझे एक विलक्षण अनुभूति हुई, जो मैं व्यक्त नहीं कर सकती। इस घटनासे मुझे अत्यधिक आश्चर्य हुआ और मैं दिन प्रतिदिन उनके नजदीक जाने लगी और उन्होंने मुझे अपनी बहिन ही मान लिया। उसके नियम बहुत कड़े थे, जिसका पालन इस धरातलका कोई कर ही नहीं सकता। क्या तो बाबा ही कर सकते थे या उन्होंने ही किया। उनकी सफाई और उनकी रहनी-सहनी देखकर ऐसा लगता था कि ये कहाँसे उतर कर आई हैं। मैं रात-रात भर उनके पास बैठती थी। मैंने इन्हीं आँखोंसे देखा है कि उनमें अलग-अलग सखियोंके आवेश होते थे। उस समय उनके हाव-भाव, बोली, सब बदल जाती थी। मुझसे उनका कोई छिपाव नहीं था। जो सेवा वे किसीसे नहीं लेती थीं, वह मुझसे ले लेती थी। मैं भी अपनी गृहस्थ सम्बन्धी उलझनोंका समाधान उनसे कर लिया करती थी। वे सर्वज्ञ थीं, भविष्यमें होनेवाली घटनाओंके सम्बन्धमें वे आगाह कर देती थीं, जैसे एक बार मेरी सासका आपरेशन होनेवाला था। उनकी आयु ८० वर्षकी थी। मैं घबरा रही थी कि कराऊँ या नहीं। बाईने कहा—यह सेवाका मौका है, वह मरेगी नहीं, तू आपरेशन करवा दे।

आपरेशन करवा दिया गया और वे अभी तक जीवित हैं। इस प्रकारकी अनेकानेक घटनाएँ मेरे जीवनमें समय-समय पर होती रही है। उनके चले जाने पर अब ऐसा लगता है कि कुछ रहा ही नहीं। बाबाके जानेके बाद वे वृन्दावनमें थी, परन्तु मुझे वे वहींसे सँभालती थी। अभी सन् १९९४ की ही घटना है। सर्दीके दिन थे। मैं बीमार थी। मुझसे कुछ भी काम नहीं होता था। मैंने 'इनसे' कहा कि आप नहानघर धो दिया कीजिए, मुझसे धुलता नहीं है।

दो दिन धुलवाया। तीसरे दिन स्वप्नमें आईं और बोलीं—"विमला! भैयासे नहानघर धुलवाकर नये कर्मका निर्माण कर रही हो? ऐसी नहीं मर

रही हो। जो नहानघर नहीं धो पाओगी। धीरे-धीरे बैठकर धो लिया करो। भैयासे मत धुलवाना।''

वे इनको भाई मानती थीं। ऐसी विभूतिके चरणोंमें मैं बार-बार प्रणाम करती हूँ।

बहिन विमला
गोरखपुर

विमला शूगरकी रोगी थी। उसे शूगर बहुत बढ़ गया। इसके फलस्वरूप उसके हाथकी अँगुलियोंमें मवाद भर गया। चिकित्साकी दृष्टिसे अँगुलियोंकी शल्य चिकित्सा आवश्यक थी। गोरखपुरके विख्यात सर्जन थे डाक्टर श्री एच० एन० सिंह। विमलाको चिकित्साके लिये उनके नर्सिंग होमें ले जाया गया। डाक्टर साहबने सब देखकर कहा—मवाद निकालनेके लिये ऑपरेशन करना पड़ेगा और ऑपरेशनके पहले सूई लगा करके बेहोश करना जरूरी है, जिससे रोगीको ऑपरेशनके समय किसी कष्टकी अनुभूति नहीं हो।

विमलाने कहा—मैं सुई तो नहीं लगवाऊँगी।

डाक्टर साहबने पूछा—फिर ऑपरेशन कैसे हो पायेगा।

विमलाने कहा—आप मुझे ऑपरेशन थियेटरमें ले चलियेगा। मुझे कुछ देरका समय दें। भगवच्चिन्तन करते-करते मैं ध्यानस्थ हो जाऊँगी और उसी समय मैं अपनी अँगुली आगे बढ़ा दूँगी। फिर आप ऑपरेशन कर दीजियेगा।

फिर ऐसा ही हुआ, जैसा विमलाने कहा था। डाक्टर साहबने ऑपरेशन कर दिया। फिर पट्टी बाँध दी। यह डाक्टर साहबके जीवनमें ऐसा प्रथम लोकोत्तर उदाहरण था। इसी दिनसे डाक्टर श्रीएच० एन० सिंह इन विमलाके भक्त एवं प्रशंसक बन गये।

विमलामें भागवती-शक्तिका अंश था। उसके जीवनमें ऐसा घटित होना ही चाहिये था। फिर पारिवारिक परम्पराके अनुसार उसके पार्थिव शरीरका अन्तिम संस्कार किया गया। वह गयी, इससे सारे परिवारकी बड़ी क्षति हुई, कम-से-कम मेरे ऊपरकी 'छाया' हट गयी। उस भागवती-शक्ति-सम्पन्ना विमलाके समर्थ श्रीचरणोंमें बार-बार प्रणाम।

पूज्य बाबूजीकी बहिन पूर्णाबाईके पतिदेव थे परम सम्मान्य श्रीकिशनलालजी गोयनका। आप बिहारमें, मेरी क्षीण स्मृतिके अनुसार, डालमिया नगरमें मिलमें

काम किया करते थे। यह पहले ही मेरे द्वारा बतलाया जा चुका है कि श्रीराधाष्टमीके अवसरपर जब-जब आप गीतावाटिका आया करते थे, उनकी सारी सँभालका दायित्व पूज्य बाबूजी मुझको सौंप दिया करते थे और इस दायित्वका निर्वाह प्रभु मुझसे भली प्रकारसे करवा लिया करते थे।

वहाँसे रिटायर होनेके बाद स्थायी रूपसे रहनेके लिये आप सपरिवार गोरखपुर चले आये। भगवानने पूर्णाबाईकी गोदमें खेलनेके लिये कोई सन्तान नहीं दी थी। आप दोनोंके गोरखपुर आ जानेपर पूज्य बाबूजीने उनके आवासकी व्यवस्था गीतावाटिकाके दक्षिण भागमें बहिन विमलाके ठीक पड़ोसमें की। पूज्या माँ (श्रीपोद्दारजीकी सहधर्मिणी)-ने उन दोनोंकी सँभालका सारा भार बहिन विमलाके ऊपर छोड़ रखा था। इस जिममेदारीको विमलाने हर प्रकारसे निभाया। कभी-कभी माँ भी अपनी ननदरानी पूर्णाबाईको देखने चली जाया करती थीं। पूज्या माँने विमलाको सँभालनेके लिये कहा था और विमलाने माँके कथनको आज्ञावत् स्वीकार किया। क्या ही संयोगकी बात है कि वृद्धावस्थामें पूर्णाबाईके दोनों कानोंने जवाब दे दिया। एक प्रकारसे वह बहरी ही थी। इस परिस्थितिने बहिन विमलाकी जिम्मेदारीको और गुरुतर बना दिया था। उनके भोजन आदिकी व्यवस्था भी विमला ही करती थी।

एक बार श्रीगोयनकाजीके घरमें भोजन बनानेके लिये न कोयले थे और न गैस सिलेण्डर था। गैस सिलेण्डरका तत्काल मिलना सम्भव नहीं है, अतः बहिन विमलाने अपने जीवनसर्वस्व श्रीअमीचन्दजी शर्मासे कहा—आप अपने कामके लिये रेलवे स्टेशन जा रहे हैं। बीचमें धर्मशाला चौराहा पड़ता है। वहाँ कोयले बिकते हैं। आप कोयलेकी बोरी भिजवा दीजियेगा।

श्रीअमीचन्दजीने कहा—मैं वैसे ही देरसे जा रहा हूँ। इतना समय नहीं है कि मैं कोयलेकी बोरी भिजवानेकी व्यवस्था करवा सकूँ। तुम और कोई व्यवस्था कर लो।

इतना कहकर श्रीअमीचन्दजी अपनी साइकिलसे अपने कार्यके लिये चले गये। उनसे समुचित उत्तर न पाकर थोड़ी देर बाद बहिन विमलाने समीप ही रहनेवाले श्रीगुलाबचन्द्रजी बोथरासे कोयला मँगवा देनेके लिये कहा। उन्होंने स्वीकार तो कर लिया, किन्तु अपनी व्यस्तताके कारण कोयला भिजवा नहीं पाये। श्रीबोथराजीके स्वीकार कर लेनेपर बहिन विमलाके मनमें निश्चिन्तताकी

भावना थी, किन्तु थोड़ी देर बाद पता चला कि कोयला पहुँच नहीं पाया है। अब बहिन विमलाके मनमें अत्यधिक झेंप हो रही थी कि मैं अपनी जिम्मेदारीको निभा नहीं पायी। फिर वह कोयलेकी बोरीकी प्राप्तिके लिये प्रयास करने लगी। उसी समय उनको ज्ञात हुआ कि कोयलेकी बोरी आ गयी है। अब बहिन विमलाके मनमें प्रश्न था कि कोयलेकी बोरीके लिये इधर श्रीअमीचन्दजी और उधर श्रीबोथराजी कोई व्यवस्था नहीं कर पाये थे, फिर कोयलेकी बोरी कैसे आ गयी? पूछताछ करनेपर उसे पता चला कि कोयलेवाला एक ठेलेपर कोयलेकी बोरी लेकर आया। ज्यों ही वह मुख्य सड़क पर था, उसे एक बहिनजी मिली थीं। उसने पूछा—आपका क्या नाम है?

उन बहिनजीने कहा—मेरा नाम विमला है।

कोयलेवालेने कहा—आप बहुत अच्छी मिलीं। मुझको श्रीशर्माजीने कहा था कि मेरे घरपर कोयलेकी बोरी दे आना। वही बोरी लेकर आया हूँ। घर कहाँ है, जहाँ बोरी रख दूँ।

जैसा उस कोयलेवालेको बताया गया, वह कोयलेवाला ठेलेपरसे बोरी उतार करके श्रीगोयनकाजीके घरपर रखा और चला गया।

विमलाको ठेलेवाला मिला ही नहीं था और जब श्रीशर्माजी घरपर आये तो उनसे इस बारेमें पूछा। पूछनेपर उन्होंने बतलाया कि मैंने किसी कोयलेवालेको कुछ भी नहीं कहा था। इतना सुनना था कि शर्माजी विभोर थे ही, परन्तु बहिन विमलकी विभोरता सीमासे परे थी। अब वह मन-ही-मन नित्य पूज्य परम लीलामय तथा कौतुकप्रिय भगवान् श्रीकृष्णके प्रति कह रही थी—क्या ऐसे छोटे-मोटे काम भी तुम कर दिया करते हो? तुम्हारी निजजन वत्सलताकी बलिहारी है।

यह एक छोटा-सा प्रसंग एक तथ्यकी ओर संकेत कर रहा है कि पूज्य बाबूजी एवं बाबाके प्रति सर्वप्रकारेण समर्पिता विमलाके योगक्षेमके वहन सर्वसमर्थ प्रभु किस प्रकार किया करते थे।

एक बार श्रीलखपत बाबू पूज्या बाबाके पास बैठे हुए थे और उन्होंने पूज्य बाबासे प्रश्न किया—आप विमलाको इतना अधिक महत्त्व क्यों देते हैं?

पूज्य बाबाने पलटकर कहा—यदि मैं आपसे कहूँ कि आप कुएँमें कूद जाइये तो आप पूछताछ करेंगे कि कुआँ कितना चौड़ा है, कितना गहरा है और

उसमें कितना पानी है। आप यह पूछताछ करेंगे और विमला बिना पूछे कूद पड़ेगी। यही आपका और विमलाका अन्तर है।

बहिन कमलजी एकबार श्रीधाम वृन्दावन गयी हुई थी। उनको बहिन विमलाने पत्र लिखा। उस पत्रकी एक पंक्ति इस प्रकार है—आपके जानेसे हमारी अपनी मनकी वाटिका उजड़ गयी। यहाँपर मिलनेपर आप कितनी अच्छी बातें सुनाया करती थीं।

श्रीराधाबाबाने बहिन विमलासे एक बात विशेष रुपसे कही थी—पहली बात, तुम भागवती-शक्ति-सम्पन्ना हो और दूसरी बात यह कि इस आयुमें भी तेरे मुखमें बत्तीसों दाँत है। जिसके बत्तीसों दाँत हो उसकी वाणीमें अमित क्षमता होती है। तुम किसीका अशुभ मत चाहनां, न किसीको शाप देना। यदि ऐसा किया तो उसका अनर्थ हो जायेगा।

बहिन विमला—आपकी आज्ञा मेरे सिर पर है

जीवनमें अनेक बार ऐसे प्रसंग आये कि किसीने बहिन विमलाको हानि पहुँचानेके लिये अनुचित अनुष्ठान किया। एक बार तो उसके जीवन पर खतरा आया। वह चाहती तो उलट देती। यदि उलट देती तो उस अनुष्ठान करनेवालेका जीवन समाप्त हो जाता, किन्तु उसने सारी आफत सह ली। मेरी परमपूज्या बहिन विमला श्रीराधा बाबाके सर्वदा अनुकूल रहती थीं।

बहिनके जीवनके अन्तिम दिनोंका एक प्रसंग है। वह प्रायः पागलपनकी तरह बात करती रहती थी। एक ही बातको कई बार दोहराना अथवा अनर्गल बात करना। मेरा ऐसा विश्वास है कि यह उसका जानबूझ करके एक अभिनय था। यह अभिनय इसलिये कि जीवनके अन्तिम दिवसोंमें कोई उससे लौकिक सांसारिक चर्चा न करे। सिद्ध स्तरके महात्माओंमें कई बार इस प्रकारका आचरण भक्त वृत्तके ऐतिहासिक पृष्ठों पर है।

अब इसका एक अपवाद ध्यान देने लायक है। एक व्यक्तिका विमलाके प्रति मातृ-भाव था। पहले जब कभी वह व्यक्ति मिलता था और चरण छू करके प्रणाम करता था, उस चरण-स्पर्शके होते ही विमला कहा करती थी—अच्छा! तू आ गया। कहो, मजेमें हो न?

उस व्यक्तिने पागलपनका अभिनय करनेवाली विमलासे मोबाइल पर बात की। उसने पूछा—अगर मैं अपने नित्य नियमके सभी पाठोंको विराम देकर केवल नाम जप करूँ तो कोई इसमें कोई गलत कदम तो नहीं उठ जायेगा?

पागलपनका अभिनय करनेवाली बाई विमलाने कहा—जप करो, किन्तु जितना समय पढ़ाईमें लगता है, उतना समय ईमानदारी पूर्वक जप होना चाहिये। ईमानदारी महत्त्वपूर्ण है।

यह बात घरवालोंके सामने हुई थी। जब घरवालोंने इस तथ्यके बारेमें पूछताछ आरम्भ की, तब विमलाने पुन: पागलनका अभिनय आरम्भ कर दिया। घरके लोगोंके लिये समस्या बनी हुई थी कि वास्तविक तथ्य क्या है?

बहिन विमला संबंन्धित कुछ अति आवश्यक इस प्रकार है—

सन् २००२ दिसम्बर ७ को स्वनामधन्य श्रीअमीचन्दजीने इस मर्त्य लोकसे विदाई ले ली। उनके शरीर शान्त होनेके उपरान्त बहिन विमलाने अपने आपको समेटना प्रारम्भ कर दिया। या यूँ कहें कि वे सांसारिक जगत्से दूर होने लगी। धीरे-धीरे शूगरने अपना असर दिखाना प्रारम्भ कर दिया। शरीर क्षीण होने लगा। न तो भोजनमें रुचि रही और न किसी और तरफ देखती थी। बस एक ही विचार मनमें आता था कि ठाकुरने यह क्या लीला रची? जाना तो पहले मुझे था और ये क्या हो गया कि पहले 'वे' चले गये?

उसी बीच करीब डेढ़ साल बाद अचानक शूगर शून्य बिन्दु पर आ गयी। शामका समय था। वे गिर पड़ी। तुरन्त पुत्र कमल नयनने विमलाको लेकर डा० राकेशके नर्सिग होम गया। वहाँ पन्द्रह दिन रहीं। वहाँसे आनेके बाद आवाज बन्द हो गयी और करीब चार माह तक आवाज नहीं आयी। उनकी सेवामें पूरा परिवार, चारों पुत्र, बहुएँ एवं बेटी तथा वाटिकाके लोग लगे रहते। जिससे जो बन पड़ता, वही करता था। अचानक चार माहके पश्चात् वे फिरसे बोलने लगी, पर वह लीला भी अलग ही लगी। सिर्फ पुत्र-बहू तथा बेटीका ही नाम लेती थी।

१ अक्टूबर २००५ की रात्रिमें अचानक तबियत फिर बिगड़ गयी। उसको डॉ० राकेशके नर्सिग होम ले जाया गया। वहाँ कुछ नहीं बोलती थी। उसका आग्रह था कि मेरे प्राण गीतावाटिकाके ढाई सौ गजकी परिधिकी सीमाके भीतर ही निकले। वे पहले भी कहा करती थीं कि मुझे तुम लोग कहीं लेकर मत जाना। इसके बाद भी उसको नर्सिग होम ले जाया गया। वहाँ उनकी स्थितिमें कोई खास सुधार नहीं हो पा रहा था। करीब पन्द्रह दिन रह करके फिर उसको घर लाया गया और घर पर ही उसकी सेवा होने लगी।

डॉ० नवीन चन्द्रा दोनों समय आकर देख जाते थे। करीब दस बारह दिन ही बीते थे कि ५ नवम्बर २००५ को पुन: उसे भर्ती कराना पड़ा, पर इस बार लीला विचित्र-सी लगी। ऐसा लगता था विमला सब देख समझ रही हैं, पर वह किसीसे कहती कुछ नहीं थी। बस शून्यमें देखती रहती थीं। उसके शरीरके साथ क्या हो रहा है, इसकी उसको सुधि नहीं थी। डॉ० राजीव श्रीवास्तव, जो जाने माने फिजीशियन हैं, वे उन्हें देखने आते थे। उनकी एक ही इच्छा थी—माताजी एक बार बोल दें।

ऐसा लगता था कि अभी वह बोल पड़ेगी। जो भी उनसे कुछ कहता या बात करता था, वह बोलती तो कुछ नहीं, पर अप्रत्यक्ष रूपसे उसे उसका उत्तर मिल जाता था। हाँ एक बात अवश्य हुई जिसका उल्लेख जरूरी होगा। जितने दिन विमला अस्पतालमें रही, उतने दिन वहाँपर नामजप बहुत ज्यादा हुआ। सेवापरायण व्यक्ति लिख करके या मालाके द्वारा जप करते रहे। जो भी वहाँ रहता, सिर्फ नामजप ही करता था। २० नवम्बर २००५ को विमलाजी की तबियत ज्यादा बिगड़ गयी। अगले दिन डॉ० राजीवने कहा—भइया! अब मैं खुद कहता हूँ, माताजी को घर ले जाइये। इनका नियम भी खण्डित नहीं होगा। आगे हरिकी जैसी इच्छा।

उसको घर ले आया गया। वह दिन सोमवार था। ऐसा लगता था ना जाने क्या होगा। छोटा पुत्र जो इलाहाबादमें रहता है, तुरन्त सूचना दी गयी। वह परिवार समेत अगले ही दिन आ गया। दो दिन और बीते। घर आकर विमला कुछ स्वस्थ लगने लगी। या यह भी उसकी लीला ही थी। उसके लिए एक ह्वील चेयर ले आयी गयी। सोचा गया, अगर वह कुछ दिन ही बैठ लेगी तो शायद स्वास्थ्य कुछ सुधर जाये। बृहस्पतिवारको सुबह उसको नहला कर कुर्सी पर बैठा दिया और पूरे घरका चक्कर लगाया गया। उस समय वे मुस्कुरा भी रही थीं, और सारे घरको परिवारके हर सदस्यको निहारती जाती थी। ऐसा लग रहा था, आज वह ज्यादा स्वस्थ हैं, पर होनी को कुछ और मंजूर था। २४ नवम्बर २००५ शामको माता अपने बिस्तर पर थी। सभी उनके पास ही थे। डॉ० राजीव प्रतिदिन प्राय: आठ बजे शामको आया करते थे, पर आज वे करीब सात बजे आ गये। आते ही वे विमलाके पुत्रोंसे बोले—भइया! आज पता नहीं क्यों, ऐसा लग रहा था कि अम्मा बुला रही हैं, इसीलिये मैं सात बजे ही आ गया।

अरुणने कहा—राजीव! आज तो रोजकी अपेक्षा अम्मा ठीक रही है।

इधर हम अभी वार्तालाप कर ही रहे थे कि राजीव बोले—भइया! अम्मा तो जा रही हैं।

हम सभी उन्हें घेरे खड़े थे और खड़े ही रह गये। सात बजकर पच्चीस मिनट पर हम सभीको छोड़कर वे चली गयीं। एक बात विचित्र हुई वह यह कि डॉ० राजीवने तथा पुत्र गोपालने देखा—उनके दोनों भौंहोंके मध्यमें से एक लपकती हुई नीली ज्योति निकली और देखते-देखते आकाशमें लुप्त हो गयी। उन्होंने मुझे बताया तो मेरे लिये आश्चर्यकी कोई बात नहीं थी क्योंकि अम्माका पूरा जीवन साधना, सेवामें ही बीता था।

मेरी पूज्या विमला बहिनी तुमको मेरा शत-शत वन्दन।
था कुप्रयोग किया एकने उस बलायको टाल दिया था॥
वह बलाय जीवन घातक थी उससे मुझे उबार लिया था।
निज आँचलकी छाया दी थी उस छायाको है नित वन्दन॥
हाल-चाल नित लेती रहती सदा ध्यान रखती थी मेरा।
राखीका शुभ दिन जब आता मेरा घर था आँगन तेरा।
ऐसी अगणित स्मृति समूह को मेरा अन्तर करता वन्दन॥

सम्मान्या श्रीसंतोष बहिनजी वृन्दावनवाली

कार्तिक मासकी पूर्णिमा तिथिके पावन दिवसपर परम गुरुदेव श्रीनानकदेवजीका आविर्भाव हुआ था। वैष्णव सम्प्रदायमें कार्तिक मास अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इस मासमें वैष्णवजन विविध व्रतानुष्ठानादि भगवत्प्रीत्यर्थ किया करते हैं। इसी कार्तिक मासकी पूर्णिमाके शुभ दिन बहिन संतोषजीका जन्म १९२३ में झेलम सरिताके किनारे एक सिक्ख परिवारमें हुआ था। उस दिन शुक्रवार २३ दिसम्बर १९२३ का दिन था। माताजीका नाम चानन देई और पिताका नाम चौधरी गंगाराम था। पिताजी लकड़ीके ठेकेदार थे। सिक्ख परिवार होनेके कारण घरमें 'जपजी साहब', 'सुखमनी साहब' और 'रहरासजी' का पाठ नियमित होता था। घरमें भक्तिपूर्ण वातावरण था, अतः बाल्यावस्थामें बहिन संतोषजीका अन्तर भक्तिभावसे लबालब रहता था। 'सिमरन', साधु-सेवा एवं मातृ-पिता सेवामें—उनकी स्वभाविक रुचि थी।

बहिन संतोषजीका बाल्यकाल अनेक चमत्कारी अनुभूतियोंका पुञ्ज रहा है। उनका वर्णन यहाँ सम्भव नहीं है। जिनकी रुचि हो, उन पाठकोंसे निवेदन है कि वे बहिन-भाई-माताएँ उनका जीवन चरित्र पढ़ें। वे दिव्य अनुभूतियाँ ऐसी लोकोत्तर एवं अद्भुतपूर्ण है, जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। उदाहरणार्थ—१. एक मन्दिरमें विराजित श्रीराधारानीने उपालम्भ दिया कि तूने मुझको वस्त्राभूषण धारण नहीं करवाया। २. रात्रिके अंधकारमें भावावेगमें वे झेलम सरिताके गहरे जलमें कूद गयी, तब किसीने हाथ पकड़ करके बाहर निकाला। निकालनेवाले वे अज्ञात व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्ण ही थे। ३. पूजनके लिये भगवान् शालग्रामजी स्वयं प्रकट हो गये, जिनका पूजन वे आजीवन करती रहीं।

अध्ययनके लिये स्कूल भेजा गया। पाँचवीं कक्षातक पंजाबी पढ़ी। फिर गुरुकुलमें आठवीं कक्षा तक पढ़ा। इनकी गणना मेधावी एवं कुशाग्र छात्राओंमें थी। मुख मण्डलपर प्रभु-प्रेमकी दिव्याभा सदा चमकती रहती थी। आरम्भसे ही बहिन संतोषका पहनावा और खान-पान बड़ा सादा थी। बचपनसे नितान्त भय-शून्य थी। जंगलोंमें इधरसे उधर भटकती रहती थी कि कोई अच्छा साधु-संत मिल जाय और मुझे भगवान् श्रीकृष्णका शुभ दर्शन करवा दें। प्रभु-दर्शनकी लालसा उत्कट थी। एकान्तमें खूब रोती और प्रार्थना करती रहती थी।

सन् १९४२ में महात्मा गाँधी झेलम गये। भारतकी स्वाधीनताके लिये जन-जागरण करवाना था। सारा नगर उनका भाषण सुननेके लिये उमड़ पड़ा। अपार भीड़ थी। भीड़में घुस पाना कठिन था। तब उन्नीस वर्षीया बहिन संतोषजी येन-केन-प्रकारेण भीड़को चीर करके आगे क्रमशः बढ़ती चली गयी और स्टेज पर चढ़कर बापूके चरणोंको पकड़ करके लिपट गयी। वहीं गद्गद् कण्ठसे 'बापू' कहने लगी। स्नेहाभिभूत बापूने उसका हाथ पकड़ करके उठाया और पूछा—प्यारी बेटी! बोल! तुमको क्या चाहिये?

बहिन संतोषजीने कहा—जो कुछ मेरे लायक हो, वह मुझे दे दो।

बापूने कहा—बेटी! राम नामका जप करो, सत्यका पालन करो और खादी वस्त्र धारण करो।

बहिन संतोषजीने इस कथनको आदेशवत् स्वीकार कर लिया।

इनके पिताजीके घरमें एक विधवा अध्यापिका रहा करती थी। उसकी

आलमारीमें विविध एवं आध्यात्मिक साहित्य था। उसी संग्रहमें गीताप्रेससे प्रकाशित साहित्य था। पूज्य बाबूजीकी भी अनेक पुस्तकें थी। उनको भी बहिन संतोषजीने चावपूर्वक पढ़ा। यहीं पर बहिन संतोषजीके मनमें पूज्य बाबूजीके श्रद्धाकी नींव पड़ी, जो भविष्यमें अत्यधिक बलवती बन गयी।

झेलममें आपकी एक प्रिय सखी पद्मा थी। एक बार पद्मा मरणासन्न हो गयी। प्राण कण्ठ तक आ चुके थे। संतोषजी उसकी चारपाईके पास बैठ गयी और अपना हाथ उसके शीशपर रख दिया। इतनेमें दो यमदूत सीढ़ीसे नीचे उतरने लगे, किन्तु आगे बढ़ नहीं पाये। वे कह रहे थे—वह सिरपर हाथ रखे बैठी है न!

कुछ देरतक यमदूत खड़े रहे। फिर उनको लौट जाना पड़ा। उनके जाते ही पद्माजीको गहरी नींद आ गयी और उनके प्राणोंकी रक्षा हो गयी। ऐसा था आध्यात्मिक ऐश्वर्य और लोकोत्तर सामर्थ्य बहिन श्रीसंतोषजीका।

एक दिन बहिन संतोषजी मन्दिर गयीं। वहाँ उन्होंने देखा कि मन्दिरके प्रांगणमें एक दस वर्षीया अन्धी बालिका हारमोनियमपर सुन्दर-सुन्दर पद गा-गा करके अपने प्राण-वल्लभ श्रीराधाकृष्णको रिझानेमें सतत संलग्न है। श्रीसंतोषजीका उस अन्धी बालिकाके प्रति आकर्षण हो गया। बालिकाका नाम सरला बहिन था। अब सरला बहिन तथा संतोष बहिन, दोनोंकी अच्छी जोड़ी हो गयी। साथ-साथ नाचना, सरस पद गाना और व्रजके ठकुराइन और ठाकुर श्रीराधा-कृष्णको रिझाना, इसी रसानन्दमें यह जोड़ी निमग्न रहती।

अब श्रीसंतोषजीके अन्तरमें श्रीधाम वृन्दावनके दर्शनकी लालसा ललक उठी। भगवान्ने संयोग बैठा दिया। सन् १९४२ में एक यात्रियोंका दल झेलमसे वृन्दावन आ रहा था। आप उसी दलके साथ चली आयी। वृन्दावनकी प्राकृतिक शोभा देखकर मुग्ध हो गयी। यमुनाकी पावन रजमें लोट-पाट करना, विभिन्न मन्दिरोंमें श्रीविग्रहोंका दर्शन करना, संतके दर्शनके लिये सुध-बुध भुलाये रहना, रासलीलाको निहार-निहार करके देखना और संतोंकी सत्संग-चर्चामें बैठना, यही बहिनजीका कार्य रह गया था। एक दिनकी विशेष घटना है।

व्रज-भावका व्रत लेकर श्रीवृन्दावनधाममें निवास करनेवाली सितकेशी बहिन श्रीसंतोषजी मेरी परम आदरणीया हैं। उनके जीवनका आगामी प्रसंग उस समयका है, जब भारतका विभाजन नहीं हुआ था। विभाजन तो १९४७ में हुआ,

इससे लगभग दो-तीन साल पहलेकी बात है। बहिनजी पंजाबसे अपने अनेक स्वजन-परिजन लोगोंके साथ व्रज-भूमिकी यात्राके लिये वृन्दावन आयी थीं। ये सभी लोग वृन्दावनके केशी घाटपर ठहरे हुए थे। इस समय बहिन श्रीसंतोषजीकी किशोरावस्था ही थी। इनके मनमें बचपनसे ही भगवद्दर्शनका चाव था। ये भक्तों और संतोंके दर्शनार्थ प्रायः यहाँ-वहाँ आती-जाती रहती थीं।

एक दिन सायंकालके समय ये श्रीउड़िया बाबाके आश्रमपर पूज्य श्रीहरिबाबाकी कथा सुननेके लिये गयीं। वही सत्संगीजनोंके बीच इन्हें एक गौर वर्णवाली किशोरी बालिकाका दर्शन हुआ। उस सात्त्विक-हृदया बालिकाकी भोली मुखाकृतिपर उसके भक्तिभावपूर्ण अन्तरकी स्पष्ट छाप थी। लोगोंसे उसके बारेमें पूछताछ करनेपर ऐसा ज्ञात हुआ कि इस भक्तिमती बालिकाको भगवान्की लीलाओंकी दिव्यानुभूति हुआ करती है।

इसी चीजकी तो बहिनके मनमें गहरी प्यास और गहरी खोज थी। पता लगानेपर यह भी ज्ञात हो गया कि यह भक्त बालिका रमणरेतीमें रहती है। अब तो रमणरेतीमें काफी बस्ती हो गयी है, पहले तो यह वृन्दावनका एक नितान्त निर्जन स्थान था। अगले दिन बहिन संतोषजीने एक बहुत सुन्दर पुष्प-माला खरीदी और उस बालिकासे मिलनेके लिये रमणरेती गयीं। जिस समय बहिन संतोषजी उसके पास पहुँची, वह बालिका पूजनकी सामग्री लिये हुए अपने पूज्य श्रीगुरुदेवकी अर्चना करनेके लिये जानेवाली थी। प्रारम्भिक वन्दन-विनयके उपरान्त थोड़ी पारस्परिक बातचीत हुई और इसके बाद उस बालिकाने बहिन संतोषजीको अनुकूल स्वभाववाली जानकर प्रसन्न मनसे अपने साथ ले लिया। ये दोनों श्रीगुरुजीके स्थानपर गयीं। जब उस बालिकाने अपने श्रीगुरुदेवजीका पूजन कर लिया, तब उन्होंने बहिन संतोषजीसे पूछा—तुम कहाँसे आयी हो?

बहिन संतोषजी—हमलोग कई व्यक्ति हैं और पंजाबसे वृन्दावनकी यात्राके लिये आये हैं।

श्रीगुरुजी—तुम सब कहाँ ठहरी हो?

बहिन संतोषजी—हमलोग केशी घाटपर पण्डाजीके घरमें ठहरे हुए हैं।

श्रीगुरुजी—केशी घाट तो यहाँसे बहुत दूर है। वृन्दावनके एक छोरपर यदि यह रमणरेती है तो दूसरी छोरपर वह केशी घाट है। इसके अलावा रमणरेती स्थान तो बड़ा सुनसान है, अतः यहाँ आनेमें तुमको डर नहीं लगता क्या?

बहिन संतोषजी—डर किस बातका? यह वृन्दावन तो ठकुरानी और ठाकुरका धाम है, इसलिये सचमुच डर बिलकुल नहीं लगता।

यह उत्तर बहिनजीने जिस विश्वास, जिस तत्परता और जिस मस्तीके साथ दिया, उससे श्रीगुरुजी प्रभावित हुए। उनको ऐसा लगा कि यह पंजाबी बालिका एक योग्य पात्र है, इसका हृदय आस्तिक है और भविष्य उज्ज्वल है, अतः इसे दीक्षा देनी चाहिये। इन भावोंसे भावित होकर श्रीगुरुजीने बहिनजीसे कहा—तुम महामंत्रकी सौ माला फेर करके मेरे पास कल आना।

इस दिव्यानुभूति-सम्पन्ना भक्ति-हृदया किशोरी बालिकाके श्रीगुरुजी अवश्य ही एक महान् संत होंगे, ऐसा समझ करके बहिन संतोषजीने श्रीगुरुजीके आदेशको बड़ी श्रद्धा पूर्वक स्वीकार किया। मनमें जब भगवदुत्कण्ठासे भरी हुई चटपटी जगती है और कहींपर आशाकी किरण दिखलायी देती है तो हृदय उस ओर झुकता ही है। वहाँसे आ करके बहिनजीने बाजारसे एक तुलसीमाला खरीदी। अगले दिन केशी घाटके समीप श्रीयमुनाजीके तटपर वे जप करनेके लिये रातके दो बजेसे ही बैठ गयीं। उन्होंने नयी तुलसीमालापर गिनती करते हुए महामंत्रका जप आरम्भ कर दिया। इसके पहले उन्होंने कभी लगातार गणना करते हुए जप नहीं किया था। जपका अभ्यास नहीं होनेसे नाम-जपकी गति बड़ी मन्द थी। कुछ भी हो बड़े परिश्रम और बड़ी लगनके बाद भी वे दिनके बारह बजेतक सौ माला जप नहीं कर पायी। बहिनजीके साथ जो अन्य स्वजन थे, वे यह नहीं देख सकते थे कि हमारी संतोष भूखी-प्यासी रहे। वे लोग खोजते हुए यमुना तटपर आये और उससे आग्रहपूर्वक समझाते हुए कहा—भूखे-प्यासे रहना ठीक नहीं। इससे शरीरपर बुरा असर पड़ता है। जपकी संख्या बादमें पूरी कर लेना। अब हमारे साथ चलो। आज नहीं तो कल जपकी संख्या पूरी करके रमणरेतीवाले महाराजजीके पास चली जाना।

अपने स्वजनोंके प्यारभरे आग्रहके सामने बहिनजीको झुकना पड़ा। वे उन लोगोंके साथ पण्डाजीके घरपर चली आयीं। उस रातको उन्हें एक विचित्र स्वप्न हुआ। स्वप्नमें बहिन संतोषजीने देखा कि एक सुन्दर कमरा है, उस कमरेके अन्दर एक चौकी है और उस चौकीपर एक संत बैठे हुए हैं। उन संतके सामने एक पर्दा गिरा हुआ है। पर्देके बाहर कमरेके एक कोनेमें भी कोई संत बैठे हुए हैं। बाहरवाले संतने बहिनजीसे कहा—इस पर्देको हटाओ। पर्देके हटते ही तुम्हें एक अच्छे संतका दर्शन होगा।

बहिन संतोषजीने स्वप्नमें ही उन बाहरवालें संतसे बड़ी विनम्रता पूर्वक कहा—मैं अबोध एक संतका भला पर्दा कैसे हटा सकती हूँ।

बहिनजीके मुखसे एक गम्भीर सत्य स्वतः ही सहज निकल गया। जीव संतका नहीं, बल्कि संत ही किसी जीवका पर्दा उठाते-हटाते हैं। बहिनजीकी बात सुनकर भीतरवाले संत बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने स्वयं ही वह पर्दा हटा दिया। पर्देके हटते ही चौकीपर विराजित एक संतका शुभ दर्शन मिला। उनके मुखमण्डलकी कान्ति सौम्य थी, पर उस सौम्य कान्तिपर तपका तेज छाया हुआ था। उन्हें देखकर बहिनजी चकित रह गयीं। वे भौचक्की निगाहोंसे उन महान् संतको देखने लगीं। उसी समय उन महान संतने बहिनजीसे कहा—एक बादल ऐसे होते हैं जो गरजते हैं, पर बरसते नहीं। वे दिनकी हलचलमें इतना गरजते हैं मानो महाप्रलय कर देंगे, पर एक बूँद नहीं बरसते। दूसरी ओर एक बादल ऐसे होते हैं, जो बरसते हैं, पर गरजते नहीं। जब सारी दुनिया सोयी रहती है, तब वे चुपचाप आते हैं और भले दुनिया उनको न देख पाये, किन्तु वे इतना बरसते हैं कि जलसे जमीनको सराबोर कर देते हैं।

बहिनजीने उन संतके प्रति विनम्र स्वरमें कहा—महाराज! मुझे आपकी बात समझमें नहीं आयी।

उन सिद्ध संतने पुनः कहा—*'दे मनके पै मनका ठाकना'*। (इस वाक्यका भावार्थ यह है कि निरन्तर अटूट नामजप करो।)

संतोषजीने पुनः कहा—महाराज मैं अबोध हूँ। मैं सचमुच आपकी बात अब भी समझ नहीं पायी।

तब उन तेजस्वी संतजीने कहा—रमणरेतीवाले उन श्रीगुरुजीके पास मत जाना।

बहिनजीने स्वप्नमें ही उनसे कहा—महाराज! अब मैं आपके कहनेका मतलब समझ गयी। आपने बादलका उदाहरण बड़ा सुन्दर बताया। अब मैं रमणरेती नहीं जाऊँगी।

इसके बाद बहिन संतोषजी रमणरेती नहीं गयीं और उनकी यह आस्था बड़ी सुदृढ़ हो गयी कि व्रजकी ठकुरानी श्रीराधारानी और उनके जीवन सर्वस्व श्रीश्यामसुन्दर सदा मेरी सँभाल कर रहे हैं।

कुछ दिन वृन्दावन रह करके संतोषजी उन यात्रियोंके साथ झेलम वापस लौट आयीं। वे लौट आयीं, किन्तु तन झेलममें था और मन वृन्दावनमें रमण

कर रहा था। वे व्याकुल थीं पुन: वापस वृन्दावन जानेके लिये। संतोषजी की ऐसी मनोदशाको देखकर परिवारवालोंने सोचा कि विवाहकी जंजीरसे बाँध देना उत्तम होगा। इसकी जानकारी होते ही बहिनजीने गजब कर डाला। बहिनजी बड़ी सुन्दर थीं। रूप सभीको आकर्षित करता था। एक दिन काँचका टुकड़ा लिया। उसको तोड़-फोड़ करके नुकीला चूर्ण बना लिया। वह नुकीला अपने सारे चेहरेपर कस करके रगड़ डाला। सारा चेहरा रक्तसे लाल हो गया। रक्त बह रहा था। यह देख छोटी बहिन चीख उठी। माँ घबरा उठी। पिता बेचैन हो उठे। सारा चेहरा अत्यधिक सूज गया। बहुत दिनों बाद कुछ आराम मिला।

माता-पिताद्वारा विवाहके सारे प्रयास विफल हो गये। वे तो वृन्दावन आनेके लिये छटपटा रही थी। धीरे-धीरे समय बीता और सन् १९४७ का साल आया, जब नेहरूकी राजनैतिक बुद्धिके कारण भारतका विभाजन होनेवाला था। भविष्यमें बननेवाले पाकिस्तानकी हिन्दूभूमि पर हिन्दू माता-बहिनोंकी लज्जाका अपहरण विधर्मियों द्वारा हो रहा था। भूमि हिन्दू-रक्तसे लाल हो रही थी। इस अवसर पर हिन्दू लोग आत्मरक्षाके लिये भारतकी ओर शीघ्राति-शीघ्र आने लगे। इस अवसरका लाभ संतोष बहिनको मिला और वे झेलमसे वृन्दावन चली आयीं। वृन्दावन चली आयीं, किन्तु एक बड़ा खेद भी था कि अन्तरंगा अन्धी सहेली बहिन सरलाका साथ बिछुड़ गया। वे इतने अधिक विकट और कठिन दिवस थे कि येन-केन-प्रकारेण आत्मरक्षा एवं लज्जा-सुरक्षाका प्रश्न अति प्रबल था। हिन्दुओंको अपनी जन्मभूमि और अपने माल-मकानके मोहको छोड़कर आनेके लिये परिस्थितिने बाध्य कर दिया था।

वृन्दावनमें बहिन सरलाजीसे पुन: भेंट होती है, इसका वर्णन स्वयं बहिन संतोषजीने एक बहिनके समक्ष तब किया था, जब बहिन श्रीसरलाजी अपने पार्थिव शरीरका परित्याग कर चुकी थीं। इसके वर्णनमें बहिन सरलाजीके बाल्यकालका भी सांकेतिक वर्णन है। अब बहिन संतोषजीके बतलाये गये वृत्तको पढ़ें।

सरलाजी जेहलमके ही एक सम्पन्न परिवारमें जन्मी भक्त बालिका थीं। जन्मसे ही दृष्टिहीन थीं, सो माता-पिता बहुत ही दु:खी रहते। माँका तो सारा दिन अपनी इस बच्चीके भविष्यकी चिंतामें रो-रोकर कटता। गममें डूबता माँका बोझिल मन...खाने-पीनेकी रुचि न रही। चिंतासे शरीर काफी कमजोर हो गया,

चक्कर भी आने लगे। वह खड़ी होती तो गिर जाती। एक दिन पाँच वर्षीया बच्चीने माँसे पूछ ही लिया—"माँ तुम रोती क्यों रहती हो" माँने दुखी मनसे कहा—"तुझे दिखायी नहीं देता, इसीलिये।" नन्ही सरलाने झट जवाब दिया—"माँ मैं ये संसार देखने तो आयी नहीं और जिसे देखनेकी इच्छा है वह मुझे ऐसे ही इन्हीं आँखोंसे ही दीखता है।" क्या ही अद्‌भुत जवाब था सरलाजीका। श्रीकृष्ण-प्रेम पगी सरलाजीको बचपनसे ही ठाकुर चर्चा छोड़ कुछ भी न सुहाता था। ऐसी सरलाजीको मंदिरमें पू० संतोषजीसे मिलना निश्चय ही ठाकुरजीका कोई रहस्यमय कौतुक ही था। दोनोंमें सौहार्द और एक दूसरेके प्रति सहज आकर्षणका आधार, श्यामसुन्दरसे सहज प्रीति ही थी। परम पू० संतोषजीकी विरह प्रधान स्थितिने उन्हें शीघ्र ही श्रीधाम पहुँचा दिया। उनके जेहलम छोड़ वृन्दावन आ जानेसे सरलाजी बहुत उदास रहने लगीं। संतोषजीके बिना मानो उनका भक्तिका आधार ही खो गया। मानसमें इसी संदर्भमें गोस्वामी तुलसीदासजीने लिखा है—***"बिछुरत एक प्रान हर लेहीं।"*** पू० संतोषजीके बिना सरलाजीका वही हाल हो गया। गुमसुम-सी रहने लगीं, अन्तत: बीमार हो गयी। बहुत चिकित्सा कराने पर भी कोई सुधार नहीं हुआ। डाक्टरने भी उनकी स्थिति देख, स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया—"बच्चीकी जिन्दगी चाहते हैं तो इसकी रुचिके अनुसार वृन्दावन ही ले जाइये।"

इनकी प्राण-रक्षा हेतु माता-पिता इन्हें लिये श्रीवृन्दावन आ गये। इन्हें संतोषजीके मिल जानेका पूरा भरोसा था। पर जिन्हें ये मंदिरोंमें, धर्मशालाओंमें ढूँढ़ रहे थे, वे तो अपनी बेसुधिमें दिनरात यमुना पुलिनपर पड़ी रहतीं। श्रीसंतोषजीकी खोजमें दिन-पर-दिन बीतने लगे। पिता चिंतितसे सरलाजीको वापस चलनेको कहते। श्रीधामसे वापस जाना सरलाजीके लिए दु:खदायी ही नहीं, असम्भव-सा था। कोई और व्यक्ति भी दृष्टिहीन किशोरीका उत्तर दायित्व संभालनेको तैयार नहीं हुआ। बहुत पैसा देनेपर भी किसी विश्वस्त व्यक्तिकी व्यवस्था न हो पानेसे माता-पिता अपनी लाडली बच्चीके लिये बहुत सोचमें पड़ गये। अन्तत: भरे मनसे बेटीको साथ वापस ले जाना ही उन्हें श्रेयस्कर लगा। जिस दिन शामको वापस जाना था, उसी दिन ठाकुरजीने उसी धर्मशालामें रह रही एक बंगाली विधवा वृद्धाको आरतीके समय ऐसी प्रेरणा दी कि वह खुद ही इन्हें रखनेकी पूरी जिम्मेदारी लेनेको तैयार हो गई। सरलाजीको तो

संतोषजीके मिलनेका पूरा विश्वास था ही। इस तरह अपनी लाड़लीको श्रीधामके आश्रयपर छोड़, भरे मनसे माता-पिता वापस चले गये।

कुछ महीनोंके बाद पू० संतोषजी एक गलीसे जा रही थीं कि एक चिरपरिचित स्वर सुन चौंक गयीं। अपनी बेसुधिसे ऊबकर, जो सिर ऊपर उठाया तो देखा—सामने ही जेहलमके मन्दिरमें हारमोनियम पर उन्मुक्त स्वरसे पद गानेवाली उनकी सखी सरला एक वृद्धाका हाथ थामे अपने उसी सरस उन्मुक्त स्वरसे कुछ गाती जा रही है। सुखद आश्चर्यमें डूबी पू० संतोष बहिनजीने झट जाकर सरलाजीका हाथ अपने हाथमें ले लिया...और उस वक्तका थामा हाथ, पचास वर्षतक उनके वृन्दावनवासके समय तक उन्होंने उसी मजबूतीसे थामे रखा। उनको साथ लिये-लिये ही उन्होंने मन्दिरोंमें देव-दर्शन किया, गलियोंमें नृत्य किया। श्रीबिहारीजी दर्शन करने जातीं तो लोग दृष्टिहीन सरलाजीको लक्ष्य कर पूछ बैठते—"आप भीड़में रोज बिहारीजी क्यों चली आती हैं—कुछ देख तो सकती नहीं।" वह भी अपनी लटकमें झूमते हुए कहतीं—"बिहारीजी तो मुझे देख लेते हैं।" वस्तुतः सरलाजी तो प्रज्ञा चक्षु थीं, उनका हाथ थामनेवाली भी उतनी ही समर्थ थीं शायद इसीलिये सरलाजी सचमें ही ठाकुरजीके दर्शन कर रही होतीं। अक्सर ही वह बिहारीजीके वस्त्रोंका रंग, शृंगार-वर्णन बिलकुल ठीक-ठीक बता देतीं।

वृन्दावनमें वास करते हुए बहिनजीका संत-जीवन श्रीबाँकेबिहारीलालजीसे निकट सम्पर्कमें हुआ। आप पहले इलाहाबाद हाईकोर्टमें डॉ० श्रीकैलाशनाथ काटजूके साथ वकालत किया करते थे। जब श्रीकृष्ण-दर्शनकी उत्कट लालसा जाग्रत् हो उठी तो आप इलाहाबादसे वृन्दावन चले आये। राजस्थानकी भक्तिमती मीराबाईके जीवनसे आपको बड़ी प्रेरणा मिली है। आपने अनेकों संतोंके बड़े सुन्दर-सुन्दर चरित्र लिखे हैं, जिनका प्रकाशन देश-विदेशके अनेक स्थानोंसे हुआ है। वृन्दावनमें आपको लोग वकील साहब भी कहा करते थे। वकील साहबके प्रति बहिन संतोषजीकी बड़े भाईके नाते अत्यधिक आदर भावना थी। वकील साहबके एक मित्र-संत हृदयसे चाहते थे कि बहिन संतोषजीको दीक्षा लेकर तुलसीकी कण्ठी धारण कर लेनी चाहिये। ऐसा ही विचार स्वयं वकील साहबकी भी था। सभीके निगाहोंमें बहिन संतोषजीके लिये बहुत सम्मान था। दीक्षा लेनेकी बात प्रायः सामने आती ही रहती थी और फिर टलती रहती थी।

एक बार उन मित्र-संतने वकील साहबसे बहुत आग्रहपूर्वक कहा कि मेरे पूज्य गुरुदेव महाराजसे इन दोनों बहिनों, श्रीसंतोषजी एवं श्रीसरलाजीको दीक्षा दिलवा ही देनी चाहिये। वकील साहब तो पहलेसे ही दीक्षा ले लेनेके पक्षमें थे। अब अपने मित्र-संतके आग्रहके प्रभावमें वकील साहबने तुलसीकी दो कण्ठी माला खरीदकर, उनको श्रीबाँकेबिहारीजीके श्रीचरणोंपर चढ़वाकर और भोग लगवाकर रात्रिके समय अपने पास रख लिया और बहिन संतोषजीसे कहा—कल सबेरे आप दोनों मेरे पास आना। आप दोनोंकी दीक्षा दिलवाऊँगा।

बहिनजीने कहा—यह जबरदस्तीका ढंग मुझे अच्छा नहीं लगता। मेरे मनमें दीक्षा लेनेकी इच्छा नहीं है, पर इसीके साथ आपकी बातका अनादर करनेका भाव भी नहीं है। आप इतना आग्रह क्यों कर रहे हैं?

श्रीवकील साहबने कहा—भले आपकी इच्छा नहीं है, पर क्या आप ऐसा सोच सकती है कि मैं आपका अहित चाहूँगा? साधनामें उन्नतिके लिये दीक्षा आवश्यक है। दीक्षासे जीवनमें गुरुशक्ति अवतरित होती है। आध्यात्मिक प्रगतिके लिये दीक्षा लेनी ही चाहिये। न चाहते हुए भी आप लोग मेरी बात मानें और कल सबेरे मेरे पास आयें।

बहिनजीने उदास मनसे वकील साहबकी बात स्वीकार कर ली और उन्होंने अपने मनमें सोच लिया कि वकील साहबकी बातको आदर देनेके लिये कल दीक्षा लेनी ही पड़ेगी।

रात्रिमें भारी मनसे बहिनजी जब सोने गयीं तो मन-ही-मन प्रार्थना करने लगीं—हे बिहारीजी! यह क्या उलझन मेरे सामने आ गयी है? मैं विवश हूँ। मेरी समझमें नहीं आ रहा है कि क्या करना चाहिये। क्या यह उचित हो रहा है? अब आप ही इस उलझी हुई बातको सँभाले तथा वहीं करें जो सचमुच उचित हो।

बहिन संतोषजीको रातके समय उन्हीं महान संतके पुनः दर्शन हुए, जिन्होंने बहुत पहले रमणरेतीवाले श्रीगुरुजीके पास जानेसे मना किया था। उन महान् संतने स्वप्नमें आकर बहिन संतोषजीसे कहा—श्रीराधेजी ही तुम्हारी गुरु हैं।

स्वप्नमें मिले इस निर्देशने बहिनजीकी सारी उलझन दूर कर दी और उनके मनमें अदम्य शक्तिका संचार भी कर दिया। इसीके साथ एक और महान् आश्चर्य घटित हुआ। नेत्र-ज्योतिहीन बहिन सरलाजीको भी रात्रिके समय स्वप्नमें सुनायी दिया—श्रीराधेजी ही तुम्हारी गुरु हैं।

बहिन संतोषजी और बहिन सरलाजी, इन दोनों बहिनोंको स्वप्न सुनायी दिया—श्रीराधेजी ही तुम्हारी गुरु हैं।

बहिन संतोषजी और बहिन सरलाजी, इन दोनों बहिनोंको स्वप्न अलग-अलग हुआ, पर हुआ एक ही रात्रिमें। स्वप्नमें दोनोंको एक ही वाक्य सुनायी दिया कि 'श्रीराधेजी तुम्हारी गुरु है', पर इन दोनोंके स्वप्नमें अन्तर इतना ही था कि बहिन संतोषजीको उन संतने दर्शन देकर यह वाक्य कहा, पर सरलाजीको किसी संतके दर्शन नहीं हुए। उन्हें तो केवल यह वाक्यभर सुनायी दिया।

सबेरे उठकर बहिन संतोषजीने और सरलाजीने एक-दूसरेको अपने-अपने स्वप्नकी बात सुनायी तो दोनोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और आनन्द भी बहुत हुआ। तभी इन दोनोंके मध्य यह भी निश्चित हो गया कि अब दीक्षा नहीं लेनी है।

फिर ये दोनों बहिनें स्नानादिसे निवृत्त होकर वकील साहबके कुञ्जमें गयी और उन्हें अपने स्वप्नकी सारी बात कहकर बतला दी। वकील साहबको भी स्वप्नका वर्णन सुनकर बड़ा आनन्द हुआ। अब दीक्षा लेनेकी बात टल गयी। इतना ही नहीं, किसी भी अन्य संतसे दीक्षा-कण्ठी लेनेकी बात सदाके लिये विसर्जित हो गयी।

बहिन संतोषजी और सरलाजी, जैसा बन पड़ता था, साधन-भजन करते हुए श्रीवृन्दावनधाममें निवास कर रही थीं। अब सन् १९५६ ई० की बात है। पूज्य बाबूजी और बाबाके साथ लगभग छः सौ व्यक्तियोंका समुदाय भारतके तीन धामकी यात्रा ट्रेनद्वारा कर रहा था। जब यह तीर्थ यात्रा ट्रेन मथुरा आयी तो व्रजके भक्तगण पूज्य बाबूजी एवं पूज्य बाबाके दर्शनार्थ उमड़ पड़े। बहिन संतोषजीने कभी भी न पूज्य बाबाको देखा था और न पूज्य बाबूजीको। उन्होंने देखा नहीं था, पर सुन रखा था केवल पूज्य बाबूजीके बारेमें। पूज्य बाबाके बारेमें कोई जानकारी भी नहीं थी। 'कल्याण' पत्रिका और गीताप्रेसकी पुस्तकोंके कारण बहिन संतोषजीको पूज्य बाबूजीके भक्त-जीवनकी जानकारी थी, अतः उनके दर्शनके लिये बहिन संतोषजी और सरलाजीके मनमें बड़ा चाव था। पूज्य बाबूजी और बाबा बिड़ला धर्मशालामें ठहरे हुए थे, जो मथुरा और वृन्दावनके मध्यमें स्थित है। बहिन संतोषजी सरलाजीके साथ वहाँ गयी। वहाँ पहुँचकर उन्होंने कई व्यक्तियोंसे पूछा कि भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार कहाँ हैं, हम

उनका दर्शन करना चाहते हैं। उन्होंने काफी दौड़-धूप की, पर सफलता नहीं मिली। पूज्य बाबूजीका दर्शन नहीं मिल पानेसे इन दोनों बहिनोंके मनमें बड़ा खेद था। जब वे खिन्न मनसे वापस लौट रही थीं, तब उन्होंने देखा कि एक कृशकाय गैरिक वस्त्रधारी संन्यासीको कुछ लोगोंने घेर रखा है। उनसे घिरे हुए वे धीरे-धीरे चले जा रहे थे। जिन लोगोंने घेर रखा था, उन लोगोंकी चेष्टाओंसे ऐसा साफ-साफ लग रहा था कि ये संन्यासी बड़े सम्माननीय हैं। बहिन संतोषजीके मनमें एक उत्सुकताभरी जिज्ञासा जग पड़ी कि ये संन्यासी कौन हैं, जिनके प्रति इतने अधिक लोग अत्यधिक श्रद्धा-भाव रखते हैं। पास आकर बहिन संतोषजीने उन संन्यासीजीको देखा तो वे स्वयं आनन्द और श्रद्धाके सागरकी लहरोंपर लहराने लगीं। उन्होंने बड़े उल्लसित स्वरमें अपने समीप खड़ी हुई सरलाजीसे कहा—सरला! ये तो वहीं संत हैं, जिन्होंने स्वप्नमें दो बार दर्शन दिया था और इधर-उधर भटकनेसे हमें बचा लिया था।

इस बातको सुनकर बहिन सरलाजीको भी परम आनन्द हुआ। तभी बहिन संतोषजीने इन संन्यासीजीका पूरा परिचय प्राप्त करना चाहा। तनिक प्रयाससे ही पर्याप्त जानकारी मिल गयी। समीपस्थ लोगोंने बतलाया कि आप श्रीराधा बाबाके नामसे विख्यात हैं और 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादक भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके साथ गोरखपुरकी गीतावाटिकामें रहते हैं।

इस परिचयने बहुत बड़े रहस्यका समाधान प्रस्तुत कर दिया। बहिनजीको आज तो उन देवस्वरूप पथ-प्रदर्शक महान् संतका प्रत्यक्ष दर्शन मिला था, जिन्होंने दुविधाके कठिन क्षणोंमें सही ढंगसे उचित अवसरपर सँभाल कर ली थी। बहिन संतोषजी और सरलाजीने बड़ी श्रद्धापूर्वक उनको प्रणाम किया और फिर वे दोनों बहिनें हृदयमें अनन्त उल्लास लिये हुए अपने निवास-स्थानपर वापस चली आयीं।

बहिन संतोषजीकी श्रद्धाका भाव पूज्य बाबाके प्रति उत्तरोत्तर प्रगाढ़से प्रगाढ़तर होता चला गया। पूज्य बाबूजी और पूज्य बाबा कभी इस ओर कभी उस निमित्तसे व्रज-भूमिमें आया ही करते थे और तब-तब बहिनजीको पूज्य बाबाके पावन दर्शनका शुभ अवसर मिल ही जाया करता था। रावलग्राममें बहिनजीको दर्शन किस प्रकार मिल पाया था, इसका विवरण आगेके पृष्ठोंपर पढ़नेको मिलेगा। जब-जब उनको पूज्य बाबाके शुभ दर्शनका सुखद अवसर

मिला, प्रत्येक दर्शनने भावाप्लावित हृदया बहिनजीकी श्रद्धा एवं समर्पणकी भावनाको बढ़ाया ही है। पूज्य बाबा और बहिनजीका जो आध्यात्मिकक सम्बन्ध था, इस आध्यात्मिक निकटताके मध्य एक तथ्य बड़ा विचित्र है। निकटता सीमातीत है, इसके बाद भी दोनोंकी परस्पर बातचीत कभी नहीं हो पायी। एक ओर व्रजमें आते ही पूज्य बाबाका कठोर मौनव्रत आरम्भ हो जाता था तो दूसरी ओर व्रजवासके व्रतके कारण बहिनजीका वृन्दावनसे गोरखपुर जाना नहीं हो पाता था। भले पारस्परिक बातचीत कभी भी नहीं हो पायी, पर बहिनजीका हृदय तो पूज्य बाबाके प्रति समर्पित था। अवश्य ही कभी-कभी पत्रद्वारा आत्म निवेदन होता ही था और पूज्य बाबा भी कभी-कभी पत्र लिखवाकर अथवा कभी सन्देश भिजवाकर बहिनजीको प्रश्रय और प्रोत्साहन प्रदान किया करते थे। पूज्य बाबाद्वारा बहिन संतोषजीके नाम भेजा गया एक पत्र उपलब्ध है, उसीको यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

वृन्दावनवासिनी बेटी संतोष

मैं कुछ दिनोंसे बोल रहा हूँ। वृन्दावन तो मैं जाता नहीं, वृन्दावनके आसपास मैं जाता हूँ तो प्रायः तू आ ही जाती है। इस बार जब मैं बिड़ला-मन्दिरमें ठहरा तो जिन करुण आँखोंसे देखती हुई तू मुझे बोली थी.........'आप नहीं बोलोगे, आप नहीं बोलोगे'। यह तेरी बात अब भी मानो मेरे कानोंमें निरन्तर गूँज रही है, पर बेटी मेरी! जब भी मैं व्रजकी सीमामें जाता हूँ तो मेरी मानसिक दशा कुछ विचित्र-सी हो जाती है। मैं बोलना भी चाहूँ तो नहीं बोल पाता। इसलिये बाहर देखनेके रूपमें मैं तेरी इस इच्छाकी पूर्ति न कर सका। ठाकुर घनश्याम (रास-स्वरूप) पास था। उसे मैंने इशारा कर दिया था कि भैया, बड़ी विचित्र मेरी मानसिक दशा है, इस कारण मैं बोल नहीं पा रहा हूँ। जो हो, तू तो शायद इस घटनाको भूल भी जा सकती है, किन्तु मेरे जीवनके साथ तो यह घटना जुड़ ही गयी।

दूसरी बात! बिलकुल सच्ची-सच्ची बात लिखवा रहा हूँ कि मैं तेरे साथ निरन्तर रहता हूँ। बेटी मेरी! अब तू इसे अनुभव कर पाती है कि नहीं, इसके सम्बन्धमें बेटी! मैं क्या कहूँ?

बहुत-सी बातें लिखनेकी मेरी इच्छा थी, किन्तु समय इतना कम बचता है। प्रतिदिन ही के बहुतसे काम इस बार भी धरे-के-धरे रह जाते दीखते हैं। भगवान्‌की जैसी मंगलमयी इच्छा होगी, हो जायेगा।

सरला बिटियाकी याद भी मुझे निरन्तर बनी रहती है। रावलमें जिस समय मैं गया था, उस समय केवल तुम दोनोंको ही मेरी चित्त-वृत्ति वास्तवमें पकड़ रही थी और फिर एक और अन्धी बिटिया थी, कुछ क्षणोंके लिये उसकी भी स्मृति बनी रही थी। यह सब बातें मैं तुम्हें क्यों लिखवा रहा हूँ, किसी दिन तू मेरी बात समझ जायगी अपने-आप।

देख! नन्दनन्दनकी कृपाका प्रवाह जब चल पड़ता है, तब फिर उसे कोई भी प्राणी रुद्ध कर ही नहीं सकता। अनन्त त्रुटियोंको लेकर भी किसीको स्वप्नमें भी निराश नहीं होना चाहिये, यदि एक बार उसे अनुभव हो चुका हो कि भगवान् व्रजेन्द्रनन्दनने मुझपर कृपाका प्रवाह तो कर ही दिया है। तो बेटी मेरी! भगवान् नन्दनन्दनकी कृपाके प्रवाहसे एक बार तू निश्चित रूपसे अभिषिक्त हो चुकी है। तुझे भी भले इसका अनुभव न हो और मेरी इस उक्तिका विश्वके प्रत्येक महात्मा खण्डन कर सकते हैं, किन्तु सत्य सत्य ही रहेगा और यह ध्रुव सत्य है, बेटी मेरी! अतएव तू तनिक भी चिन्ता मत करना। जगत्‌के दिये हुए सम्मानकी जितनी उपेक्षा कर सको, अवश्य-अवश्य करना और अब तो तेरा अपमान, तिरस्कार, तेरे प्रति आदर-बुद्धिका अभाव लोगोंमें सृष्ट होने लगा है किसी अंशमें, ऐसा मेरा अनुमान है। तो फिर तो तेरा भाग्य खुल गया। री बिटिया मेरी! श्रीकृष्ण, मृत्युके विन्दुपर तुमसे मिल जानेवाले हैं, इसकी तो यह पूर्व-सूचना है और तुम्हारे लिये उल्लासकी बात होनी चाहिये यह। सारांश यह है कि तेरे लिये स्वप्नमें भी कोई चिन्ताकी बात नहीं है। यदि तू विश्वास कर सकी कि 'बाबाने कहा है, अतएव अब क्या घबराना है' तब तो कहना ही क्या है! पर यदि तू कहीं संशय भी करेगी मेरी इस उक्तिमें, तब भी मेरा विशुद्ध भाव नन्दनन्दनको बाध्य कर ही देगा तुझे मृत्युके समय अपने साथ ले जानेके लिये। बेटी मेरी! और क्या कहूँ?

कृष्ण गोविन्द गोविन्द गोपाल नन्दलाल।
कृष्ण गोविन्द.........................॥

यह उपर्युक्त पत्र पूज्य बाबाने गोरखपुरसे लिखवाकर भेजा था। यहाँ मैं एक बात विशेष रूपसे पुनः निवेदन करना चाह रहा हूँ। ध्यान देने योग्य बात यह है कि बहिन संतोषजीकी पूज्य बाबासे कभी पारस्परिक बातचीत नहीं हुई और भले परस्परालाप न हुआ हो, परन्तु बहिनजीके हृदयमें पूज्य बाबाके श्रीचरणोंके

प्रति अनोखा अनुराग था और पूज्य बाबाका उनके प्रति अनोखा अनुग्रह था। यह सत्य ही है कि ऐसा अनुग्रह और ऐसा अनुराग किसी बाह्य परिस्थिति-सापेक्ष नहीं हुआ करता। निर्मल और निष्कपट श्रद्धाका भाव-साबल्य सच्चे श्रद्धालु और महान् श्रद्धेयके मध्य अनोखे सामीप्यका उद्भव करा ही देता है।

वृन्दावनमें दर्शन

अब बहिन श्रीसंतोषजी द्वारा लिखित विवरण इस प्रकार है—प्रसंग उस समयका है, जब मैं वृन्दावनके श्रीगोपीनाथ बाजारमें एक किरायेके मकानमें रहती थी। मेरे साथ श्रीसरलाजी रहती हैं, जिनके नेत्रोंमें ज्योति नहीं है। मैं मकानके दूसरे मंजिलमें रहती थी, वहींसे मुझे पूज्य श्रीभाईजीकी मोटरकार दिखलायी दे गयी। वे पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीके आश्रम, संकीर्तन-भवनपर जा रहे थे। संकीर्तन-भवनको जानेवाला मार्ग गोपीनाथ बाजार होकर ही है। ज्यों ही मुझे मोटरकार दिखलायी दी, मैंने सरलाजीसे कहा—सरला! जल्दीसे नीचे उतरो। श्रीभाईजी गाड़ीसे जा रहे हैं। चलो, दर्शन कर लें।

मेरी बात सुनते ही सरलाजी खड़ी हो गयीं और मैं उनका हाथ पकड़कर मकानकी सीढ़ियोंसे नीचे उतरने लगी। सीढ़ियोंसे उतरना आरम्भ ही किया था कि उसी समय श्रीभाईजीकी आवाज हमारे कानोंमें पड़ी—जल्दी मत करो। धीरे-धीरे उतरो। मैं यहीं खड़ा हूँ।

आश्चर्य! परमाश्चर्य! न जाने कैसे मेरी बात श्रीभाईजीके कानोंने सुन ली, सुन ली वह बात, जो मैंने सरलाजीसे शीघ्र नीचे उतर करके श्रीभाईजीके दर्शन करनेके लिये कही थी। गोपीनाथ बाजारके-शोरगुलमें भी मेरी छोटी-सी और एक घरके भीतर बहुत दूर होनेवाली बातको सड़कपर चल रही कारमें बैठे-बैठे सुन लेना और जिस घरके दरवाजेको कभी देखा नहीं, उस दरवाजेपर कारको रोककर और कारसे उतरकर हमारी सीढ़ियोंके सामने खड़े हो जाना और फिर धीरे-धीरे उतरनेके लिये कहना; यह सारी बात कैसे चन्द मिनटोंमें हो गयी, हमारी समझके बाहरकी चीज है। सीढ़ियोंके सामने श्रीभाईजीको खड़ा देखकर परमाश्चर्य तो हो ही रहा था, अब उनके सीमातीत प्यारको देखकर हृदय भर आया। सरलाजीने और मैंने श्रीभाईजीको प्रणाम किया। प्रणामके बाद दो टूक कह देनेवाला स्वभाव होनेके कारण मैंने वही उलाहना देना शुरू कर दिया और उनसे कहा—हमें कोई बताता ही नहीं कि आप और पूज्य बाबा

यहाँ आनेवाले हैं। यहीं आपके बगलमें वैद्यजी (पं० श्रीलक्ष्मीनारायणजी वैद्य) खड़े हैं। इन्होंने भी आनेकी सूचना नहीं दी। मुझे तो आज एक बहिनसे आपके आनेकी जानकारी मिली। यह तो ठाकुरने विधि बैठा दी कि आपके दर्शन अचानक यहाँ हो गये।

मेरे कहते-कहते श्रीभाईजीने वैद्यजीकी ओर देखा और देखा असंतुष्ट नजरोंसे। श्रीभाईजीकी नजरोंमें असंतोष था और उलाहना था श्रीवैद्यजीके प्रति। मेरी बातके समाप्त होते ही श्रीभाईजीने वैद्यजीसे कहा—आप इन दोनों बहिनोंको साथ लेकर बिड़ला-मन्दिर आइयेगा।

तभी सरलाजीने कहा—भाईजी! हम दोनों रिक्शेसे आ जायँगी।

सरलाजीको आगे कुछ भी कहनेका मौका न देकर श्रीभाईजीने कहा—नहीं, नहीं, रिक्शेसे नहीं, हमारी मोटरकारसे आना है। तुम दोनोंको मेरी बात माननी पड़ेगी।

हम दोनों नतमस्तक थीं। संकीर्तन-भवनमें श्रीभाईजीका पूज्य प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीसे जब मिलना हो गया और वे वापस लौट गये, तब हमलोग कारसे उनके आवास-स्थान बिड़ला-मन्दिर गये पूज्य बाबाका दर्शन करनेके लिये। ऐसा था श्रीभाईजीका अनोखा प्यार।

रावलगाँवमें दर्शन

इसे कोई संयोग ही कहना चाहिये कि पूज्य बाबा तथा पूज्य श्रीभाईजीके ब्रज-आगमनकी सूचना मुझे बहुत देरसे मिला करती थी। इस बारेमें किसीको दोषी बतलाना उचित नहीं, पर जब भी सूचना देरसे मिलती तो मन उनके दर्शनके लिये बड़ा अकुला उठता था। मुझे अचानक सूचना मिली कि पूज्य बाबा और पूज्य श्रीभाईजी गोरखपुरसे आये हैं और रावलगाँव गये हैं। मैं बड़ी परेशान-सी हो उठी। एक ओर मेरे साथ मेरी नेत्र-विहीना सरलाजी और दूसरी ओर मुझे रावलगाँव पहुँचनेका रास्ता मालूम नहीं, इस प्रकारकी और भी कई बाधाएँ थीं, पर ठाकुरकी समर्थ कृपाका सहारा था। वह परम कृपालु कोई-न-कोई ढंग बैठायेगा और पूज्य बाबा, भाईजीके दर्शन करवायेगा, यह सुदृढ़ विश्वास लेकर हम दोनों बहिनें पूज्य बाबा, भाईजीके दर्शनार्थ घरसे बस स्टैण्डके लिये चल दीं। उस समय मनमें उनके दर्शनके लिये कैसी उत्कण्ठा, कैसी व्यग्रता थी, मैं बतला नहीं पाऊँगी। वृन्दावनके बस-स्टैण्डपर मैंने एक-

दो लोगोंसे रावलगाँवके बारेमें पूछा। पूछताछके क्रममें एक बहिनने कहा—यदि तुम मुझे गोकुलके दर्शन करा दो तो मैं तुमको रावलगाँव ले जा सकती हूँ।

मैंने व्यग्रतासे उसकी शर्त स्वीकार कर ली। हम तीनों वृन्दावनसे मथुराके बस स्टैण्डपर आयीं। अब हम रावलगाँव जानेवाली बसके बारेमें पता लगानेवाली थी कि तभी वृन्दावनका एक स्वजन मिल गया। उससे मैंने पूछा—तुम कहाँ जा रहे हो?

उन्होंने बतलाया—मैं तो रावलगाँव जा रहा हूँ।

तुरन्त मैंने अनुरोध किया—अपनी टिकटके साथ हमारी भी तीन टिकट और ले लो और ये लो रुपये।

बसमें बैठकर हमलोग रावलगाँव पहुँचे। वहाँ जाकर पता लगाया कि श्रीभाईजी कहाँ ठहरे हुए हैं। जब हम उनके वासस्थानपर पहुँचे तो हमने देखा कि श्रीभाईजी बैठे हुए प्रसाद पा रहे हैं। हम तीनों बहिनोंने श्रीभाईजीके सामने जाकर प्रणाम किया और फिर उनके सामने ही कुछ हटकर बैठ गयीं। भोजन करते-करते श्रीभाईजीने हमारा प्रणाम स्वीकार किया। कुछ क्षण बाद मैं थोड़ा आगे सरक गयी और अपनी दोनों हथेलियाँ फैलाकर उच्छिष्ट प्रसादकी याचना की। मेरी याचना करते ही उन्होंने संकेतसे मना कर दिया। मैंने अपनी हथेलियाँ समेट ली और विवश होकर चुपचाप बैठी रही। श्रीभाईजी भोजन करते रहे। भोजन करते-करते श्रीभाईजीने एक-दो बार नजर डालकर यह भी देख लिया कि मैं एकटक उनकी ओर निहार रही हूँ। श्रीभाईजीका प्रसाद पाना जब समाप्तिपर था और थालीमें अन्तिम कौर शेष रह गया था, तब मैंने अपना हाथ लपकाकर वह अन्तिम ग्रास उठा लिया और कहा—यह तो मेरा हिस्सा है।

श्रीभाईजी मेरे इस दुस्साहसको देखते रह गये। यह मेरा दुस्साहस था, मेरी धृष्टता थी, पर उनके प्यारकी बलिहारी है कि उन्होंने इस धृष्टताके लिये तनिक भी डाँटा नहीं, बल्कि वे मन्द-मन्द मुसकुराने लगे।

इसके बाद श्रीभाईजी हाथ धोकर कमरेमें चले गये। मैंने उच्छिष्ट प्रसाद-कणिका सरलाजीको भी दिया। अब मेरे मनमें उतावली थी पूज्य बाबाके दर्शनकी, क्योंकि अभी गोकुल भी जाना था। लोगोंसे पूछा तो कोई ठीकसे बता नहीं रहा था। थोड़ी देर बाद श्रीभाईजी कमरेसे बाहर आये तो मैंने श्रीभाईजीसे कहा—हमारे राधा बाबा कहाँ हैं? हमें कोई उनके दर्शन नहीं कराता। कोई

कहता है कि उनके दर्शन शामको होंगे। हमें आज ही गोकुलके दर्शन करके वापस वृन्दावन पहुँचना है। हम तीनों बिलकुल अकेली हैं। क्या हमें उनके दर्शन नहीं होंगे? शामतक हमलोगोंका वृन्दावन पहुँच जाना जरूरी है।

मैं यह सारी बात एक साँसमें कह गयी, कह गयी अपनेपनकी भावनासे। जैसे कोई बच्चा माँ-बापके सामने अपनी बात बिना हिचक कह देता है, उसी प्रकार मैंने कह दिया और श्रीभाईजीने भी उसी अपनेपनके भावसे मेरी बातको सुना। सचमुच उनकी आँखोंमें अनोखा अपनापन था और बड़े अपनेपनके साथ उन्होंने मुझसे कहा—तुम चलो मेरे साथ। मैं बाबाका दर्शन करवाता हूँ।

अब आगे-आगे श्रीभाईजी और पीछे-पीछे हम तीनों बहिनें चल रही थीं। फिर तो न जाने कितने लोग हमारे पीछे हो लिये थे। श्रीभाईजी पूज्य बाबाके पास ले गये। छतपर एक कमरा था। उस कमरेमें पूज्य बाबा थे। कमरेका दरवाजा खोलकर श्रीभाईजी पूज्य बाबासे बोले—बाबा! आप भी अन्धे हैं और आपकी यह बहिन भी अन्धी है। आप भी जगतको नहीं देखते और यह भी नहीं देखती।

ज्यों ही श्रीभाईजीने ऐसा कहा, उसके तुरन्त बाद मैंने कहा—बाबा! श्रीभाईजी जिसको अन्धी बता रहे हैं, वह तुम्हारे घनश्यामकी बहिन है। हम दोनों घनश्यामकी बहिनें हैं।

हमारी बातको सुनकर पूज्य बाबाने नेत्र खोले और वे हमलोगोंको अपलक देखने लगे। उन अपलक नेत्रोंसे अपार प्यार उमड़-उमड़ करके अनवरत बरस रहा था। पूज्य बाबा बहुतोंको खड़ा देखकर कमरेसे बाहर आ गये और हमारे सामने वहीं छतपर बैठ गये। दोपहरका समय था। छत तप रही थी। जब हमारे पैरके तलवे जल रहे थे, तब पूज्य बाबापर क्या बीत रही होगी और छतकी तपनको पूज्य बाबा कैसे सहन कर पा रहे होंगे, इसे सोचकर मेरा मन भीतर-ही-भीतर बड़ा विकल हो उठा। मैंने उसी समय पूज्य बाबासे कहा—बाबा! हमें दर्शन मिल गया। अब आप कमरेमें जाइये। हम अब जा रही हैं। आप कमरेमें जाइये।

इसी समय और भी कई बहिनों-भाइयोंने पूज्य बाबाके दर्शन किये। इसके बाद पूज्य बाबाको श्रीभाईजी कमरेमें लिवा ले गये।

वृन्दावनके श्रीराधादामोदर मन्दिरके ठीक सामने श्रीवेणु विनोद कुञ्ज है।

वेणु विनोद कुञ्जके महोच्च स्तरके साधक पूज्य श्रीमनोहर दास, बाबा परम पूज्य श्रीबालकृष्णदास महाराजजी, जो एक परम सिद्ध कोटिके रसिक संत थे, उनके आप परम कृपाभाजन रह चुके हैं। श्रीमनोहरदासजी महाराजका संतोष बहिनसे बड़ा निकट सम्पर्क रहा है। उन्होंने बहिन संतोषजीके बारेमें जो लिखा है, उसका अवलोकन करनेसे अनेक अन्तरंग तथ्योंकी जानकारी होगी। अब उनके द्वारा लिखित विवरणको पाठक गण पढ़नेकी कृपा करें।

महत् पुरुषोंका चरित लिखना लौकिक बुद्धिकी बात नहीं है। भगवत् चरितका अंकन सहज है, परन्तु सन्तोंके जीवनके विषयमें लिखना बहुत कठिन है। हाँ भावनावश, श्रद्धावश, अपनेको पवित्र करनेके लिए ही यथामति कुछ वर्णन किया जाता है।

सन् १९४५ में जब श्रीसन्तोष बहिनजी वृन्दावन आईं तो संयोगवशात् सर्वप्रथम मुझसे ही एक भिक्षार्थीके रूपमें उनका परिचय हुआ।

घटना इस प्रकार है—श्री जी (पू० बालकृष्णदासजी महाराज) गोविन्दबागमें श्रीमोतीरामजीके यहाँ रहते थे। मैं नित्य ही सत्संग चर्चा हेतु वहाँ जाता था। एक दिन संध्याके समय बाईस तेईस वर्षकी एक सुन्दर युवती, काली सलवार एवं काली चुन्नी ओढ़े हुए, दीन हीन दीनताकी प्रतिमा, झुका हुआ सिर, अश्रुपूरित नेत्र, वर्षासे भीजे वस्त्र, व्याकुल हृदया, गोविन्द बाग गलीसे मन्द मन्द पग रखते हुए द्वारके सामने आकर ठिठक गई। कुछ माँगनेकी मुद्रामें एक हाथ ऊपर उठाकर दैन्यसे सने मन्द मधुर स्वरमें बोली—एक रोटीका टुकड़ा।

पू० श्री-जी एवं हम सभीको उस स्वरने चौंका दिया। सभीकी दृष्टि उसकी ओर उठ गई। मनके पारखी अन्तर्दृष्टि सम्पन्न श्री-जीने भावभरे शब्दोंमें मुझसे कहा—''मनोहरजी इसे रोटी दे दो, अच्छी सन्त है।''

मैने शीघ्रतासे उठकर ताकमें जो मेरी भिक्षाकी दो रोटी रखी थी गुड़ सहित उसे देदी। अपने प्रति हमारी आदर बुद्धि देख वे शीघ्रतासे केवल रोटी लेकर एवं गुड़को नीचे फेंककर भाग छूटी। इसके बाद कभी-कभी रास्तेमें उनके दर्शन हो जाते थे। जहाँ भी मिलती, सतत आँखोंसे अश्रु बहते ही दीखते। मैं उन दिनों ग्वालियर वाली छोटी कुञ्जमें वंशीवटके सामने भिक्षावृत्तिसे रहता था। कुछ दिनों पश्चात् श्रीरामकृपालुजी महाराज वहाँ पधारे। बहिनजी तो सन्तोंकी खोजमें रहती ही थीं, वह उनके दर्शनोंके लिये वहाँ पहुँच गई। वहाँ भी मेरी उनसे

बातचीत हुई। इस प्रकार उनसे घनिष्ठता बढ़ती गई। वे एकबार पुनः कुछ महिनोंके लिए झेलम चली गई थीं, फिर स्थायी रूपसे वृन्दावनमें रहने लगीं।

मैं उन दिनों पू० श्री-जीके पास गंगा मन्दिरमें उनके आश्रयमें रहने लगा था। सन्तोष बहिनजी और इलाहाबाद हाईकोर्टके वकील श्रीबाँकेबिहारीजी, इन दिनों वृन्दावनमें रहते थे एवं पूज्य श्रीमहाराजजीसे अत्यन्त श्रद्धाभाव रखते थे, इनसे एक सिद्ध संतके रूपमें श्री-जीका परिचय प्राप्त कर चुकी थीं एवं प्रायः श्री-जीके दर्शनोंके लिए आती रहती थीं। विलम्ब होने पर कभी-कभी मैं उन्हें उनके निवास स्थान पर पहुँचाने जाया करता था। बहिनजीसे अत्यन्त आत्मीयता हो गई, जो निरन्तर बढ़ती रही एवं आजीवन बनी रही।

श्रीसरलाजीके आ जानेसे अब बहिनजी व्यवस्थित रूपसे कमरा लेकर रहने लगी थीं। कालान्तरमें मैं सूरजघाटपर मदनमोहन मंदिरके पास कुटियामें रहने लगा तो बहिनजी प्रतिदिन ही कुटियापर आतीं एवं सभी प्रकारसे मातृवत् मेरी सार सँभाल करती रहती थीं। चाय-चीनीसे लेकर ओढ़ने बिछाने तककी सारी चिन्ता उन्हें ही रहती थी।

एकबार मेरे पैरमें मोच आ गई। मैं कुटियामें ही पड़ा रहता था। रोज पुलटिस बनाकर लाना व बाँधना, मालिशकी व्यवस्था करना, सेंकना सभी व्यवस्था वे ही करतीं। एक बार सायटिका-पेन हो गया। उठना-बैठना चलना दूभर हो गया। उन दिनों उनके द्वारा बनाई गई गुदड़ी एवं बैठनेकी गद्दीका प्रयोग मैं आज भी करता हूँ एवं उनकी स्नेहमयी सार-सँभालका स्मरण कर मन गद्गद् हो जाता है। एक बार उनके घर जा रहा था। मेरे हाथसे झोला कब गिर गया, पता नहीं लगा। उनके यहाँ जाकर ख्याल आया। बस सुनने भरकी देर थी, यह झोलेकी खोजमें निकल पड़ीं मुझे सरलाजीके पास बैठाकर। मैंने बहुत रोका और कहा—बहिनजी! छोड़िये कौन बड़ा धन है? अब मिलेगा भी क्या?

पर धुनकी पक्की बहिनजी कब माननेवाली थी? जिस रास्तेसे मैं आया वहाँ एक-एक घरमें झोलेके लिये पूछती फिरीं और आखिर दो-तीन घण्टोंमें झोला लेकर वापिस लौटी। ऐसी अनोखी थीं बहिनजी।

वे भगवत्प्रेमसे लबालब भरी रहती थीं। लाल चेहरा, डबडबाई आँखें, करुणा भरी दृष्टि सभीको जो उनके सम्पर्कमें आता सिक्त करती रहती थीं।

फिर मुझ पर तो उनका विशेष वात्सल्य एवं स्नेह था। कभी कारणवश उनके यहाँ जाना नहीं हो पाता तो स्वयं सरलाजी को लेकर कुशल क्षेम पूछने कुटिया पर पहुँच जाती थीं।

श्रीकृष्णानुराग उनके रोम-रोमसे टपकता था। श्रीकृष्ण—चर्चा वे इतनी डूबकर करतीं कि श्रीकृष्णको वहाँ साक्षात् उपस्थितिका ही भान होता था। कभी विरह स्थितिमें हो जातीं तो ऐसा लगता कि उनका एक-एक रोम विरहसे ओतप्रोत हो गया है। जब संयोगके आनन्दमें होतीं तो ऐसा लगता कि इनकी सम्पूर्ण देहके रोम, आनन्द व प्रेमसे ही बने हुए हैं। उनकी ये दोनों धारायें सान्निध्यमें रहनेवालेको भी कुछ क्षणोंके लिये डुबा देती थीं।

इनके समान दैन्यदशा देखनेमें प्रायः नहीं आती। चलती तो जमीनमें धँसी चली जाती। सदा झुकी हुई, नीची निगाह किए रास्तेके एक किनारेसे मंद-मंद चलती रहती। सन्तोंके द्वारपर पहुँच जाती तो सीढ़ियोंपर बहुत देरतक लोट-पोट होती रहती, अश्रुओंसे भिगोती रहती एवं वहाँकी रज इकट्ठी कर पल्लेमें बाँध लेतीं, अपने शरीरपर लगाती एवं मुँहमें डालती। प्रत्येक सीढ़ीको अपने धोतींसे झाड़ती हुए एवं सिर टेकती हुई भीतर प्रवेश करती एवं सन्तके चरणोंपर सिर टेकती हुई भीतर प्रवेश करतीं एवं सन्तके चरणोंपर सिर टेककर पड़ी रहती, बहुत अनुनय विनय करके उठाना पड़ता था। उनसे भगवत्प्रेमकी भिक्षा माँगती रहती। एक बार अगाध विरहकी स्थितिमें पूज्य श्रीमहाराजजीके पास गंगा मंदिरमें आकर तीन दिनतक इन्होंने भगवत्प्राप्तिके लिए जो अरण्य क्रन्दन, किया उसका मैं प्रत्यक्षदर्शी हूँ। इनकी वह स्थिति देख हम आश्चर्यसे श्री-जीसे पूछते। श्री-जी कहते बस, प्राप्तिके लिए व्याकुलताका एक बटन दबना और शेष है। ये लक्ष्यके अति निकट पहुँच गयी हैं। सन्त-उच्छिष्टमें इनके प्राण बसते थे। निषेध करनेपर उनकी थालीमेंसे झपटकर उच्छिष्ट ले लेती थीं और साड़ीसे हाथ पोछती हुए तेजीसे भाग निकलती थी। पू० महाराजजीके जन्मोत्सवपर अवश्य आती और हजार रोकनेपर श्री-जीका उच्छिष्ट लेकर ही जाती थीं।

जीवनमें भय नामकी वस्तुने तो इन्हें कभी छुआ ही नहीं। दो-दो बजे अँधेरी रातमें एकान्तमें जमुना पुलिन पर पड़ी रहती। कहीं एकान्तमें नाम-रत हो जाती। इन्होंने मालाको कभी छुआ ही नहीं। मनकी माला, नयनोंमें अश्रुमाला, हृदयमें नन्दलाला यही इनका जीवन था।

सन्त-दर्शनोंके लिए आँधी-वर्षा, जलती धूप, समय-असमय, दूर-निकटका ख्याल किए बिना धावित हो जाती थीं। भगवत्प्रेरणा व कृपासे ये स्वाभाविक ही सिद्ध संतोंके पास पहुँच जाती। वे भी इन पर पूर्ण कृपा एवं प्यार बरसाते। निर्भीकता इनका सहज स्वभाव था। निधड़क संतोंके पास पहुँच जाती। इन्हें रोकनेकी किसीको हिम्मत न होती। उस समयके सभी सिद्ध संतोंका जैसे उड़िया बाबा, हरिबाबा, गौरांगदास, बाबा प्रियाशरण बाबा, कृपासिन्धु बाबा, महाराजजी, करुणासिन्धुजीका इन पर सहज स्नेह था। इनके सरस, सरल भक्तिपूरित हृदयने सभीके मनमें अपना एक स्थान बना लिया था। किसीके जरासे भी कष्टके विषयमें सुनती तो उसके निवारणार्थ अपने प्राणोंकी बाजी लगानेमें इन्हें जरा भी संकोच नहीं होता। सत्य सत्य कहा जाय तो किसीकी भी प्राण रक्षाके लिए ये बड़े-से-बड़ा त्याग करनेको सदैव तत्पर रहती थी। जो एक बार भी इनसे मिलता इनके प्रेममें नहा जाता। सदाके लिए उनके प्रेममें बंध जाता।

ये सब पराकाष्ठाके गुण इनमें विद्यमान होते हुए भी इन्होंने जीवनमें अपने लिये किसीसे कोई अपेक्षा कभी नहीं की, किसीसे सेवा नहीं ली। एकबार टटिया बाबाने किसीके द्वारा संतके लक्षण पूछने पर कहा था—"जो परापेक्षा रहित है वह संत है।" इस कसौटी पर बहनजी सदैव खरी उतरी।

इन सब भगवदीय गुणोंसे युक्त प्रेम रसमें सदा चूर रहते हुए भी प्रेमके लिए सदा प्यासी ही दिखा करती थी। दैन्यके शृंगारसे सदा शृंगारान्वित रहती थी। श्रीमहाप्रभुका ये श्लोक इनके जीवनमें पूर्णत सार्थक हो रहा था—

तृणादापि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन, कीर्तनीयः सदा हरिः॥

प्रसिद्ध सिद्ध श्रीराधा बाबा (स्वामी चक्रधर बाबा, गीता वाटिका) में इनका गुरु भाव था। एक ही बारके दर्शनमें ये उनके प्रति समर्पित हो गई। उन्होंने भी इस हीरेको पहचान लिया एवं लिखकर इन्हें आश्वासन दिया—"जीवनके अन्तिम क्षणमें श्रीकृष्ण स्वयं तुम्हें लेने आयेंगे। मेरे कहनेसे उन्हें ऐसा करना पड़ेगा।"

इनकी महानताका इससे अधिक क्या प्रमाण दिया जा सकता है।

मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ कि ऐसी संतका अकारण स्नेह मुझे जीवन भर मिलता रहा।

जब वे रुग्ण शैय्या पर थीं, मुझे एक माहके लिए बाहर जाना पड़ा। जाते समय यह सोचकर मिल कर गया कि पता नहीं लौटने पर शरीर मिले न मिले। लौटने पर दूसरे दिन मैं इन्हें देखने गया। मुझपर सारा स्नेह उड़ेल दिया। कानमें आवाज देनेपर आँखें खोल दी मेरा हाथ पकड़ लिया एवं दूसरे हाथसे कटिको आवृत कर लिया। एकटक देखती रहीं मानो चिरविदा ले रही हों। वहाँ उपस्थित सभीने कहा—ये आपके लौटनेकी ही प्रतीक्षा कर रही थीं। और सच ही दूसरे दिन संध्या छः बजे इन्होंने धाम गमन किया।

सम्मान्या डॉ० निशा भी पूज्या श्रीसंतोषजीकी एक परम अन्तरंग जन रही हैं। उन्होंने भी अपने आन्तरिक भावोद्‌गार व्यक्त किये। उसको भी पढ़नेसे प्रेरणा ही मिलेगी। वह इस प्रकार है—

वस्तुतः सत्य तो यह है कि संत तो श्रीभगवानकी जीवंत प्रतिमा है, प्रकट कल्पतरु हैं। पर विशुद्ध संतका मिलना सहज ही नहीं होता। ***'बिन हरिकृपा मिलहिं नहीं संता।'*** मुझ पर भी श्रीहरिकी अहैतुकी कृपा हो गई। सन् १९८७ के नवम्बर मासका एक सुहावना दिवस था, वह मैं अपनी सहकर्मी डॉ० ज्योतिके साथ वृन्दावन आई हुई थी। पूज्या ऊषा बहिनजी उन दिनों बड़ी कुञ्जमें रही थीं। उन्होंने मुझे नारंग बहिनके साथ सिंधी कालोनीमें एक संत महिलाके दर्शनार्थ भेजा। रास्ते भर नारंग बहिनजी उन संतकी आध्यात्मिक उपलब्धियोंकी चर्चा करती रहीं। जेहलमकी ये भक्तिमती संत छोटी उम्रमें ही वृन्दावन आ गई थीं। पिछले ४० वर्षसे श्रीधामवास कर रही हैं। इन भक्ताकी श्रीठाकुरजीसे निरन्तर संलग्नताकी, अनुभूतियोंकी बातें सुनकर मेरी श्रद्धा, जिज्ञासा और दर्शन-उत्कंठा बढ़ती जा रही थी। बात करते-करते हम उनके घर पहुँच गए।

दरवाजा उन्होंने ही खोला था। मेरे सामने एक गौर वर्णा, दुबली पतली, ऊँचा ललाट और भरे भरे नैंन लिए, सीधे पल्लेकी श्वेत मोटी धोतीमें लिपटी एक आकर्षक विभूति खड़ी थी। यही वह संत श्रद्धेया संतोष बहिनजी थीं। बड़े स्नेहसे वे हमें अन्दर ले गईं, और फर्श पर बिछी बोरी पर जा बैठीं। हम सामने ही बैठ गए। मेरा परिचय था ही क्या जो बताया जाता, पर ''बोबोजीने भेजा है'' नारंग बहिनके मुखसे निकले ये शब्द उसी क्षण मुझे अपनत्वके घेरेमें बाँध गए। प्रणाम करनेके प्रयासको असफल-सा करती, मेरे दोनों हाथ अपने हाथमें ले, मधुर स्वरमें बोलीं—''छोटी बहना है, बहनें प्रणाम नहीं करती।'' दैन्यकी

मूर्ति पू० संतोष बहिनजी की तितिक्षा, अपनत्व और एकमात्र ठाकुर चर्चाने इतना प्रभावित किया कि उनसे सदाके लिए नाता जुड़ गया।

तबतक वृन्दावनवासकी कल्पना भी नहीं थी। श्रीधामके प्रति आकर्षण अवश्य था, श्रद्धा भी थी, पर अनन्य निष्ठा जैसी वस्तुका सर्वथा अभाव था। एक दिन दिल्लीमें संत गुरुमेल सिंहजीके सान्निध्यमें बैठी थी। वहाँ मैं सोच रही थी कि साधुजन-सेवा तथा सत्संगकी चाहको पूर्ण करते हुए मैं बाबाकी छत्र-छायामें रह करके साधु-समाजकी चिकित्सा, सेवाभावसे करूँ। मेरे मनके किसी कोनेमें ऐसी सेवा भावना छुपी थी। एक श्रद्धालुके ऐसा विचार प्रकट करते ही बाबाजी बोले—न, न डाक्टर पुत्त दी तार तां बिन्द्रावन नाल जुड़ी है। एह तां बिन्द्राबन ही जाएगी।

संतजी के वचनोंने मानो मेरा वृन्दावनका मार्ग प्रशस्त कर दिया। संतोंकी कृपा-दृष्टि हुई, वृन्दावनेश्वरीके करुणा-कण छलके और शीघ्र ही वृन्दावनका सुयोग बन गया। पू० संतोष बहिनजीका वह सम्पर्क अपनत्वमें बदलता गया। उनकी छत्रछाया में अधिक समय व्यतीत कर पाना संभव हो गया। लगभग १७ वर्षकी इस अवधि में बहुतसे भक्त चरित उनके मुखसे सुने, संत वाणियाँ सुनी, आध्यात्मिक प्रसंग सुने, साधना-पथकी चर्चाएँ सुनी···जितनी पिपासा, तन्मयतासे वे दिन-रात पढ़नेमें लीन रहती, उतने उत्साह, उमंग और उदारतासे वे सुनाती भी। अक्षय भंडार था उनके पास, जो उनके श्रीमुखसे झरित होता रहता था। उनका हर साधकको सुपात्र बना, ठाकुरके योग्य बनाना, किसी सुनियोजित कार्यक्रमके अन्तर्गत नहीं था। ये तो स्वभाववश किया गया कृपा-दान ही था, उनकी अमृतमयी छलकन थी। न कोई सम्प्रदाय, न कोई आश्रय, न कोई परिकर···पर वे सबकी अपनी थी, सब उनके थे। अहा! ऐसा व्यापक चरित्र···आश्चर्य होता है।

अब मैं (राधेश्याम बंका) अपनी आपबीती कुछ बातें लिख रहा हूँ। उदारहृदया बहिनजी के ममत्वकी छाप मेरे मानसपटल पर है। सन् १९७५ के ग्रीष्ममें मैं गिरिराज भगवान्‌की परिक्रमाके लिये श्रीगोवर्धन धाम गया था। कई स्वजनोंने टिप्पणी की कि १०८ परिक्रमाके लिये यह ग्रीष्मकाल उचित नहीं है, पर मेरी कुछ विवशता थी। इसी ऋतुमें ही समय मिल पाता था। परिस्थितिवशात् ग्रीष्ममें ही जाना पड़ा। अब बहिनजीको मेरी चिन्ता लगी रहती थी कि यह

परिक्रमा-अनुष्ठान निर्विघ्न पूर्ण हो जाय और इस अनुष्ठानके पूर्ण होनेमें उनके ममत्वने बड़ा सहयोग दिया। परिक्रमा-पथ रेतीला था तथा काँटे कंकड़ भी थे। रेतीली राहमें परिक्रमा करनेसे पैरके तलवे घायल हो जाया करते हैं। काँटो-कंकड़की परेशानी थी ही। तलवोंपर लगानेके लिये एक विशेष प्रकारकी पट्टीकी व्यवस्था बहिनजीने की। पट्टीके अलावा औषधि एवं आहारकी सँभाल वे समय-समय पर करती रहती थीं। बहिनजी की ममताने जो छाया दी, वह अविस्मरणीय है।

बहिनजीकी ममताकी छाया अति विशाल थी। न जाने कितने संतों-साधकों-सज्जनोंको इस सुखद छायाके नीचे विश्राम मिला है। व्यक्ति परिचित हो या अपरिचित, सभीके प्रति बहिनजीका करुणामयी स्रोत सदा-सदा बहता ही रहता था। किसीका कष्ट वे देख नहीं पाती थी। बहिनजीकी सेवा-भावना ऐसी निराली थी। सेवा-भावना एवं विनम्रतासे उनका संत-जीवन समलंकृत था।

गोरखपुर स्थित गीतावाटिकाकी दिव्य भाव-विभूति हैं—परम पूज्य बाबूजी एवं श्रीराधा बाबा। अनेक आत्मीयजन वृन्दावनकी यात्रा करनेके पहले आशीर्वाद लेनेके लिये पूज्य बाबाके पास आया करते थे। उन वृन्दावन-यात्रियोंसे पूज्य श्रीबाबा कहा करते थे—''वृन्दावन जा रहे हो तो श्रीसंतोषजी एवं श्रीसरलाजीसे अवश्य मिलना। वे श्री वृन्दावन धामकी एक-दर्शनीय मूर्ति हैं।''

पूज्य श्रीबाबाकी बहिनके प्रति ऐसी आत्मभावना थी और बहिनजीकी भी पूज्य श्री बाबाके प्रति अनोखी श्रद्धा-भावना थी। बहिनजीके सामने जब भी कोई बाधा अड़चन आती थी, तब वे श्री ठाकुरजी (परमादरणीय श्रीघनश्याम दासजी शर्मा) के द्वारा अपनी समस्याका निवेदन करवाया करती थीं और पूज्य बाबा द्वारा कभी प्रत्यक्ष या कभी परोक्ष रूपसे उसका समाधान सुलभ हो जाया करता था। एक बार पूज्य श्रीबाबाने बहिनजीको स्वप्नमें दर्शन देकर किसी एक ऐसे संतसे दीक्षा लेनेसे निवारण किया था, जो भावी जीवनके लिये उपादेय नहीं था। इसका वर्णन आरम्भमें आ चुका है। पूज्य श्रीबाबाके लिये बहिनजीके अन्तरमें श्रद्धाका भाव सदा उमड़ता था। मैं जब भी वृन्दावनसे गोरखपुर आता था, बहिनजी सदा ही पूज्य श्रीबाबाके लिये इलायची तथा भिक्षाके लिये कुछ दिया करती थीं।

बहिनजीके व्यक्तित्वमें एक चुम्बकीय आकर्षण था। इनके पास बैठना

और बैठे-बैठे उनके श्रीमुखसे साधु-संतोंकी भावपूर्ण चर्चा सुनना। इस चर्चाके सुननेमें एक-दो घंटोंका समय बीत जाना सहज था। संत चर्चाको सुननेका लोभ उनके पास जानेके लिये बाध्य कर देता था। संतोंके प्रेरक वृत्तोंका उनके पास अक्षय कोष था। कभी उन संतोंकी चर्चा होती, जिनके सम्पर्कमें बहिनजीको रहनेका अवसर मिला था और कभी उन संतोंकी चर्चा, जो उन्होंने कहीं सुनी थी अथवा कभी पढ़ी थी। प्राचीन संतोंके, आधुनिक भक्तोंके और सूफी-फकीरोंके रोचक प्रसंग उन्हें खूब याद थे। कभी भक्तों-संतोंके आराध्य ठाकुरके अनुग्रहके या प्रीतिके प्रसंग सुनाया करती थीं। इन प्रसंगोंको सुननेका लोभ सीमातीत था। जब कभी वृन्दावनकी यात्रा होती थी तो बहिनजीके पास दर्शनार्थ अवश्य जाता था। बहिनजीका सानिध्य जीवनमें प्रेरणादायक था।

बहिनजीके जीवनका स्वरूप ही प्रेरणाका स्रोत था। केवल कथनी ही नहीं, उनकी करनी और उनकी रहनी जन-जनको संत-जीवन अंगीकार करनेके लिये प्रेरित किया करती थी। साधारण परिवेषमें बहिनजी महान संत थी। वह महानता ऐसी थी कि किसीको उस महानताका आभास न मिल पाये। सामान्यसे लगने वाले व्यक्तित्वमें एक असामान्य संतत्व छिपा हुआ था। ऐसी महाभागा बहिनजीकी स्मृतिसे अन्तर अभिभूत है। संतोचित जीवनको अंगीकार करनेके लिये चुपचाप प्रोत्साहन देनेवाली महाभागा श्रीसंतोष बहिनजीके पावन चरणोंको, उनके पावन जीवनको उनकी पावन जीवन-शैलीको बार-बार प्रणाम।

एक बार मैं, भाई श्रीजयराम तथा बहिन कमलजी दर्शनार्थ बहिन संतोषजीके यहाँ गये। वहीं पर परम सम्मान्य बाबा श्रीमनोहरदासजी भी विराज रहे थे। पहले से ही संतोंकी जीवनकी चर्चा चल रही थी। हमलोग भी बैठ करके सुनने लग गये। बहिन सूफी फकीरोंकी रोचक गाथाएँ सुना रही थी। सुनाते बहिनजीने बहिन कमलजीसे कहा—तू मुझे आखिरी मुगल बादशाह बहादुर शाह जफरकी गजल सुना, जो उनके जीवनकी अन्तिम रचना थी। अँगरेजोंने उन्हें सन् १८५७ में गिरफ्तार करके बर्माके के किसी कैदखानेमें बन्द कर दिया था। बहिनजीकी बात सुन करके बहिन कमलजीने कहा—मुझको याद नहीं है।

वस्तुतः उन्हें याद थी, परन्तु वे उस गजलके गायनसे कुछ कतरा रही थी। संयोगसे वह गजल मुझे याद थी। अब कमलजीको बच पाना कठिन हो गया। मुझे तो केवल गजलकी पंक्तियोंके पहले एक या दो शब्द बतलाने पड़े। फिर

कमलजीने बड़ी सुरीली आवाजमें वह सारी गजल सुनायी। सुनानीकी रीतिकी जितनी सराहना की जाय कम है। वह गजल इस प्रकार है—

लगता नहीं है दिल मेरा उजड़े दियार में।
किसकी बनी है आलमे नापाएदार में॥
इन हसरतों से कह दो कहीं और जा बसे।
इतनी जगह कहाँ है दिले दागदार में।
उम्रे दराज माँग के लाये थे चार दिन।
दो आरजू में कट गये दो इंतजार में।
है कितना बदनसीब 'जफर' दफन के लिये।
दो गज जमीन भी न मिली कूचए यार में॥

बहिन कमलजीने इतने सुन्दर ढंगसे गाया कि मैं बहुत अधिक भावुक हो उठा। भले अन्तर भावुकता था, परन्तु उसको बाहर छलकने नहीं दिया, किन्तु असर गहरा था। इसका फल यह था कि दो दिन तक भले वृन्दावनमें यत्र-तत्र आता-जाता रहता था, परन्तु मन पर एक अनोखी मस्ती सदा सवार रहती थी। इस प्रकार बहिन श्रीसंतोषजी सम्बन्धित अनुभूतियाँ इतनी अधिक और प्रसंग इतने ज्यादा कि सबको लिख पाना सम्भव नहीं है।

जब सन् १९९२ के अक्टूबर मासमें पूज्य बाबाने अपनी इह-लीलाका संवरण किया था, तब शोकाकुल व्यथित हृदय बहिन संतोषजीका एक पत्र मेरे पास आया था। उस विस्तृत पत्रका संक्षिप्तांश इस प्रकार हैं—

जै जै श्रीगोरखपुर
जै जै श्रीगीतावाटिका

हे गोरखपुर! तू धन्य है! हे गीतावाटिका! तू धन्यातिधन्य है। एक सूर्य उदय होकर विश्वको प्रकाशित कर देता है, एक चन्द्र उदय होकर विश्वको शीतलता प्रदान करता है, किन्तु हे गोरखपुर! तेरे यहाँ दोनों ही सूर्य और चन्द्र उदय हुए एक साथ ही। वे सूर्य और चन्द्र तो देवता है और किसीके यन्त्र हैं, पर ये सूर्य-चन्द्र किसीके यन्त्र नहीं। उन सूर्य-चन्द्रके जो यन्त्री हैं, वे ही गोरखपुरके सूर्य-चन्द्रके यन्त्र हैं। ये दोनों श्रीराधामाधव नामके श्रीविग्रह हैं।

गीतावाटिका! तेरे कण-कणमें, लता-पतामें, दर-दीवारमें, जड़-चेतनमें श्रीराधामाधव नाम प्लावित है। गीतावाटिका! तू इस नाम-रससे सींची गयी हैं।

जो उस स्नेहसे लालित-पालित किये गये तेरे पुष्प हैं, वह रस सदा-सर्वदा इन पुष्पोंपर बरसता रहेगा, वह रस कहीं नहीं जा सकता, इन पुष्पोंको सदा-सर्वदा सराबोर किये रहेगा। गुप्त लीलाओंका रस-झरना है यह। गीतावाटिका! कोई क्या कहे तेरे भाग्यको? तेरा सौभाग्य सदा सर्वदा........।

गीतावाटिकाके परम स्नहसे लालित-पालित हे पुष्पों! वह रस-झरना सदा सर्वदा अपने रससे सींचता आया है, सींचता रहेगा।

ये पुष्प साधारण नहीं, किन्हीं स्नेह-सुधासे सिंचित किये हुए हैं।

गीतावाटिका! तुझे तेरे कण-कणको शत्-शत् कोटि-कोटि प्रणाम।

धीरे-धीरे बहिन संतोषजीके जीवनको वार्धक्यने आ घेरा। जीवनके अन्तिम दिवसोंमें वे बहुत अस्वस्थ रहने लगीं। उपचारकी व्यवस्था सीमातीत थी। जिन-जिनसे आन्तरिक लगाव था, वे सभी बहिन भाई उनकी सेवामें तत्पर थीं कि बहिनजीके स्वास्थ्यमें सुधार आ जाय। इन्हीं दिनोंका एक अति भावभरा प्रसंग हैं—

अपनी इसी दीनताके कड़े सुरक्षा कवचसे वे यदाकदा चुपकेसे कृपादान भी कर जाती थीं। अक्सर वस्तु प्राप्त होनेपर हम समझ ही नहीं पाते कि वास्तवमें इनके प्रदाता कौन हैं। यहाँ तक कि प्राप्त वस्तुका सही मूल्यांकन भी नहीं कर पाते। बहिनजीके जानेसे कुछ ही पहलेकी बात है। प्रेम बहन इंग्लैण्डमें मनोचिकित्सक हैं और श्रीधाममें उनकी अगाध श्रद्धा है। वर्षमें तीन चार महीने छुट्टी लेकर वे वृन्दावन रहती हैं। श्रीबिहारीजी के प्रति और उनके प्राकट्यके आधार स्वामी हरिदासजी के प्रति प्रेमजीकी अद्वितीय निष्ठा थी, पर साधकको इस पथमें शंकाओं और बाधाओंके निवारणार्थ संतोंका आश्रय आवश्यक हो जाता है। पू० बहिनजी तो सबकी गति-मति थीं। प्रेमजी भी संतोष बहनजीके अति स्नेहकी भागी रहीं तथा उनसे हर प्रकारका समाधान प्राप्त करती रहीं।

एक दिन प्रेम बहन अपने मनकी लालसा और प्रभु दर्शनकी त्वरा लिये पू० बहिनजी के आगे करुण क्रन्दन रही थीं। संतोष बहिनजी सबकी व्यथाको बहुत ही सहानुभूतिसे सुनती थीं। आज प्रेम बहन बहुत ही विह्वल थीं। साधकको अपने प्रयासोंपर तो वैसे भी भरोसा नहीं होता, संत कृपाका ही बल होता है। लो, संत संतोषजीका हृदय द्रवित हो गया। प्रेमके अश्रु

उनके उर अन्तरको भिगो गए। वे भी आकुल व्याकुल हो उठीं। बोलीं—"मुनिया, आज तुझे एक चीज दूँ।"

वे उठीं और बहुत ही मुश्किलसे आलमारी तक जा, कुछ ढूँढ़ने लगीं। थोड़ी देर बाद ही आँचलसे एक चित्रको साफ कर, माथेसे लगा, प्रेमजीके हाथोंमें धरते हुए बोलीं—"आज से ये तेरे गुरु हुए, ये ही तेरा पथ-प्रदर्शन करेंगे।"

प्रेमजी प्रमुदित सी "राधाबाबा" का वो चित्र निहार रही थी और बहिनजी उनसे कह रही थीं "मैं सच्चे मनसे उनसे विनती करती हूँ कि वे तुम्हें अपनाएँ, तुम्हें ठाकुरसे मिलायें। मैं साधिकार उनसे कहूँगी, वे मुझ पर कृपा करनेसे पहले तुझ पर कृपा करें।"

निश्चय ही इन बरबस छलकती कृपादृष्टिको सहेजना प्रेम बहनके लिए इतना सहज न था। वह फिर रो पड़ीं। अश्रुधारासे कपोल ही नहीं, आँचल तक भीग गया। पू० राधा बाबाका वह चित्र संतोष बहिनजी द्वारा प्रदत्त एक अमूल्य निधि ही था और इस कृपादानकी प्रक्रियाका विधिवत् दीक्षासे क्या कम महत्त्व है?

अब बहिनजी के अन्तिम दिवस आ गये थे। नियम है कि भगवान् सूर्यदेवका यदि उदय निश्चित है तो संध्या कालमें उनका छिप जाना भी निश्चित है, जिसे सूर्यास्त कहा जाता है। कार्तिक पूर्णिमाके दिन जिस 'भाव-सूर्य' का उदय पंजाबमें झेलममें हुआ था, वह 'भाव सूर्य' वृन्दावनमें श्यामला श्रीयमुनाके पावन पुलिन पर सर्वदाके लिये छिप गया। २ अगस्त २००४ के दिन पूज्य बहिन अपने परमाराध्य श्रीश्रीप्रिया प्रियतमके पास सदाके लिये चली गयीं।

पूज्या बहिनजीका अन्तिम संदेश था—गोपीभाव सर्वोपरि है। गोपीभाव साध्य है और साधना भी है। अपनेको मिटा देना ही सर्वोपरि साधना है। ममत्व न रहे, अहं न रहे, फिर वही रह जायगा। फिर सारा काम बन जायगा। बस एकमात्र वही रह जायेगा।

उनके जीवनका आदर्श रहा है—

न सुनो गर बुरा कहे कोई। न कहो गर बुरा करे कोई॥
रोक लो गर गलत चले कोई। बख़्श दो गर खता हो कोई।

उदयपुरवाली क्षत्राणी मैयाजी

मथुराकी श्रीकृष्ण-जन्मभूमिपर श्रीभागवत-भवनका ऐतिहासिक शिलान्यास सं० २०२१ वि० माघ शुक्ल १० वृहस्पतिवार, ११ फरवरी १९६५ के शुभ दिवस हुआ था। शिलान्यासका कार्य हुआ पूज्य बाबूजीके कर-कमलों द्वारा। शिलान्यासोत्सव २० दिनोंतक चलता रहा और लगभग तीन सप्ताहतक पूज्य बाबूजी वहीं रहे। पूज्य बाबूजीके साथ पूज्या माँ तथा पूज्य बाबा थे ही। साथमें अनेक भक्तगण भी थे। इन सभीके ठहरनेकी व्यवस्था बिड़ला मन्दिरमें की गयी थी, जो मथुरा और वृन्दावनके मध्य प्रकृतिके सुरम्य वातावरणमें स्थित है। पूज्य बाबाका कठोर मौनव्रत चल रहा था और उनका निवास बिड़ला मन्दिरकी धर्मशालाके सर्वथा एकान्त कमरेमें था।

पूज्य बाबाका दर्शन सहज नहीं था। जिनको दर्शन करना होता, उनको पूज्य बाबूजी अपने साथ लेकर पूज्य बाबाके कमरेमें ले जाया करते थे। एक बार वृन्दावनके सम्मान्य पण्डित श्रीलक्ष्मीनारायणजी वैद्यराज पूज्य बाबाके दर्शनार्थ वृन्दावन बिड़ला मन्दिर आये। श्रीवैद्यजीकी पूज्य बाबाके प्रति अगाध श्रद्धा थी। श्रीवैद्यजी थे तो उदयपुरके निवासी, परन्तु अब स्थायी रूपसे वृन्दावन-वास कर रहे थे। श्रीवैद्यजीकी वृन्दावनी रस-साधनाका आधार ग्रन्थ था श्रीराधा-सुधा-निधि और सुधामें सुध-बुध खोये वे श्रीप्रिया-प्रियतमका लाड लडाया करते थे। पूज्य बाबूजी और पूज्य बाबाके मनमें भी वैद्यजीके प्रति बड़ा आदर-भाव था।

पूज्य बाबूजी श्रीवैद्यराजजीको साथ लेकर पूज्य बाबाके कमरेमें गये। श्रीवैद्यराजजीके साथ उदयपुरकी कोई क्षत्राणी माताजी भी थीं, जो न तो युवती थीं और न वृद्धा। जब श्रीवैद्यजी और उन क्षत्राणी माताजीको साथ लेकर पूज्य बाबूजी पूज्य बाबाके पास जाने लगे तो अनेक दर्शनोत्सुक लोग भी पीछे-पीछे लग लिये। पूज्य बाबावाले कमरेमें साथवाले दर्शनार्थियोंको लेकर पूज्य बाबूजी ज्यों ही पहुँचे, श्रीवैद्यजीने भूमिपर माथा लेटकर साष्टांग प्रणाम किया। सभीने मस्तक नवाकर वन्दन किया। पूज्य बाबूजीने मौन बैठे हुए पूज्य बाबाको श्रीवैद्यजीका नाम बतलाया।

इसके बाद कमरेमें घोर निस्तब्धता छा गयी। सभी चुपचाप खड़े एकटक पूज्य बाबाकी पूर्णतः मौन आकृतिको, पर भावमयताकी दृष्टिसे पूर्णतः मुखर

स्थितिको निहार रहे थे। सभी विभोर हो रहे थे पूज्य बाबाका दर्शन करके। इन विभोर दर्शनार्थियोंमें वे क्षत्राणी माताजी भी श्रीवैद्यजीके साथ पूज्य बाबूजीके बगलमें खड़ी थी। उन अतिविभोरा माताजीके हृदयमें पूज्य बाबाका दर्शन करते-करते इतना अधिक वात्सल्य उमड़ा कि उन्होंने अपने स्तनका अग्रभाग पूज्य बाबाके श्रीमुखमें दे दिया। उन माताजीके मनमें न तो कुछ संकोच हुआ और न तनिक भय। वहाँ पूज्य बाबूजी, श्रीवैद्यजी तथा अन्य कई लोग खड़े थे, पर उन्हें किसी प्रकारकी कोई हिचक नहीं हुई। उन वात्सल्य-भावापन्ना माताजीने अपना स्तनाग्र भाग पूज्य बाबाके मुखमें देकर कहा—ले, दूध पी ले।

पूज्य बाबूजी वहाँ खड़े ही थे, पर बाबूजीने उन्हें रोका नहीं। वहाँ कई लोग खड़े थे, पर किसीने भी न रोका और न टोका। जब बाबूजी वहाँ उपस्थित हैं और जब वे नहीं रोक रहे हैं, तब भला दूसरा व्यक्ति रोकने-टोकनेका प्रयास कैसे करता? इस अप्रत्याशित दृश्यको देखकर सबकी मनस्थिति बड़ी विचित्र थी। कोई जडवत् खड़े-खड़े इस दृश्यको देख रहा था कि यह क्या अनहोनी बात घटित हो गयी। कोई आश्चर्य कर रहा था कि क्या महिला गुरुजनोंके सामने ऐसा दुस्साहस कर सकती हैं। कोई उन माताजीको मन-ही-मन कोस रहा था कि अब पूज्य बाबाको नारी-स्पर्शके कारण चौबीस घंटेका उपवास करना पड़ेगा और कोई सराह रहा था उन माताजीके सौभाग्यको कि वे अब पूज्य बाबाके लिये मातृस्थानीया और सम्माननीया हो गयीं। सभी उपस्थित लोगोंकी भावधारा अपने-अपने ढंगकी थी, पर पूज्य बाबूजी इस दृश्यको देखकर खड़े-खड़े मुस्कुरा रहे थे। जो भी हो, पूज्य बाबा तो पूर्णतः निस्पन्द बैठे रहे। न शीशमें कम्पन, न नेत्रोंमें कम्पन, न भौंहोंमें कम्पन, न अधरोंमें कम्पन, न कर-पदमें कम्पन, बस अंग-यष्टि आदिसे अन्ततक निश्चेष्ट-निर्विकार बैठे रहे। कुछ क्षणोंके बाद वे माताजी पीछे हटीं और फिर सभी लोग कमरेके बाहर आ गये। इसके बाद वे माताजी श्रीवैद्यजीके साथ वृन्दावन चली गयीं।

माताजीके चले जानेके बाद पूज्य बाबूजीने पूज्य बाबासे पूछा—नारी-स्पर्श होनेसे क्या आप उपवास करेंगे?

पूज्य बाबाने कहा—नहीं, उपवास नहीं करूँगा।

पूज्य बाबाने उपवास नहीं किया, पर उन माताजीके उमड़ते वात्सल्यकी चर्चा कोने-कोनेमें, अधर-अधरपर बहुत दिनोंतक बनी रही।

बहुत दिनों बाद इस घटनापर टिप्पणी करते हुए पूज्य बाबाने कहा था—देव-जगतकी घटनाओंको ब्राह्मी सृष्टिके साधारण नियम अनुशासित नहीं कर पाते। दैवी स्तरकी लीलाएँ लोकातीत होती है। इन सांसारिक नियमोंका शासन बहुत निचले धरातलतक ही सीमित रहता है।

आदरणीया श्रीराजकुमारीजी दीक्षित

(प्रयागवाली मैया)

श्रीभाईजीका सहज व्यवहार

पूज्या मैया सम्मान्य श्रीरामप्रसादजी दीक्षितकी सहधर्मिणी थी। आपकी और आपके पूरे परिवारकी पूज्य बाबूजी एवं पूज्य बाबाके प्रति अगाध श्रद्धा थी। बात सन् १९५६ की है, जब श्रीभाईजी और बाबा तीर्थयात्रा ट्रेनसे इलाहाबाद आये थे। मुझपर, श्रीजजसाहबपर और मेरे परिवारपर श्रीभाईजी और बाबाकी विशेष कृपा रही है। इस सभीके लिये वे परम श्रद्धेय हैं। जब ट्रेन इलाहाबाद स्टेशनपर प्रातःकाल पहुँची तो श्रीभाईजी, बाबा तथा सभी तीर्थ-यात्री त्रिवेणी संगमपर स्नानके लिये चले गये। स्नानके बाद यात्रीगण मुख्य-मुख्य दर्शनके लिये चल पड़े। बाबा मेरे घर चले आये। मेरे घरपर ही बाबाके विश्रामकी व्यवस्था की गयी। श्रीभाईजी श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीजीसे मिलनेके लिये गंगाजीके उसपार झूसी चले गये।

बाबा मेरे घरपर बड़े प्यारसे सभी बातें करते रहे। बाबा वहीं बैठे हुए थे, जहाँ उनके लिये भिक्षा बनायी जा रही थी। अत्यधिक शुद्धता तथा पवित्रताके साथ भिक्षा बनायी गयी। लगभग चार बजे अपराह्नकालमें भिक्षा बनकर तैयार हो गयी। भिक्षा बन जानेके बाद मैंने बाबासे ग्रहण करनेके लिये अनुरोध किया। मेरे अनुरोधको सुनकर बाबा कुछ क्षण स्तब्ध रहे फिर बोले—मैया! मेरे लिये तो एक धर्म-संकट उपस्थित हो गया है।

बाबाके इस उत्तरको सुनकर मेरा चित्त कुछ अस्त-व्यस्त हो उठा। ऐसे उत्तरकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। कुछ व्यग्र स्वरमें मैंने पूछा—बाबा! क्या बात हो गयी?

बाबाने कहा—एक ओर तुम्हारा प्रबल वात्सल्य और दूसरी ओर मेरा

नियम-निर्वाह, इन दो बातोंको लेकर मेरे मनमें द्वन्द्व मचा हुआ है। तुम्हारे प्यारको देखकर मनमें ऐसा भाव उठता है कि भिक्षा ग्रहण कर लेनी चाहिये, परन्तु मेरा नियम है कि जिस घरमें श्रीपोद्दार महाराज भोजन करते हैं, वहीं मैं भिक्षा किया करता हूँ। मैं निश्चित नहीं कर पा रहा हूँ कि क्या करूँ?

यह सुनते ही मैंने कहा—इसमें धर्म-संकटकी बात ही क्या है? आपका नियम भंग क्यों हो? ऐसी जल्दी क्या है? श्रीभाईजी यहाँ भोजन कर लें, उसके बाद आप भिक्षा कीजियेगा।

इस उत्तरको सुनकर बाबाको संतोष हो गया। उनको तो संतोष हो गया, पर मेरे मनमें उथल-पुथल मच गयी। मैं विकल मनसे सोचने लगी—श्रीभाईजी झूसी ब्रह्मचारीजीके पास गये हुए हैं। वे सबेरे गये थे और अब तीसरा पहर हो रहा है और क्या श्रीब्रह्मचारीजीने उनको भोजन नहीं कराया होगा? यदि वे वहाँ भोजन करके आयेंगे तो फिर बाबा यहाँ कैसे भिक्षा ग्रहण करेंगे? तो क्या बाबाको भूखा रहना पड़ेगा?

इस तरहकी कई बातोंको सोच-सोच करके मेरे मनकी विकलता और खिन्नता पल-प्रति-पल बढ़ती जा रही थी। वर्तमान परिस्थितिमें कोई उपाय भी नहीं था। व्यग्र मनसे मैं भगवानको और भाईजीको याद करने लगी। मेरी विकलताके थोड़ी देर बाद ही श्रीभाईजीने मेरे घरके प्रवेश-द्वारमें प्रवेश किया। उनके साथ पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी और श्रीचक्रपाणिजी महाराज थे। साथमें और भी बहुत-से लोग थे। श्रीभाईजीको आते देखकर मेरा मन विस्मय और प्रसन्नतासे भर गया। मैं रसाई घरके पास थी। श्रीभाईजी सीधे मेरे पास आये और कहने लगे—मुझे भूख लगी है। जल्दी कुछ खानेको दो।

मुझे तो उनके आनेपर विस्मय हो रहा था और अब उससे भी बढ़कर विस्मय हो रहा था भोजन माँगनेके ढंगको देखकर। सदा ही ऐसा होता रहा है कि आसन बिछाया जाता था, उसपर श्रीभाईजीको सम्मान पूर्वक बैठाया जाता था, फिर थाली परोसकर रखी जाती थी, पर आज तो एक विचित्र रूप देखनेको मिल रहा था। इस अचानक माँगको देखकर मैं हड़बड़ा गयी कि क्या करूँ और क्या न करूँ? मैं आसन बिछानेका उपक्रम करने लगी तो श्रीभाईजीने कहा—व्यर्थ देरी कर रही हो। मैंने बताया ना, मुझे जल्दी है! तुम मुझको जल्दी भोजन दे दो।

उस हड़बड़ीमें मैं सोच नहीं पायी कि क्या उचित है और क्या अनुचित है। उस शीघ्रतामें आसन बिछानेकी बात ही दिमागसे गायब हो गयी। जैसे श्रीभाईजीने कहा, वैसे ही जल्दीमें मैंने उनको थाली परोसकर भोजन दे दिया। थाली लिये हुए श्रीभाईजी कमरेके अन्दर जाकर और टेबुल-कुर्सीपर बैठकर भोजन करने लगे। यह टेबुल बच्चोंके पढ़ने-लिखनेके काममें आया करती थी, अतः छोटी थी और इसपर बच्चोंके स्कूलकी किताब-कापियाँ रक्खी हुई थीं। इसी टेबुलपर एक किनारे थाली रखकर श्रीभाईजी भोजन कर रहे थे। आज तो सारे ही कार्य विस्मयपूर्ण हो रहे थे और उधर बाबा, श्रीब्रह्मचारीजी, श्रीचक्रपाणिजी आदि समागत लोगोंसे खड़े-खड़े बातें कर रहे थे। मुझे मेरी आँखोंपर विश्वास नहीं हो रहा था कि क्या श्रीभाईजी इतने सामान्यातिसामान्य स्तरपर अपनेको उतार ला सकते हैं। आँगनमें ही समाजका वह सम्मान्य संत-समुदाय खड़ा-खड़ा पारस्परिक चर्चा कर रहा था और वहीं सबके समादरणीय श्रीभाईजी अपने बड़प्पनको सर्वथा भुलाकर और नितान्त सामान्य स्तरपर स्वयंको लाकर बड़े ही सहज भावसे खाना-पीना कर रहे थे। उन्होंने भोजन करनेमें अधिक समय नहीं लगाया। कुछ ही मिनटोंमें खाकर और हाथ-मुँह धोकर उस संत समुदायके साथ चले गये।

आज श्रीभाईजीका एक अद्‌भुत स्वरूप देखने मिला। उनके चले जानेके बाद मैं बाबाकी भिक्षाकी तैयारी करने लगी और उस समय मेरे विचारोंके प्रवाहमें एक मोड़ आया—क्या श्रीभाईजीको मेरी विकलताकी जानकारी हो गयी थी, जो थोड़ी देरके भीतर ही मेरे घरपर आ गये और क्या उस उलझनपूर्ण परिस्थितिकी भी उन्हें जानकारी हो गयी, जो वे तुरन्त आकर भोजन करने लग गये? मैं कुछ निर्णय नहीं कर पायी, पर उस समय मेरा मन कितना अधिक श्रद्धापूरित हो उठा था और श्रीभाईजीके चरणोंको कितनी देर प्रणाम करता रहा था, यह मैं कैसे बतलाऊँ? भिक्षा करते-करते बाबाने कहा भी था—आज श्रीपोद्दार महाराजने तुम्हारी बात रख ली।

कानपुरवाली श्रीअनुसुइयाबाई एवं पम्मीकी पूज्या माताजी

कानपुर महानगरके विख्यात धनपति हैं श्रीमोतीलालजी। आपकी सहधर्मिणी थी परमसम्मान्या बहिन श्री अनुसुइयाजी। सं. २०३५ वि. २०३५ वि. कार्तिक शुक्ल २, गुरुवार, २-११-७८ का मंगलमय प्रभात है। आज भातृ द्वितीया है। जिन-जिनने पूज्य बाबाको अपना भाई मान रखा है, उनकी याद पूज्य बाबा कर रहे हैं। प्रात:कालका अवसर है। पूज्य बाबाने कहा—यह कथा पुराणमें आती है। यमराजजीकी बहिन श्रीयमुनाजी हैं। भगवानने यमराजके लिये बड़े कठोर कर्तव्य निर्धारित किये हैं। कर्म भले ही कठोर हो, पर वे तो भगवानकी आज्ञा मानकर प्राण-हरण जैसे कठोर कर्म भी करते रहते हैं। वे क्या करें? उनको आज्ञा ही इस प्रकारकी दी गयी है। सच पूछा जाय तो यमराजके रूपमें भगवान ही हैं। कार्तिक शुक्ल द्वितीयाको यमराजजी अपनी बहिन यमुनाजीके यहाँ पधारे। यमुनाजीने अपने भाईका स्वागत-सत्कार बड़े उत्साहके साथ किया। श्रीयमराजजीसे बहिन यमुनाजीने यही याचना की—आजके दिन जो भाई अपने बहिन हाथका दिया हुआ खाये, उस भाईपर एक वर्षके लिये अर्थात् इस भैया दूजसे लेकर अगले भैया दूजतक आपकी कराल दृष्टि कम-से-कम पड़े।

श्रीयमराजजीने उसे यही वर दे दिया। आजके दिन कुछ खिलानेके निमित्तसे बहिन अपने शुभ कर्मकी राशिमें कुछ शुभ कर्म अपने भाईको प्रदान करती है। यह शुभ कर्म राशि भाईके जीवनमें मंगलकी सृष्टि करती है। बहिनके इस दानसे अभिभूत भाई बहिनको कुछ न्योछावर देता है। यह न्योछावर परम पवित्र होता है। भैया दूजके दिन जो धन भाई अपनी बहिनको देता है, वह धन परम शुद्ध होता है।

कुछ क्षण ठहर करके बाबा अपने अनुभवकी बात कहने लगे—कई बहिनोंने अपनी ऐसी धनराशि मुझे दी। अपने-अपने भाइयोंसे मिली धनराशिको इकट्ठा करके उन-उन बहिनोंने मेरे किसी अनुष्ठान कार्यके लिये वह धनराशि मुझे दी। मैं तो द्रव्यका स्पर्श करता नहीं। किसीको सुरक्षित रखनेके लिये कह देता था। उस परम शुद्ध धनराशिसे जो कार्य अनुष्ठित हुए, उनमें बड़ी सफलता मिली। मेरी अनेक धर्म बहिनें हैं। कुछ मुझसे छोटी, कुछ मुझसे बड़ी, कुछ निर्धन, कुछ धनी। धनी बहिनोंमें अनुसुइया बहिनका स्वरूप आदर्श है। ये हैं

श्रीकमली मैयाकी बहिन। आजसे लगभग बीस-पच्चीस वर्ष पहलेकी बात है। अनुसुइयाने कहा—बाबा! मेरे कोई भाई नहीं है। आप मेरे भाई बन जाइये।

उसके ऐसा कहनेपर मैंने उसको अपनी बहिन स्वीकार कर लिया। तबसे आजतक अपने प्यारको निभाती आ रही है। प्रत्येक वर्ष किसी-न-किसी प्रकारसे ब्राह्मणके हाथ वह भैया दूजके दिन मिष्ठान्न-फल आदि भेजती है। इसके बदलेमें मैं क्या दूँ? मैं तो संन्यासी हूँ। लौकिक दृष्टिसे देनेके लिये मेरे पास कुछ नहीं है, पर मेरे पास एक वस्तु है 'भगवान्'। विश्वास करें, मेरे पास भगवान् हैं और मेरे द्वारा भगवान् दिये जा सकते हैं। मैं भगवान् दे सकता हूँ और देता हूँ। अब प्रश्न यह है कि मेरे द्वारा प्रदत्त वस्तुको वह कितना ले पाती है और किस सीमातक सँभालकर अपने जीवनमें रख पाती है। यदि वह नहीं रख पाती है तो उसकी ही कमी है। कुछ भी हो, किसी भी प्रकारसे वह मुझे अपना माने तो सही। यदि वह मुझे सही मनसे अपना मानेगी तो एक-न-एक दिन उसके जीवनमें भगवान् भर जायेंगे। श्रीप्रमोदमाथुरकी माताजी मुझे भाई मानती हैं। उसका परिवार अति साधारण स्तरका है। उसकी आर्थिक क्षमता ऐसी नहीं है कि पुष्कल मात्रामें सामग्री भेज सके। वह किसी प्रकारसे एक मोसम्मीकी व्यवस्था करके स्वयं आती है और मुझे देती है। वह मुझे अपना भाई मानती है, यह उसके जीवनमें शुभकी प्रतिष्ठा करेगा और उसके जीवनको, हृदयको भगवद्भावसे पूर्ण कर देता है।

कानपुरसे आदरणीया अनसुइयाबाई समय-समयपर पत्र पूज्य बाबाके नाम लिखा करती थीं। पत्र मारवाड़ी भाषामें है। नमूनेके रूपमें दो पत्र उद्धृत किये जा रहे हैं।

परम पूज्य श्री १०० श्रीबाबाके चरणोंमें सादर सविनय प्रणाम बंचना। आपको स्वास्थ्य कैसा है। आपकी कृपा सब राजी है सबका आपक श्रीचरणोंमें प्रणाम बंचना। बाबा रात न आपका श्रीभाईजी दर्शन होया। जीवन म पहोली बार आपका दर्शन होया। एक क्षण ही दर्शन होया। आप बोल्या भी नहीं। भोत जी राजी होयो। आपका वस्त्र सफेद था अइयाँ ही कभी दर्शन दे दिया करो। बड़ी कृपा होवैगी। बाबा आपकी कृपासे परागकी रक्षा हुई। आपकी क्षत्र छाय स सकुल आ गयो। बाबा मेरो मन भगवान् म नहीं लाग ह! न भगवान् लिये छटपटानो होव है। मेरो मन पत्थर को बनो है आपकी कृपा स ही होवगो।

साधन भजन कुछ नहीं बने है। आपकी कृपा स ही होवगो। खाली चुपचाप बैठी रहुँ हुँ म जिसी हुँ जिसी आपकी ही हुँ आपकी कृपा की बाट देखू हुँ गन्दा संस्कार जो भरा वह निकले कोनी आवरण मिटे कोनी आपकी कृपा ही काम करगी मेर म तो बुद्धि न बल न साधन ही योग्यता ह बाबा क चरण म बेर बेर प्रणाम स्वीकार होवै गलती लिखी क्षमा करियो।

आपकी पगली बहन अनसुइया

पूज्य श्री १००८ परम पूज्यनीया श्रीबाबा क चरणम मेरा सादर पावांधोक प्रणाम बंचना घनमान सेती। आपको तबियत कैया हैं आप भोत कमजोर हो गया सुनो ह बाबा आपक चरणा म सब बच्चा का पावाँधोक बंचना गोर क हाट को अपरेश होन वालो हैं बाबा आप ही रक्षा करोगा। मेरो मन आपक दर्शना क लिये कर रयो पर मेर सरीर भोग भोत ही प्रबल हो रहा पित्तकी थैली म पथरी हो गयी कान म छेद हो गयो मवाद आव है सुनायी भी कम पड़े है सरीर भोग तो भोगनी ही पड़ेगी थार सिवाय कन कहुँ कुन सुंने थे जीरा गोविन्द की रक्षा करी जैया गोर की आप ही करोगा ८ ता न जावेगा अठे जाकर ता० नक्की होवगी आप न खबर करती रहुँगी थारो भरोस है भजन साधन कुछ नहीं होव आप कयो थो कि चुपचापर बैठी रह सो चुपचाप बैठी मेरी डोरी थारे हाथ है श्रीबाबा क चरण म बेर बेर प्रणाम स्वीकार होवे मेरी गलती लिखी क्षमा करियो मैं तो थारी छोटी बहन हूँ छोटा गलती करे बड़ो क्षमा करे बाबा म तो पगली हुँ पढ़ी लिखी भी नहीं हुँ जिसी भी हुँ थारी हुँ।

आपकी कृपाकी

भिखारी छोटी बहन अनसुइया

बहिन श्रीईरानीजी

उच्छिष्ट कणोंका प्रभाव

एक अमेरिकन माताजी थीं। उनका नाम था श्रीईरीन। वे पूज्य बाबाके सम्पर्कमें आयीं तब, जब १९६५ में श्रीभागवत भवनका मथुरामें शिलान्यास हुआ था। शिलान्यासके निमित्तसे ही पूज्य बाबूजी और बाबा गोरखपुरसे मथुरा गये थे और मथुरा-वृन्दावनके मध्य बिड़ला मन्दिरमें ठहरे थे। पूज्य बाबा तो सर्वथा मौन रहते थे। उनके मौनमें कोई बाधा उपस्थित न हो, इसीलिये उनका कमरा एकदम अलग था, पर कभी-कभी वे बाहर निकलते ही थे। बस, इसी अवसरके ताकमें वे माताजी रहा करती थीं और जब भी दर्शन मिलता, वे पूज्य बाबाको एकटक निहारती रहती और आँसुओंकी धारसे अपने कपोलोंको भिगोती रहतीं। इन माताजीने किसीसे संन्यासकी दीक्षा ले ली थी और नया नाम था श्रीसत्यप्रेमानन्दजी। इनका एक नाम मञ्जुश्री भी था। वे भारतमें आध्यात्मिक उद्देश्यको लेकर आयी थीं और अनेक आश्रमों और संतोंके पास गयीं, किन्तु उनका मन कहीं भी न रम पाया और न टिक सका। वे तो उन्मुक्त स्वरसे कहती थीं—मुझे गीतावाटिकाके श्रीराधा बाबा जैसा खरा संत अभीतक मिला ही नहीं।

पूज्य बाबा के प्रति उनकी श्रद्धा अगाध थी। यह श्रद्धा भावना इतनी अधिक बढ़ गयी थी कि वे पूज्य बाबाके पत्तलके उच्छिष्ट प्रसाद रूपमें पानेके लिये गहरी चाह करने लगी। वे देखती रहती थीं कि पूज्य बाबाकी भिक्षा हो जानेके बाद उनके अनन्य सेकक श्री भगतजी जूठी पत्तल कहाँ फेंका करते हैं। वे ताकमें तो थीं ही कि पूज्य बाबाका कोई उच्छिष्ट प्रसाद पानेको मिले। एक बार जूठी पत्तल चुपचाप चोरी-चोरी प्राप्त करनेमें उन्हें सफलता मिल गयी। श्रीभगतजीद्वारा फेंकी गयी पत्तलमें यहाँ-वहाँ कुछ उच्छिष्ट कण तो चिपके हुए थे ही। श्रीमञ्जूश्रीने उन उच्छिष्ट कणोंको बड़ी श्रद्धापूर्वक पा लिया । उन कणोंको खाते ही उनमें भीतर-ही-भीतर विस्मयकारी परिवर्तन होने लगा और विचित्र अनुभूतियाँ होने लगी। जो कुछ भी उनके अनुभवमें आया, उन सबको उन्होंने स्वयं ही पूज्य बाबाको बतलाया। उनकी बात सुनकर बाबाने उनसे कहा—आपके सारे षट्-चक्र सक्रिय हो गये और अनोखी-अनोखी अनुभूतियाँ होने लगीं, यह सब पत्तलके उच्छिष्ट कणोंके सेवनका प्रभाव नहीं है, अपितु आपकी श्रद्धाका परिणाम है।

पूज्य बाबाने भले ऐसा कहा, पर श्रीमञ्जुश्री माताजी इसे माननेके लिये तैयार नहीं थीं। उनकी भावना यही थी—पूज्य बाबा स्वयंको छिपाये रखनेके लिये ऐसा कह रहे हैं। यदि मेरी श्रद्धाका परिणाम है तो उच्छिष्ट कण ग्रहण करनेके पूर्व ऐसा क्यों नहीं हुआ और उन उच्छिष्ट कणोंको ग्रहण करते ही यह विस्यकारी परिवर्तन कैसे क्यों हो गया?

उनकी सुदृढ़ मान्यता था कि जिनके उच्छिष्ट कणोंका यह प्रभाव है, वे स्वयंमें न जाने कितने महान होंगे।

भक्तिमती पूज्या बहिन श्रीललितादेवी डालमिया

आदरणीया बहिनजी विश्व हिन्दू परिषदके अध्यक्ष एवं हिन्दुत्व विचारधाराके प्रबल समर्थक एवं पोषक परम सम्मान्य श्रीविष्णुहरिजी डालमियाकी धर्मपत्नी थीं। आधुनिक शिक्षा-प्रणालीके अनुसार उच्च स्तरीय शिक्षामें शिक्षित होनेके कारण पूज्या बहिनके व्यक्तित्वमें आधुनिक चिन्तन-पद्धतिकी प्रधानता थी, परन्तु उनका विवाह ऐसे परिवारमें हुआ, जो प्राचीन परम्पराओंको माननेवाला था। वंशानुवंशी चली आनेवाली प्रथाओंकी परिवारमें बहुलता थी। संतों-महात्माओंके प्रति अत्यधिक समादर था। परिवारमें संतानुमोदित ठाकुर-पूजा-अर्चनका क्रम विधिवत् नित्यप्रति हुआ करता था (और है।) यह पूज्या बहिनजीके व्यक्तित्वका लचीलापन था कि उन्होंने परिवारके पारम्परिक साँचेमें अपने व्यक्तित्वको ढाल दिया और सभीके लिये समादृता हो गयीं।

पूज्या बहिनजीके व्यक्तित्वमें आध्यात्मिक भावनाका अस्तित्व प्रचुर स्वरूपमें था। नारी समाजोचित व्रतों-अनुष्ठानोंका पालन उनके द्वारा होता था। श्रीमद्भगवद्गीताके मतके अनुसार उनकी भावना रहा करती थी कि जन-जनकी सेवा करो, परन्तु बदलेमें किसी प्रत्युपकार या प्रतिदानकी अपेक्षा मत रखो।

पूज्या बहिनजीका ध्यान अनेक समाज-सेवी संस्थानों एवं संस्थाओंसे था। उदाहरणके लिये कुछ नाम प्रस्तुत किये जा रहे हैं—गीतावाटिकाका कैंसर अस्पताल, गोरखपुरका कुष्ठ आश्रम, अन्ध बालक विद्यालय, वृद्ध विश्रामालय, चिन्मय मिशन, मथुराका श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान आदि-आदि। पूज्या बहिनने जो सेवा की, वह मूकभावसे। इसमें आत्म प्रतिष्ठाके प्रचारकी भावना नहीं थी।

पूज्य बहिनजीको प्रकृतिसे बड़ा प्यार था। मेघावलीकी मूसलाधार वर्षामें झरती धारोंका मधुर संगीत, पक्षियोंकी चहचहाट तथा फुदकन, पवनके गुदगुदी करनेवाले झकोरे आदि-आदि उन्हें प्रिय था। एक फार्म था, जहाँ गोशाला थी। गायोंके चरीका उत्पादन तथा गायोंकी उचित प्रकारसे सेवा-सँभाल हो रही है अथवा नहीं, इसके प्रति वे बहुत सचेत थीं।

उनका विशुद्ध चिन्तन सीमित परिधिके भीतर बन्दी रहनेवाला नहीं था। वे अपने पुत्रोंसे कहा करती थीं—विश्वके देशोंका परिचय प्राप्त करो और अपने ज्ञानकी सीमाको विस्तृत करनेके लिये विदेश यात्रा भी करो।

इतना सब तो था ही, इन सभीसे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि पूज्या बहिनकी गीतावाटिकाके पूज्य बाबूजी एवं पूज्य बाबाके प्रति अगाध और अटूट श्रद्धा थी। पूज्या बहिनने अपने जीवनके कतिपय प्रसंगोंके बारेमें शायद कभी कुछ लिखा होगा, वह अगली पंक्तियोंमें उन्हींके शब्दोंमें प्रस्तुत किया जा रहा है।

परम पूज्यतम श्रीबाबासे मैंने लाड़-लाड़ ही पाया, उनके स्नेहमें और स्निग्धतामें ही जीवनका बहुत समय व्यतीत करनेका मुझे सौभाग्य मिला। जब भी मैं उनके पास रहती, वे मेरी एक-एक चीजका ख्याल रखते थे। अब वह सब सोच करके हृदय द्रवित हो जाता है और आँसू निकल आते हैं।

मुझे विश्वास नहीं हो रहा है कि वे नहीं हैं। यह तो स्वप्न है कि वे नहीं है। मैं सोचने लगती हूँ कि वह सच था कि यह सच है। कभी सोचा ही नहीं था कि बाबा नहीं रहेंगे, मेरे मनमें आता था कि यह नहीं हो सकता है। पूज्य बाबा तो हमेशा रहेंगे। यह तो सच है कि अब भी बाबा यहीं हैं, किन्तु मेरी फूटी आँखें तो उन्हें प्रत्यक्ष नहीं देख सकती हैं। अभी भी मनको समझा नहीं पा रही हूँ कि वे हमें छोड़कर सचमुच चले गये?

मेरे महिमामय बाबाकी महिमा शब्दातीत है। उसका वर्णन न वाणीसे हो सकता है और न मेरे पास शब्द ही हैं। उनके महिमामय रूपको मैं कभी जान ही नहीं पायी। पहले ही से वे हमेशा कहा करते थे मेरी एक बेटी है, वह मुझे नहीं जानती किन्तु मैं उसे जानता हूँ।

एक बेटीसे अर्थ था ललितादेवी डालमिया। मैंने उन्हें पिताके रूपमें ही माना। १९५५ की बात है, दिल्लीवाले ताऊजी पूज्य श्रीरामकृष्णजी डालमियाका केस था। गोरखपुरवाले ताऊजी (पूज्य बाबूजी)-को तुरन्त दिल्ली आना पड़ा, बाबा तो साथ रहते ही थे। उन दिनों पूज्या ताईजी उनके साथ नहीं आ पाती थीं। सिर्फ रामसनेहीजी साथमें थे। दिल्लीमें पूज्य माताजी और रामदेई भाभी दोनों ही नहीं थीं। अनुराग होनेवाला था, इसलिये मेरा स्वास्थ्य भी ढीला था। पूज्य बाबाने मुझे बुलाया और यमुना-जल मँगवाया। बरसातके दिन थे, पानी गँदला था, उन्होंने बतलाया, फिटकरी डालकर साफ करवा लो।

यमुना जल स्वच्छ हो जानेपर बाबा बोले कि मैं तो फल खा लूँगा। मैंने कहा—नहीं-नहीं, मैं तो सब रसोई बनाऊँगी।

उन दिनों हमलोग दिल्लीके दो तिलक मार्गपर स्थित अपने घरपर रहते थे। वहाँ ऊपरके चौकेमें सब रसोई बनायी। फिर आकर उन्होंने भिक्षा ली।

उन्होंने मुझे १९५६ में पहले-पहल गोरखपुर बुलाया था, तब वे काष्ठ मौनका कठोर व्रत लेनेवाले थे। यह तो सभी जानते थे कि मैं इस प्रकारके वातावरणमें न कभी पली थी और न रही थी। बाबाको तो सब कुछ पता था। उन्होंने बगीचेसे बाहर श्रीमाधवशरणजीके मकानको खाली करवा करके हम लोगोंको वहाँ ठहराया था। उस घरका शौचालय ऐसा ही था, जो मेरे मनोऽनुकूल नहीं था। फिर मेरे लिये बाहरसे शौचालय बनवाया था। मेरी छोटी-से-छोटी सुविधाका वे खयाल रखते थे।

इस प्रथम बार जब मैं गोरखपुर गयी थी तो बाबाने सबसे कह दिया था—पूजामें या और किसी प्रकारकी मुझसे गलती हो जाये तो मुझे कुछ नहीं कहना। जैसे मैं करूँ, वही ठीक है।

बाबाने काष्ठ मौन १९५६ में लिया था। उससे पहले बाबाने श्रीविद्याधरजी वैद्यजीसे श्रीमद्भागवतकी कथा सुनी। वैद्यजीको देनेके लिये संन्यासीके पास क्या होता। मात्र एक तुलसीदल दिया था। वैद्यजीके लिये उससे अधिक मूल्यवान् चीज क्या हो सकती थी? इसी बीच मुझे तीन दिन पंडालमें नहीं बैठना था। बाबा चाहते थे कि मैं पूरी भागवत सुनूँ, अतः उन्होंने जहाँ हम लोग ठहरे थे, वहीं एक कमरेमें पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीजीसे श्रीमद्भागवतकी कथा सुनवायी। वहाँ एक स्त्रीको और बैठाया। मुझे इतना संकोच हो रहा था, किन्तु बाबासे कहनेकी मेरी हिम्मत न थी और न ही वे सुननेवाले थे, परन्तु यह तो मेरा सौभाग्य था कि वे इस प्रकारसे इतना खयाल रखते थे। इस तरहसे पूज्य श्रीगोस्वामीजी महाराज-जैसे महान् विद्वानसे मुझे भागवत सुननेको मिली। बाबाके प्रति श्रीगोस्वामीका जो समर्पण था, वह देखने और सीखने लायक था। बाबा उन्हें 'बुड्ढा बैल' कहा करते थे।

बाबासे किसीका कष्ट देखा ही नहीं जाता था। एकबार स्वर्गाश्रममें वे मुझसे बात कर रहे थे कि मेरी आँखमें एक लाल चींटी गिर गयी और रगड़ते-रगड़ते मेरी आँख लाल हो गयी। पर जितना भी आँखको रगड़ो, चींटी निकले ही नहीं, वे बोले—बेटी मन करता है कि मैं चींटी निकाल दूँ, किन्तु मेरे गेरू वस्त्रके कारण मैं तुझे छू नहीं सकता हूँ, मैं संन्यासी हूँ न!

भिक्षाके समय बाबा हमेशा ही सामने बिठाकर मुझे खिलाते थे और एक-एक चीजका ख्याल रखते थे। एक बार मैं मार्गशीर्षमें एक महीना गोरखपुर रही। बाबाके पास कुटियामें ही भोजन करती थी, चाहे कितनी ही देर हो जाये। पूज्य बाबाके भिक्षाका समय तो निश्चित ही नहीं रहता था। ग्यारह-बारह भी बज जाते थे। तब वे मौन होने जा रहे थे, एक दिन शेष था। कोई कारण रहा होगा, वे अन्दर कुटियामें खिलाना नहीं चाहते थे। कुटियाके बाहर भिक्षा मँगवा कर, मुझे बिठाकर, स्वयं सामने बैठकर और परस कर खिलाया।

कभी-कभी भिक्षामें बहुत देर हो जाया करती थी। रातके डेढ़-दो बज जाते थे। एक बारका याद पड़ता है कि सुबहके चार बजे बाबा भिक्षा कर पाये। मेरा मार्गशीर्ष था। मैं तो वहाँसे सीधे आकर स्नान आदि किया और पूजामें बैठ गयी। पूज्य ताऊजी (पूज्य बाबूजी) बहुत नाराज होते थे। जब वे कहलाते थे, तब बाबाकी दो-चार दिन भिक्षा समयसे हो जाया करती थी, बादमें फिर वही कार्यक्रम शुरू हो जाता था।

एक बार मेरी कमरमें ठण्डीसे बहुत दर्द हो गया। मैं भिक्षामें नहीं गई और पूज्य ताऊजीके कमरेमें जाकर बैठ गई। पूज्य ताऊजी बोले—इतनी देरतक भिक्षामें जाओगी तो यही होगा।

उसी तरहसे जब पूज्य ताईजी और सावित्री बाई बाबाको भिक्षा करवाने नहीं जा सकती थी तो ताऊजी जाते थे। मैं तो जब गोरखपुर रहती थी तो बाबाके पास कुटियामें ही भोजन करती थी। मुझे पता चला कि ताऊजी भिक्षा करवाने आवेंगे, तब मैंने बाबासे कहा, ''आज ताऊजी भिक्षा करवाने आवेंगे। मुझसे नहीं खाया जावेगा, मैं भोजन कर आती हूँ।''

बाबा कब माननेवाले थे। वे जो सोच लेते थे, वही करते थे। ताऊजी आये, बाबाको परसा, फिर मुझे एक-एक चीज पूछ कर दी। दोबारा भी परसवानेका ढंग बना रहा। इतना खयाल बाबा रखते थे। इतने प्रेमसे यह थोड़ा यह ले लो, यह ले लो, यह दे दूँ आदि। मैं संकोचमें दबी जाऊँ। यह उनका अपार स्नेह था।

जब मैं उनके पास करीब छः महीने रही तो उसी बीच उनके साथ रतनगढ़ गयी थी। रेलके चार बर्थवाले डिब्बेमें बाबा, ताऊजी, ताईजी और कृष्णचन्द्रजी अग्रवाल थे। दूसरे कूपेमें अर्थात् रेलगाड़ीके फर्स्टक्लासके डिब्बेमें दो बर्थ या

चार बर्थका एक छोटा कमरा)-में मैं और लीला बाई थी। स्टेशन पर ताऊजी हमारे डिब्बेके सामने आये और बोले—तुम लोग ठीक हो कि नहीं। उस डिब्बेमें तो जगह है नहीं, चार ही सीट है, नहीं तो तुम लोगोंको साथ ही बिठाता। इतना ख्याल रखते थे। रतनगढ़से दिल्ली-कलकत्ते होते हुए बाँकुड़ा गये थे। पूज्य सेठजी बहुत बीमार थे, उन्हें देखने गये थे। वहाँपर मुझे ही भिक्षा बनानी पड़ी। मुझे तो कुछ अभ्यास नहीं था। मैं घबरा गयी। मैंने पूज्य ताईजीको कहा, "ताईजी फुलका आप बना दीजियेगा और सब चीजे मैं बना दूँगी।"

पूज्य बाबाको पता चल गया। बोले—"मैं तो उसीके हाथका खाऊँगा, वह जैसा भी बना देगी।"

यह उनका अविचल स्नेह था। बाबाने मुझे एकान्तमें भी बहुत समय दिया, परन्तु मुझको वे जिस रूपमें चाहते थे, वैसी मैं बन नहीं सकी। खेद है कि मैं कभी खरी नहीं उतर पायी।

बाबासे बेतारका तार जुड़ा हुआ था, ऐसी उनकी कृपा थी। कई बार ऐसा होता था कि बिना उनके बुलाये ही मैं उनके पास पहुँच जाती थी। एक दो बार तो ऐसे भी हुआ कि मैं दिल्ली थी और मुझे लगा कि बाबा मुझे बुला रहे हैं। कोई समाचार नहीं आया था, मेरा मन उठ गया कि बस, गोरखपुर जाना ही है। वहाँ पहुँचनेपर बाबाने कहा कि मैं तुझे बुलाना ही चाहता था। गोरखपुरमें तो अक्सर ऐसा होता था कि जैसे यह समाचार मिला कि बाबा बुला रहे हैं यह सुनते ही मैं पाठको बीचमें ही छोड़ कर चल देती थी।

मैं कोई गलती भी कर देती थी, तो उसको वे सुधार लेते थे। एक बार ललिता-षष्ठीके दिन ललिताजीके जन्मकी आरती मैंने अपनी घड़ीके हिसाबसे करवा दी। श्रीलखपत बाबू समयके बहुत पाबन्द थे, उनकी घड़ीसे आरती शायद पहले ही हो गयी थी। उन्होंने बाबाको जाकर शिकायत कर दी। मैं तो डर गयी कि कहीं बाबा डाँट न दें कि तूने क्या किया?

किन्तु बाबाने कहा—"उसने (ललिताने) जिस समय आरती करवायी है, वह ठीक है।"

मेरा दिल उल्लसित हो उठा। ऐसा था उनका अपार स्नेह। ललिता षष्ठीकी पूजा अन्दर कोठीमें ही होती थी। कमरा छोटा था ही। ऐसे तो मैं अन्दर ही बैठती थी, पर उस दिन अन्दर बिलकुल जगह नहीं थी तो बाहर बैठ गयी।

आरतीके बाद बाबाको प्रणाम करने अन्दर गयी तो बोले—तू कहाँ थी, तेरा ही तो उत्सव है।

मैंने कहा—अन्दर स्थान नहीं था; अत: बाहर बैठना पड़ गया।

काष्ठ मौनके दिनोंमें जब उन्होंने मुझे बुलाया था, तब मैं दो महीने उनके पास रही थी। मेरा छोटा लड़का अनुराग दो महीनेका ही था। उसे मैं अपनी माँके पास कलकत्ते छोड़ आयी थी। तभी बाबाने भगवती कात्यायनी देवीकी पूजा दी थी। मार्गशीर्षमासमें मैं एक महीने करती थी। फिर कई वर्ष बाद एक मार्गशीर्ष मासमें और सात-आठ बहनोंसे वह पूजा सिर्फ उसी वर्षके लिये करवायी। पूज्य बाबा हम सबको घाघरा ओढ़नी देना चाहते थे। रुपये तो उनके पास थे नहीं। मातृवर्गसे ही लेना चाहते थे, उसमें भी जो सुविधासे दे सके। पू० ताईजी और पू० माताजीसे रुपया माँगकर, घाघरा-ओढ़नी-ब्लाउज आदि बनवाये। दो बहनें विधवा थीं। उनके लिये रेशमी अहिंसावाली साड़ी, ब्लाउज बनवाये। पू० ताऊजीको बुलवा करके उनके हाथसे बारी-बारीसे एक-एकको बुलाकर सबको दिलवाया। मुझे दरवाजेपर खड़ा कर दिया कि तू एक-एकको भेजती जा और सबको घाघरा-ओढ़नी बनवाकर पूज्य ताऊजीके हाथसे दिलवाया। इस प्रकार उनकी पूजा और लीला चलती ही रहती थी। वह हमारी समझसे बाहरकी चीज थी।

कोई घटना एक हो गयी थी, उसके फलस्वरूप, उसके बाद ही बाबाने परिक्रमा करनी शुरू कर दी थी। पूज्य ताऊजीके जीवन-कालमें जिस कुटियामें वे रहते थे, उसके सामने ही उन्होंने गोवर्धनकी भावना की थी और उसीके चारों ओर घूमकर परिक्रमा करते थे। परिक्रमाके नियम बना लिये थे। परिक्रमामें गोटीसे हिसाब जोड़ रखा था, इतनी गोटीके एक मील, फिर उसी प्रकार जितनी गोटी होती थी, गोटी गिनकर परिक्रमा ले लेते थे। गिननेके काममें दो-तीनको ही अधिकार था। एक तो सावित्री बाई फोगला, दूसरी मैं और एक दो और भी थे। कई बार गिनते-गिनते आलथी-पालथी मारकर बैठे हुए मेरे पाँव जुड़ जाते तो मैं पाँव फैला लेती थी। उन्होंने मुझे इस प्रकार करते हुए देख लिया, उनकी नजर तो तेज थी ही। फिर जब वहाँसे निकलते थे तो बोलते थे—अब पैर फैला लो।

जब वे मौन होते थे, तब कभी-कभी स्लेटपर या जमीनपर लिखकर थोड़ा-बहुत इंगित करते थे। कभी इशारेसे भी समझानेकी कोशिश करते थे।

मौनका नियम तोड़कर अगर उन्हें बात करनी पड़ जाती थी तो उसके बाद वह उपवास करते थे। बाबा रुपयेका भी स्पर्श नहीं करते थे, गलतीसे भी छुआ जाता तो फिर उपवास होता।

गोवर्धनधाममें स्थित श्रीगिरिराज भगवान्‌की परिक्रमा राह-राह चलनेसे चौदह मील है और गिरिराजसे एकदम सटे कंटकीली-पथरीली पगडण्डीसे चलनेपर तेरह मील। बाबाने तेरह मीलको प्रामाणिक माना। गीतावाटिकामें स्थित श्रीगिरिराजजीकी सैंतालीस परिक्रमा करनेसे एक मील होता है। एक सप्ताहमें दो परिक्रमा अर्थात् छत्तीस मीलकी दूरी तय हो सके, अतः बाबा कोई दिन पाँच मील, कोई दिन तीन मील, कोई दिन दो मीलकी परिक्रमा करते थे। बादके दिनोंमें बहुत अस्वस्थ हो गये थे तो कुर्सी पर बैठकर करवाया जाता था।

एक बार वह प्लेनमें पूज्य ताऊजीके साथ कहीं जा रहे थे। एयर होस्टैस उनके संन्यासी-वेशसे बहुत प्रभावित हुई। उनके पास, उनकी कुर्सीके नीचे बैठकर उसने बाबासे बात करनी चाही। उसने बात-बातमें उनको छुआ। उसको तो यह पता नहीं था कि उनके नियम हैं कि किसी महिलाके छूनेसे उनको उपवास करना पड़ेगा। जितनी बार उसने छुआ, उतने उपवास बाबाके मत्थे चढ़ ही गये।

पू० ताऊजीका सत्संग रोज सुबह हुआ करता था। मैं तो सुबह ही पूज्य बाबाके पास जाकर बैठ जाती थी। वे मुझे ताऊजीकी सत्संगमें भेजा करते थे। बहुत वर्ष पहलेकी बात थी, उन दिनों मेरा मन सत्संगमें लगता नहीं था, किन्तु जाती थी।

श्रावणमें एक दिनकी बात है। बाबा पूज्य श्रीचिम्मनलाल गोस्वामीजीसे कुछ लिखवा रहे थे। मैं भी पास बैठी थी। इतनेमें वर्षा आ गयी। मैं उठ रही थी, पर उन्होंने मुझे उठने नहीं दिया। तीन छाते सबके लिये मँगवाये और हम लोग छाता लगाकर बैठे रहे। यह उनका खेल था। एक बारकी बात है, पूज्य बाबाने श्रावणकी तीजपर हम तीन भाभियाँ, सम्मानीया सावित्री बाई, लीला बाई और मेरा सिनहारा किया। पूज्या ताईजी और पूज्या माताजीको बुलाकर अपनी कुटियाके बाहर उनसे हम तीनोंके बालोंमें तेल लगवाया, चोटी करवायी, चूड़ी पहनवायी। बाबा वहींपर बैठे थे, किन्तु उन्होंने मुँह फेर लिया और कहा—मैं देख नहीं रहा हूँ, इनको अच्छी तरहसे सँवार दो।

एक बार ताऊजीके साथ बाबा नयी कोठी गये। तब मैं भी नयी कोठीके एक कमरेमें रहती थी। मेरा कमरा खुलवाया। मैं तो बगीचेमें थी। मेरी अलमारी टटोली। वहाँ एक पॉकेटमें उन्हें मेवा मिल गया। थोड़ा-सा निकालकर और लोगोंको दिया, मुझे भी दिया।

बहुत वर्षों पहलेकी बात है, जब पूज्य ताईजी भिक्षा करवाने जाती थीं। उस दिन पूज्या ताईजीके बाबूजीका श्राद्ध था। उन्होंने पूज्य बाबाको बताया कि मैं माँके यहाँ जीमने गयी थी। मेरे बाबूजीका श्राद्ध था। मुझे वह बैठे हुए दीखे।

बाबाने कहा कि—अभीतक तेरे बाबूजीकी मुक्ति नहीं हुई है?

ताईजी बोली—आपके बाबूजीकी भी तो मुक्ति नहीं हुई है।

बाबाने जब संन्यास लिया था, तब कुछ बात हो गयी थी। अब उसी समय बाबाने हाथमें जल लेकर कहा—तो देख, यह मेरे बाबूजी जा रहे हैं।

अक्षय तृतीयाके दिन मेरा विवाह हुआ था। वैसे तो हम लोग तिथिके हिसाबसे उस दिन पूज्य बाबाके पास गोरखपुर ही रहा करते थे। किन्तु तारीखके हिसाबसे अलग पड़ जाता था। जब हमारी शादीकी पच्चीसवीं सालगिरह थी, ''इन्होंने'' मुझसे बहुत झगड़ा कर लिया, रुला दिया। तब मैंने बाबाको बताया कि कभी विवाहकी तिथि नहीं मनाते हैं, ऊपरसे झगड़ा और कर लिया। तब बाबा बोले—मैं तो तेरे विवाहकी तिथि हर साल मनाता हूँ न?

''इनके'' साथ आती थी तो दूसरी बात थी। मैं अकेली भी कई बार आती थी, तो अच्छा दिन देखकर कोई आदमी मुझे वापिस छोड़ने आता ही था—बाबा कहते थे, वापिस पहुँचते ही फोन करना।

एक साल संजयके जन्म-दिनपर मैं वहीं गोरखपुरमें थी। बाबाके पास बैठे-बैठे याद आया तो पूज्य बाबाको बताया, आज तो संजयका जन्म-दिन है।

उन्होंने तुरन्त शहद मँगवा कर मुझे खिलाया।

गीतावाटिकाके पण्डालमें पूज्य ताऊजीकी श्रीमद्‌भागवत-दशम स्कन्धकी कथा हो रही थी। यह १९६० के महीना मंगसिरकी बात है। मैं गोरखपुर गयी हुई थी। अनुराग तीन-चार सालका था, संगमें ही था। पूज्य बाबा मौन थे, वे अपनी कुटियामें ही रहते थे, उनका दरवाजा बन्द रहता था। अनु दौड़-दौड़कर कुटियाकी तरफ पहुँच जाता था। वह तो मानता नहीं था। एक दिन दरवाजेके बाहर लेटकर बोला—बाबा दरवाजा खोलो, मैं अनु हूँ।

पूज्य बाबा कुटियाके अन्दर थे, किन्तु उनको बाहरकी ओर खड़े दो आँखें दिखीं और लगा, जैसे कोई पुकार रहा हो। बाबा तो अपने भावमें विभोर रहते ही थे। फिर उन्होंने दरवाजा खोला और अनु अन्दर भाग आया और उनके पास खड़ा हो गया। पीछे कभी उन्होंने बताया कि उन्हें उसमें कुछ विशेष बात दिखी थी।

एक बार पूज्य बाबा भिक्षा कर रहे थे। दरवाजा खुला ही था, तीन-चार लोग अन्दर थे। अनु अन्दर भाग आया। बाबा तो मौन थे ही। उसने चिमटा लेकर उनका नाक पकड़ लिया। मैंने जल्दीसे उसे पकड़कर बाहर भगाया। अनुने इस प्रकारकी हरकत कभी की तो नहीं थी, किन्तु मेरा अनुमान है कि उसे कुछ गुस्सा आया होगा कि बाबा बोल क्यों नहीं रहे।

अनुराग सात-आठ सालका था। मेरे पास गोरखपुरमें काफी दिनतक रहा। वह अस्वस्थ हो गया था। दिल्ली वापिस जानेकी जिद्द करता। पूज्य बाबाने पास बुलाया, पूछा क्या बात है? तुम क्यों दिल्ली जाना चाहते हो?

वह बोला—मुझे वन्दरोंसे डर लगता है। यहाँ बन्दर उछलते रहते हैं। जब मैं टट्टी जाता हूँ, तब वे बन्दर आते हैं। टट्टी आते-आते रुक जाती है।

बाबा खूब हँसे और बोले—तेरे साथ लाठी लेकर दो आदमी भेजूँगा। अब बाबा दो आदमी लाठी लेकर अनुके साथ भेजते थे। मेरे पिताजीका स्वर्गवास हुआ, तब मैं गोरखपुर थी। वहीं फोन गया था। पूज्य बाबा परिक्रमा कर रहे थे। मैं वहीं बैठी थी। परिक्रमाके बाद वह समाचार पूज्य बाबाको ही दिया गया। उन्होंने मुझे बुलाया और आँसू भरी आँखोंसे बातें करने लगे। एकान्तके लिये एक-दो लोगोंको समय दे रखा था, वह मना कर दिया। मुझे पास बिठा कर पूछा—तू बोल, दाह-संस्कारमें जबतक तू पहुँचे, तबतक रोकनेके लिये खबर कर दूँ क्या?

मैंने मना किया—नहीं, मैं तो दूसरे दिनके पहले पहुँच नहीं पाऊँगी।

बाबाने मुझे सान्त्वना दी। अनुरागके लड़के नीलाभका नाम बाबाने रखा था। नीलाभ छः महीनेका हो गया था, तब उसे पूज्य बाबाके पास अन्नप्राशनके लिये ले गये। तभी उन्होंने उसका नाम रखा। अनुकी बेटी मंजरीका नाम भी उन्होंने ही रखा था। मञ्जरीको अन्नप्राशनके लिये तो नहीं ले जा सकी। उसका स्वास्थ्य गड़बड़ चल रहा था। पूज्य बाबाने भिक्षामेंसे ही पूरी बनवा कर, अपने हाथसे पूरीका टुकड़ा तोड़कर दिया और कहा—तू (ललिता) जा कर उसे खिला देना।

बाबाकी लीला विचित्र और समझके बाहर थी। कोई कीड़ा या चिड़िया मर जाती थी, तब वे स्वयं उसे गंगाजलसे स्नान करा करके, अपने वस्त्रसे कपड़ा फाड़ करके, उसे लपेट करके संस्कार करते थे। बगीचेमें, पीछेकी ओर, दीवालके साथ, एक स्थान उन्होंने कर रखा था। वहाँपर उसे कीर्तन करवाते हुए ले जाते थे और समाधि देते थे।

बाबा ताऊजीको भी नहीं छोड़ते थे। कृष्णचन्द्र अग्रवाल ताऊजीके पास ही रहा करते थे। उन्होंने अपना घर त्याग दिया था। एम० ए० भी पास किया था। कई वर्षोंके बाद उनके पिताका देहान्त हुआ और समाचार आया। ताऊजीने कहा—तुमको जाना चाहिये।

वे नहीं गये तो क्रोधमें ताऊजीने कह दिया—जो पानेके लिये तुम आये हो, उसकी प्राप्ति नहीं होगी।

बाबाको पता चला और एक दिन उन्होंने ताऊजीको पकड़ लिया कि आप अपने वचन वापिस लें। ताऊजी कहने लगे—मुझे जाने दीजिये, मुझे शौचकी हाजत हो रही है। कपड़े खराब हो जायँगे।

बाबा बोले—कुछ भी हो जाये, पहले वे वचन वापिस लें।

आखिर कहलवा कर ही रहे। यह था बाबा और ताऊजीका स्नेह और बाबाका था श्रीकृष्णचन्द्रजीके ऊपर अनुग्रह।

बजरंगलालजी बजाजका नाम लोगोंने ढोलकियाजी रख दिया था। ये उत्सवमें ढोलक बहुत अच्छी बजाते थे। राधाष्टमीपर ढोलक लेकर खूब नाचते थे। जिस दिन ढोलकियाजीकी मृत्यु हुई, उस दिनकी बात है। भिक्षाके बाद करीब दस-ग्यारह बजे होंगे। सावित्री बाईको और मुझे बाबाने भेजा, देखकर आओ कि ढोलकियाजी कैसे हैं।

हमलोग पहुँचे तो उनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ रहा था। बाईने किसीको भेजा और कहलवाया बाबा और बाबूजीको ले आओ।

वे लोग तुरन्त ही आ गये। उनके आते-आते स्थिति और बिगड़ गयी थी। ढोलकियाजीको नीचे धरतीपर ले लिया गया। सामने ठाकुरजीका चित्र लगा था। पूज्य ताऊजी या बाबाने उनसे पूछा—भगवान् दिख रहे हैं क्या?

उन्होंने गर्दन हिलायी कि हाँ।

एक ओर बाबा और ढोलकियाजीके लड़के बैठे थे, दूसरी ओर पूज्य ताऊजी थे। पूज्य बाबाने उनका सिर पकड़ कर उनका मुख ताऊजीकी तरफ कर दिया। बाबा नहीं चाहते थे कि उनके पुत्रको देखते हुए ढोलकियाजीके प्राण जावें। उनकी मृत्यु नयी कोठीमें हुई थी। बादमें पूज्य ताऊजी तो बगीचे चले गये, क्योंकि दाग तो दूसरे दिन लगना था। सुबह नौ बजेका समय हुआ था। पूज्य बाबा ताऊजीके बिना कोठीके अन्दर रह नहीं सकते थे तो बाहर बैठ गये। गेटके बाहर कड़ाकेकी ठण्ड थी। लोगोंने एक अँगीठी जला दी। वह रास्ता था ही, लोग आ-जा रहे थे। एक आदमीने अपनी बीड़ी लेकर सुलगायी और आग सेकने बैठ गया। उसे क्या मालूम कि वह कहाँ किसके पास बैठा है?

पूज्य बाबाके दो सेवक थे, रामसनेहीजी और भगतजी। दोनों ही बाबाकी जी-जानसे सेवा करते थे। दोनोंका काम बँटा हुआ था, कोई व्यवधान उन लोगोंको पसन्द नहीं था। बाबा कहा करते थे मेरी एक-एक टँगड़ी इन लोगोंने बाँट रखी है।

रामसनेहीजीको तो कभी खिलवाड़में कभी चाचा, कभी चाची कहा करते थे और उनके बारेमें समीस्थ लोगोंसे पूछा करते थे चाचा, चाची कहाँ हैं?

रामसनेहीजीका सेवाभाव सबके लिये अधिक रहा है। सबकी सुख-सुविधाका उन्हें ख्याल रहता था। मैं गोरखपुर रहती थी तो चाय वे ही मुझे बनाकर दिया करते थे। मेरा सोमवारका व्रत रहता था। सुबह मैं सिर्फ चाय ही लेती थी। इसका उनको ख्याल रहता था। वह बड़े-से गिलासमें जो तीन-चार पाँवका होता, चाय पकड़ा देते थे। मैं कहती थी चाय, खाली इतनी चाय नहीं भाती, जी मिचलाने लगता है।

मुझे इलायचीकी सुगन्धसे बड़ी चिढ़ है। कुछ दिन बाद क्या हुआ, मुझे चायमें इलायचीकी सुगन्ध आने लगी। मैं कहती थी—आप टोपियाको साफ धोकर मेरी चाय बनाया करें, मुझे इलायचीकी सुगन्ध आती है।

वे मुझे तो कुछ नहीं कहते थे, पर पीछे बोलते थे कि ललिताजीको वहम है। एक लड़की राजू सेवापरायणा थी। उनकी चोरी कह दें या गलती कहें, वह पकड़ी गयी। चायके डिब्बेमें इलायचीकी पोटली रखी थी। राजूने लाकर दिखायी तो बाबा बोले—यह यहाँ कैसे आ गयी?

हम दोनों, मैं और राजू खूब हँसे।

भगतजीको मीठा बहुत पसन्द था। भिक्षामें कभी आ जाता था तो खा लिया करते थे, किन्तु बादके दिनोंमें उन्हें सधता नहीं था। बाबा बिगड़ते थे कि मीठा खा लिया होगा।

एक बार कई महीने उनके पास रहनेको मिला। बहुत ही ऐसी भाग्यशालिनी थी, जिनको बाबाका इतना पर्याप्त सान्निध्य मिला है। वे स्वर्णके दिन थे, कैसे बीत गये, याद ही नहीं।

कुछ वर्षोंसे मेरा शरीर अस्वस्थ रहता था। मुझे सोमवारका व्रत करना भारी लगता था। मैंने बाबाको बताकर पूछा—क्या करूँ?

वे बोले—तुझे व्रत करनेकी दरकार ही नहीं है, मैं तेरे बदलेमें व्रत करता हूँ न।

एक बार मार्गशीर्षमें उनके पास पंद्रह दिन रही। जब मुझे वहाँसे भेज रहे थे तो आँखोंमें आँसू भरकर बोले—''जैसे कण्व ऋषिने अपनी बेटी शकुन्तलाको विदा किया था, वैसे ही मैं आज तुझे विदा कर रहा हूँ, बेटी।''

बहुत वर्ष पहले मैंने बाबासे उनकी खड़ाऊँ माँगी। मुझे मना करते रहे, क्या करेगी?

मेरा बहुत आग्रह था तो उन्होंने बहुत सकुचाकर दी।

बाबा अपनी कुटियामें थे। एक दिनकी बात है, वे पानी पी रहे थे। यह तो मुझे याद नहीं है कि किस प्रसंगपर उन्होंने कहा, पर कहा कि मैं मर जाऊँ तो तुम लोग रोओगी तो हो ही, परन्तु पहले चाय पी लेना। फिर जीभरकर रो लेना। मुझे चायकी बुरी आदत थी, यह उन्हें ज्ञात था। यह उनका प्यार था।

जब मेरा मन विचलित होता और बेचैन होता था, तब लगता कि जीवन व्यर्थ है। उसे रखनेसे कोई लाभ नहीं लगता। मनमें संकल्प-विकल्प चलता था। तब वे ही समझाते थे, शान्ति प्रदान करते थे। उन्होंने मुझे जीवनभर प्यार दिया। अब कौन आयेगा शान्त प्रदान करने? वे मुझे असहाय छोड़कर क्यों चले गये? बार-बार मनमें आता है, यह मेरा दुर्भाग्य ही है, मेरे भोग बाकी हैं। बाबाकी कृपा तो प्रतिक्षण बनी ही रही, नहीं तो पता नहीं क्या होता?

संतका हृदय मक्खनकी तरह मुलायम होता है। उनका हृदय ऐसा ही था। किसीका भी दुःख न देख सकते थे और न सुन सकते थे, किन्तु

उन्होंने खुदका जीवन किस प्रकारका कठिन बना लिया था और उनके कितने-कितने, क्या-क्या कठोर नियम थे। अपने शरीरकी तो उन्होंने परवाह कभी की ही नहीं। वे कितने उपवास करते थे, उनका कुछ भी नियम टूटता था तो व्रत करते थे। वे किसी समय अपना मौन तोड़कर किसीसे बात करनेको बाध्य होते थे, तो उसके बदले उपवास करते थे। किसी स्त्रीका गलतीसे स्पर्श हो जाता था तो उपवास करते थे। जो बात मनमें ठान लेते थे तो मना करनेपर भी करते थे।

उन महिमामय संतका अभिनन्दन मैं किन शब्दोंमें करूँ। मेरे बड़े भाग्य रहे, जो मैंने उनको पाया। उनको पाकर जीवनमें सब कुछ मिल गया। मैं तो धन्य हो गयी। पूर्व-जन्ममें मैंने कई उच्च कोटिके पुण्य किये होंगे, जो ऐसे उच्च कोटिके संतका सान्निध्य मिला।

अब लेखकके नाते लिख रहा हूँ कि पूज्या बहिन श्रीललितादेवी डालमियासे सम्बन्धित अनेक प्रसंग स्मृति-पटलपर उभर रहे हैं। सभीका उल्लेख कर पाना सम्भव नहीं है। अन्तमें इतना ही निवेदन करना है पूज्य बाबाका, जिसे सीमातीत लाड़-चाव मिला, पूज्य बाबाने जिनकी प्रत्येक रुचिको आदरकी दृष्टिसे देखा, वे पूज्या बहिन श्रीललितादेवी डालमिया २ अगस्त, २००७ को मर्त्यलोका परित्याग करके गोलोक-धाम सिधार गयी।

श्रीमती ललिताजी शास्त्री

जी चाहता है

मेरा व्यक्तिगत सम्बन्ध 'कल्याण' से सन् १९४१ से है। उस समय शास्त्रीजी (श्रीलालबहादुरजी शास्त्री) जेलमें थे और आज्ञानुसार मैं 'कल्याण' पत्रिकाकी सदस्य बनी। उस समयसे आजतक बराबर मैं 'कल्याण' पढ़ रही हूँ। श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार 'कल्याण' के जन्मदाता थे और उनके विचार बराबर 'कल्याण' में प्रकाशित होते थे। इस तरह मैं उनके विचारोंसे तो अवश्य ही परिचित थी, लेकिन व्यक्तिगत परिचय न था। सौभाग्यवश जब शास्त्रीजी गृहमंत्री थे, तब मैं उनके साथ गोरखपुरमें स्थित गीताप्रेस देखने गयी। वहाँका वातावरण और कार्य देखकर शास्त्रीजी इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने भाई पोद्दारजीसे कहा—यह स्थान तो इतना रमणीक और शान्तिमय है कि जी चाहता है—राजनीतिसे छुट्टी लेकर यहींपर रहूँ।

उसी समय मेरा परिचय भाई पोद्दारजीसे हुआ।

श्रीशास्त्रीजीके जीवनकी एक-दो घटनाएँ उल्लेखनीय हैं। एक बार एक गरीब ब्राह्मण आपके पास आ करके सहायता करनेके लिये याचना करने लगा। उसे प्रणाम करके श्रीशास्त्रीजीने विवशता व्यक्त की। श्रीललिताजीने यह बात सुनी। तुरन्त श्रीललिताजीने कहा—पूज्यवर! एक मिनट ठहरें।

इतना कह करके वे घरके अन्दर गयी और फिर बाहर आ करके दस रुपयेका नोट उन विप्रवरके हाथमें रख दिया। वे ब्राह्मण देवता शुभाशीर्वाद देते हुए चले गये। उनके चले जानेके बाद श्रीशास्त्रीजीने पूछा—ये दस रुपये कहाँसे आये?

श्रीललिताजीने कहा—आप मुझको गृहस्थीका कार्य चलानेके जो धन-राशि प्रति माह दिया करते हैं, उसीमें से थोड़ा-थोड़ा बचा करके मैंने इकट्ठा किया था।

इसके तुरन्त बाद श्रीशास्त्रीजीने कॉंग्रेस कमेटीको लिखा—मुझे प्रति माह व्यक्तिगत व्ययके लिये पचास रुपये मिला करता है। अब आगेसे चालीस रुपये दिया जाना चाहिये। मेरा काम चालीस रुपयोंमें चल जायेगा।

यह उदाहरण है कि श्रीशास्त्रीजी राष्ट्रीय धनके सदुपयोगकी दृष्टिसे कितने सावधान रहा करते थे।

कालान्तरमें श्रीशास्त्रीजीको भारतके प्रधानमन्त्री पदका भार सौंपा गया। एक प्रधानमन्त्रीके हैसियतसे राष्ट्रके सभी राज्यपालोंकी बैठक दिल्लीमें बुलायी गयी। राजस्थानके राज्यपाल होनेके नाते डॉ० श्रीसम्पूर्णानन्दजी दिल्ली पधारे तथा स्वागत-कक्षकी एक कुर्सीपर बैठ गये। बैठ जानेके बाद उन्होंने अपना परिचय-पत्र एक चपरासीके हाथ श्रीशास्त्रीजीके पास भेज दिया। एक दूसरे अन्तरंग कमरेमें कैबिनेट मीटिंग चल रही थी। उस परिचय-पत्रको पढ़ करके उन्होंने सबसे कहा—पाँच मिनटके लिये विराम दीजिये। अभी आता हूँ।

यह कह करके श्रीशास्त्रीजी स्वागत-कक्षमें आये। उनके आते ही प्रधानमन्त्रीका सम्मान करनेके लिये सभी राज्यपाल खड़े हो गये। श्रीशास्त्रीजी कक्षमें आकर उधर बढ़े, जिधर डॉक्टर श्रीसम्पूर्णानन्दजी बिराज रहे थे। उनके पास जाकर श्रीशास्त्रीजीने उनके युगल चरणों पर शीश रख करके प्रणाम किया। इधर

श्रीशास्त्रीजीका प्रणाम करना था और उधर श्रीसम्पूर्णानन्दजीके दोनों कपोल भीग रहे थे। श्रीसम्पूर्णानन्दजीने पूछा—क्या कर रहे थे।

श्रीशास्त्रीजी—कैबिनेट मीटिंगका काम हो रहा था।

श्रीडॉक्टर साहब—जाओ, वह कार्य पूरा करो।

सभी राज्यपालोंको आश्चर्य हो रहा था कि हम अपनी आँखोंसे क्या देख रहे हैं। एक प्रधानमन्त्री अपने मातहतको प्रणाम करे? महान् आश्चर्य। बादमें पता चला डॉक्टर सम्पूर्णानन्दजीने श्रीशास्त्रीजीको काशीमें पढ़ाया था और गुरुदेवके रूपमें प्रणाम किया था। भारतीय इतिहासका यह एक वन्दनीय तथा अनुकरणीय प्रसंग है और इसीमें भारतीय जीवनकी महत्ता है।

सम्मान्या श्रीतेजी बहिनजीका पत्र

मधुशाला आदि कृतियोंके विख्यात कवि सम्मान्य श्रीहरिवंशरायजी 'बच्चन' की धर्मपत्नी सम्मान्या श्रीतेजी बहिनजीने पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) को जो पत्र लिखा, वह नीचे दिया जा रहा है। इस पत्रमें उनके हृदयस्थ भावोंकी एक वास्तविक झाँकी है।

१३, विलिंगडन
नई दिल्ली
७-८-६५

पूज्य भाईजी,

सादर चरण स्पर्श।

रक्षा बन्धनके शुभ अवसरपर श्रीबाबा और आपके चरणोंमें राखी भेज रही हूँ। स्वीकार करिये।

हर एक मनुष्यके जीवनमें एक ऐसा समय आता है जब कि वह अपने बड़ोंका आशीर्वाद और सहायता अधिक-से-अधिक चाहता है। 'भाई' का तो स्थान ही अलग है और फिर ऐसे भाईका, जो भगवान्‌के रूप हैं।

मेरी एक प्रार्थना है कि आप मेरे बाबाको कह दीजिये कि उनकी बहनके जीवनमें ऐसा समय आया है, जब कि वह अपने प्यारे पवित्र भाई बाबासे रक्षा और सहायता चाहती है।

आजकल मैं अत्यन्त चिन्तित और दुखी हूँ। हमारा भविष्य एक अन्धेरा है, उस नदीकी तरह जिसका किनारा नहीं दिखता। मैंने अपना सब कुछ बाबापर छोड़ दिया है। मेरी एकमात्र आशा बाबा हैं। वह मेरी अवश्य सहायता करेंगे, यह मेरा अटल विश्वास है। मैं अपनी समस्या प्रतिदिन उन्हें सुनाती हूँ। उनका ध्यान करती हूँ। वे अन्तरयामी हैं।

भाईजी आप यह पत्र बाबाको सुनानेका कष्ट करें।

आपकी दुखी बहन
तेजी

इस उद्धृत पत्रसे स्पष्ट है कि भगवत्स्वरूप पूज्य बाबापर सम्मान्य श्रीतेजी बहिनजीकी कितनी आस्था है, कैसा अपनापन है और केसी निर्भरता है।

श्रीनौरतीबाई

प्रिया-प्रियतमकी लीलाका दर्शन

पूज्य बाबा कहने लगे—मुझे एक-से-एक अद्भुतसे-भी-अद्भुत लीलाओंके दर्शनका अवसर मिला है। मुझे जो लीला दिखलायी देती थी अथवा मेरे साथ जो लीला चलती थी, उसकी झलक कभी-कभी दूसरोंको भी मिली है। उदाहरणके लिये किशनगढ़की श्रीनौरतीबाईका नाम लिया जा सकता है। नौरतीबाईको शास्त्रोंका ज्ञान नहीं था। वह एक नितान्त सरल स्वभाववाली भोली नारी थी, पर उसकी अनुभूतियोंको और उसकी उपलब्धियोंको पूर्णतः अस्वीकार करना सम्भव नहीं है। इस सम्बन्धमें दो प्रसंग उल्लेखनीय हैं। मैंने एक पद लिखा था। उस पदके मर्मको केवल मैं जानता था। वह पद मेरे तथा श्रीपोद्दार महाराजजीके सम्बन्धको लेकर था। नौरतीबाई उस पदके अर्थको, अपितु भावार्थको अपनी सरल-सादी भाषामें कहने लग गयी कि यह छोरा (अर्थात् भगवान् बालकृष्ण) ऐसे कह रहा है, ऐसे कह रहा है। उस पदका सम्यक् अर्थ कह सकना उसके बसकी बात नहीं थी। न तो उसको भाषाकी जानकारी थी और न उसके पास तत्त्वज्ञान था, पर जो वह कह रही थी, उससे पूर्णतः स्पष्ट था कि वह सही-सही ढंगसे उस पदका भावार्थ कह रही है। यह देखकर मुझे आश्चर्य भी हुआ और मेरा विश्वास जमा कि नौरतीबाईका उस राज्यमें कुछ

प्रवेश है। दूसरा प्रसंग स्वर्गाश्रमका है। एक बार मैं सीढ़ियोंसे उतरकर गंगास्नानके लिये जा रहा था। सीढ़ियोंके नीचे माँजीके साथ नौरतीबाई खड़ी थी। मुझे उतरते देखकर नौरतीबाई माँजीसे कहनी लगी—मैया! मैया!! यह देख, यह देख, श्रीराधाजी सीढ़ीसे उतर रही हैं। गलेमें फूलोंकी खूब बड़ी खूब मोटी माला है। बड़ा सुन्दर रूप है, पर आश्चर्य यह है कि जैसे-जैसे वे सीढ़ी-प्रति-सीढ़ी नीचे उतरती जा रही हैं, वैसे-वैसे वे छोटी होती जा रही हैं और अब आखिरी सीढ़ीपर आकर तो एकदम छोटी हो गयी हैं। अरे! सीढ़ियोंसे नीचे आकर तो वे गायब हो गयीं। अब उसके स्थानपर बाबा दीख रहे हैं।

यह बात नौरतीबाईने माँको सुनायी थी। स्वर्गाश्रमसे आनेके बाद गोरखपुरमें माँजीने वह प्रसंग भिक्षाके समय मुझे सुनाया। नौरतीबाईको जो 'दिखलायी' दिया था, उसे सुनकर मुझे भी आश्चर्य हुआ। उसने जो देखा था, वह सत्य ही था। हाँ, सत्यका दर्शन उसे सर्वांशमें नहीं हुआ था। उस सत्यकी मात्र एक झलक भर मिली थी। वास्तविकता तो यह थी कि मैं तथा प्रियतम, दोनों परस्पर गलबाँही दिये सीढ़ीसे उतर रहे थे तथा गंगा-विहारके लिये जा रहे थे। उस समय उसे प्रियतमके दर्शन नहीं हुए। इसके अलावा उसे श्रीराधा-किशोरीका जो दर्शन हुआ, वह निरन्तर एक-सा नहीं रहा और फिर सीढ़ीसे उतरनेके बाद वह यत्किञ्चित् दर्शन भी तिरोहित हो गया। उसीके अंशका उसे दर्शन हुआ।

श्रीभूश्री माताजी

व्यवस्था और अहंकार

आपने विश्वविद्यालयकी ऊँची शिक्षा प्राप्त की है। उनका परिवार बड़ा सुखी है। भगवत्कृपासे उन्हें विविध प्रकारकी सुविधाएँ प्राप्त हैं। समाज-जीवनमें उनका व्यक्तित्व प्रभावशाली है, अत: सभी लोग उन्हें बड़ा आदर देते हैं। प्रारब्धानुसार उनकी जैसी प्रतिष्ठा और प्रतिभा है, उसका प्रभाव उनके चिन्तन और वचनपर भी है। यह सौभाग्यकी बात बन गयी कि कतिपय भक्तिमती बहिनोंका संग मिल जानेसे उनके मनका झुकाव आध्यात्मिकताकी ओर हो गया और धीरे-धीरे वह पूज्य बाबाके सम्पर्कमें आ गयीं।

७ दिसम्बर १९७८ के दिन पूज्य बाबा तीसरी बार काष्ठ-मौन व्रत लेनेवाले थे। उस अवसरपर वे माताजी भी पूज्य बाबाका दर्शन करनेके लिये गीतावाटिका आयीं। ४ दिसम्बर १९७८ के प्रात:काल पूज्य बाबाने उनसे मिलने और बात करनेके लिये पर्याप्त समय दिया। उनसे बातचीत करते हुए पूज्य बाबाने कहा—मातेश्वरि! मैंने तुम्हारे लिये जो व्यवस्था की है, वह उत्तम-से-उत्तम है, परन्तु उस व्यवस्थाके मूर्त होनेमें कुछ समय अपेक्षित है और उसके मूर्त होनेके लिये तुम्हें अवसर देना होगा। इसके लिये तुम्हें अपना इगो (Ego अहंकार) गलाना होगा। वह अहंकार उस व्यवस्थाके मूर्त होनेमें बाधा डाल रहा है। इसे चाहे जब गलाओ, चाहे मृत्युके पहले, चाहे मृत्युके बिन्दुपर और चाहे मृत्युके बाद। मृत्युके बाद भी अहं भावको गलानेका चांस (Chance अवसर) मिलेगा। उस समय भी अन्तर्जगतकी सहायतासे तुम्हें प्राप्त होगी। यदि तुम मेरी बातपर विश्वास कर सको तो कर लो। विश्वास कर लेनेमें ही तुम्हारा हित है। बस, तुम मेरी बातपर विश्वास करके और निश्चिन्त हो करके खूब प्रसन्न मनसे अपने घर जाओ। तुम्हारा मंगल-ही-मंगल होगा।

डॉ० श्रीओमप्रकाश त्रेहणकी धर्मपत्नी

सान्त्वना और आश्वासन

वाराणसीका काशी हिन्दू विश्वविद्यालय विश्वका विख्यात शिक्षा-केन्द्र है और यह है श्रद्धेय पण्डित श्रीमदन मोहनजी मालवीयके महान स्वप्नका मूर्तिमान स्वरूप। श्रद्धेय श्रीमालवीयजीकी भावनाएँ बड़ी विशद थीं। उनकी महत्त्वाकाक्षाएँ एक महान शिक्षण संस्थानका सपना देख रही थीं और उस सपनेको साकार करनेके लिये उन्होने अथक प्रयास किया। एतदर्थ उन्होंने किस-किससे धन-जनके लिये याचना नहीं की? उनको जो भी उदार धनवान दिखाई दे जाता, वे उन्हींके पास पहुँच जाते आर्थिक सहयोगकी याचना लिये हुए और उनको जिस भी उद्भट विद्वानकी जानकारी मिल जाती, वे उन्हींके पास पहुँच जाते शैक्षणिक सहयोगकी आशा लिये हुए। श्रीमालवीयजीके प्रयासको आशातीत सफलता मिली। धनवानोंने उदारतापूर्वक दान दिया और विद्वानोंने प्रसन्नतापूर्वक कार्य किया। मालवीयजीके जीवनमें उद्देश्यकी जो महानता थी, अन्तरकी जो

सच्चाई थी और प्रयासमें जो तत्परता थी, उससे प्रभावित होकर चारों दिशाओंसे उनको उन्मुक्त सहयोग मिला और इसीका शुभ परिणाम यह है कि आज वाराणसीसे काशी हिन्दू विश्वविद्यालयकी कीर्ति सब ओर फैली हुई है।

जिस तरह शिक्षाके क्षेत्रमें श्रीमालवीयजीका एक महान स्वप्न था, उसी तरह चिकित्साके क्षेत्रमें पूज्य बाबाके मनमें एक आदर्श आतुरालयका स्वप्न था, जहाँ कैंसर रोगियोंकी चिकित्सा सुन्दर-से-सुन्दर और कम-से-कम व्ययमें हो सके। एतदर्थ धनपतियोंने धन दिया तथा अन्य श्रोतोंसे भी धन संग्रह हुआ। शीघ्र ही एक भव्य चिकित्सालयका निर्माण हो गया, परंतु क्या केवल चार दीवालोंको खड़ी कर देने मात्रसे चिकित्सालयके निर्माणके उद्देश्यकी सिद्धि हो पायेगी? इसके लिये आवश्यक है सेवा-भावसे कार्य करनेवाले अनुभव-सम्पन्न कुशल चिकित्सकोंकी। प्रभु-कृपासे यह बात भी बन गयी। पूज्य बाबाके भावमय व्यक्तित्वमें ऐसा अनोखा आकर्षण था कि योग्य चिकित्सकोंने स्वयं ही स्वयंकी सेवाएँ समर्पित कर दी। इस दृष्टिसे उल्लेखनीय है नाम डा. श्री एम.एम. शर्माका, डा. श्री एल.डी. सिंहका और डा. श्री ओ.पी. त्रेहणका। डा. श्री एम.एम. शर्मा गोरखपुर स्थित रेलवे हॉस्पिटलके सी.एम.ओ. थे। रिटायर होनेके बाद वे सेवा-भावसे यहाँके कैंसर अस्पतालमें कार्य करने लगे। डा. श्री एल.डी. सिंहके हृदयमें सेवा-भाव इतना अधिक उदित हुआ कि वे समयसे पहले ही रेलवे अस्पतालसे सदाके लिये अवकाश लेकर कैंसर अस्पतालमें कार्य करने लगे। इसी प्रकार श्री ओ.पी. त्रेहण भी रिटायर होकर यहाँके कैंसर अस्पतालमें कार्य करनेके लिये आ गये। पहली भेंटमें ही पूज्य बाबाने डा. श्रीत्रेहणसाहबसे कहा था—मैं न जाने कबसे आपकी राह देख रहा हूँ।

डा. श्रीत्रेहणसाहबके साथ तो एक बात और भी घटित हो गयी। श्रीत्रेहणसाहबने अपनी धर्मपत्नी सहित यहाँ सन् १९८१ के जनवरी मासमें आये थे। उनके रहनेके लिये अभी कोई समुचित स्थान नहीं था, अतः उनको यहाँके एक होटलमें ठहराया गया। सुबह जीप-कार उनको होटलसे ले आती। साथमें उनकी धर्मपत्नी भी चली आती। वे तो मेरे लिये मातृ स्थानीया हैं, अतः मैं उनको मैया कहा करता हूँ। डा. साहब तो कैंसर अस्पतालमें करनेके लिये जाते और मैया गीतावाटिकाके पिछले भागमें एक एकान्त स्थानपर चुपचाप बैठी रहती थीं। किसीसे कोई परिचय था नहीं। सभी उनके लिये अन-जाने अन-पहचाने थे।

दोपहरके बाद जब डाक्टर साहबको छुट्टी मिलती थी, तब वे मैयाके साथ जीप-कारमें वापस चले जाते। मैयाने कभी ऐसे मनहूस दिन नहीं देखे थे। उनको यहाँका रंग-ढंग बड़ा अटपटा लग रहा था। केवल अटपटा ही नहीं , बड़ा चुभ रहा था। एक दिन तो उनके मनकी घुटन सहनकी सीमासे ज्यादा हो गयी। डाक्टर साहब मैयाको गीतावाटिकाके एकान्त स्थानमें अकेले छोड़कर कैंसर अस्पताल चले गये। जब वे लौटकर आये, तब उन्होंने मैयासे कहा—चलो, होटल चलें।

इस वाक्यने उनकी घुटनको बहुत बढ़ा दिया। उनकी भावनाएँ अत्यधिक झुँझला उठीं। बहुत रुआँसी होकर मैयाने डाक्टर साहबसे कहा—कहाँ इस बिरानेमें लाकर पटक दिया? इस जंगलमें कौन अपना है? न रहनेका ठिकाना और न बैठनेका ठिकाना। यह अस्पताल और यह सेवा आपको मुबारक हो! मुझे यह परायोंका-सा जीवन अच्छा नहीं लगता।

डा. श्रीत्रेहणसाहब नहीं चाहते थे कि जीवन रूपी मेरी गाड़ीका दूसरा पहिया बिखर जाय। मैयाको सान्त्वना देते हुए उन्होंने कहा—इसमें परेशानीकी भला बात ही क्या है? मैं तो यह सोचकर ही आया था कि यदि तुम्हारा मन नहीं लगेगा तो वापस चले चलेंगे। तुमको अच्छा नहीं लगता है तो चलो, वापस चलें। पर हाँ, वापस चलनेके पहले पूज्य बाबाको प्रणाम तो कर लें।

डा.साहबसे मन-पसन्द उत्तर पाकर मैयाके दिलको थोड़ी राहत मिली। मैया और डाक्टर साहब, दोनों पूज्य बाबाके पास विदाईका प्रणाम करनेके लिये गये। ज्यों ही ये दोनों पहुँचे और प्रणाम किया तो पूज्य बाबाने बड़े प्यारसे पूछा—क्यों मैया! क्या बात है? आज असमयमें आना किस कारणसे हुआ?

मनकी घुटनको बहनेके लिये एक बहाना चाहिये था। पूज्य बाबाके ऐसा बोलते ही मैया रोने लग गयी। परिस्थितिको सँभालनेके लिये और प्रसंगको सुन्दर रंग देनेके लिये डाक्टर साहबने पूज्य बाबासे कहा—बाबा! इसे अपने बच्चोंकी बड़ी याद आ रही है और इसलिये यह बहुत उदास है।

तुरन्त पूज्य बाबाने कहा—मैया! मैं भी तेरा एक बेटा हूँ और तू मेरी मैया ही है। मैया! तू इधर-उधर ऐसे क्यों डोल रही है, जैसे मानो कोई ठौर-ठिकाना न हो, कोई घर-बार नहीं हो? तेरे लिये मैं महल बनवा दूँगा महल, पर तू मेरे त्रेहणसाहबको यहाँसे मत ले जाना। त्रेहणसाहब जैसे कर्मठ और सेवा-

परायण लोगोंकी जरूरत इस कैंसर अस्पतालको बहुत अधिक है।

पूज्य बाबाके इस उत्तरको सुनकर मैया तो एकदम चौंक गयीं। वे चकित थीं और मन-ही-मन सोच रहीं थी कि पूज्य बाबाने मेरे मनकी बातको कैसे जान ली? मेरी घुटनको भली प्रकारसे जान करके मेरे बिना कुछ कहे ही उन्होंने वही कह दिया, जो मेरे मनके भीतर छिपी चाह थी।

मैयाकी सारी घुटन और सारी उलझन मनसे तत्काल दूर हो गयी। केवल यह दूर ही नहीं हुई, बल्कि गीतावाटिकासे चले जानेकी भावना भी दूर हो गयी। उनके मनमें पूज्य बाबाके प्रति अगाध विश्वास जम गया और अमाप्य वात्सल्य उमड़ पड़ा। कुछ समयके भीतर ही धीरे-धीरे डा. त्रेहणसाहबके लिये आवासकी सुन्दर व्यवस्था हो गयी और मैया भी यहाँके वातावरणमें रम गयी। अब तो वे मुक्त स्वरसे कहती हैं—हमारा यह सौभाग्य है, जो पूज्य बाबाका चरणाश्रय मिला।

श्रीशान्तिबाई बजाज

सुहागकी रक्षा

मेरी सुपुत्री कुसुमके विवाहमें बड़ी बाधा आयी। जो भी कुसुमकी जन्मकुण्डली देखता, वह इनकार कर देता। बात यह थी कि कुसुम त्रि-मंगली थी और तीन मंगल होनेसे वैधव्यका योग होता था। मैं सर्वथा निराश हो गयी। मैं पूज्य श्रीभाईजीसे कभी सांसारिक बात नहीं करती थी ओर न करनेकी चाह थी, पर जब सब ओरसे निराशा-ही-निराशा दिखलायी देने लगी तो विवश होकर उनके सामने अपनी समस्या और विवशता व्यक्त करनी पड़ यी। मेरे जीवनका सम्भवतः यह एक ही प्रसंग है, जब मैंने अपनी सांसारिक उलझन उनके सामने रखी हो। जब श्रीराधाष्टमी महोत्सवपर मैं गोरखपुर आयी थी, तब मैंने उनसे सारी बात कही थी। श्रीभाईजीने बेटी कुसुमकी जन्मकुण्डली मुझसे ले ली और पूज्य पं० श्रीरामजीलालजीको देखनेके लिये दी। पं० श्रीरामजीलालजीने भी यही कहा कि त्रि-मंगली होनेसे वैधव्यका योग है। वैधव्य-योगकी बात सुनकर श्रीभाईजीने मुझसे कहा—तुम कुछ चिन्ता मत करना और एक पाठ रासपञ्चाध्यायीका कर लो।

श्रीभाईजीके शब्दोंको सुनकर मुझे थोड़ी शान्ति मिली। स्नान करके तथा शुचि वस्त्र धारण करके मैं पूजाके आसनपर बैठी और मैंने रासपञ्चाध्यायीका एक पाठ भी कर लिया। श्रीराधाष्टमी-महोत्सवकी भीड़ और व्यस्तता होनेके कारण फिर श्रीभाईजीसे मेरी कोई बात नहीं हुई। मेरा अनुमान था कि महोत्सवके बाद कुछ बात होगी, पर मेरा अनुमान तो मात्र अनुमान ही निकला। जिस दिन मुझे वापस कलकत्ता जाना था, वह दिन भी आ गया और उस दिनकी प्रस्थान वाली घड़ी भी आ गयी, पर कोई बात नहीं हुई। मैं पूज्या माँजी और पूज्य श्रीभाईजीको प्रणाम करके कारमें बैठ गयी। ज्यों ही कार चलकर आठ-दस कदम बढ़ी होगी कि प्रिय चन्दूने ड्राइवरको जोरसे आवाज देकर कार रोकवा ली और मेरे पास आकर उसने कहा—आपको नानाजी बुला रहे हैं।

मैंने प्रिय चन्दूसे कहा—मैं अभी-अभी तो उनसे मिलकर आ रही हूँ।

प्रिय चन्दूने कहा—आप ठीक कह रही हैं, पर नानाजीने मुझे भेजा है आपको बुला लानेके लिये।

कारसे उतरकर मैं श्रीभाईजीके पास गयी। श्रीभाईजीने कहा—कहने वाली बात तो मैं तुमको कह ही नहीं पाया। तुम तनिक भी चिन्ता मत करना। कुसुमका विवाह होगा, अवश्य होगा और ऐसा होगा कि वैसा विवाह तुम्हारे परिवारमें आजतक नहीं हुआ होगा। तुम सगाईके लिये लड़केकी निगह करती रहना।

श्रीभाईजीके इस अमोघ और अव्यर्थ आश्वासनको सुनकर मेरा मस्तिष्क कितना हलका हो गया और मन कितना प्रसन्न हो उठा, यह तो मात्र मैं ही जानती हूँ। मैं गोरखपुरसे कलकत्ते आयी और योग्य वरकी लगातार खोज करती रही। संयोगसे एक लड़का भी त्रि-मंगली मिल गया और उससे कुसुमका सम्बन्ध निश्चित कर दिया गया। इसके बाद मैं गोरखपुर आयी और श्रीभाईजीसे मिली। लड़केकी जन्मकुण्डली श्रीभाईजीको देखनेके लिये दी। जन्मकुण्डली देखते ही श्रीभाईजीने कहा—यह जन्मकुण्डली तो उस लड़केकी नहीं है। तुम लोगोंको नकली जन्मकुण्डली दी गयी है। झूठी जन्मकुण्डलीके आधारपर यह सम्बन्ध तो ठीक नहीं हुआ।

श्रीभाईजीके इन शब्दोंको सुनकर मैं घबरा उठी और सचिन्त स्वरमें बोल पड़ी—तो अब क्या किया जाय? क्या यह सम्बन्ध तोड़ दिया जाय?

मेरी बात सुनकर श्रीभाईजीने कहा—अब इस सम्बन्धको तोड़ना ठीक

नहीं। पहले भी कई सम्बन्ध तोड़े जा चुके हैं। सम्बन्ध तोड़नेसे घरवाले नाराज होंगे। जो सम्बन्ध निश्चित कर दिया है, उसीपर स्थिर रहना उचित होगा। अब तो इसी लड़केसे कुसुमका विवाह होने दो। हाँ, भविष्यमें तीन तिथियाँ कष्टकारक हैं। विवाहके आठवें दिन, फिर तीसरे वर्ष और फिर आठवें वर्ष भीषण कष्ट अवश्य आयेंगे, पर घबराना मत। सर्व समर्थ और परम सुहृद भगवान सब सँभालेंगे और मंगल करेंगे।

जब श्रीभाईजीने अपना शुभाशीर्वाद प्रदान कर दिया, तब विवाहकी तैयारी होने लग गयी। लड़केका शुभ नाम था श्रीओमप्रकाशजी टिबड़ेवाल और यह विवाह सन् १९६३ में सम्पन्न हुआ। विवाहके अवसरपर पूजा-पाठके लिये श्रीभाईजीने गोरखपुरसे पूज्य पं० श्रीरामजीलालजीको भेजा। पण्डितजीको भेजनेमें भी विचित्रता थी। श्रीभाईजी जब भी पण्डितजीको कहीं भेजते थे तो पण्डितजीसे पूछ लेते थे और इसके बाद ही ट्रेनमें रिजर्वेशन कराते थे, पर इस बार श्रीभाईजीने न तो पण्डितजीसे पूछा और न उनकी सुख-सुविधाके बारेमें अधिक सोचा। जब श्रीभाईजीने रिजर्वेशनकी टिकट उनके हाथमें थमाते हुए कलकत्ते जानेके लिये कहा तो पण्डितजीको बड़ा आश्चर्य हुआ कि आज यह नयी बात कैसे हो गयी, जो बिना पूछे ही यात्राका कार्यक्रम निश्चित कर दिया। अब, जब श्रीभाईजी जानेके लिये कह रहे हैं, तब अस्वीकृतिके लिये जगह ही नहीं थी। पण्डितजी गोरखपुरसे कलकत्ते आये और विवाह होनेके पूर्व जो कुछ विशेष देवार्चनकी बात श्रीभाईजीने पण्डितजीको बतलायी थी, वह सब उन्होंने सम्पन्न किया। विवाहमें भी पाण्डित्य-पौरोहित्यका कार्य भी पूज्य पण्डितजीने ही किया और विवाह बड़े उत्साहके वातावरणमें हुआ। सचमुच विवाह वैसा ही हुआ, जैसा श्रीभाईजीने कहा था। परिवारमें विवाहको लेकर परस्परमें कुछ मतभेद और असन्तोष था, पर वह विरोध कर्पूरकी भाँति उड़ गया। विवाहके अवसरपर सभी एक मत हो गये। सबने पूर्ण सहयोग दिया। विवाहकी व्यवस्था तथा व्ययकी बात अब याद आती है तो यही कहना पड़ रहा है मानो भगवती लक्ष्मीने श्रीगणेशजीके साथ विवाहके अवसरपर हमारे घरमें शुभ निवास कर लिया हो। ऋद्धि-सिद्धिने मानो अपना भण्डार खोल दिया हो। वस्तुतः ऐसा विवाह हमारे परिवारमें मेरे देखनेमें कभी नहीं हुआ था। परिवारके वृद्धजन भी खुलकर सराहना और विस्मय कर रहे थे। विवाहके अवसरपर एक बात बड़ी विचित्र

हुई। जब भी कोई विशेष मंगलाचार होता, तब उस अवसरपर तारघरका पोस्टमैन आकर श्रीभाईजीके शुभाशीर्वादका तार दे जाता। जब हलदात हो रहा था, ठीक उस अवसरपर श्रीभाईजीका तार मिला। फिर जब द्वारपूजाके समय तोरण मारनेका अवसर आया, तब श्रीभाईजीका तार मिला। जब रातको तीन बजे पहिरावनी हो रही थी, तब तार मिला। इस प्रकार तीन-चार तार श्रीभाईजीके मिले और मिले उसी मौके पर जब वह मंगलाचार सम्पन्न हो रहा था। वर-पक्षके लोग आश्चर्यमें डूब कर कहने लगे—तुम्हारे श्रीभाईजीको क्या कोई दिव्यदृष्टि है, जो वे वहाँ गोरखपुरमें बैठे-बैठे यहाँ कलकत्तेकी बातें देख लेते हैं और ठीक उसी अवसरपर तार पहुँचा देते हैं?

बड़ी धूमधामके साथ सारे वैवाहिक कार्यक्रम पूर्ण हुए। दोनों पक्षके लोग विवाहके हो जानेसे बड़े प्रसन्न थे। ससुरालमें परिणीता कुसुमका बड़ा लाड-चाव हो रहा था, तभी बड़ा हृदय विदारक समाचार सुननेको मिला कि भीषण कार दुर्घटनामें कुँवरजी श्रीओमप्रकाशजी बाल-बाल बचे। दुर्घटनामें कार इतनी क्षति-ग्रस्त हुई और ऐसी पिच गयी कि उसकी मरममत ही नहीं हो सकती। उसे तो अब कबाड़खानेमें फेंकना होगा। ड्राइवर ऐसा घायल हुआ कि अस्पताल पहुँचते-पहुँचते उसने दम तोड़ दिया। बस, दुर्घटना होते ही कारका दरवाजा अपने-आप खुल गया और कारने कुँवरजीको बाहर फेंक दिया। कुँवरजी फुटपाथपर आकर गिरे। छातीमें थोड़ी चोट आयी। यह दुर्घटना विवाहके ठीक आठवें दिन हुई थी। मुझे श्रीभाईजीकी बात याद आ गयी। मन-ही-मन श्रीभाईजीको बार-बार प्रणाम करने लगी, जिनके शुभाशीर्वादसे बेटी कुसुमके सुहागकी रक्षा हो गयी।

जब आठवें दिन यह घटना घटी तो मनमें सदा आशंका बनी रहती थी कि विवाहके तीसरे वर्ष न जाने कौन-सा संकट आयेगा। मनमें आशंका थी, पर यह आस्था भी थी कि श्रीभाईजीके आशीर्वादसे वह संकट भी दूर हो जायेगा।

कुँवरजी श्रीओमप्रकाशजी ने एक बंगाली व्यक्तिकी साझेदारीमें कोई काम किया। वह व्यक्ति पिताज़ीको पसन्द नहीं था। पिताजीने मना भी किया, पर बात बहुत आगे बढ़ चुकी थी। अब वापस लौटना सम्भव नहीं था। पिताजीका संदेह सही निकला। काम-काज करते-करते उस व्यक्तिसे कुँवरजीकी अनबन हो गयी। अनबन इस सीमा तक हो गयी कि उसने हत्या करनेके लिये कमर कस

ली। एक दिन वह सचमुच कातिलके रूपमें छुरा लेकर आफिसमें आ गया और छुरेकी नोक कुँवरजीकी छातीपर लगा दी। कुँवरजीके तो पसीना छूट गया। वे कुछ बोल नहीं पाये। न जाने कैसे उस व्यक्तिकी मति बदली और उसने कहा—आज नहीं, कल तुम्हारी हत्या तुम्हारे पिताके सामने ही करूँगा, जिससे उनको भी पता चल जायेगा कि मुझसे अनबन करनेका नतीजा क्या होता है?

एक बार तो जान बची। घर आकर कुँवरजीने सारी बात अपने पिताजीको बतलायी। पिताजी बहुत घबराये और अपने बेटेसे रुष्ट होकर कहने लगे—मैंने कितनी बार मना किया था कि इसके साथ साझेदारीमें काम मत करो, पर तुमने मेरी बातपर ध्यान नहीं दिया। अब तो भगवान् ही मालिक हैं। यह तो बहुत बड़ा संकट आ गया। तुम कल घरसे बाहर मत निकलना।

कल वाला दिन भी आया। कुँवरजी, पिताजी तथा परिवारके सभी लोगोंके मनपर घोर आतंक छाया हुआ था। वह व्यक्ति भी मुहल्लेमें ही रहता था। मुहल्लेमें चर्चा चल पड़ा कि उस व्यक्तिका देहान्त हो गया। पिताजीने यही समझा और अपने लड़केसे यही कहा—यह झूठी अफवाह फैलायी गयी है, जिससे तुम घरके बाहर निकल आवो और फिर तुमको घेर लिया जाय।

मुहल्लेमें उसकी मृत्युकी चर्चा जब बहुत फैलने लगी तो कुँवरजीके पिताजीने अपने एक रिश्तेदारको फोनपर वस्तुस्थितिका पता लगानेके लिये कहा। उन्होंने पता लगाकर बतलाया कि वस्तुतः उसकी मृत्यु हो गयी है। इस समाचारके मिलनेपर कुँवरजीके घरवालोंकी चिन्ता दूर हुई। यह कितने आश्चर्यकी बात है कि जो कल मारनेके लिये आया था, वही आज सदाके लिये 'चला' गया। श्रीभाईजीकी कृपासे तीसरे वर्ष भी आयी हुई यह विपत्ति सहज ही टल गयी।

आठवें वर्ष जो विपत्ति आयी, वह वस्तुतः बड़ी भयानक थी। कुँवरजीके फेफड़ेमें मवाद पड़ गया। मुँहसे काला-काला, गाढ़ा-गाढ़ा खून निकला करता था। डाक्टर लोग ऑपरेशनके लिये साहस नहीं कर पा रहे थे। सबकी मान्यताके अनुसार मृत्यु निश्चित थी। एक कुशल डॉक्टरने ऑपरेशन किया और कुँवरजीके फेफड़से अढ़ाई किलो मवाद निकला। क्या कोई इसपर विश्वास करेगा? पर सचमुच इतना मवाद निकला और श्रीभाईजीकी कृपासे कुँवरजी ठीक हो गये।

श्रीभाईजीने जो तीन तिथियाँ बतलायी थीं, उन-उन तिथियोंपर भीषण कष्ट

आये, पर समर्थ संत '*मेटहिं कठिन कुअंक भाल के*'। श्रीभाईजीके ही अनुग्रहसे त्रि-मंगली होते हुए भी बेटी कुसुमका विवाह हुआ और उनकी असीम कृपासे उन अति भीषण और भयानक परिस्थितियोंमें कँवरजीके प्राणोंकी रक्षा हो गयी। वस्तुतः बेटी कुसुमके सुहागकी रक्षा हो सकी पूज्य श्रीभाईजीके अहैतुकी अनुग्रहके फलस्वरूप ही।

भीषण बीमारीसे मुक्ति

पूज्य श्रीभाईजीने मेरी बेटी कुसुमके जीवनपर श्रीओमप्रकाशजीके प्राणोंकी तो रक्षा की ही, उन्होंने कुसुमके जीवनको भी जीवनका दान दिया। विवाहके बाद कुसुमको भी कम कष्ट नहीं झेलना पड़ा। सच्ची बात तो यह है कि उसने जाना ही नहीं कि सुखी और स्वस्थ जीवन किसे कहते हैं। विवाहके बाद कुसुम १३ वर्ष तक लगातार बीमार रही। शरीरके पृष्ठ भागमें कन्धेसे लेकर कोहनी तकके अंगमें रक्त-संचार बन्द हो गया। पीछेका सारा अंग काला पड़ गया था। १३ सालकी अवधिमें छः बार ऑपरेशन हुआ, पर वह ठीक नहीं हुई। कलकत्तेका बड़े-से-बड़े डाक्टर भी निराश हो गया। फिर बेलोर जाकर भी वहाँके प्रधान डाक्टरको दिखला दिया। उसने भी ला-इलाज बतला दिया और कह दिया कि अब इसका शरीर नहीं बच पायेगा। परिवार वाले निराश होकर घर ले आये। जब पीड़ा अधिक होती तो उसे मार्फियाका इंजेक्शन देकर बेहोश कर दिया जाता। वह लाशकी तरह खाटपर पड़ी रहती। उसके परिवार वाले उससे तंग आ गये थे। अवश्य ही उसके पति श्रीओमप्रकाशजीका उसके प्रति सद्भाव बना रहा और वे उसकी भली प्रकार सेवा-सँभाल करते रहते थे। इस प्रकार उसके जीवनके दिन निकल रहे थे। कुसुमकी पूज्य श्रीभाईजीके प्रति बड़ी आस्था थी। एक दिन जब वह खाटपर पड़ी-पड़ी अपने जीवनकी कष्टपूर्ण घड़ियाँ बिता रही थी, उसने श्रीभाईजीसे मन-ही-मन प्रार्थना की—क्या सारा जीवन इसी प्रकार खाटपर पड़े-पड़े कष्टमें ही बीतेगा? सहनेकी भी तो एक सीमा होती है। अब तो सहन कर सकना भी सम्भव नहीं है। मेरे कारण सब परेशान हो रहे हैं।

रातको उसे स्वप्नमें श्रीभाईजीके दर्शन हुए। उन्होंने मुस्कुराते हुए कुसुमके सिरपर अपना वरद कर कमल रखा और सान्त्वना देते हुए कहा—तू घबरा मत। अब कष्टके दिन बीत गये।

इस स्वप्नको कुसुमने शुभका संकेत समझा। अगले दिन एक पड़ोसी व्यक्ति मुहल्लेके एक साधारण-से होमोपैथ डाक्टरको लेकर कुसुमके घर आया और कुसुमकी सासूजीको कहने लगा—माँजी! एक बार कुसुमको इन्हें दिखलाइये।

माँजीने कहा—आपको भी क्या मजाक सूझी है। बड़े-बड़े डाक्टरोंने तो निराश होकर जबाब दे दिया और आप इन्हें दिखलानेके लिये बुला लाये हैं। ऐसा लगता है कि आपकी मति मारी गयी है, पर जब आप ले ही आयें हैं तो कुसुमको दिखला दीजिये। इस दिखलानेसे क्या होना-जाना है। दिखलाकर आप अपनी तसल्ली कर लीजिये। अब तो जीवनके शेष दिन ऐसे ही बीतेंगें।

होमोपैथ डॉक्टरने कुसुमको देखा और कहने लगे—रोग मेरी समझमें आ गया है। मैं जो पुड़िया दूँगा, वह आप इसे खिला दीजिये।

उन्होंने अपनी डिस्पेंसरीसे दवाकी पुड़िया दी और एक पुड़िया कुसुमको खिला दी गयी। पुड़िया खानेके चार-पाँच घंटेके बाद कुसुमने कहा—मुझे भूख लग रही है।

शायद सालों बाद कुसुमने भूखकी बात कही थी। सबको बड़ा विस्मय हुआ। उसको थोड़ा-सा आहार दिया गया। होमियोपैथिक दवा दी जाती रही और उसके फलस्वरूप धीरे-धीरे कुसुम ठीक हो गयी। कुसुमके ठीक हो जानेसे उस होमोपैथ डॉक्टरकी बड़ी ख्याति हो गयी। दूर-दूरके रोगी उनके पास आने लग गये। डाक्टर साहब कहने लगे कि कुसुम तो मेरे लिये लक्ष्मीके समान है जिसके कारण मेरा चिकित्सालय चमक उठा। कुसुमके शरीरमें पीड़ा तो अब भी कभी-कभी होती है और जब यह कष्ट होता है तो होमोपैथ डॉक्टर साहब अपनी पुड़िया दिया करते हैं। इससे कुसुमको आराम हो जाता है।

मेरी बेटी कुसुमकी जीवन-धारा पूज्य श्रीभाईजीकी कृपाके चमत्कारकी एक अद्भुत गाथा है। श्रीभाईजीके असीम वात्सल्य और असीम अनुग्रहके फलस्वरूप महा कठिन रोगसे कुसुम मुक्त हो सकी। यह भी श्रीभाईजीकी कैसी अकल्पनीय महानता है कि भाग्यकी उन कठिन वक्र रेखाओंको उन्होंने प्रभावहीन बना दिया अपने प्रतापसे और सफलताका श्रेय दे दिया अन्य व्यक्तिको।

सौ० श्रीविजयलक्ष्मी पोद्दार

अस्पतालके द्वारपर

कन्याका जन्म होता है पितृगृहमें और भावी जीवन व्यतीत होता है श्वसुरालमें। आते ही नवीन संसारमें प्रवेश होता है, नवीन व्यक्तियोंसे परिचय होता है, नवीन सम्बन्धकी स्थापना होती है, नवीन सम्पर्कका आरम्भ होता है और नवीन वातावरणमें ढलना पड़ता है। इस नवीनतामें प्रवेश करते ही मुझे ऐसा लगा कि मैं एक भक्त-परिवारमें आयी हूँ। भक्त-परिवार बड़े भाग्यसे मिलता है। मैंने देखा कि मेरी सास और मेरे श्वसुर, दोनों ही श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारमें बड़ी श्रद्धा रखते हैं। मेरा नवीन प्रवेश पोद्दार-परिवारमें हुआ था, अतः पहले मैंने यही समझा कि श्रीभाईजीके नामसे विख्यात श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार हमारे पोद्दार-परिवारके कोई पूज्य व्यक्ति होंगे, पर शीघ्र ही वास्तविक तथ्य सामने आ गया। मैंने पाया कि पारिवारिकताकी भावनासे बहुत ऊपर श्रीभाईजी हमारे घरमें अति श्रद्धेय हैं अपने महान् संतत्वके कारण। उस महान् संतत्वका अवतरण हमारे पोद्दार कुलमें हुआ, यह हमारे कुलका परम सौभाग्य है। मेरी सासूजी और श्वसुरजी, दोनोंके लिये श्रीभाईजी परम श्रद्धास्पद हैं। उनके शब्दोंका हमारे परिवारके जन-जनमें भगवदीय वाणीके समान समादर है। वे हमारे परिवारके हर दृष्टिसे सर्वस्व हैं। लोक-परलोक-परमार्थकी दृष्टिसे वे हमारे लिये परम सुहृद्, परम हितैषी स्वजन हैं। *'हित परलोक लोक पितु माता।'* आज हमारे परिवारमें गृहस्थ-जीवनके निर्वाहके लिये कामकाजके रूपमें जो व्यापार चल रहा है, वह उनकी कृपाके फलस्वरूप ही है। आगामी प्रसंगने तो मेरे मनपर एक स्थायी छाप लगा दी।

श्रद्धेय श्रीभाईजीने सन् १९७१ में महाप्रयाण किया और इसके कुछ साल बाद मेरे पूज्य श्वसुरजीका भी निधन हो गया। अगली बात सन् १९८५ के फरवरी मासकी है। मेरी सासूजी सत्संगके लिये वृन्दावन गयी हुई थीं। वहीं उनकी तबीयत खराब हो गयी। रुग्णताकी सूचना मिलते ही हमलोग दिल्लीसे वृन्दावन गये और उनको कारमें बैठाकर दिल्ली ले आये। घरके द्वारपर पहुँचनेके बाद जब कारसे उतरनेका अवसर आया, तब मेरी सासूजीको लगा कि दोनों पैर काम

नहीं कर रहे हैं। उनको गोदमें उठाकर घरमें लाया गया। धीरे-धीरे स्पष्ट हो गया कि उनके दोनों पैरोंमें लकवाका दौरा पड़ गया है। तुरन्त चिकित्साकी व्यवस्था की गयी। डॉक्टरोंने सलाह दी कि तत्काल अस्पतालमें भर्ती करा दिया जाय, जिससे भली प्रकार चिकित्सा हो सके। उनको दिल्लीके विख्यात होली फैमिली हॉस्पिटलमें भर्ती करानेके लिये ले जाया गया। लकवाका प्रभाव पैरोंसे ऊपरकी ओर सारे शरीरपर क्रमश: फैलता जा रहा था और उसके प्रभावमें दोनों पैर तो भली प्रकार आ ही गये थे।

मेरी सासूजी कारमें लेटी हुई थीं और कार होली फैमिली हॉस्पिटलके द्वारपर खड़ी थी। उनको शीघ्र भर्ती करानेके लिये हमलोग भाग-दौड़ कर रहे थे। उसी समय मेरी सासूजीने एक विचित्र बात देखी कि पूज्य श्रीभाईजी धीरे-धीरे मोटरकारकी ओर आ रहे हैं। वे धोती-कुर्ता पहने हुए हैं तथा उनके हाथमें छड़ी है। उन्होंने आकर अपने दाहिने हाथकी पाँचों अँगुलियाँ खड़े रूपमें सासूजीके कमरेके पास जंघेके अन्तिम छोरपर रख दी। इसके बाद वे चले गये।

जहाँ श्रीभाईजीने अपनी अँगुलियाँ रखी थीं, उसके ऊपर लकवाका प्रभाव फैल नहीं सका, मानो लकवाके प्रभावके लिये उन्होंने सीमा-रेखा लगा दी। ***'बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा'***। यदि मल-मूत्रके द्वार लकवासे प्रभावित हो जाते, तब तो परेशानीकी सीमा नहीं होती। कष्ट अब भी कम नहीं है, पर यदि लकवाके प्रभावका विस्तार ऊपरकी ओर और बढ़ जाता तो उस कष्टकी कल्पना मात्रसे ही मन काँप उठता है। यह जो कष्ट आया, वह कोई प्रारब्ध ही होगा, पर ऊर्ध्वांगके लकवासे ग्रस्त होनेपर जो कष्ट होता, उस भीषण कष्ट-भोगकी अति विषम स्थितिसे श्रीभाईजीने सीमा-रेखा स्थापित करके मेरी सासूजीको बचा लिया। वे तो हमारे परिवारका संरक्षण परोक्षरूपसे सदैव करते रहते हैं। आज भी उनका वात्सल्य हमारा बहुत बड़ा सहारा है।

सौ० उमादेवी पोद्दार

उनका आशीर्वाद मेरा रक्षा-कवच

मैं उनका नाम कैसे लूँ? ऐसा कहा जाता है कि कुल-वधूको अपने बड़ोंका नाम नहीं लेना चाहिये। उनका नाम कौन नहीं जानता? 'कल्याण'-सम्पादक, धर्म-रक्षक, महान् संत, परम भक्त, आर्त-सेवक, दीन-बन्धु, आदि-आदिके रूपमें सर्वत्र उनकी ख्याति है और जगह-जगह उनकी गुण-गाथा गायी जाती है। यह सब है, पर वे तो मेरे पोद्दार कुलकी वंश-विभूति हैं। वे कुल-भूषण मेरे लिये पूज्य चरण हैं। उनके आविर्भावसे पोद्दार वंश धन्य हो गया।

मेरी सास और मेरे श्वसुरके वे परम श्रद्धास्पद रहे, नितान्त श्रद्धेय रहे। मेरे श्रद्धालु सास-श्वसुरकी आन्तरिक चाह थी कि मुझ नव-परिणीताको उन्हें प्रणाम करना चाहिये, अत: मैं अपने नव-आत्मीयजनोंके साथ राँचीसे गीतावाटिका आयी, अपितु यथार्थ शब्दोंमें यह कहना चाहिये कि माता-पिताके घरसे बेटी पहली बार विदा होकर गीतावाटिका ही आयी।

गीतावाटिका आकर मैंने देखा कि वे रुग्ण थे, अत्यन्त रुग्ण थे। परिवारके लोग भीतर-ही-भीतर भाँति-भाँतिसे कुशंका कर रहे थे कि क्या भगवान् सूर्य अस्ताचलको जानेवाले हैं। रुग्णावस्थामें ही उनका प्रथम दर्शन मुझे मिला। मैंने उन्हें प्रणाम किया। रुग्ण होते हुए भी उनके प्यारका प्रवाह मेरी ओर फूट पड़ा। उनके वात्सल्यसे मेरा रोम-रोम संसिक्त था। वे वस्तुत: प्यारके पुञ्ज थे, नेहके निर्झर थे, वात्सल्यके सिन्धु थे। मैं उनके चरणोंपर नत-मस्तक थी। वही मेरा अन्तिम दर्शन था, वही मेरा अन्तिम प्रणाम था। प्रणाम आज भी करती हूँ। करती हूँ उनके चित्रको। उनका सुन्दर चित्र मेरे पूजा-घरमें है। मैं नित्य प्रणाम करती हूँ। प्रतिदिन फूल चढ़ाती हूँ।

बचपनमें मैंने उनका नाम सुना था। मेरा जन्म एक वैष्णव परिवारमें हुआ है। मेरे माता-पिता साधु स्वभावके हैं। घरमें मैंने 'कल्याण' पत्रिकाको देखा है। उस पत्रिकामें छपे चित्रोंको मैं देखा करती थी। कभी-कभी पन्ने भी मैं पढ़ लिया करती थी। तभी मैंने सुना था कि वे ही इस पत्रिकाको गीताप्रेससे निकालते हैं। चित्रोंको देखकर और पत्रिकाको पढ़कर उनके पावन दर्शनकी प्रबल इच्छा मेरे मनमें होती थी, परन्तु मनकी बात मनमें ही रह जाती थी। उन दिनों मैं

क्या रंच भी कल्पना कर सकती थी कि भविष्यमें मैं पोद्दार कहलाऊँगी? मैं क्या कभी सोच सकती थी कि बिना किसीसे कहे-सुने ही और बिना तनिक-सा प्रयास किये ही मैं इतनी सरलतापूर्वक उन विभूतिके दर्शन कर पाऊँगी, जिनके दर्शनकी बहुत अधिक चाह बचपनसे ही मनमें थी? प्रभु-कृपासे और मेरे सौभाग्यसे यह भी कैसा संयोग सुघटित हो गया कि माता-पिताने मेरा सम्बन्ध पोद्दार कुलमें कर दिया। सचमुच अब पोद्दार कहलानेमें गौरवकी अनुभूति होती है। मैं उनके वंशकी कुल-वधू हूँ। ज्यों ही पोद्दार वंशकी कुल-वधू बननेका अवसर मेरे जीवनमें आया, मुझे उनका आशीर्वाद मिला, कविताके रूपमें लिखित आशीर्वाद। मैं तो धन्य हो गयी। यह आशीर्वाद मेरे जीवनकी सच्ची निधि है।

शुभ भावना

तन-मन-स्वस्थ, बुद्धि निर्मल हो, हो पवित्र दीर्घायु उदार।
संयम-सदाचार-सद्गुण-सद्भाव युक्त हों भाव-विचार॥
न्यायोपार्जित धन-वैभव हो, हो पर-हितमें उसका त्याग।
देश-जाति-कुल-दीन-आर्त-सेवामें हो सक्रिय अनुराग॥
सतत समृद्धि समुन्नति पावन करे नम्रता विस्तार।
त्याग और कर्तव्य मुख्य हो, रहें न मुख्य अर्थ अधिकार॥
श्रीराधामाधव-पद-पद्म-युगलमें हो रतिका संचार।
लाभ करे भार्यासह यह स्थिति कृष्णमुरारी सुखद अपार॥

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

आशीर्वादकी ये कतिपय पंक्तियाँ लिखीं उन महानात्माने अपनी लेखनीसे—यह भावना ही मनमें एक विचित्र आह्लादका उद्रेक कर देती है। अन्योंको ये पंक्तियाँ साधारण-सी लग सकती हैं, परंतु मेरे लिये तो ये अति असाधारण और अति अमूल्य हैं। इसीके मिससे तो मुझे उनकी छत्र-छाया मिली है, ऐसी छाया, जिसे कोई कभी छीन ही नहीं सकता। किसीके भी गृहस्थ जीवनमें चढ़ाव-उतार आते ही हैं। मेरे जीवनमें भी आये हैं। उन सारी घाटियोंको मैं इसी आशीर्वादके बलपर पार कर गयी। विश्वास है, आगे भी कर जाऊँगी। वस्तुतः उनका यह आशीर्वाद ही मेरा रक्षा-कवच है। उन पूज्य चरणोंमें बार-बार प्रणाम।

श्रीमती अरुणा सिंहजी

विद्यालयको आशीर्वाद

शिशुकी मौलिक शक्तियोंका सर्वतोमुखी विकास ही शिक्षाका उद्देश्य है, इस दृष्टिकोणको ध्यानमें रखकर मैंने एक विद्यालयका शुभारम्भ जुलाई १९६५ में किया। जब विद्यालयकी नियमावली एवं समितिका गठन हो गया तो एक प्रश्न सामने आया कि अध्यक्ष किसको बनाया जाय। मेरी प्रारम्भसे ही बलवती इच्छा थी कि इस विद्यालयके अध्यक्ष-पदपर कोई आध्यात्मिक व्यक्ति विराजित हो। मैं ऐसे ही महान् व्यक्तिकी खोजमें थी। बहुतसे नाम लोगोंने मेरे सामने रखे, कई सम्पत्तिशाली सज्जनोंके भी नाम मुझे बताये गये, पर मैं कुछ निर्णय न ले सकी। मैं इसी उधेड़-बुनमें पड़ी थी कि अध्यक्ष किसको बनाया जाय।

किसी सज्जनने मुझे सलाह दी कि आपको यदि इच्छा यह है कि इस पदके लिये किसी आध्यात्मिक महापुरुषको लिया जाय तो श्रीभाईजीको क्यों नहीं अध्यक्ष बना देतीं। मैंने प्रथम बार श्रीभाईजीका नाम सुना। मैंने उनका पूरा नाम पूछा। पता चला कि उनका नाम श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार है और वे गीतावाटिकामें रहते हैं। गीताप्रेस तो मैं कई बार जा चुकी थी, पर गीतावाटिका जानेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। एक अन्य सज्जन कहने लगे—आप इस कार्यको सरल न समझें। अध्यक्ष-पदके लिये उनकी स्वीकृति लेना बड़ा ही कठिन कार्य है।

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये सितम्बर १९६६ में मैं प्रथम बार गीतावाटिका गयी। एक अनजानकी तरह, कहीं किसीसे कोई परिचय नहीं। एक सज्जनने मेरे आनेका हेतु पूछा। मैंने कहा कि मुझे श्रीभाईजीसे मिलना है। उन्होंने मेरा परिचय पूछा। वह मैंने संक्षेपमें बता दिया। वे सज्जन ऊपर चले गये। मैं खड़ी-खड़ी वहाँकी चहल-पहल देख रही थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो कोई बहुत बड़ा उत्सव सम्पन्न हुआ है। मैंने उत्सुकतावश एक सज्जनसे पूछा—क्या कोई उत्सव था?

उन्होंने बताया—हाँ, राधाष्टमी उत्सव था।

मैं राधाष्टमीके विषयमें सोच ही रही थी, तबतक ऊपरसे बुलावा आ गया। मैं ऊपर गयी। इसके पूर्व कभी श्रीभाईजीको देखा न था। मनमें कुछ संकोच एवं कुछ भय था। कक्षमें प्रवेश करते ही मेरी दृष्टि एक वृद्ध महापुरुषपर पड़ी,

जिनके सामने कई अन्य व्यक्ति एवं दो-एक महिलायें बैठी थीं। मुझे समझनेमें देर नहीं लगी कि ये ही श्रीभाईजी हैं। मेरा मस्तक उनके चरणोंमें झुक गया। मेरे प्रणामका उत्तर बड़े ही स्नेहिल शब्दोंमें मिला। उन्होंने मेरे आनेका कारण पूछा। शीघ्र ही मैंने संक्षेपमें सब सुना दिया। कुछ देर वे चुप रहे। इस बीच मेरी क्या मनस्थिति थी, मैं व्यक्त नहीं कर सकती। आशा-निराशाका द्वन्द्व मेरे भीतर चल रहा था। कुछ क्षणोंके बाद श्रीभाईजीने अपनी विवशता प्रकट करते हुए कहा—इस रुग्ण एवं असमर्थ शरीरसे कुछ न हो सकेगा।

मैंने हाथ जोड़ लिये और विनती की—आपका आशीर्वाद एवं आश्रय चाहिये। परिश्रम मैं स्वयं कर लूँगी।

मेरी बात सुनकर वे फिर चुप हो गये। बादमें दूसरे दिन आनेको कहा। मैं दूसरे दिन पुनः अपने निश्चित समयपर पहुँच गयी। मुझे तो ऐसा लगने लगा कि उनका आकर्षण ही मुझे खींच रहा है। दूसरे दिन भी वही उत्तर सुननेको मिला—मुझसे कुछ न हो सकेगा।

पुनः मैंने भी वही शब्द दुहराये—आपकी छत्रछायामें ही मैं कार्य करना चाहती हूँ।

फिर वे कुछ क्षण चुप रहे और थोड़ी देर बाद दूसरे दिन आनेको कहा। तीसरे दिन पुनः निश्चित समयपर मैं पहुँच गयी। मनमें कुछ विश्वास जम चुका था कि आश्रय यहाँ मिलेगा ही। तीसरे दिन मुझे अधिक कुछ नहीं कहना पड़ा। स्वयं कह दिया—आप मेरा नाम दे सकती हैं।

इतना सुनकर मैं आनन्द विभोर हो उठी। नेत्र अश्रुपूरित हो गये। मुझे ऐसा लगने लगा, जैसे मुझे सब कुछ मिल गया। मेरी तपस्या सफल हो गयी। मैं उन्हें प्रणाम करके वापस चली आयी। मैंने जब सब लोगोंको बताया तो सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ। कुछ लोगोंने उस समय तक विश्वास नहीं किया, जबतक उनके हस्ताक्षर नहीं देख लिये। अब समिति पंजीकृत करा ली गयी।

सन् १९६७ में अभिभावकोंके आग्रहसे मुझे इस विद्यालयमें मान्टेसरी कक्षासे अतिरिक्त जूनियर हाईस्कूलकी कक्षाएँ भी आरम्भ करनी पड़ी। इस विद्यालयका नाम मैं श्रीभाईजीके नामपर रखना चाहती थी, लेकिन उन्होंने अपना नाम हटाकर 'सर्व-हित-कारी बालिका विद्यालय' नाम कर दिया। उनका आदेश मुझे मानना पड़ा।

हिन्दू समाजमें कोई महिला सार्वजनिक कार्य करके सफलता प्राप्त कर ले, यह असम्भव-सा लगता है। मेरे सम्मुख भी अनगिनत बाधाएँ आयीं। जब मेरे सामने प्रतिकूलताका पहाड़ खड़ा हो जाता और जब यह सब मेरे सहन शक्तिके बाहर हो जाता तो मैं भागकर श्रीभाईजीके शरणमें चली जाती। वे सब बातें बड़े ही धैर्यसे सुनकर कहते—देखो, तुम करती रहो। घबड़ाना नहीं चाहिये। लोग कहते हैं केवल तुम्हें तुम्हारे पथसे डिगानेके लिये। यदि तुम इतनी जल्दी घबड़ा जाओगी तो कार्य कैसे करोगी? कान बन्द रखो, कार्य करती रहो।

उनके ये स्नेहपूर्ण शब्द सदा ही मेरा उत्साह-वर्द्धन करते थे। ऐसा लगता जैसे किसीने स्नेह रूपी रस-सरितामें डुबो दिया हो। सिर झुकाकार मैं वापस आती। मैं बता नहीं सकती, श्रीभाईजी मेरे अन्दर कितनी प्रेरणा, कितनी शक्ति भर देते? मैं चौगुने उत्साहसे कार्यमें जुट जाती। थकानका पता ही नहीं चलता। जब-जब विद्यालय किसी संकटमें पड़ा, चाहे वह आर्थिक हो या राजनैतिक, या अन्य प्रकारका, श्रीभाईजीका वरद हस्त उसे उबारता रहा। भविष्यमें कई बार परेशानियोंसे तंग आकर मैंने निश्चित किया कि अब कुछ नहीं करना है, लेकिन मैं कैसे बताऊँ कि मेरी अन्दर भरी हुई उनकी प्रेरणा मुझे बैठने नहीं देती। मुझे आभास होता कि वे मुझसे अवश्य ही कार्य करवा लेना चाहते हैं। उसी प्रेरणाके वशीभूत हो मैं कार्य करती चली गयी। कभी पलटकर मैंने नहीं देखा कि परिणाम क्या होगा। मैं अपने श्रद्धेय श्रीभाईजीके विषयमें क्या कहूँ। विद्यालयकी प्रत्येक वस्तु एवं प्रत्येक कार्यपर उनका आशीर्वाद है—उनकी छाप है। यह विद्यालय उनके आशीर्वादका मूर्तिमान स्वरूप है।

सौ० श्रीकिशोरीबाई

देवर्षि नारदके पुनः दर्शन

सन् १९६५ में मेरे पूज्य पिताजी वैद्य श्रीलक्ष्मीनाराणजीने कई मास गीतावाटिकामें रहकर पूज्य श्रीराधाबाबाको श्रीराधा-सुधा-निधिकी कथा सुनायी थी। जब वे गोरखपुरसे वृन्दावन घर आये तो वहाँकी कई सारी बातें हमलोगोंको भावभरे मनसे सुनाते रहे। उन्हीं सुनी हुई बातोंमेंसे एक यह है।

एक दिन अपराह्णकालमें लगभग साढ़े तीन बजे पिताजी श्रीभाईजीके

दर्शनार्थ जा रहे थे। श्रीभाईजी भवनके ऊपरवाले कमरेमें रहते थे। जब पिताजी भवनकी सीढ़ियोंपर चढ़ रहे थे, उसी समय साधारण वेषमें एक महात्मा हाथमें तंबूरा लिये हुए नीचे उतर रहे थे। उन महात्माको देखकर पिताजीने सभक्ति प्रणाम किया और फिर वे आगे सीढ़ियोंपर चढ़ने लगे। जब पिताजी श्रीभाईजीके पास गये तो उनके प्रसन्न वदनको देखकर पिताजीको बड़ा सुख मिला। श्रीभाईजीके मुखमण्डलपर ऐसी प्रसन्नता क्वचित् ही देखनेको मिलती है। आनन्दके सागरमें निमग्न श्रीभाईजी कुछ बोले नहीं। वस्तुतः वे बोलनेकी स्थितिमें थे ही नहीं। श्रीभाईजीके मुखमण्डलपर छाये हुए आह्लादने पिताजीके मनमें कौतुहल और जिज्ञासा जागृत कर दी। श्रीभाईजीसे कुछ पूछनेका साहस भी नहीं हो रहा था, पर पूछे बिना मन भी नहीं मान रहा था। पिताजीने पूछा—आज आप बड़े प्रसन्न दिखलायी दे रहे हैं, सो क्या बात है?

मेरे पिताजीके साधु जीवन और भक्ति-भावनाके प्रति श्रीभाईजीके मनमें बहुत सम्मान और स्थान था। तथ्यकी अभिव्यक्ति भक्ति-भावनाका परिपोषण ही करेगी, ऐसा विचार करके श्रीभाईजी बोले—जब आप ऊपर आ रहे थे तो क्या कोई महात्मा आपको मिले थे?

पिताजीने कहा—हाँ, एक महात्मा हाथमें तंबूरा लिये सीढ़ियोंसे नीचे उतर रहे थे।

श्रीभाईजीने कहा—वे थे देवर्षि नारद। आपका परम सौभाग्य जो आपको उनके दर्शनका अवसर मिला।

इतना सुनते ही मेरे पिताजीके भी आह्लादकी सीमा नहीं थी। पिताजीको वह सारा पुरातन प्रसंग स्मरण हो आया, जब सन् १९३६-३७ में देवर्षि नारद एवं महर्षि अंगिरा पूज्य श्रीभाईजीको दर्शन देनेके लिये गीतावाटिका पधारे थे।

श्रीकौशल्याबाई बंका

गोरखपुरके साहबगंज मोहल्लेमें जालान वंशके अनेक परिवार रहते हैं। इन परिवारोंमें भाई श्रीपरमेश्वर प्रासादजी जालानकी छोटी बहिनका नाम श्रीकौशल्याबाई था। गीताप्रेसके प्रकाशक और मुद्रक पूज्य श्रीघनश्यामदासजी जालानके प्रयाससे बाई कौशल्याका मंगल परिणय मेरे छोटे भाई प्रिय रामनिवास बंकासे हो गया।

यह विवाह सन् १९४७ के जून मासमें हुआ। अब सन् १९५० में मेरे छोटे भाईको हैजा हो गया और यह रुग्णता घातक सिद्ध हुई। घरमें रोना-पीटना मच गया। सत्रह साल आयुवाली बाई कौशल्या, जिसके यौवनका आरम्भ ही हुआ था, उसके माथेका सुहाग सिन्दूर पुँछ गया, भालकी अरुण बिन्दी उतर गयी और कलाईकी सुनहली चूड़ियाँ परित्यक्त हो गयीं। क्या गोरखपुर क्या पडरौना, हाहाकारका स्वर तुमुल था।

मेरा मेरे भाईके प्रति बड़ा ममत्व था। मैं भी अत्यधिक शोकाकुल था। मनकी अत्यधिक शोकाकुलावस्थामें जो एक छोटी-सी तुकबन्दी हुई, वह इस प्रकार है।

भस्मका मूल्य

पाठ सीखा कटु जगत का
बन्धु ही का मूल्य देकर
क्या यही था मूल्य उसका?

मूल्य इसका बन्धु ही है, यदि तनिक मैं जान लेता,
सत्य कहता हूँ वहीं पर स्वयं ही मै मूल्य होता।
नेह जग से तोड़ देता, छोड़ देता क्षणिक जग को,
है यही कटु रीति जग की, स्वयं ही मैं सीख लेता॥

किन्तु विधि ने है सिखाया
'क्षणिक जग है' बन्धु लेकर
बन्धु ही क्या मूल्य उसका?

पाठ पढ़ लूँ सीख लूँ और समझ लूँ नश्वर जगत को,
यह सदा से लालसा थी जान लूँ विधि के नियम को।
पाठ सीखा किन्तु क्या जब खो दिया अपने हृदय को,
नियति ने जब छल लिया है दोष दूँ मैं आज किसको॥

किन्तु यदि मालूम होता
मूल्य होगा कठिन इतना,
मूल्य देता मैं न उसका।

दिवस का मध्याह्न देखा और उसका अंत देखा,
सरल रवि को घोर तम का एक लघु सा ग्रास देखा।

जगत में निर्माण के पीछे छिपा अवसान देखा,
सृजन में संहार ही है बन्धु देकर आज देखा॥
यदि यही था देखना ही
मूल्य देता और कुछ भी
बन्धु ही क्यों मूल्य उसका?
लुट चुका सर्वस्व ही जब अश्रु जल में क्या धरा है।
जब चिता पर जल चुके अरमान अपने क्या धरा है।
काल मुख जाते हुए चञ्चल जगत में क्या धरा है।
देखता हूँ बस चिता की भस्म से जग भरा है।
भस्म बनने को चिता पर
बन्धु बली चढ़ेगी बन्धु की ही
था कहाँ अनुमान इसका?

इसी प्रकार ही एक तुकबन्दी बाई कौशल्याके प्रति हुई। छोटे भाईके प्रति जो ममत्व था, अब इस ममत्वका विषय बाई कौशल्या बन गयी और वह ममत्व इन कतिपय शब्दोंमें बरस पड़ा।

बहिन कौशल्ये!
जीवन अँधेरी रात है जिसका सबेरा अब नहीं,
है घिर उठी जो कालिमा, अब लालिमा उसकी नहीं।
प्रतिदिन छिपेगा और निकलेगा जगत में रवि सदा,
है अस्त यह ऐसा हुआ जिसका उदय है ही नहीं॥
उजड़े चमन की तू कली जिसका ठिकाना कुछ नहीं,
मसल दी निष्ठुर करों से, इति यहीं पर है नहीं।
विधि ने दिया है फेंक जग के घोर तम के तूफान में,
असहाय हो जो उड़ चली जिसको सहारा कुछ नहीं॥
सर्वस्व तेरा छिन गया है नाव का नाविक नहीं।
मझधार नौका हो गयी जिसको किनारा है नहीं।
छिन क्या गया? सब लुट गया छाई अँधेरी रात है,
है शून्य तेरे नेत्र ये जिनमें उजेला है नहीं॥
तुम चाहती कुछ देखना, पर दिखता कुछ भी नहीं,

बेचैन इतनी दर्द से भर आह ले फुरसत नहीं।
छाई निराशा की निशा, जीवन निशा ही हो गया,
क्या है विधि के यही नियम, जिनमें नियम है ही नहीं॥
कल शाम को हँस रही, अब हास थोड़ा भी नहीं,
जीवन बना उपहास है, मृदु हास जिसमें है नहीं।
मधुमास जीवन का गया, मधुराग कोकिल का गया,
स्वर शेष इतना ही नहीं, जो कह सके अब 'वह' नहीं॥
कैसे तुम्हें दूँ सान्त्वना, जब शान्ति मुझमें है नहीं।
धीरज तुम्हें दूँ किस तरह, जब स्वयं को धीरज नहीं।
पर बहिन! मैंने सुना, प्रभु हैं, कहाते दीन वत्सल,
अब चल वहीं, जिनके स्वरों में स्वर 'नहीं' है ही नहीं॥

विधिका विधान बड़ा क्रूर और कठोर था। पीहर और ससुरालके परिजनोंने जो सुनहला सपना सजोया था, उसपर वज्रपात हो चुका था—

फूलत फलत भयउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा॥
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिध गति बाम सदा सब काहू॥

घरमें चारों ओर रुदन मचा हुआ था। आँखोंसे आँसुओंकी वर्षा हो रही थी। जो होना था, हो गया। तेरह दिन बाद श्राद्धकर्म भी सम्पन्न हो गया। एक परम्परा है कि ऐसे दुर्भाग्यके अवसरपर पीहरवाले बेटीको घर बुलाते हैं। बाई कौशल्या अपने ससुराल पडरौनासे पीहर गोरखपुर गयी। माँने बेटीको छातीसे चिपका लिया। पुनः रोदनका स्वर फूट पड़ा। घोर विकलता छायी हुई थी। मोहल्लेके आत्मीयजन सहानुभूति प्रकट करने आ रहे थे। धीरे-धीरे समय बीतने लगा।

लगभग डेढ़-दो मास बाद बाई कौशल्या गीतावाटिका आयी। पूज्या माँ, पूज्य बाबूजी एवं परमादरणीया बाई सावित्रीबाई फोगलाने उसे अपने प्यारसे नहला दिया। फिर आदरणीया बाई उसे लेकर पूज्य बाबाके पास गयी। उसने पूज्य बाबाको प्रणाम किया। फिर पूज्य बाबाने आदरणीया बाईसे कहा—तुम जाओ, मैं इससे एकान्तमें कुछ बात करना चाहता हूँ।

आदरणीया बाई चली आयी। अब कुटीरके एकान्तमें पूज्य बाबाके पास अकेली कौशल्याबाई थी। बाबाने उससे पूछा—क्या बेटी! मैं झूठ बोलूँगा?

बाई कौशल्या—आप भला झूठ क्यों बोलेंगे? जो सत्य होगा, वही कहेंगे।

बाबा—क्या मेरी बातपर विश्वास तुम करोगी?

बाई कौशल्या—आप पर नहीं करूँगी तो किसपर करूँगी? आप वही कहेंगे, जिसमें मेरा भला होगा।

बाबा—बेटी! तू मेरी बातपर विश्वास कर। मैं जो कह रहा हूँ, वह अक्षरश: सत्य है। इसमें रंचमात्र संदेह मत करना। मैं वही कह रहा हूँ, जो संत और शास्त्रद्वारा अनुमोदित है। आज जिस घटनाको लेकर तुम परम दुर्भाग्य मान रही हो, यह परम दुर्भाग्य नहीं, परम सौभाग्यकी बात है। तुम्हारे लिये, विश्वास कर, परम सौभाग्य सूर्यका उदय हुआ है। यदि तुम गृहस्थ जीवन व्यतीत करती तो जगतकी दृष्टिसे प्रापञ्चिक जीवन व्यतीत करना पड़ता। अब भगवानने तुमको यह स्वर्ण अवसर प्रदान किसा है कि अब भविष्यमें भगवानका भजन करो। अपने जीवकी धाराकी दिशा भगवानकी ओर कर दो। यह निश्चय कर लो कि शेष जीवन भगवद्भजनमें व्यतीत करना है। तुम स्वयं अनुभव करोगी कि जीवनमें आनन्दका सागर लहराने लगा है।

बाई कौशल्याने बाबाको प्रणाम किया और कहा—आज आपने मेरे सारे दु:ख-दर्दको दूर कर दिया। मुझे एक नयी दिशा मिली।

बाबाकी वाणीने जादूका काम किया। अब बाई कौशल्याके मुखमण्डलपर विषाद और उदासी नहीं, अपितु प्रसन्नता और मुस्कान थी। उसके जीवनमें जो यह परिवर्तन आया, उससे उसके सभी आत्मीयजनोंको बड़ा सन्तोष मिला।

इस प्रकार कई माह बीत गये। एक नया प्रश्न उठ खड़ा हुआ। प्रश्न था बाई कौशल्याके गहनोंका। ससुरालवाले चाहते थे कि उसका सारा गहना पडरौनामें रहे और पीहरवाले चाहते थे कि उसका सारा गहना गोरखपुर रहे, जिसमें भविष्यमें उसके लिये एक आधार बना रहे।

इस विवादने विशद रूप ले लिया। फिर बादमें बीचमें बिचौलिये बने पूज्य श्रीसेठजी और पूज्य बाबूजी। दोनों पक्षवालोंने अपने-अपने मनकी बात कही। दोनों पक्षकी बात सुनकर पूज्य श्रीसेठजीने अन्तिम निर्णय दिया—गहना न पीहरमें रहेगा और न ससुरालमें रहेगा। वह कौशल्याकी जीवन निधि है। इसकी सुरक्षा नितान्त आवश्यक है, अत: यह गहना बाई कौशल्याके नामसे गीताप्रेसकी तिजोरीमें बन्द रहेगा।

भविष्यमें हुआ भी ऐसा ही। वह सारा गहना गीताप्रेसमें जमा हो गया।

अब बाई कौशल्या प्राय: अपने पीहरमें ही रहती थी और अधिकांश समय पूज्य श्रीसेठजी एवं पूज्य स्वामीजीके सत्संगमें बिताया करती थी। पूज्य श्रीसेठजीने अर्चना करनेके लिये ठाकुरजी भी प्रदान किये। इस प्रकार साल-पर-साल व्यतीत होने लगे और वह प्रतिवर्ष सत्संगके लिये स्वर्गाश्रम जाया करती थी। इसी प्रकार और भी दो-तीन बहिनें बाल-विधवा थी। पूज्य सेठजीने सभीको हिल-मिलकर रहनेके लिये कहा। उन दो-तीन बहिनोंके साथ बहिन कौशल्याकी बड़ी आत्मीयता हो गयी। अब यह भी कहा जा सकता है कि वह भूल गयी कि मुझे कभी बहुत बड़ा दु:ख पड़ा था।

मैं उससे प्राय: मिलता रहता था और उसे अपने स्नेह प्रदान किया करता था। जागतिक दृष्टिसे मैं उसका ज्येष्ठ था और वह मेरी अनुज-वधू थी, परन्तु दु:ख पड़ते ही मैंने उसे अपनी सहोदरा बहिनकी उपस्थितिमें कहा था कि आजसे मैं तेरा धर्म भाई हूँ और तुम मेरी धर्म बहिन है। बीती बात भूल जा, इस नये सम्बन्धको स्वीकार कर। इस भावमय सम्बन्धके अनुसार वह मुझे हमेशा रक्षाबन्धनके अवसरपर राखी बाँधा करती थी।

पूज्या माँजी (परम पूज्य बाबूजीकी सहधर्मिणी)-की सगी छोटी बहिनका नाम द्रौपदीबाई है और इनका विवाह श्रीशिव भगवानजी पोद्दारसे हुआ, जिसका आवास स्थान गीतावाटिकासे ठीक सटे दक्षिणमें है। इनके सुपुत्र श्रीलीलाधर पोद्दारका विवाह २६ जनवरी १९६८ को हुआ। बारात गोरखपुरसे पडरौना गयी। सौभाग्यकांक्षिणी बालिकाका घर पडरौनामें था। यद्यपि 'कल्याण'के सम्पादनका कार्यभार अत्यधिक था, फिर भी श्रीशिवभगवानजी पोद्दारके अनुरोधपर पूज्य बाबूजीको विवाहके अवसरपर पडरौना जाना था। बारात तो गोरखपुरसे पडरौनाके लिये जा चुकी थी, परन्तु बाबूजीने कहा था कि मैं विवाहके अवसरपर अपनी कारमें पहुँच जाऊँगा।

पूर्वाह्नकालमें पूज्य बाबूजी, भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल और मैं कारसे पडरौनाके लिये रवाना हुए। मैंने थोड़ी-सी चतुराई बरती। मैं कारको उस रास्तेसे ले ही नहीं गया, जिस रास्तेपर धर्मशाला थी और जहाँ बारात ठहरी हुई थी। यदि उस राहसे जाते तो शिवभगवानजी कारको रोक लेते। मेरा जन्म स्थान पडरौना है, अत: सारे मार्गोंसे परिचित था। मैं ही गाइडका काम कर रहा था।

दूसरे मार्गसे चलती हुई कार सीधे मेरे घरके द्वारपर पहुँची। उस समय बाई कौशल्या पडरौनामें ही थी। पूज्य बाबूजीको अपने घरके आँगनमें देखकर उसके आनन्दकी सीमा नहीं थी। प्रणाम करके उसने बाबूजीको भोजन कराया।

तबतक शिवभगवानजीको पता चल गया कि राधेश्याम बंका बाबूजीको अपने घर ले गया है। उनको बड़ा नागवार गुजरा। उनकी चाह यह थी कि बाबूजी पहले विवाहमें आते फिर कहीं अन्यत्र जाते, पर 'मेरी चतुराई'के कारण जो होना था, वह हो चुका था। फिर बाबूजी बारातमें गये। यहाँपर एक बात उल्लेखनीय है कि पूज्य बाबूजीके पावन चरण जिस क्षण हमारे घरके आँगनमें पड़े, उसके बादसे पडरौनामें निवास करनेवाले मेरे बंका परिवारकी आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति दिन-प्रतिदिन सुन्दर-से-सुन्दर होती चली गयी।

सन् १९७३-७४ के आसपासकी बात होगी। मैंने उससे कहा—तुम्हारे पास व्यवस्था है। तू एक बार मुझे श्रीमद्भागवत महापुराण सुनवा दे।

उसने मेरा अनुरोधको स्वीकार कर लिया। उसने सोचा कि एक तीरसे दो निशाने सिद्ध होंगे। दिवंगत पतिकी सद्गतिके लिये श्रीमद्भागवत महापुराणकी कथा हो जायेगी और इनके अभिलाषाकी पूर्ति भी हो जायेगी। बाई कौशल्याने वृन्दावनके श्रेष्ठ कथावाचक पूज्य श्रीश्रीनाथजी महाराजसे कथाके लिये तिथि निश्चित करवा ली और यह कथा पडरौनामें होनेवाली थी। जब कथा तय हो गयी, तब कथाकी बात चलाकर मैंने पूज्य बाबासे कहा—बाबा! मेरे घर पडरौनामें भागवत कथा होनेवाली है। वहाँ जानेकी आज्ञा चाहता हूँ।

बाबाने स्पष्ट कहा—आपको नहीं जाना है।

यह सुनते ही मेरे मनकी स्थिति बड़ी विचित्र हो गयी। अन्तरमें भीषण द्वन्द्व मचा हुआ था। मेरे कहनेपर ही कथा आयोजित हुई और मैं नहीं जाऊँगा तो बाई कौशल्या क्या सोचेगी। एक दिन मैंने यह सारी बात बाई कौशल्याको बता दी। फिर बाई कौशल्या स्वयं पूज्य बाबाके पास गयी और मेरे लिये आज्ञा देनेका अनुरोध किया।

बाबाने उससे भी कहा—बेटी! बंकाजी नहीं जायेंगे। उनका जीवन विरक्त है। उनको गीतावाटिकामें ही रहना है।

यह उत्तर सुनकर बाई कौशल्या मन मारकर चली आयी और 'डूबतेको तिनकेका सहारा'के अनुसार वह आदरणीया सावित्रीबाई फोगलाके पास गयी।

आदरणीया बाईका हृदय द्रवित हो उठा। अब आदरणीया बाई अपने साथ बाई कौशल्याको लेकर बाबाके पास गयी। उनको आते देखकर बाबा पहले ही बोल उठे—बाई! मैं जानता हूँ कि तुम बाई कौशल्याको साथ लेकर मेरे पास क्यों आयी हो। कुछ भी हो, बंका पडरौना नहीं जायेगा।

अब बात समाप्त हो गयी। बाई कौशल्या निराश, मैं भी निराश, पर कथा तो पडरौनामें भली प्रकार सम्पन्न हुई।

सप्ताह कथाके लिये पूज्य श्रीश्रीनाथजी महाराजने अपनी स्वीकृति दे दी है, यह बात सुनकर मेरे मिलने-जुलनेवालोंने बाईको बहुत ही हतोत्साहित किया कि तुम कैसे भागवतकी कथाके विशाल कार्यको सँभाल पाओगी, क्योंकि उनकी कथामें तो बहुत बड़े प्रबन्धकी आवश्यकता रहा करती है। जब कई लोगोंने एक ओरसे बार-बार इसी बातको कहना आरम्भ कर दिया तो वह सचमुच डर गयी कि यह काम कैसे पूरा होगा। कमरेके एकान्तमें बाई पूज्य बाबूजीको याद किया और उनसे कातर स्वरमें प्रार्थना करने लगी—अब यह कार्य आपको ही सँभालना है तथा पूरा करना है।

बाबूजीसे प्रार्थना करनेके बाद बाईको एक विचित्र प्रकारसे आश्वासन और शक्तिका अनुभव होने लग गया। बाईके मनमें यह बात बैठ गयी कि सारा काम ठीक प्रकारसे हो जायेगा। भागवतकी सप्ताह-कथाके आरम्भ होनेपर बाईने इतना अवश्य किया कि मुख्य श्रोताके रूपमें पूज्य बाबूजीका तथा इसीके साथ पूज्य श्रीसेठजीका चित्रात्मक विग्रह श्रीमद्भागवतमहापुराण ग्रन्थके समक्ष प्रस्थापित कर दिया।

पडरौनामें भागवत-सप्ताहकी कथा आरम्भ होनेवाले दिवसके पूर्व पूज्य बाबूजी रात्रिके समय स्वप्नमें पधारे तथा बाईके सामने आकर कहने लगे—तुमने श्रीश्रीनाथजी महाराजको अपनी बुआजीके घरपर, श्रीमन्नालालजी खेतानके पास ठहराया है। उनकी सुख-सुविधाके लिये तो यह ठीक ही किया, पर इस बातका ध्यान रखना कि जबतक महाराजजी कथा कहें, तबतक वे वहाँका अन्न ग्रहण न करें। यदि यह हो पाया तो सप्ताह-कथा तुम्हें विशेष रूपसे फल-दायिनी होगी।

स्वप्नमें इतना कहकर पूज्य बाबूजी अदृश्य हो गये तथा बाईकी नींद टूट गयी। बाईके द्वारा यह कितनी बड़ी भूल हो रही थी? इस दृष्टिसे बाईने न कोई सावधानी बरती थी और न बाईने महाराजजीसे कुछ अनुरोध किया था। स्वप्नमें

आकर पूज्य बाबूजीने बाईको सचेत किया। पूज्य बाबूजीके वात्सल्यको सोच-सोच करके बाई बड़ी गद्‌गद हो रही थी। सबेरा होते ही जल्दीसे नहा-धोकर बाई बूआजीके यहाँ पूज्य महाराजजीके पास गयी। उन्हें प्रणाम कर स्वप्नवाली सारी बात बाईने उनसे बता दी। स्वप्न सुनकर महाराजजीको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने बाईसे कहा—लाली! अब ऐसा ही होगा। इस दृष्टिसे मैं पूर्ण सावधान रहूँगा।

पूज्य महाराजजीके बचनोंको सुनकर बाईको बड़ा संतोष हुआ। बाई तो इस बातसे फूली-फूली फिरती थी कि पूज्य बाबूजीने मेरी एक बहुत बड़ी भूलको सुधार दिया। यदि पूज्य बाबूजी स्वप्नमें नहीं बताते तो मेरा ध्यान उस ओर जाता ही नहीं। भागवतकी सप्ताह-कथामें विघ्न बाधाएँ कम नहीं आयीं। आँधी-वर्षाके रूपमें दैवी प्रकोपका भी सामना करना पड़ा, परन्तु पूज्य बाबूजीकी कृपासे सारी बाधाएँ दूर हो गयीं और सप्ताह-कथाका सारा कार्य विधि-पूर्वक सम्पन्न हो गया।

एक बात जरूर हुई। कथाके बाद बाई कौशल्या पूज्य श्रीश्रीनाथजी महाराजके साथ गीतावाटिका आयी और श्रीमद्भागवत महापुराणकी कथाका प्रसाद महाराजजीके हाथसे मुझे दिलाया। मेरा मन प्रसन्न हो उठा और मैंने महाराजजीको प्रणाम किया।

अब बाई कौशल्या अपना एक प्रसंग स्वयं अपने शब्दोंमें जो लिखा, वह इस प्रकार है—

पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)का जितना और जैसा वात्सल्य मुझे जीवनमें मिला है, उसे याद करके हृदय भर आता है। एक बार मेरी माताजीने मुझसे कहा कि तुम बदरी-केदार-धामकी यात्रा कर आवो। मैंने अपने मनमें निश्चय कर रखा था कि जब कभी पूज्य बाबूजी बदरी-केदारनाथ जायेंगे, तब मैं उनके साथ जाऊँगी। जब मैंने माँके कहनेपर ध्यान नहीं दिया तो मेरे बड़े भाईने यह बात पूज्य बाबूजीको बतायी। पूज्य बाबूजीने मुझसे कहा—अभी तो सुविधा है, सुन्दर साथ है तथा घरवाले प्रसन्न मनसे कह रहे हैं, अतः तुम बदरी-केदारके दर्शन कर आवो।

मैंने पूज्य बाबूजीसे कहा—ऐसा सुना है कि पहाड़ी यात्रामें बड़ी अड़चनें आया करती हैं। जब कभी आप चलेंगे, तभी आपके साथ जानेका विचार है।

पूज्य बाबूजीने अँगुलीमें अँगूठी पहन रखी थी। उन्होंने अपनी अँगुलीसे अँगूठी निकाली और मुझे देकर कहा—इस अँगूठीको तुम अपनी अँगूलीमें पहल लो अथवा पल्लेमें बाँध लो। अब तुम्हारे सामने कोई बाधा नहीं आयेगी। सारी यात्रा भली प्रकारसे हो जायेगी। तुम्हारा मेरे साथ जानेका मन है। पता नहीं मेरा जाना हो पायेगा या नहीं, पर यदि कभी मैं जाऊँ तो तुम भी चलना। उस समय तुम्हारी दुबारा यात्रा हो जायेगी, पर इस समय तो तुम यात्रा कर आवो।

मैं बदरी-केदारनाथकी यात्रापर गयी और सचमुच सारी यात्रा बड़ी सुखद और सुन्दर रही।

पूज्य बाबूजीकी आत्मीयताके अब कई प्रसंग याद आ रहे हैं। एक बार एक स्वजनकी बरातमें पूज्य बाबूजी पडरौना गये थे। पडरौना गोरखपुरसे लगभग पैंतालीस मीलकी दूरीपर स्थित एक छोटा-सा नगर है। उन्हें भोजन बारातियोंके साथ करना चाहिये था, पर वे भोजन करने मेरे घर पधारे। जिस दिन पूज्य बाबूजीका मेरे घरपर शुभागमन हुआ, यही कहना चाहिये कि उस दिनसे हम लोगोंके भाग्योदयका आरम्भ हो गया। हमारा परिवार अनेक प्रकारकी कठिनाइयोंको झेल रहा था। उसी दिनसे कठिनाइयाँ धीरे-धीरे दूर होती चली गयीं।

उनके इस वात्सल्यने न जाने कौन-सी दिव्य वस्तु मुझे दे दी। स्वर्गाश्रमकी बात है। मुझे अपने एकादशीके व्रतका उद्यापन करना था। उद्यापन-पूजनके आचार्य थे नापासरवाले पूज्य पं.श्रीहरिप्रसादजी पारीक। इस उद्यापनके पूजनका संकल्प स्वयं पूज्य बाबूजीने अर्चकके आसनपर बैठकर लिया। एकादशी व्रतकी भाँति मुझे पूर्णिमा व्रतका उद्यापन करना था। पूज्य बाबूजी अस्वस्थ थे तो उन्होंने जीजाजी (सम्मान्य श्रीपरमेश्वर प्रसादजी फोगला)को भेजा। जीजाजीने सारी पूजा करवायी। पूजाकी सम्पन्नताके अवसरपर जब आरती होनेवाली थी, तब पूज्य बाबूजी भी आ गये। पूज्य बाबूजीका स्वास्थ्य ठीक नहीं था, अतः लोगोंने जानेसे रोका। लोगों द्वारा निवारण किये जानेके बाद भी पूज्य बाबूजी आरतीके अवसरपर पहुँच गये।

सन् १९८५ में कौशल्याबाईने अपने दादा-परदादाके बनाये हुए पडरौना स्थित श्रीजानकीराम मन्दिरका जीर्णोद्धार करवाया। फिर उसका शेष जीवन भगवद्भजनमें व्यतीत हुआ। और उसने सन् २००४ में अपने पार्थिव शरीरका परित्याग कर दिया।

एक बहिनजी

उन जैसा भाई मिला

मैं पूज्य श्रीसेठजी और पूज्य श्रीभाईजीके सत्संगके लिये सपरिवार स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) गयी हुई थी। हमलोग गीताभवनके एक कमरेमें ठहरे हुए थे। मेरे श्वसुरजीकी श्रीसेठजी और श्रीभाईजीपर बहुत अधिक श्रद्धा थी। हमारे वैष्णव परिवारके प्रत्येक सदस्यके हृदयमें इन दोनों महान विभूतियोंके प्रति अपार पूज्य भावना थी। इनके सत्संगका लाभ उठानके लिये हमलोग गर्मीके दिनोंमें प्राय: स्वर्गाश्रम आ जाया करते थे।

भगवानने जैसा श्रेष्ठ और सात्त्विक पितृ-कुल और श्वसुर-कुल दिया, वह मेरे लिये सौभाग्यकी बात है। दोनों घरोंका धार्मिक वातावरण मेरे लिये वरदान था। जीवनमें किसी प्रकारकी काई चिन्ता भी नहीं थी। बस, एक अभावकी स्मृति होते ही मन उदास हो जाया करता था। मेरे कोई भाई नहीं था। भाईका अभाव सदा चुभता रहता था।

एक संध्याके समय मैं गीताभवनके सामने श्रीगंगाजीके किनारे घाटपर बैठी हुई थी। वहीं मुझे भागलपुर वाली आदरणीया श्रीरुक्मिणीबाई और श्रीनर्मदीबाई दिखाई दे गयीं। वे मुझे नहीं जानती थीं, पर मुझे उनका परिचय प्राप्त था, अत: मैं उनके पास जाकर बैठ गयी और बहुत देरतक उनसे भक्ति-भावकी अच्छी-अच्छी बातें होती रहीं। उनके स्नेह और सहृदयताको देखकर मेरा मन बह पड़ा और उनसे भी मैं अपने अभावकी बात कह बैठी—भगवानने मुझे बहुत दिया, पर भाई नहीं दिया और यह अभाव बड़ा कसक उठता है।

आदरणीया बाईने मुझे न कुछ उपदेश दिया, न तनिक सान्त्वना दी और न कोई बात कही। मेरी बात सुनते ही उसने कहा—चलिये मेरे साथ। श्रीभाईजीके पास चलें।

मैं उठकर उनके साथ चल दी। मैं उनके लिये एक अपरिचित महिला थी, परंतु उनकी आत्मीयता और सहृदयताको देखकर मेरा मन मुग्ध हो गया। वे मुझे सीधे डालमीया कोठीमें श्रीभाईजीके पास ले गयीं। श्रीभाईजी अपने कमरेमें बैठे हुए कुछ काम कर रहे थे। शायद 'कल्याण' पत्रिकाके लिये लेख तैयार कर रहे होंगे। हम तीनोंको देखते ही श्रीभाईजी मुस्कुरा उठे। मधुर मुस्कान बिखेरते हुए उन्होंने बड़े स्नेह और सम्मान पूर्वक बैठनेके लिये कहा। हाथके कागजोंको गोदमें रखते हुए उन्होंने कहा—क्यों, कैसे आना हुआ?

आदरणीया बाईने उनसे कहा—घाटपर ये बहिन अचानक मेरे पास आ गयीं। अच्छी-अच्छी बातें होते-होते यह अपना एक दुखड़ा सुनाने लगीं। इन्हें मैं आपके पास इसीलिये ले आयी हूँ कि आप इनका कष्ट सुन लें।

श्रीभाईजीकी आँखें मेरी ओर उठकर पूछने लगीं कि क्या कष्ट है। श्रीभाईजीके लिये मैं कोई अरिचित नहीं थी। वे भली प्रकार मुझे जानते थे और जानते थे एक सत्संगीके नाते। मैंने श्रद्धापूरित हृदयसे कहना आरम्भ किया—भाईजी! भगवानकी कृपासे तथा आपलागोंके आशीर्वादसे घरपर किसी बातकी कमी नहीं है। खाने-पीने, ओढ़ने-पहनने, आने-जानेकी सारी सुविधा होते हुए भी एक चीजका अभाव खटक जाता है कि मेरे कोई भाई नहीं है। भाईके नहीं……

मैं अपनी बात पूरी तरह कह भी नहीं पायी थी कि श्रीभाईजी मेरी ओर सरक आये और मेरे सिरपर हाथ रखकर कहने लगे—मैं तुम्हारा भाई हूँ न? सचमुच मैं तुम्हारा असली भाई हूँ।

मुझे विश्वास नहीं हो रहा था कि मेरे कानोंपर। क्या श्रीभाईजी जैसे महान संत मुझे भाईके रूपमें मिल सकते हैं, यह तो मेरे अनुमानसे सर्वथा परेकी बात थी। श्रीभाईजीने जिस प्यारसे मेरे सिरपर और पीठपर हाथ सहलाया, उस स्पर्शसे मुझे अत्यधिक रोमांच हो आया। भावोंमें ऐसा उफान आ गया, जो रोके-से भी नहीं रुका। प्यारके आवेगमें मैं रोने लगी। आँखोंमें गंगा-जमुनाकी बाढ़ आ गयी। मैंने श्रीभाईजीकी गोदमें सिर रख दिया और लगभग आधा-पौन घंटा गोदमें पड़ी-पड़ी रोती रही। नेत्र तो बह ही रहे थे, नासिका भी इतनी अधिक बह रही थी कि सीमा नहीं। भावोंकी प्रबलताके कारण मैं ध्यान नहीं दे पायी कि मेरे नेत्र और नासिकाके निर्झरणके फलस्परूप श्रीभाईजीकी धोती भीग-भीग करके खराब हो रही है। धोती खराब होती रही, इसके बाद भी श्रीभाईजीने अपने गोदमें ही मुझे पड़े रहने दिया। भावोंका तीव्र वेग जब कुछ शान्त हुआ तो मैं धीरेसे उनकी गोदसे उठी। कुछ देर चुप रही। आज मेरा मन आनन्दसे भरपूर था। आज जो बात श्रीभाईजीके मुखसे निकली और मेरे कानोंने सुनी, उसपर जल्दी मन टिक नहीं रहा था। मैंने श्रीभाईजीसे कहा—आज जो हुआ, वह स्वप्न है

या सच है? क्या आप सचमुच मेरे भाई हैं? मुझे कैसे विश्वास हो कि आप सचमुच मेरे भाई हैं?

श्रीभाईजीने कहा—क्या मैं यों ही कह रहा हूँ? मैं सचमुच तेरा भाई हूँ। ला, मेरे हाथमें राखी बाँध।

मैं जो कुछ-कुछ संदेह कर रही थी, उसपर मुझे शर्म लगने लगी। नर्मदीबाई दौड़कर पूज्या माँजीके पाससे रोली, चावल और मोली ले आयीं। मैंने श्रीभाईजीके भालपर रोलीका टीका किया, चावल चिपकाये और उनकी कलाईमें राखी बाँध दी। श्रीभाईजीने मेरे भी टीका किया और राखीका नेग दिया। इतना होनेके बाद श्रीभाईजीने कहा—अब तुमको विश्वास हो गया न?

श्रीभाईजीकी बात सुनकर मैं मन्द-मन्द हँसने लगी और श्रीभाईजीके पावन चरणोंमें मैंने अपना मस्तक रख दिया। मेरे आनोखे भाग्योदयका दिन था। अब मैं रोज ही श्रीभाईजीको प्रणाम करनेके लिये जाने लगी। प्रणाम तो मैं नित्य ही करती थी, पर अब प्रणाम करनेका सुख नवीन प्रकारका था। अबतक मैं उनको प्रणाम करती थी एक महान संत मानकर और अब प्रणाम करती हूँ अपना निज भाई मानकर। मैं तो आदरणीया रुक्मिणीबाई तथा नर्मदीबाईके प्रति आभारी हूँ, जिनके कारण श्रीभाईजी जैसा महान संत मुझे निज भाईके रूपमें मिला।

धीरे-धीरे समय बीतने लगा। मेरे घर विवाहका अवसर आया। मेरे पुत्रका विवाह था। मैंने बहिनके नाते श्रीभाईजीको निमंत्रण भेजा। वे विवाहके अवसरपर आना तो चाहते थे, परन्तु परिस्थितियोंने उनको विवश कर दिया। कुछ अस्वस्थता, कुछ व्यस्तता और कुछ अन्य कारणोंसे वे चाह करके भी आ न सके। वे आ तो नहीं सके, पर वे मुझ बहिनको भुला भी नहीं सके। मैं हूँ तो अति साधारण, पर मुझ अति नाचीज बहिनके लिये भी उन महानके हृदयमें प्यार छलछला रहा था। उन्होंने दौहित्र सूर्यकान्तको अपने स्थानपर विवाहमें भेज दिया। प्रिय सूर्यकान्तके आनेसे ही मुझे अतीव प्रसन्नता थी मानो श्रीभाईजी ही आ गये हों।

विवाहके पूर्व जब भात भरनेका नेग आया तो प्रिय सूर्यकान्तने कहा—पूज्य नानाजीने आपके लिये चुनरी भेजी है। वह मैं आपको उनकी ओरसे ओढ़ाऊँगा। वह चुनरी नानाजीने आपने हाथसे आपके लिये दी है और यह पत्र भी दिया है।

जिस समय प्रिय सूर्यकान्तने मुझे चुनरी ओढ़ाई, मैं अपने आपमें नहीं रह सकी। चुनरीका स्पर्श होते ही मुझे श्रीभाईजीके दिव्य स्पर्शकी अनुभूति हुई और मैं तत्काल भाव-विभोर हो उठी। मेरे सारे शरीरमें रोमांच हो आया। मुझे अपनी सुध-बुध नहीं रही। लोगोंने मुझे बादमें बतलाया कि जो मेरे सामने आता, मैं उसीको प्रणाम करने लगती। भरी-भरी आँखोंसे प्रणाम करनेका क्रम दो घंटेसे अधिक समयतक चलता रहा। मेरे पुत्रका बैठा-विवाह हुआ था। कन्याकी माताजीका नेगचार पूरा करनेके लिये हमारे घर आयीं और मुझसे कहने लगीं—सगीजी! उठिये। अब नेगचार करना है न?

उनके द्वारा ऐसा कहे जानेके बाद भी मैं शून्य नेत्रसे उनकी ओर देखती रही और उनको प्रणाम करने लगी। मेरे मूक अधर, सजल नयन और विह्वल मुखको देखकर लोग आश्चर्य करने लगे कि इसे अचानक क्या हो गया, पर मैं बता सकनेकी स्थितिमें नहीं थी कि श्रीभाईजीके चुनरीने मेरी क्या दशा बना दी। बहुत देर बाद जब भाव कुछ शान्त हुए, तब मैं कहीं विवाह-कार्यमें सहयोग दे सकी। मैं वस्तुतः स्वयंको परम सौभाग्यशालिनी मानती हूँ, जो उन्होंने मुझे बहिनके रूपमें अपना लिया। उनसा भाई पाकर मैं धन्य हो गयी।

पागलनी माँ

सन् १९८० के नवम्बर मासकी बात है। आजकल भाई श्रीराधेश्यामजी मिश्र पूज्य बाबाको 'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत' प्रतिदिन प्रातःकाल सुनाया करते हैं। श्रीरामकृष्ण-वचनामृत सुननेके बाद पूज्य बाबा मंजन-शौचादिसे निवृत्त हुए ही थे कि उनको एक दर्दभरी सूचना दी गयी। एक पागलिनी कुछ दिनसे आ गयी है और आज गीतावाटिकाके प्रवेश-द्वारके समीप, किन्तु कुछ हटकर एक पेड़के नीचे कूड़े-कचरेके पास पड़ी हुई है। उसे अपने वस्त्रोंकी सुध नहीं है। उसकी दशा आज अत्यन्त खराब है। उसके कपड़े मलसे सने पड़े हैं। उसकी हालत मरणासन्न-सी है।

इस पगलिनीका हाल सुनकर पूज्य बाबाकी करुणा जाग पड़ी, अपितु यह कहना चाहिये कि फूट पड़ी। उन्होंने तुरन्त डॉ० एल० डी० सिंहको उसके पास भेजा, अपनी सेवा छुड़वा करके भेजा। उसके पाससे आकर

डॉ० साहबने कहा—उसकी हालत तो सोचनीय ही है। उसकी नाड़ीकी गति कोहनीके पास थोड़ी बहुत है।

पूज्य बाबाने तुरन्त कहा कि उसको उठाकर गीतावाटिकामे लाया जाय। इधर उसे लानेको कहा और उधर पूज्य बाबाने रमा माँको बुलानेके लिये आदमी भेजा। फिर पूज्य बाबाने शीघ्रतासे स्नान कर लिया। परमादरणीया रमा माँ लेडी डॉक्टर हैं तथा पूज्य बाबाके प्रति अगाध श्रद्धा है। रमा माँको आते ही पूज्य बाबाने कहा—माँ! जा करके उस पगलिनीको देखो कि क्या स्थिति है।

रमा माँ ज्यों ही जाने वाली थी कि एकने आकर कहा—लोग उसे गीतावाटिकामें ला रहे हैं।

यह सुनते ही पूज्य बाबा भी चल पड़नेके लिये उत्सुक हो गये। उसी समय भगतजीने कहा—बाबा! कपड़ा तो पहन लें। जाड़ा पड़ रहा है।

पूज्य बाबाने कपड़ा पहना तथा उसके पास गये। उसको पूज्य बाबूजीकी समाधिके पास सहजनके पेड़के निकट खुले स्थानपर लिटा दिया गया था। उसकी साँस चल रही थी। उसकी परिचर्यामें रमा माँ, बहिन विमला, तारा दीदी आदि कुछ लोगोंको नियुक्त करके पूज्य बाबाने श्रीगिरिराज-परिक्रमाका नियम शीघ्रतासे पूर्ण किया। बाबा उधर परिक्रमा कर रहे थे और इधर विमला बहिन तथा तारा दीदीने उसके मल-सने कपड़ोंको अलग करके अच्छे वस्त्र पहनाये थोड़ी देर बाद वे भी मलसे खराब हो गये। फिरसे साफ कपड़े पहनाये गये। परिक्रमाके बाद पूज्य बाबा उस पागलिनीकी परिचर्यामें संलग्न हो गये। वाटिकाके लोग भी परिचर्यामें सहयोग देने लग गये। पूज्य बाबा उसे बार-बार अपनी माँ कह रहे थे। लोगोंके लिये वह पागलिनी होगी, वह भिखारिणी होगी, वह ग्रामिणा होगी, पूज्य बाबाको तो वह सगी माँ लग रही थी। पूज्य बाबा जिस तत्परतासे उसकी परिचर्यामें ध्यान दे रहे थे, वह तत्परता ऐसी थी मानो सभीको बिजलीका करंट छू गया है। वह तत्परता सभीमें संक्रमित हो उठी थी। लोग तत्परतापूर्वक परिचर्या कर रहे थे, परंतु उस पागलिनी माँके जीवनके यह अन्तिम क्षण थे। उसका निधन लगभग बारह बजे हुआ। निधन भी बड़ा विस्मयपूर्ण था। उसके आस-पास लोगोंकी काफी भीड़ थी। कुछ लोग उसे घेर करके बैठे हुए थे और कुछ लोग खड़े थे। निधनके पूर्व पागलिनी माँने अपनी आँखें खोली। आँखें खोलकर उसने एक ओरसे सभीको देखना आरम्भ किया। वह देखती जाती थी तथा अपनी गर्दन घुमाती जाती। एक ओरसे देखते-देखते तथा अपनी दृष्टिको और गर्दनको घुमाते-घुमाते वह दूसरे छोरपर दृष्टि ले गयी। दूसरे छोरपर उसकी दृष्टि वहाँ गयी, जहाँ पूज्य बाबा बैठे हुए थे। ज्यों ही उसकी दृष्टि पूज्य बाबापर गयी, त्यों ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये और उसकी गर्दन लटक गयी। सभी उसके सौभाग्यकी सराहना करने लगे।

उसके शवको ले जानेके लिये अर्थी तैयार की गयी। जब अर्थी उठायी गयी, तब उसे उठाते समय पूज्य बाबाने भी अपना हाथ लगाया। पूज्य बाबाके निर्देशानुसार लोग अर्थीको राप्ती नदीके किनारे राजघाट ले गये। पागलिनी माँके शवको जलानेके लिये चितापर रखा गया। वहाँ एक और विस्मयपूर्ण दृश्य देखनेको मिला। चिताकी लकड़ी गीली थी, अत: लकड़ी आग नहीं पकड़ रही थी। किसी प्रकारसे चिताकी लकड़ी जली, परंतु आग मन्द थी। निमित्त तो यही था कि चिताकी अग्निसे उसका शव जला, परन्तु लोगोंने देख कि चिताकी अग्नि उतनी प्रबल नहीं है, जितनी शवकी अग्नि। शव अपने-आप जल रहा है। चिताकी लकड़ियोंकी अग्नि मंद है तथा शवसे ऊँची-ऊँची लपटें निकल रही हैं।

कालती बुढ़ियाका श्राद्ध दिवस

पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)-के घरमें झाड़ू लगाने, बरतन माँजने आदिके लिये एक बुढ़िया काम करती थी। वह अत्यधिक श्यामवर्णा थी, अत: उसका नाम ही पड़ गया था कालती बुढ़िया। उसका घर गोरखपुर शहरके पास एक देहात में था, किन्तु वह गीतावाटिकामें ही रहा करती थी। यहाँ काम करते हुए उसे बहुत समय हो गया था।

सम्भवत: सन् १९६४ में उसका देहान्त हो गया। उसके घरवालोंने शवका अग्नि-संस्कार पारिवारिक परम्पराके अनुसार गोरखपुरके किनारे बहनेवाली राप्ती नदीके घाटपर किया। उसके परिवारवालोंने अपने घर उसका श्राद्ध-कर्म किस प्रकारसे सोलहवें दिन किया, वह मुझे पता नहीं, परन्तु गीतावाटिकामें पूज्य बाबाने जो श्राद्ध-दिवस मनाया, वह अपने ही ढंगका था।

पूज्य बाबाने चार-पाँच निज जनोंको अपनी (पुरानीवाली)कुटियाके सामने खुले आकाशमें बैठाया। बिछी हुई दरीके ऊपर ये सभी निज जन बैठे हुए थे। इन लोगोंके पास हरिनाम संकीर्तन करनेके लिये हारमोनियम, झाँझ, ढोलक आदि वाद्य रखे हुए थे। फिर पूज्य बाबाने इन लोगोंसे षोडश नामात्मक महामंत्रका कीर्तन आरम्भ करवा दिया। इस हरिनाम संकीर्तनमें पूज्य बाबाके निर्देशानुसार प्रत्येक बारह मिनटपर एक वाक्य उच्च स्वरसे बोलना पड़ता था। हरिनाम संकीर्तनका शुभारम्भ सूर्योदयके समय हुआ। पूज्य बाबाने जैसा कहा था, उसके अनुसार वह वाक्य मुझे ही कहना पड़ता था। बारह मिनट बीतनेपर मुझे ही विराम करनेके लिये संकेत देना होता था। श्रीहरिनाम संकीर्तनके विराम होते ही, जैसा पूज्य बाबाने लिखवाकर दिया था, मुझे बोलना पड़ता था—'कल्याण' सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके घरमें मातृहृदया कालती बुढ़ियाका आवरण स्वीकार करके झाड़ू-बहारू आदिकी सेवा करनेवाले नन्दनन्दन श्रीकृष्णकी सदा ही जय हो, जय हो।

इतना बोल चुकनेके बाद पुनः महामंत्रका सुमधुर और पावन संकीर्तन शुरू हो जाता था। संकीर्तनके मध्य हर बारह मिनटपर जय-जयकार बोले जानेवाला यह शुभानुष्ठान लगभग अपराह्न कालतक चलता रहा। कुटियाके वातावरणमें अद्भुत दिव्यता समायी हुई थी। इसके बाद गीतावाटिकाके सभी नौकरोंको भोजन करवाया गया। भोजन कर रहे थे सेवा करनेवाले नौकर लोग और परोस रहे थे सेवा लेनेवाले मालिक लोग। बाबा कुटियाके सामने सम्पन्न होनेवाले श्राद्ध-भोजका यह दृश्य बड़ा ही अनुपम था और सभीके मनपर एक स्थायी और अनोखी छाप छोड़ गया।

पूज्या श्रीसोहनी भाभीजी

गोरखपुरसे पडरौना नगरकी दूरी लगभग ८० किलोमीटरकी दूरीपर स्थित है। वहाँके विख्यात धनपति रहे श्रीहरिरामजी खेतान। आपको अँग्रेजी सरकारकी ओरसे 'रायबहादुर'की उपाधि मिली हुई थी। आपके तीन संतानें थीं। प्रथम श्रीमन्नालालजी खेतान, द्वितीय श्रीमातादीनजी खेतान तथा तृतीय श्रीभगवती प्रसादजी खेतान। खेतान बन्धुओंकी पडरौनाके आसपास कई स्टेशनोंपर कई

चीनी मीलें थीं। द्वितीय पुत्र बम्बईमें रहते थे और वे पाँच कपड़ा मिलके मालिक थे। उपर्युक्त वर्णनसे अस्पष्ट है कि खेतान बन्धुओंके वैभवकी सीमा नहीं थी।

मेरी सगी बूआ पूज्या श्रीरामदेईबाईका विवाह श्रीहरिराम खेतानसे हुआ था। इस नाते वे मेरे फूफा लगते थे और उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीमन्नालालजी खेतान मेरे फुफावत भाई लगते थे। बम्बईके सम्माननीय श्रीभगवानदासजी सिंहानियाकी सगी बहिन श्रीसोहनीबाईका विवाह श्रीमन्नालालजी खेतानसे हुआ था और पूज्या सोहनीबाई मेरी भाभी लगती थी। पूज्या भाभीका स्वभाव बड़ा मृदुल था, हृदय बड़ा कोमल था। रूप और शीलकी वे धनी थीं। जब मेरी छोटी आयु थी, तब मैं उनके पास जाया करता था और बड़े प्यारसे कोई-न-कोई वस्तु खाने-पीनेके लिये दिया करती थीं। सारे सिंहानिया बंधुओंकी पूज्य बाबूजी एवं बाबाके प्रति सीमातीत श्रद्धा थी। सिंहानिया बन्धुओंकी बहिन होनेके नाते पूज्या भाभीजीकी बाबूजीके प्रति अगाध श्रद्धा थी। वे प्रायः फोनसे बाबूजीसे बात करती रहती थीं। पूज्या सोहनी भाभीजी जब भी पडरौनासे बम्बई अथवा बम्बईसे पडरौना आया-जाया करती थीं, तब वह स्टेशनसे गीतावाटिका पूज्य बाबूजीके दर्शनार्थ अवश्य आया करती थीं। यदि पूज्य बाबूजीके कमरेका द्वार बन्द रहता था तो प्रतीक्षा किया करती थीं और दर्शन करके जाया करती थीं। दर्शनाकांक्षाको अभिपूर्ण करनेमें कभी-कभी ऐसा भी होता था कि ट्रेन छूट जाती थी। भले ट्रेन छूट जाय, परन्तु भाभीजी पूज्य बाबूजीका दर्शन करके ही जाया करती थीं।

जब मैं राजस्थानके महाविद्यालयसे त्याग-पत्र देकर पूज्य बाबूजीकी सेवामें चला आया। उस समय मुझको पूज्य बाबूजीकी सेवामें परायण देखकर पूज्य मन्ना भइया बहुत प्रसन्न हो गये थे। वे मेरे पिता तुल्य थे। जब भी वे पूज्य बाबूजीके पास आया करते थे, मुझे देखकर बड़ी सराहना करते थे और मन ही मन कहां करते थे कि हमारे परिवारका एक बालक पूज्य बाबूजीकी सेवामें संलग्न है।

सन् १९६६ में भाभीजी बहुत रुग्ण हो गयीं। उनका इलाज बम्बईमें हो रहा था। चिकित्सा और सेवामें कोई कमी नहीं थी, पर रोग घटनेकी वजाय बढ़ता ही जा रहा था। डाक्टरोंने एक प्रकारसे जवाब दे दिया। भाभीजी भी अपने रोगसे तंग आ गयी थीं। उन्होंने यह इच्छा प्रकट की—मुझे गोरखपुर ले चलिये। मैं श्रीभाईजीके पास जाऊँगी। एक आशा है कि उनके पास जानेसे शायद मैं ठीक हो जाऊँ। यदि मृत्यु भी आ गयी तो उनकी कृपासे मेरी सुगति हो जायेगी। मुझे बार-बार उनकी याद आ रही है। मैं श्रीभाईजीके पास जाना चाहती हूँ।

भाभीजीको बम्बईसे पडरौना लाया गया। चिकित्साके लिये श्रीमन्नाभइया उनको गोरखपुर ले आये। पूज्य बाबूजी सोहनी भाभीजीसे मिलने गये। चिकित्साका क्रम उचित रूपसे चल पड़ा। लाभ भी हुआ। भाभीजीका रोग कुछ ठीक ढंगपर आ गया। वे कुछ-कुछ चलने-फिरने लगीं। एक दिन भाभीजीने कहा—अब मुझे घर पडरौना ले चलिये।

मन्ना भइया उनको गोरखपुरसे पडरौना ले आये। पडरौना आनेपर भाभीजी कुछ दिन ठीक रहीं, पर फिर बीमार पड़ गयीं। चिकित्सा तो हो रही थी, पर बीमारी बढ़ती चली गयी। भाभीजीको देखनेके लिये बाबूजी पडरौना दो-तीन बार आये। अन्तिम बार जब आये, उस दिन भाभीजीकी हालत नाजुक थी। कुछ भी खाना-पीना नहीं हो पाता था। कुछ भी निगलनेमें कठिनाई होती थी। श्रीभाईजीने मोसम्बीका रस मँगवाया और अपने हाथसे एक-एक चम्मच करके उन्हें पिलाया। हम लोगोंको आश्चर्य हो रहा था कि जो भाभीजी कई दिनसे कुछ भी निगल नहीं पा रही थीं, वह आज रस कैसे ले पा रही हैं। जब श्रीभाईजी चलने लगे तो उन्होंने कहा—तुलसी पत्तेको गंगाजलमें पीसकर बूँद-बूँद इसके मुहमें देना चाहिये।

मेरी बूआ पूज्य बाबूजीको भगतजी कहा करती थीं। उसने पूज्य बाबूजीसे कहा—भगतजी! सोहनीका आपपर बड़ा विश्वास है। आपका चित्र उसने अपने सिरहाने रख रखा है। जब-तब आपको याद करती रहती है और नाम लेती रहती है। आप उसे ठीक कर दें।

पूज्य बाबूजीने मधुर स्वरमें उत्तर दिया—माँजी! ठीक होनेके बारेमें मैं क्या कहूँ? मेरा विश्वास है के भगवान मंगल ही करेंगे। उनके प्रत्येक विधानमें मंगल-ही-मंगल है।

बुआजीको सान्त्वना देनेके लिये मैंने कहा—बूआ! ठीक हो जायगी। तुम क्यों घबरा रही हो?

पूज्य बाबूजी कुछ बोले नहीं। फिर वे गोरखपुर वापस चले गये। मार्गमें उन्होंने मुझसे कहा— यह तुमने कैसे कहा कि वह ठीक हो जायेगी। क्या तुम उसका प्रारब्ध या भविष्य जानते हो? पता नहीं भगवानको क्या अभिष्ट है।

मैंने अनुभव किया कि ऐसा ठीक नहीं था। १७ सितम्बर १९६८ को भाभीजीकी तबीयत ज्यादा खराब हो गयी। भाभीजीने कहा—मेरा जी बहुत घबरा रहा है। मुझे गोरखपुर श्रीभाईजीके पास ले चलो।

छोटी भाभीजीने उनसे कहा—आपकी तबीयत इतनी खराब है कि गोरखपुर ले चलना सम्भव नहीं। आप कहें तो टेलीफोनसे आपकी बात उनसे करा दी जाय।

वह तो किसी प्रकार बाबूजीसे मिलना चाहती थीं। यदि दर्शन सम्भव नहीं तो कम-से-कम बात हो जाय। तुरन्त टेलीफोनसे सम्पर्क स्थापित किया गया। फोनपर भाभीजी बाबूजीसे बड़े करुणमें कहने लगीं—बड़ी तकलीफ हो रही है। अब सहा नहीं जाता। मुझे आप अपने श्रीचरणोंमें कब लेंगे?

बाबूजीने बड़े प्यार-भरे, वात्सल्य-भरे स्वरमें कहा—बाई! घबरा मत। थोड़ा धीरज रख। अब देर नहीं है। बस, दो दिनका कष्ट और है।

टेलीफोनका तीन मिनट पूरा हो गया। फोनका कनेक्सन कट गया। कष्ट बढ़ता ही जा रहा था। भाभीजीको पुनः गोरखपुर लाया गया।

गोरखपुरके विन्ध्यवासिनीनगर नामक मोहल्लेमें खेतान बन्धुओंका निवास-स्थान था। यहींपर रहकर सोहनीबाईकी चिकित्सा चलने लगी। उसके गोरखपुर आनेकी जानकारी मिलनेपर बाबूजीको निश्चय किया कि कल उसको देखनेके लिये चलना है। कलको आनेवाला दिन था सन् १९६७ ई. की श्रीराधाष्टमी महोत्सवके मुख्य जन्म-दिवससे चार दिन पहलेवाला, अर्थात् अष्टमी तिथिसे पहलेवाली चतुर्थी तिथिवाला दिन। श्रीराधाष्टमी महोत्सवका पावन अवसर होनेसे गीतावाटिकामें आगन्तुक साधु-साधक-सज्जन-स्वजन आदिकी बड़ी भीड़ थी। इस महोत्सवके अवसरपर दूर-दूरसे लोग आते थे बाबूजीके सत्संगका लाभ उठानेके लिये। आये हुए सभी लोगोंके ठहरनेकी चिन्ता बाबूजी किया करते थे। ठहरानेके साथ-साथ सभीके भोजन-जलपानकी चिन्ता भी बाबूजीपर छायी रहती थी। बाबूजीका परिकर-वर्ग आवश्यक दौड़-धूप तथा सार-सँभाल किया करता था, इसके बाद भी आगन्तुक जनोंकी सुख-सुविधाके विषयमें कई प्रकारकी पूछताछ बाबूजी किया ही करते थे। इस व्यस्तताके कारण 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादनका कार्य भी कुछ दिनोंके लिये स्थगित हो जाया करता था।

कलवाला दिन आया। प्रतिदिनके क्रमके अनुसार प्रातःकाल आठसे नौ बजेतक बाबूजीका सत्संग हुआ। प्रवचनको सुननेवाले श्रद्धालु श्रोताओंसे पंडाल भरा हुआ था। नौ बजे सत्संग पूर्ण हुआ। प्रवचनसे उठनेके बाद भी आगन्तुक

लोगोंसे मिलते-जुलते दस बज गये। दस बजे बाबूजीने मुझसे कहा—मेरे साथ चलो। सोहनीबाईको देखने चलना है।

श्रीमन्नालालजी खेतान मेरे फुफेरे भाई लगते हैं और सम्मान्या सोहनी भाभीजी आयुसे बहुत बड़ी होनेके कारण मेरे लिये तो मातृ-तुल्या ही हैं। उसी समय मैंने टेलीफोनसे श्रीमन्नालालजीको सूचना दे दी—पूज्य बाबूजी भाभीको देखनेके लिये कारद्वारा लगभग आधे घंटेमें पहुँचने वाले हैं।

सोहनी भाभीजीका बाबूजीके प्रति बड़ा आदर-भाव है। बाबूजी आधा घंटेमें विन्ध्यवासिनीनगर वाले मकानपर पहुँच गये और सोहनी भाभीजीसे मिले तथा उनका हाल-चाल पूछा। इसके बाद बाबूजी सोहनी भाभीजीकी मेडिकल फाइल देखने लगे, जिसमें रुग्णतासे सम्बन्धित सारे कागज संकलित थे। चिकित्सकोंके निदान, चिकित्साका क्रम, भिन्न-भिन्न परीक्षणोंकी रिपोर्ट,औषधियोंके प्रयोग आदिसे सम्बन्धित विवरण-पत्रोंको बाबूजी कुछ देरतक देखते रहे। बाबूजी लगभग एक घंटा सोहनीभाभीजीके पास बैठे होंगे। फिर बाबूजीने भाभीजीसे कहा—घबराना नहीं। मैं कल फिर आऊँगा। भगवानपर विश्वास रखो। भगवानका स्मरण करो। वे मंगल ही करेंगे। भगवानका प्रत्येक विधान मंगलसे भरा रहता है।

इसी प्रकार बाबूजीने श्रीमन्नालालजीको भी सान्त्वना दी। जब बाबूजी चलने लगे तो श्रीमन्नालाजीसे कहा—मैं यह मेडिकल फाइल एकबार अपने साथ ले जा रह हूँ।

बाबूजीके संकेतपर वह मेडिकल फाइल मैंने उठा ली, पर मैं मन-ही-मन कहने लगा—इस फाइलको बाबूजी अपने साथ गीतावाटिका व्यर्थ ही ले जा रहे हैं। श्रीराधाष्टमी-महोत्सवकी भीड़के, कारण इतना अवकाश ही कहाँ है कि बाबूजी इस फाइलको देख सकें।

मैं कुछ बोला नहीं। फाइल लेकर चुपचाप बाबूजीके पीछे-पीछे चलने लगा। बाबूजी जब कारमें बैठ गये तो मैं भी बैठ गया। कार जब मुख्य मार्गपर आ गयी तो बाबूजीने ड्राइवरसे कहा—डॉक्टर चक्रवर्तीके घर चलो।

डॉक्टर चक्रवर्ती बाबूजीके पारिवारिक चिकित्सक हैं। कहींका कोई भी डॉक्टर कितना ही अच्छे-से अच्छा हो, बाबूजी डा. चक्रवर्तीसे अवश्य परामर्श करके कुछ निर्धारित किया करते थे। डॉक्टर चक्रवर्तीकी बाबूजीके प्रति अगाध श्रद्धा है। डॉ.चक्रवर्तीके घर चलनेकी बात सुनकर मुझे थोड़ा आश्चर्य हुआ। डॉ० चक्रवर्ती इतने आज्ञानुसारी हैं कि बाबूजीका संकेत मिलते ही तुरन्त गीतावाटिका आ जाते। ऐसा जानते हुए भी बाबूजी डा.चक्रवर्तीके घर जा रहे हैं। श्रीराधाष्टमी-महोत्सवके कारण कारण आजकल समयका संकोच बहुत अधिक था, इसके बाद भी वे उनके घर जा रहे थे। इन सब बातोंको सोच-सोच करके मुझे आश्चर्य हो रहा था। मैंने मन-ही-मन समाधान कर लिया कि सम्भवत: सोहनीभाभीजीकी रुग्णता अवश्य ही कुछ गम्भीर है, इसीलिये बाबूजी डॉ० चक्रवर्तीके घर तुरंत जा रहे हैं। यह तो बादमें ज्ञात हुआ कि वास्तविक बात तो कुछ और ही थी।

डॉ० चक्रवर्ती जिस घरमें रहते हैं, उसके बाहरी भागमें एक छोटा-सा चिकित्सालय उन्होंने खोल रखा था। चिकित्सालयमें बाबूजीके पहुँचते ही कम्पाउण्डरने दौड़कर डॉ० चक्रवर्तीको घरमें सूचना दी। वे तत्काल भागे-भागे बाहर आये। बाबूजीकी वन्दना करके वे बाबूजीके पास बैठ गये और पूछने लगे—आज एकदम अचानक कैसे? आप तो कहीं आते-जाते नहीं? इसके अलावा इन दिनों श्रीराधाष्टमी-महोत्सवके कारण गीतावाटिकामें कार्य भी बहुत अधिक है।

बाबूजीने कहा—पड़रौनावाले श्रीमन्नालालजी खेतानकी धर्मपत्नी सोहनीबाई बीमार है। वह बम्बईसे आयी है, वहाँ चिकित्सा हुई, पर अपेक्षित लाभ नहीं हुआ। उसीको देखने गया था। लौटने लगा तो आपसे मिल लेनेकी बात मनमें आ गयी। मैं उसकी मेडिकल फाइल लेता आया हूँ। आप एक बार उसे देख लें। एक बात और, डॉ० लाहिड़ी महाशय उसे देखनेके लिये आ सकते हैं क्या?

डॉ० लाहिड़ी महाशय गोरखपुरके सर्वश्रेष्ठ एवं अत्यधिक विख्यात डॉक्टर हैं। डॉ० चक्रवर्तीने कहा—क्यों नहीं आ सकते? आपका संदेश पाते ही वे देखनेके लिये आ जायेंगे। मैं अभी उनसे टेलीफोनपर बात करता हूँ।

डॉ० चक्रवर्तीने तुरंत टेलीफोनपर डॉ० लाहिड़ी महाशयसे बात की और बाबूजीके सामने ही तय हो गया कि कल ग्यारह बजे दिनमें सोहनी भाभीजीको देखनेके लिये आना है। बाबूजीने डॉ० चक्रवर्तीको भी आनेके लिये कह दिया।

डॉ० चक्रवर्ती और डॉ० लाहिड़ी महाशयसे बात हो जानेके बाद तो अब गीतावाटिका ही चलना था। बाबूजी कारमें बैठे, इसके बाद मैं भी बैठा। कार जब डॉ. चक्रवर्तीके घरसे बहुत दूर आ गयी तो बाबूजीने ड्राइवरसे कहा—अलीनगर मोहल्लेमें श्रीविद्याधरजी वैद्यके घर चलो।

इस आदेशको सुनते ही मेरे आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। गीतावाटिकाका कार्य, महोत्सव कार्य, आज सभी कार्य सर्वथा गौण हो गये थे। महोत्सवकी व्यस्तता तथा व्यवस्था सम्बन्धी बातोंको मैं जितना अधिक स्मरण करता, उतना ही अधिक मैं आश्चर्यमें डूबता जाता। कार पं.श्रीविद्याधरजी वैद्यके घर पहुँची। घरमें नीचे चिकित्सालय था और ऊपर पारिवारिक आवास था। चिकित्सालयमें पहुँचते ही बाबूजीने देखा के वैद्यजी तो नहीं हैं, हाँ, एक मजदूर कोई औषधि कूट रहा है। मजदूरसे पूछनेपर पता चला कि वैद्यजी एक रोगीको देखनेके लिये गये हैं और उनको अबतक वापस आ जाना चाहिये था। वैद्यजीके प्रतीक्षामें बाबूजी एक कुर्सीपर बैठ गये। बैठे-बैठे दस-बारह मिनट निकल गये। जब पन्द्रह मिनटसे अधिक हो गये तो बाबूजीने अपनी पाकेटमेंसे एक छोटी-सी शीशी निकाली। वह शीशी मुझे देकर उन्होंने कहा—मुझे जल्दी है। अभीतक वैद्यजी नहीं आये। तुम इस दवाकी दस पुड़िया बनवाकर लेते आना। एक पुड़ियामें आधा रत्ती इस शीशीवाली दवा रहेगी और इसीके अनुसार आमलक चूर्ण रहेगा।

यह कार्य सौंप करके बाबूजी गीतावाटिका चले गये। मैं वहाँ एक-सवा घंटेतक बैठा रहा, पर वैद्यजी नहीं आये। प्रतीक्षा करते-करते मैं ऊब चुका था। मुझे भी गीतावाटिकामें कुछ कार्य था। जिस प्रकारसे बाबूजीने मुझे बतलाया था, उसी प्रकारसे मैंने उस मजदूरको बतलाया और कहा—पुड़िया बना करके वैद्यजी तैयार रखेंगे, मैं बादमें आकर ले जाऊँगा।

मैं गीतावाटिका बाबूजीके पास आया। मुझे देखते ही उन्होंने पूछा—क्या पुड़िया बनवा लाये?

मैंने सारी बात बता दी। सुनते ही बाबूजीने कहा—तुमने कितनी बड़ी भूल कर दी। उस शीशीमें स्वर्ण भस्म था। वह बहुत मूल्यवान तो होता ही है, पर ऐसा असली स्वर्ण भस्म कहाँ मिल पाता है? तुम तुरन्त वैद्यजीके यहाँ जाओ और वहीं बैठकर अपने सामने पुड़िया बनवा करके ले आओ।

मैं तुरन्त वैद्यजीके घरपर वापस पहुँचा। तबतक वैद्यजी वापस नहीं आये थे। मैं वहीं बैठ गया। देर तो बहुत लगी, पर वहाँसे लौटा पुड़िया बनवा करके ही। फिर वे पुड़िया तथा वह शीशी लाकर बाबूजीको दे दी।

दूसरे दिन बाबूजी पुनः सत्संगके बाद सोहनीभाभीजीको देखनेके लिये

गये। साथमें मुझे भी ले लिया। ग्यारह बजे डा.लाहिड़ी महाशय तथा डॉ० चक्रवर्ती आये। उनके साथ रोगके बारेमें विचार-विनिमय करके चिकित्साके क्रमको निश्चित किया गया। डा.लाहिड़ी महाशय तथा डा. चक्रवर्तीके चले जानेके बाद भी बाबूजी बैठे रहे और सोहनीभाभीजीको भगवद्विषयक बातें सुनाते रहे। मुझे ठीकसे स्मरण नहीं कि बाबूजीने सोहनीभाभीजीको श्रीरामरक्षास्तोत्र पढ़कर सुनाया अथवा नहीं, पर यह अवश्य कहा—यह राधेश्याम प्रतिदिन आकर तुमको पाँच पाठ सुना दिया करेगा।

चलते-चलते बाबूजीने सोहनीभाभीजीको बड़ी सान्त्वना दी तथा श्रीमन्नालालजीको बताया कि वे स्वर्ण भस्मवाली पुड़िया किस प्रकारसे देनी है। उसी दिनसे डा.लाहिड़ी महाशयकी देख-रेखमें सोहनी भाभीजीका उपचार आरम्भ हो गया। मैं पाठ सुनानेके लिये प्रतिदिन जाने लगा। श्रीराधाष्टमीवाला दिवस और इससे अगले दिन नवमी तिथिवाला दिवस, इन दो दिनोंको छोड़कर मैं सम्भवतः प्रतिदिन ही गया। मेरे पहुँचते ही सभी लोग कमरेसे बाहर आ जाते। भाभीजी खाटपर लेटी रहती थी और मैं कुर्सीपर बैठे-बैठे पाठ सुनाता रहता था। पाठ सुनाते समय मेरा मन बड़े दिव्य भावोंसे भर जाया करता था। उस दिव्यताको देखकर मैं यही सोचता था कि यह सब बाबूजीकी प्रेरणा और प्रभावका परिणाम है।

सोहनीभाभीजी कई सप्ताह गोरखपुर रहीं। चिकित्सासे कुछ लाभ भी हुआ, पर उनका मन गोरखपुरमें नहीं लग रहा था। अतः वे यहाँसे पडरौना चली गयीं। बाबूजी सोहनी भाभीजीको देखनेके लिये पडरौना भी दो-तीन बार गये।

यह रुग्णता सोहनीभाभीजीके लिये घातक सिद्ध हुई। दस-गयारह मास पश्चात १९ सितम्बर १९६८ के दिन लगभग आठ बजे रातको पडरौनासे श्रीमन्नालालजी खेतानका मेरे पास टेलीफोन आया—भइया! तुम्हारी भाभीका अभी कुछ देर पहले देहान्त हो गया।

मैंने तुरन्त जाकर बाबूजीको सोहनीभाभीजीके निधनकी सूचना दी। बाबूजीने चुपचाप सुन लिया। लगभग आधे घंटेके बाद मुझे बुला करके बाबूजीने कहा—श्रीमन्नालालजीको पडरौना टेलीफोन कर दो कि मैं सबेरे पडरौना पहुँच रहा हूँ। मेरे पहुँचनेके बाद अर्थीको घरसे बाहर निकाला जाय।

उसी समय मैंने पडरौना टेलीफोन कर दिया। अगले दिन बाबूजी जल्दीसे

उठकर और स्नान-संध्या-वन्दन आदिसे निवृत होकर पडरौनाके लिये कारसे चल दिये। बाबूजीके साथमें भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल तथा मैं था। बाबूजीके आदेशानुसार हमलोगोंने गंगाजल और तुलसीमाला साथमें ले ली थी। कहीं कच्ची और कहीं पक्की सड़क होनेके कारण हमलोग लगभग डेढ़ घंटे बाद सूर्योदयके समय पडरौना पहुँचे। बाबूजीको आशा थी कि सूर्योदयके होते-होते शव-यात्राकी पूरी तैयारी वे लोग कर लेंगे, पर वहाँ तो कुछ भी नहीं किया गया था। समझमें कुछ भूल रह गयी थी। अस्तु, शव-यात्राकी तैयारी आरम्भ कर दी गयी। लगभग दो घंटे लग गये। तबतक बाबूजी वहीं बैठे रहे। शवको विमानपर विराजित कर दिये जानेके बाद जब फूलोंसे सजा दिया गया, तब बाबूजी विमानके पास आये। बाबूजीने मुझसे कहा—तुम १०८ बार गिनती करना। जब गिनती पूरी हो जाय तो बता देना। गिनती करनेके लिये मैंने साथवाली तुलसीमाला अपने हाथमें ले ली। बाबूजीने अपने बायें हाथमें गंगाजलका पात्र ले लिया और दाहिने हथेलीमें गंगाजल लेकर मन-ही-मन किसी मंत्रको पढ़ते और उस अभिमन्त्रित गंगाजलको सोहनीभाभीजीके शवपर छिड़क देते। पहले शीशसे चरणतक क्रमशः सभी अंगोंपर छिड़का, फिर शवकी परिक्रमा करते हुए छिड़का। जब १०८ की संख्या पूरी हो गयी तो वह तुलसी माला सोहनीभाभीजीके गलेमें पहना दी गयी। इसके बाद शव-यात्रा आरम्भ हुई। बाबूजी लगभग दो-तीन सौ गज साथ-साथ चले होंगे। इसके बाद बाबूजी गोरखपुर चले आये।

जब गोरखपुर नगरमें किसी अति निकटवर्ती जनका निधन होता था तो ऐसे किसी-किसी व्यक्तिके यहाँ बाबूजी जाया करते थे तथा दिवंगत आत्माकी सुगतिके लिये अभिमन्त्रित गंगाजलसे अभिसिञ्चन किया करते थे, परंतु बाबूजीके जीवनका यह प्रथम एवं अन्तिम प्रसंग था कि इस प्रकार अभिसिञ्चन करनेके लिये गोरखपुरसे बाहर सुदूर स्थानपर कारद्वारा जायें।

सम्मान्या सोहनी भाभीजीकी सुगतिके बारेमें तनिक भी संदेह नहीं, पर यह एक उदाहरण है कि श्रीभगवानदासजीकी बहिनके लिये बाबूजीने क्या-क्या किया। इस प्रकारके और भी बहुत कुछ बाबूजीने श्रीभगवानदासजीके लिये किया होगा, पर यह ऐसा प्रसंग है, जिसकी साक्षी मैं स्वयं हूँ। इस प्रकारके प्रसंगोंके माध्यमसे बाबूजीके अन्तरंगको देखा जाय तो एक ऐसे हृदयकी झलक मिलती है, जो है कृतज्ञतासे अत्यधिक अभिभूत, कोमलतासे अत्यधिक

आर्द्र और तत्सुखी-भावसे अत्यधिक भावित। ऐसी परम पावनी झाँकी कभी-कभी किन्हीं दुर्लभ प्रसंगोंके माध्यमसे क्वचित् ही देखनेको मिलती है। यह मेरा परम सौभाग्य था, सोहनी भाभीजीके प्रसंगके माध्यमसे मुझ जैसे साधारण व्यक्तिको अति कृतज्ञ हृदयकी किंचित् छविको देखनेको मिल सकी।

सम्मान्या बहिन श्रीकलावतीजी

स्वप्न दर्शन

नासिकके डॉ० श्रीघनश्यामजी तोलानी एवं उनकी सहोदरा बहिन श्रीकलावतीजी पूज्य बाबाके परम निज जन हैं। सन् १९५६ में गीताप्रेसकी ओरसे तीन धामकी यात्राके लिये ट्रेन चली थी। उस यात्राका सारा दायित्व पूज्य बाबूजी और पूज्य बाबापर था। उस तीर्थयात्रा-ट्रेनमें डॉ० तोलानी भी थे और उन्होंने सम्पूर्ण यात्रामें सेवा-भावसे चिकित्सा-कार्य किया था। उनकी निष्काम-सेवा तथा भक्ति-भावनासे पूज्य बाबूजी एवं पूज्य बाबा, दोनों ही बहुत प्रभावित और प्रसन्न थे। उनकी बहिन सम्मान्या श्रीकलावतीजीकी पूज्य बाबाके श्रीचरणोंके प्रति सीमातीत प्रणति थी। पूज्य बाबाका उन्हें बड़ा भरोसा था। उन्हें अपनी सुगतिके बारेमें कभी संदेह हुआ ही नहीं। पूज्य बाबाद्वारा प्रदत्त आश्वासन उनकी अन्तरंग पूँजी थी। अनन्तकी राहके बारेमें वे सर्वथा निश्चिन्त थीं। जब-जब बहिनजी गीतावाटिकामें पूज्य बाबाके पास आती थीं, हर बार पूज्य बाबा उनसे कहा करते थे—तू मेरी सहोदरा बहिन है। मैं तेरा भाई हूँ। अपनेसे भी अधिक अपना हूँ। तू यह विश्वास रख कि 'जहाँ' मैं जाऊँगा, 'वहीं' तुम भी पहुँचोगी।

सन् १९९४ की श्रीराधाष्टमीके अवसरपर पूज्य बाबाकी समाधिको प्रणाम करनेके लिये वे गोरखपुर आयी थीं। १९९५ की ४ फरवरीको वसंत पंचमी थी। ३ फरवरीकी रातको स्वप्नमें पूज्य बाबाने उनको दर्शन दिया। पूज्य बाबा खड़े होकर मुसकराने लगे। वे लगातार मुसकुराते रहे, कुछ बोले नहीं और फिर मुसकुराते हुए वे अदृश्य हो गये। सबेरे इस स्वप्नकी चर्चा उन्होंने अपनी बड़ी बहूसे की। पूज्य बाबाके स्वप्न-दर्शनसे वे इतनी अधिक विभोर थीं कि उन्होंने इसका सरस वर्णन अपनी बहिन भगवती देवीसे टेलीफोनपर

किया। उस स्वप्न-दर्शनकी एक रसमयी मादकता दिनभर उनके मन-मस्तिष्कपर छायी रही और फिर अकस्मात् साढ़े चार बजे उनका देहान्त हो गया। न बहिनजी और न अन्य लोग समझ पाये कि पूज्य बाबा वस्तुतः उनको 'बुलाने' के लिये आये थे। उनके चले जानेसे सारे परिवारमें बड़ा शोक था, परन्तु एक मधुर आनन्द भी था कि उनको लिवानेके लिये स्वयं पूज्य बाबा आये। यह तो बड़े सौभाग्यकी बात है कि मृत्युलोकसे विदाईके समय साथ ले चलनेके लिये पूज्य बाबा-जैसे महान् संत पधारे।

बहिनजीके नाम पूज्य बाबाद्वारा भेजा एक पत्र भी देखनेको मिला है। उस पत्रमें तथ्योंकी आवृत्ति बार-बार हुई है। भले आवृत्ति हुई है, परन्तु वह बारम्बार आवृत्ति ही बतला रही है कि बहिनजीके प्रति पूज्य बाबाकी कितनी अधिक आत्मीयता थी। पूज्य बाबाका यह प्यारभरा पत्र आदरणीया बहिन जुगनूने लिखकर भेजा था। वह पत्र ज्यों-का-त्यों नीचे दिया जा रहा है।

॥ श्रीहरिः ॥

आदरणीया बुआजी!

सादर प्रणाम।

आज बाबाके पास मैं आकर बैठी थी। आपकी चिट्ठी उन्हें सुनायी। उन्होंने जो-जो जैसे-जैसे कहा, वह मैं आपको लिख दे रही हूँ।

कलावती बहिन! देखो, आँख एक ऐसी चीज है कि उसमें कोई रोग हो जानेपर मनुष्यको कभी उस रोगकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि आँखका रोग उपेक्षित होनेपर जल्दीसे पीछा छोड़ना चाहता नहीं। बहुत-सी घटनाओंके घटित हो जानेके अनन्तर मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि आँखकी चिकित्साकी ओर डाक्टरोंके द्वारा ध्यान दिला देनेपर उस सम्बन्धमें मनमाना कार्य कभी नहीं करना चाहिये, अन्यथा रोग जड़ पकड़ ले सकता है। इस प्रकारकी कई घटनाओंका उदाहरण मेरे पास है। इसलिये मैं बहुत अधिक शंकित रहता हूँ।

यह सत्य है कि यदि तुमको डायबिटीज नहीं रहता तो आँखकी बीमारीपर बहुत ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं होती, किंतु मुझे ऐसी प्रतीति हो रही है कि यह बीमारी जड़ पकड़ ले रही है। अतएव मैं बार-बार सावधान कर दे रहा हूँ कि तुम मेरी बात मानकर आँखकी बीमारीकी उपेक्षा कदापि मत कर,

अन्यथा यह किसी दिन भीषण बीमारीका रूप धारण कर लेगी और फिर तुम्हें बाध्य होकर इसकी समुचित चिकित्सा करानी ही पड़ सकती है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि तू मेरा पत्र पढ़कर घबरा जा। रोगको सबसे बड़ा शत्रु समझकर उसकी ओर ध्यान देना ही चाहिये। मैं यही बात तुम्हारे मनपर अंकित कर देना चाहता हूँ।

ज्ञानचन्दजी अपनी जानमें जो चेष्टा सम्भव होगी, वह तो करते ही होंगे तथापि तुम्हारे धर्म भाईका रूप होनेके कारण मेरी ओरसे तुम्हें बार-बार मैं सावधान कर रहा हूँ। आँखके रोगके सम्बन्धमें उसकी उपेक्षा किसीको भी नहीं करनी चाहिये, ऐसा मैं बार-बार तुमको लिखवा दे रहा हूँ। आरम्भिक स्थितिमें ही आँखका रोग हो जानेपर उसकी ओर ध्यान तुम्हें या किसीको देना ही चाहिये, अन्यथा रोग बढ़कर मनुष्यके जीवनको नेत्रहीन बनानेमें ही सफल हो जाता है और परिणाम यह होता है कि देखनेमें आँख ज्यों-की-त्यों बनी रहनेपर भी, वह केवल नकली आँखका रूप धारण कर लेती हैं। इसीलिये ही बार-बार तुम्हें सावधान कर दे रहा हूँ।

तुम्हारे Heart Problem (हृद्रोग)-की बात भी मेरे लिये विचारणीय बन गयी है। मैं जानना चाहता हूँ कि जिस डाक्टरने यह बताया है, वे बम्बईके कोई सुप्रसिद्ध हार्ट चिकित्सक हैं क्या? यदि हैं तो उस ओर भी तुम्हारा ध्यान जाना ही चाहिये। तुम्हारे साथ हार्टका रोग भी जुड़ जानेके कारण इस प्रश्नपर भी बार-बार तेरा ध्यान आकर्षित कर रहा हूँ। इस रोगका अर्थ है कि तुम्हारे रोगकी जड़ पकड़ चुकी है और तुरन्त तू सावधान नहीं होगी तो आँखकी रोशनीसे तुम्हें निराश हो जाना पड़ सकता है, अतएव बार-बार तुम्हें सावधान कर रहा हूँ कि इस रोगकी उपेक्षा तू कदापि मत कर बहिन। आशा है कि तू अपनेसे अपने भाईकी बात मानकर इस ओर ध्यान देगी।

यहाँ सब प्रसन्न हैं। और क्या लिखूँ।

आपकी बेटी
जुगनू

आ० श्रीअगमादुलारीजी श्रीवास्तव

ममतामूर्ति मेरे बाबूजी

परम पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का मेरे ऊपर अपार वात्सल्य था। वे मुझे सदा 'अगमा बेटी' ही कहते। जब-जब मैं अपने पीहर लखनऊसे गोरखपुर आती, वे बाई (सौ० श्रीसावित्रीबाई फोगला)-को मेरे पास भेजते। अनगिनत यादें बाबूजीकी मनमें भरी पड़ी हैं, कहाँतक लिखूँ?

सन् १९५६ के अन्तमें बाबूजी सपरिवार रतनगढ़ चले गये थे। राजस्थानमें रतनगढ़ ही बाबूजीकी पूर्वज-भूमि है। सन् १९५७ में श्रीराधाष्टमीका महोत्सव रतनगढ़में ही मनाया गया था। महोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये बाबूजीने मुझे गोरखपुरसे रतनगढ़ बुला लिया। मेरे साथ मेरी दो लड़कियाँ इन्दू और कृष्णा भी गयी थीं। लगभग एक मास मैं वहाँ रही। उस समय जिस असीम स्नेहसे बाबूजीने मुझे आप्यायित-आप्लावित कर दिया, उसका वर्णन सम्भव है ही नहीं। सदा मेरे सोने-रहने-खाने-पीनेका बहुत ध्यान रखते और मेरी छोटी लड़कियोंका बड़ा लाड-दुलार करते। उनके प्यारसे मेरा रोम-रोम संसिक्त था।

उत्सवके बाद मुझे वहाँसे वापस गोरखपुर आना था। जब वहाँसे चलनेका दिन आया तो मेरे मनमें यह इच्छा उठी कि उत्सवकी झाँकीमें जिन साड़ियोंका उपयोग किया गया था, उसमेंसे एक साड़ी प्रसादीके रूपमें यदि मुझे मिल जाती तो कितना अच्छा होता। मेरे मनमें प्रसादी साड़ीकी इच्छा चाहे जितनी बलवती हो, पर मैं संकोचके मारे कुछ कह नहीं पा रही थी। स्टेशनपर जानेके लिये हमारा सामान बँध गया। रास्तेमें भोजनके लिये पूड़ी-साग बनकर तैयार हो गया। मैं मन-ही-मन प्रसादी साड़ीके लिये अधीर हुई जा रही थी, पर संकोचके भारसे दबी भी जा रही थी। अब चलना है, अतः पूजाघरमें जाकर मैंने श्रीठाकुरजीको प्रणाम किया। इसके बाद पूज्य बाबाको मैं प्रणाम कर आयी। माँजी (सौ० श्रीसावित्रीबाई फोगलाकी माताजी) मेरी विदाईके समय टीका करनेके लिये थालीमें रोली-अक्षत निकालने लगीं। मुझे यह भी आभास हो गया कि विदाईमें माँ मुझको साड़ी भी देगीं, पर मेरे प्राण तो उत्सवकी झाँकीवाली साड़ियोंमें अटके थे। मनमें प्रसादी साड़ीका चिन्तन गहराईसे हो रहा था, पर मैं नहीं समझ पा रही थी कि क्या करूँ और उसमेंसे कोई साड़ी कैसे माँगू। उसी समय बाबूजी

घरके भीतर आये और जल्दी मचाते हुए बोले—अरे, तुम क्या कर रही हो? देर करनेसे ट्रेन छूट जायेगी।

माँजी रोली-अक्षतवाली थाली लेकर टीका करनेके लिये आगे आयीं। उनके पीछे-पीछे बाई भी थी। प्रसादी साड़ीके लिये मन तो विह्वल हो ही रहा था, अब बाबूजीसे बिछुड़कर जानेकी भावनाने मनको और अधिक कातर बना दिया। मैं कातर होकर बाबूजीकी ओर देखने लगी। मेरी वाणी अवरुद्ध हो गयी। तभी अचानक माँजीसे बाबूजी बोले—अरे! राधाष्टमीमें उतनी साड़ियाँ लगायी गयी थीं झाँकीं सजानेके लिये, उन्हींमेंसे एक साड़ी लाकर इसे दो न!

मैं नहीं जानती, मैं न तब भी जान सकी थी और न अबतक जान पायी हूँ कि बाबूजीको मेरे मनकी बात कैसे ज्ञात हो गयी। बाबूजीके इन प्यार भरे शब्दोंको सुनकर मेरी भावनाओंमें उफान आ गया। भावोंको संयमित कर सकना कठिन हो गया। बाबूजीके स्नेह-सने निर्देशके बाद ज्यों ही बाई उनमेंसे एक साड़ी ले आयी और ज्यों ही उस साड़ीको मेरे आँचलमें माँजीने डाला, मैं बेकाबू हो उठी और मेरे नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। अपनी संतानके मनकी बातोंको जान लेनेवाले ममतामूर्ति मेरे बाबूजी मुझसे बोले—अरी पगली! रोती क्यों है? प्रसन्नतापूर्वक जाना चाहिये।

आँसू पोंछते-पोंछते मैं माँजीको, बाबूजीको, सबको प्रणाम करके अपनी लड़कियोंके साथ स्टेशन चली आयी।

उनके ममत्वका एक प्रसंग तो कभी भूलता ही नहीं। पहले गीतावाटिकामें बाबूजीका सत्संग प्रातःकाल रोज एक घंटा हुआ करता था और होता था कोठीके बाहरी बरामदेमें। उस समय गीतावाटिकामें केवल एक ही विशाल कोठी थी, जिसमें बाबूजी रहा करते थे। आजकल गीतावाटिकामें प्रवेश करनेके लिये अति विशाल दो मुख्य द्वार हैं, पर पहले एक छोटा-सा प्रवेश द्वार था, जो ठीक बीचमें था। उस छोटे प्रवेश-द्वारके फाटकमें घुसते ही सामनेवाली कोठी दिखलायी देती थी और कोठीके व्यक्तिको प्रवेश करता हुआ व्यक्ति दिखलायी दे जाता था। उस कोठीके बाहरी बरामदेमें बाबूजी फाटककी ओर मुँह करके बैठते थे और अपना प्रवचन दिया करते थे। सत्संगी भाई लोग प्रवचन सुननेके लिये समयसे आकर अपने-अपने स्थानपर बैठ जाया करते थे। आगे चलकर प्रवचनका कार्यक्रम श्रीराधाष्टमी-पंडालमें होने लग गया, पर मैं उस समयकी बात कह

रही हूँ, जब प्रवचन बरामदेमें हुआ करता था। गीतावाटिकाके बगलमें ही एक किरायेके मकानमें मैं सपरिवार रहा करती थी और प्रवचन सुननेके लिये जाया करती थी। घरमें चाहे जितना काम हो, उन सबको छोड़कर मैं प्रतिदिन जाती थी और बाबूजीके भी ध्यानमें यह बात भली प्रकारसे थी कि मेरी 'अगमा बेटी' सत्संगमें बिना नागा आया करती है।

सन् १९४८ या ४९ के आस-पासकी बात होगी। श्रीगोस्वामी चाचाजी (पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी) के घरके आँगनमें रोज रात्रिके समय रासलीला हुआ करती थी। सभी लोग रासलीला देखनेके लिये जाया करते थे। उन दिनों मेरे पाँवके तलवेमें एक फोड़ा निकल आया। फोड़ेका कष्ट सहकर भी मैं प्रतिदिन सत्संगमें जाती रही, पर बादमें पीड़ा बहुत बढ़ गयी। पीड़ा इतनी अधिक बढ़ गयी कि धरतीपर पाँव रखनेमें टीस होती थी। एक दिन फोड़ेने इतना विकट रूप ले लिया कि किसी तरह मैं शौचालय और स्नानघरतक जा पायी। मेरी बेटी कृष्णाने मेरे बैठनेके लिये चटाई बिछायी और चटाईपर बैठी-बैठी मैं सोचने लगी कि सत्संगमें कैसे जाऊँ। मेरे गम्भीर हालत देखकर कृष्णाके पिताजी (मेरे जीवन-सर्वस्व श्रीमाधवशरणजी श्रीवास्तव) ने कहा—सत्संगके लिये रिक्शेपर बैठकर चली जाओ।

भले उन्होंने ऐसा कहा, पर मुझे बहुत संकोचका अनुभव हुआ यह सोचकर कि जब रिक्शा फाटकमें प्रवेश करेगा तो बाबूजी देख लेंगे कि यह रिक्शेपर आ रही है और फिर वे सोचने लगेंगे कि आज यह रिक्शेपर क्यों आ रही है। यह सब सोचकर मैं सत्संगमें नहीं गयी। सारे दिन मन उदास रहा। फोड़ेके कष्टसे मैं इतनी अधिक परेशान थी कि अगले दिन भी सत्संगमें जाना नहीं हो पाया। अपने घरमें बड़ा दुःख मानती हुई मैं चटाईपर बैठी हुई थी। उधर सत्संगके पूर्ण होनेपर बाबूजीने कृष्णाके पिताजीको बुलाकर पूछा—दो दिनसे अगमा सत्संगमें नहीं आ रही है। वह तो कभी भी नागा नहीं करती थी, क्या बात है?

कृष्णाके पिताजीने फोड़ेके कष्टवाली बात बाबूजीको बता दी। ज्यों ही बाबूजीने सुना, वे सारे काम छोड़कर मुझे देखनेके लिये तुरन्त चल पड़े। उनके साथ-साथ गोस्वामी चाचाजी भी थे और पीछे-पीछे चल रहे थे कृष्णाके पिताजी। घर आकर बाबूजी मेरे पास बिछी हुई एक दूसरी चटाईपर ही बैठ गये। मैंने हड़बड़ाकर कहा—अरे बाबूजी! इस चौकीपर बैठिये। यहाँ क्यों बैठ गये?

उन्होंने मेरी बातको अनसुनी करके कहा—पहले मुझे अपना फोड़ा दिखा तू।

इतना कहते-कहते उन्होंने मेरा पाँव झटसे पकड़ लिया। मैं घबड़ा उठी कि क्या यह उचित है कि मेरे पूज्य ही मेरे पैरोंको पकड़े? मैं रुँआसी होकर कहने लगी—यह क्या कर रहे हैं आप? बाबूजी मेरे पाँवको हाथ न लगाइये। यह ठीक नहीं।

वे किसी तरह भी नहीं माने। मेरा अनुरोध व्यर्थ गया। एक हाथसे मेरा पाँव पकड़ा और दूसरे हाथसे तलवा दबा-दबाकर देखने लगे। देखते-देखते बाबूजीने कृष्णाके पिताजीसे पूछा—यह फोड़ा इतना अधिक पक गया है कि इसमें चीरा बहुत पहले लग जाना चाहिये था। अबतक क्यों नहीं लगवाया?

कृष्णाके पिताजीने कहा—समय ही नहीं मिलता कि डॉक्टरके यहाँ जा सकूँ।

बस, फिर क्या था? इतना सुनते ही बाबूजी उनपर उबल पड़े और बिगड़ते हुए क्षुब्ध वाणीमें बोले—क्या करते हो दिनभर कि समय नहीं मिलता?

कृष्णाके पिताजीने कहा—आजकल 'कल्याण कल्पतरु' के विशेषांकका काम हो रहा है, जो कम नहीं है। दिन भर विशेषांकका प्रूफ देखता हूँ और रातको रासलीला देखता हूँ। फिर जो समय बचता है, उसमें आवश्यक दैनिक कार्य करता हूँ या नींद पूरी करता हूँ।

बाबूजीका क्षोभ बढ़ता ही जा रहा था। यह उत्तर सुनकर बाबूजीने श्रीगोस्वामी चाचाजीसे रोष भरे स्वरमें कहा—विशेषांकका काम तो करना ही है, उसमें बाधा डालना ठीक नहीं, पर आप इसे अपने घरमें रासलीला देखनेके लिये घुसने ही मत दीजियेगा, जबतक यह अगमाको डाक्टरके यहाँ रोज नहीं ले जाये।

इसके बाद कृष्णाके पिताजीके ओर उन्मुख होकर उसी तेजीके साथ बोले—अभी ही मैं ड्राइवरसे कहकर गाड़ी भेज दे रहा हूँ और इसे ले जाकर डाक्टरको दिखा लाओ।

उनसे कहनेके बाद फिर बड़े स्नेहसे मेरे सिरपर अपना प्यार भरा शीतल हाथ रखकर उन्होंने कहा—तू चिन्ता मत करना भला। जल्दी ही ठीक हो जायेगी। भोजनके लिये मैं सावित्रीकी माँसे कह दूँगा, वह भिजवा देगी।

श्रीगोस्वामी चाचाजीसे और कृष्णाके पिताजीसे बाबूजीने जो कहा, उसे सुनकर मेरी हालत विचित्र हो गयी। एक ओर उठनेवाले विचारोंकी आँधीने और दूसरी ओर उमड़नेवाले भावोंकी बाढ़ने मुझे बुरी तरह झकझोर दिया। कृष्णाके

पिताजीको रासलीला अत्यन्त प्रिय है और अब वे रासलीला देखने नहीं जायेंगे तो उनके मनपर क्या बीतेगी। बाबूजीका वज्र-सदृश-कठोर आदेश तो उनको अस्त-व्यस्त कर देगा। कृष्णाके पिताजीके बारेमें सोच-सोचकर मन बड़ा विकल हो रहा था, पर उससे भी अधिक विह्वल हो रहा था बाबूजीके अनोखे-अद्भुत प्यारको देखकर। क्या बाबूजीका प्यार ऐसा असीम है, इतना अनुमानातीत है, जो उन्होंने मुझ साधारण-सी स्त्रीकी चिकित्सा और सँभालके लिये वैसी कठोर आज्ञा देनेमें कोई संकोच नहीं किया? मूढ़मति और मूक अधर मैं आँखें खोले-खोले बाबूजीको देखती रह गयी और मेरे देखते-देखते श्रीगोस्वामी चाचाजीको पारिवारिकतापूर्ण आदेश, उनको आत्मीयतापूर्ण आज्ञा और मुझको ममतापूर्ण आश्वासन देकर वे मेरे घरसे गीतावाटिका चले गये। उनके साथ-साथ चले गये श्रीगोस्वामी चाचाजी और कृष्णाके पिताजी भी।

सब चले गये और मैं अकेली चटाईपर बैठी रही अपने भीतरी झंझावातमें फँसी हुई। मैं विजड़ित-सी चटाईपर चुपचाप बैठी हुई थी। कुछ ही मिनटके बाद कृष्णाके पिताजी लौटकर मेरे पास आये। मैंने देखा कि वे बड़े भाव-विभोर हो रहे हैं। मेरे द्वारा जिज्ञासा किये जानेके बाद भी वे कुछ बोल नहीं पाये। उनका कण्ठ अवरुद्ध था। थोड़ी देर बाद जब वे कुछ प्रकृतिस्थ हुए तो बोले—जब बाबूजी आगे बढ़ गये तो श्रीगोस्वामी चाचाजीने मेरे कंधेपर हाथ रखा और बड़े मीठे स्वरमें कहा कि ऐसी अच्छी रासलीला देखनेका अवसर हाथसे खो देना ठीक नहीं है। श्रीभाईजीके आदेशानुसार कृष्णाकी माँकी चिकित्सा और सँभालमें अब तुमको पूरा समय देना ही है, पर जहाँ तक विशेषांकके प्रूफको देखनेकी बात है, तुम्हारा वह काम मैं कर लिया करूँगा। मैं वे प्रूफ रातको थोड़ा जगकर देख लिया करूँगा, जिससे तुम रासलीलाके सुखसे वंचित न रह सको।

उनसे ये सब बातें सुनकर उनसे ज्यादा विभोर तो मैं हो उठी। बाबूजीकी तरह श्रीगोस्वामी चाचाजीके ऊपर भी 'कल्याण कल्पतरु' के सम्पादनका भार कम नहीं था, बल्कि विशेषांककी तैयारीके समय यह सम्पादनकार्य-भार बहुत ज्यादा बढ़ जाया करता था। उनपर कार्य-भार चाहे जितना हो, वे रासलीलाके इतने अधिक अनुरागी थे कि वे रासके स्वरूपोंको रोज कंधेपर बैठाकर अपने घरपर भोजन करानेके लिये लाते थे और भोजनोपरान्त वैसे ही कंधेपर बैठाकर वापस पहुँचाते थे। इस घनी व्यस्तताके बीच कृष्णाके पिताजीके कार्यका दायित्व

स्वीकार करके उन्होंने अपना कार्यभार बहुत ज्यादा बढ़ा लिया। उन दिनों श्रीगोस्वामी चाचाजीके घरपर बिजली नहीं थी। रासलीला हो जानेके बाद मिट्टीके तेलकी लालटेन जलाकर रातको वे उन प्रूफोंको देखा करते थे, जो कृष्णाके पिताजीके जिम्मेका काम था। उनके इस नवीन-कार्यभारको देख-देखकर हमलोगोंका मन बड़ा विकल होता था। जिस नवीन दायित्वके स्वीकारको हमलोग उनके लिये कार्यका भार मान रहे थे, वह वस्तुतः था उनके अगाध प्यारका ज्वार, अमाप्य ममताका उभार। ममता-मूर्ति मेरे बाबूजीके प्रति सर्वभावेन-सर्वप्रकारेण समर्पित श्रीगोस्वामी चाचाजीकी ममताकी साकार प्रतिमा ही बन गये थे। बाबूजीके ममतोद्भुत आदेशके उपरान्त कृष्णाके पिताजीने मेरी चिकित्साकी ओर पूरा ध्यान दिया ही, पर श्रीगोस्वामी चाचाजीके ममतोद्भुत सहयोगके फलस्वरूप वे रासलीलाके दर्शनका भी सुख ले सके।

आ० श्रीअचलनन्दिनी श्रीवास्तव

उनका शील उनका स्नेह

मेरे पूज्य पिता श्रीमाधवशरणजी सम्पादकीय परिवारके एक सम्माननीय सदस्य थे। उनपर श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका पुत्रवत् प्यार था, अतः हम कभी भाई-बहिन उन परम श्रद्धेयको बाबाजी कहा करते थे। वे भी हम लोगोंपर पौत्र-पौत्रीकी ही भाँति स्नेह रखते थे। बाबाजीको गीताप्रेसकी ओरसे एक मोटर कार मिली हुई थी। गीतावाटिकासे गीताप्रेस या गोरखनाथ मन्दिर या स्टेशनपर या अन्यत्र कहीं भी आने-जानेके लिये जब आवश्यकता पड़ती थी तो बाबाजी अपनी मोटर हमलोगोंको दे देते थे। कभी-कभी मोटरकारके ड्राइवरके घर चले जानेके बाद यदि बाबाजीको कहीं जाना होता तो मेरे पिताजी उनकी मोटर चलाकर ले जाते तथा उसमें वे अत्यन्त सुखका अनुभव करते। जब भी ऐसा अवसर आता, बाबाजी मेरे पिताजीसे कहते—भैया माधव! तुम खाली तो हो? मुझे अमुक जगह जाना है। मेरे साथ चलनेमें कोई दिक्कत तो नहीं होगी?

उनके स्वभावका शील और उनकी वाणीका दैन्य देखकर पिताजीका हृदय अत्यन्त विगलित हो जाता था। पिताजी तो हर समय प्रस्तुत ही रहते, बल्कि

प्रतीक्षा करते रहते थे कि उनके साथ कहीं जानेका अवसर मिले और इस बहाने थोड़ी देर उनके सान्निध्यका लाभ मिले।

दानके लिये वस्त्र

सन् १९६२ में पूज्य बाबाजी श्रीजगन्नाथपुरी गये थे उनके साथ भगवान् श्रीजगदीशजीका दर्शन करनेके लिये मैं, मेरी छोटी बहनें तथा मेरी माँ भी श्रीजगन्नाथपुरी गयी थी। बहुतसे लोग साथ गये थे। बाबाजी किसी तीर्थ-स्थानपर जायें और दो-तीन सौ लोग साथ न हो जायें, यह हो ही नहीं सकता था। पुरीमें हम सभी लोग एक धर्मशालामें ठहरे थे। भगवान्का दर्शन करके मन्दिरसे लौटनेके बाद हम लोगोंने देखा कि साथकी अनेक महिलाएँ साड़ी-धोती आदि दान कर रही हैं। ये वस्त्र वे लोग अपने घरसे साथ लेकर गयी थीं। हम लोगोंके पास नवीन वस्त्र नहीं थे, जिन्हें दान करते। मेरी माँकी भी इच्छा हुई कि तीर्थमें कुछ दान करना चाहिये।

दोपहरमें जब भोजन करके सभी लोग अपने-अपने कमरेमें विश्राम करने लगे तो मेरी माँ कुछ रुपये और मुझे साथ लेकर कमरेसे धर्मशालाके द्वारकी ओर बढ़ी। मन्दिरसे लौटते समय हमलोगोंने देख लिया था कि धर्मशालाके सामने ही वस्त्रोंकी कुछ दुकानें थीं। हमलोग वही जाना चाहते थे, पर हुआ क्या? बाहरी कमरेके पास पहुँचे ही थे कि स्नेह-सना गम्भीर स्वर सुनायी पड़ा—कौन है?

जब सब लोग विश्राम कर रहे थे तो बाबाजी बैठकर सम्पादन-कार्य कर रहे थे। हमलोग उनके कमरेमें चले गये। उन्होंने कहा—अच्छा तो तुम लोग हो? इस समय कहाँ जा रही हो धूपमें?

हमलोगोंने अपनी बात बता दी। हमारी बात सुनकर उन्होंने अपने पीछे रखे हुए साड़ियों-धोतियोंके गट्ठरकी ओर संकेत किया और कहा—खरीदने जानेकी क्या जरूरत है? बहुतसे कपड़े साथमें आये हैं। इन्हींमें से ले लो।

मेरी माँने धीरेसे कहा—पर बाबूजी! दान तो अपने पैसोंसे करना चाहिये न?

वे तुरन्त बोले—हाँ, हाँ। ये सब कपड़े अपने निजी पैसोंसे ही खरीदे गये हैं। इसीमेंसे ले लो। धूपमें बाहर मत जावो।

हमलोग आगे कुछ न कह सके। कहते भी भला क्या? चुपचाप एक साड़ी उठायी और अपने कमरेमें वापस आ गये। ऐसा था उनका अपनापन!

झाड़ूसे सफाई

मुझे अपने विवाहके समयकी बात याद आ रही है। बाबाजी प्रतिदिन सुबह ही हमारे यहाँ आ जाते थे। सारा प्रबन्ध देखते थे। हर बात बताते थे। बारातका स्वागत कैसे होगा, जनवासा कहाँ रहेगा, भोजनमें क्या बनेगा, गाड़ियोंका प्रबन्ध कैसे होगा, साज-साजवटका क्या होगा, हर छोटी-बड़ी तैयारी वे स्वयं देखते थे। छड़ी लिये-लिये सारे घरमें घूमते, कभी रसोईके द्वारपर, कभी भण्डारमें, कभी मण्डपकी ओर। मेरे पिताजी निर्द्वन्द्व बैठे रहते। बाबाजी जो काम बता देते, वही वे करते, स्वयं कुछ भी न सोचते और न करते। कोई उनसे कहता—अरे! आपकी बेटीका विवाह है, आप निश्चिन्त कैसे बैठे हैं?

वे उत्तर देते—चिन्ता करनेवाले कर ही रहे हैं। मैं तो उन्हींको सौंपकर निश्चन्त हूँ।

बाबाजी भी कभी-कभी पिताजीके कंधेपर हाथ रखकर प्यारसे कहा करते थे—माधव तो सरल है, भोला है। उसे क्या मालूम कि बेटीका ब्याह कैसे किया जाता है। यह सब मुझे ही करना है।

द्वारचारका समय आया। हमारे सारे कुटुम्बीजन, गीतावाटिकाके स्नेहीजन, गीताप्रेसके आत्मीयजन, नगरके अन्य स्वजन तथा सबके आगे बाबाजी बारातकी अगवानीके लिये द्वारपर खड़े थे। एकाएक बाबाजीकी सूक्ष्म दृष्टिको कुछ दिखलायी दे गया। जहाँ चौक पूर करके मंगल कलश रखा गया था, वहाँ किसी कोनेमें कुछ कूड़ा उन्हें दिखायी दे गया। तमाम सावधानीके बावजूद वह कूड़ा वहाँ न जाने कैसे रह गया? सम्भवत: किसीने पैरसे मारकर उस कूड़ेको कोनेमें सरका दिया था। बस, बिना किसीसे कुछ कहे वे एकदम मुड़े और तेजीसे घरके अन्दर आ गये। उनकी त्वराको देखकर लोग अनुमान नहीं लगा पाये कि अचानक क्या हो गया। उपस्थित लोग उनकी तत्परताका कुछ अर्थ लगा पायें, इसके पहले ही वे अन्दरसे एक झाड़ू लेकर जल्दी-जल्दी आये और वहाँ बुहारी देने लगे। उनको झाड़ू देते हुए देखकर लोग दौड़ पड़े, पर बाबाजीने बायें हाथसे सबको रोका और दाहिने हाथसे झाड़ू लगाते-लगाते वे बोले—बारात आ रही है न! यह कोना गन्दा रह गया था। इसे साफ कर रहा हूँ।

सारे व्यक्ति स्तब्ध रह गये। मेरे पिताजीके नेत्रोंमें अश्रु बह चले। पिताजी बादमें भी उस घटनाको याद करके अनेकों बार रोने लगते थे।

विवाहमें विदाई

विवाह कार्य सम्पन्न हुआ। अगले दिन विदाईकी रस्में पूरीकी जाने लगीं। मेरी माँने मेरे आँचलमें सूपसे चावल भरे। अब उन चावलोंको एक पोटलीमें बाँधकर मेरे साथ भेजना था। अब घरमें वह वस्त्र ढूँढ़ा जाने लगा, पर जल्दीमें सही ढंगका वस्त्र मिल नहीं रहा था। उसी समय बाबाजी जल्दी-जल्दी अन्दर आये और बोले—शीघ्रता करो। ट्रेन छूट जायेगी।

किसीने उनको वस्त्र वाली समस्या बता दी। वे अपने कन्धेपर एक अंग-वस्त्र तह करके रखे हुए थे। तुरन्त उन्होंने उसे उतारा और कहा—लो, चावल इसमें बाँध दो।

इतना कहकर फिर किसीकी प्रतीक्षा किये बिना ही चावल उसमें डालकर अच्छी-सी गाँठ लगायी और उन्होंने वह पोटली मुझे पकड़ा दी। मैं उन्हें पकड़कर रो पड़ी तो उनकी भी आँखमें आँसू आ गये।

जब हमलोग स्टेशन पहुँचे तो पता चला कि वरपक्षके कुछ व्यक्तियोंकी 'विदाई-प्रणामी' वाली रस्म पूरी होनेसे रह गयी है। मेरे पिताजी मेरे लिये इतने विह्वल थे कि उन्हें यह रस्म याद ही नहीं आयी थी। स्टेशन भी वे रुपये लेकर नहीं गये थे, जिससे यह रस्म पूरी की जा सके। वे तो सब कुछ बाबाजीके ऊपर सौंपकर निश्चिन्त थे। ट्रेन छूटनेमें अधिक विलम्ब नहीं था। तीन हजार रुपयोंकी आवश्यकता थी विदाईकी रस्म पूरी करनेके लिये। बाबाजी उसी समय स्टेशन मास्टरके पास गये। बाबाजीके स्टेशनपर आनेकी सूचना पाकर वे स्वयं बाहर आ गये। बाबाजीने उनसे कहा—क्या आप मुझे अभी तीन हजार रुपये दे सकते हैं? मैं गीतावाटिका पहुँचते ही रुपये आपको वापस भिजवा दूँगा।

स्टेशन मास्टरने हाथ जोड़कर कहा—भाईजी! आप जितना चाहें, मेरे पाससे ले लीजिये।

बाबाजीने कहा—नहीं, नहीं। आप यह भी तो सोचिये कि यदि अभी ही एकाउंटकी चेकिंग हो जाय तो क्या होगा? मैं आपको संकटमें नहीं डालना चाहता।

स्टेशन मास्टरने कहा—भाईजी! आप कैसी बातें कर रहे हैं? आपकी कोई सेवा करके मैं अपना अहोभाग्य मानूँगा।

उन्होंने तत्काल तीन हजार रुपये अपनी नौकरीका खतरा मोल लेकर बाबाजीको दे दिया। वे रुपये फिर बादमें उनके पास भिजवाये गये।

जब ट्रेन चलनेको हुई तो मेरी ससुरालके लोगोंके सामने बाबाजी हाथ जोड़कर खड़े हो गये और बोले—माधवकी पहली बेटीका ब्याह था। वह तो भोला है, सरल है। यदि खातिरदारीमें कोई कमी रह गयी हो या कोई भूल हो गयी हो तो उसे आप मेरी भूल मानकर मुझे क्षमा कर दीजियेगा। माधवको या उसकी बेटीको कुछ न कहियेगा। सारी त्रुटि मेरी ही मानियेगा।

मेरे जेठजी जो कल्याणके अनुरागी पाठक थे, रो पड़े। हाथ जोड़कर बोले—भाईजी! आप संत शिरोमणि हैं। यह तो हम लोगोंका सौभाग्य है कि हम भी आपके परिवारके सदस्य बने।

इसी तरहकी न जाने कितनी बातें हैं, न जाने कितनी घटनाएँ हैं, न जाने कितनी स्मृतियाँ हैं? जीवन उनकी गोदमें बीता है। क्या क्या लिखूँ?

बहिन श्रीबी० बेगम मौदहा

फरिश्ता-सिफत इन्सान

मुझे जब इस बुजुर्ग और फरिश्ता-सिफत इन्सान माननीय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके अपने बीचसे उठ जानेकी खबर मिली तो मैं सोचने लगी कि क्या ऐसी शखसियत भी फना हो सकती है। मेरा सम्पर्क आदरणीय पोद्दारजीसे मेरे पति 'सगीर साहब' की मार्फत सन् १९५२ से रहा है। जिस समय मेरे पति चित्रकूटमें राजकीय ड्यूटीपर थे, उन्होंने पोद्दारजीकी इतनी अधिक तारीफ व बड़ाई की कि मैं चकित रह गयी और फिर मुझे मिलाने ले गये। जब मैंने उन्हें अदबसे सलाम किया और मेरे पतिने मेरा परिचय दिया तो पोद्दारजीने फरमाया—खुश रहो, बेटी! लोगोंके दुःख-सुखमें शरीक रहोगी तो अमर रहोगी।

और भी बातें हुईं। तबसे वे मुझे बराबर 'कल्याण' भेजते रहे। कई बार उन्होंने लिखा कि तुमलोग कुछ 'कल्याण' में लिखो।

१९६१ ई० में जब मैं अपने पतिके साथ श्रीराहुलजीको उनकी बीमारीमें कुछ सामग्री देने दार्जिलिंग गयीं, तब उनके सामने पोद्दारजीका जिक्र मेरे पतिने छेड़ दिया। उसपर श्रीराहुलजीने कहा था—हनुमानप्रसादजी पोद्दार जो सेवा-कार्य कर रहे हैं, उससे वे अमर रहेंगे। उनकी सेवाएँ लोगोंको अवश्य याद रहेगीं।

श्रीनीरजा सिंह

परमादरणीय राजासाहब श्रीअष्टभुजाप्रसादजी मल्ल मझौली राजवंशके रत्न हैं। उनसे मेरी बड़ी आत्मीयता है और इस आत्मीयताका आधार है उनका भक्त-हृदय और सात्त्विक जीवन। पूज्य बाबा भी उनको बहुत अधिक आदर देते थे तथा अपने आन्तरिक स्नेहसे संसिक्त कर दिया करते थे। श्रीमल्लजीका मधुर व्यक्तित्त्व है ही अनेक सद्‌गुणोंसे सम्पन्न और इसी कारण वे सभीके लिये सम्माननीय हैं। आपकी ज्येष्ठ सुपुत्री नीरजाका मंगल विवाह ५ मार्च १९७८ को हुआ। दो दिन बाद जब लाडिली नीरजा अपने ससुराल जाने लगी तो पूज्य बाबाको प्रणाम करनेके लिये अपनी माताजीके साथ आयी। पूज्य बाबाने उसको बहुत दुलार दिया तथा प्यारभरे शब्दोंमें समझा-समझा करके उससे कहने लगे—आजीवन शाकाहारी रहना। जब आहारका प्रश्न सामने आये तो किसी भी हालतमें आमिषाहार नहीं करना। आहारकी दृष्टिसे इस बातपर किसीसे कोई समझौता नहीं। तुम अपने व्रतपर अडिग रहना। इसी प्रकार पतिके अतिरिक्त कोई भी पुरुष तेरे शरीरका स्पर्श न कर पाये। आहार और आचरणकी पवित्रता जीवनके लिये परमावश्यक है। इसके अतिरिक्त मैं सदा तेरे साथ हूँ। तेरे ससुरालमें भी मैं तेरे पास हूँ। मेरी बेटी! तू विश्वास कर, मैं सदा ही तेरे साथ हूँ।

इसी लाडिली नीरजाको पूज्य बाबाने ४ अगस्त १९७८ को अपना प्यारभरा संदेश पत्रके रूपमें भिजवाया। वह पत्र तो बहुत लम्बा है, किन्तु उसका मुख्यांश नीचे दिया जा रहा है।

लाडिली बेटी नीरजा,

जीवनमें प्रथम बार तुमको पत्र लिखवाने बैठा हूँ और शायद यही पत्र अन्तिम पत्र हो अतएव इस पत्रको बड़े हिफाजतसे अपने पास रखना। कभी-कभी इसे पढ़नेसे बड़ा ही पवित्र आत्मबल तुम्हें प्राप्त हो सकता है।

देख बेटी! तुम क्षत्रिय बालिका हो। राजवंशकी सुपुत्री हो। तुम्हारे माता-पिताने बहुत वैभवके बड़े दिन देखे हैं, किन्तु कालके प्रवाहमें वह नश्वर वैभव चला गया है। अब तो यह सब स्वप्नकी चीजें हो रही हैं। आजतक मेरे ध्यानमें एक राजासाहब सीतामऊ हैं, जिनको भगवान्‌की प्राप्ति हो गयी, किन्तु महाराजा

बीकानेर, जयपुर, जोधपुर, उदयपुरसे लेकर राजपुतानेके छोटे-छोटे रजवाड़ेतकमेंसे किसीको भगवान्‌की असली प्राप्ति हो गयी है, मैं निश्चित रूपसे नहीं कह सकता। देख बेटी! यदि भगवान्‌की प्राप्ति मनुष्य जीवनको पानेके बाद नहीं हुई तो मानव जीवनकी यह असफलता एक ऐसी क्षति है, जिसकी पूर्ति अरबों-खरबों सम्पत्तिसे भी पूरी नहीं हो सकती। मनुष्यको विश्वास नहीं होता कि मानव जीवन केवल-केवल भगवान्‌की प्राप्तिके लिये ही भगवान् देते हैं, परन्तु विश्वास न होनेसे सत्य पलट थोड़े ही जायेगा। सत्य तो सत्य ही रहेगा। सत्यको जो स्वीकार कर लेता है, उसको तो सत्य निहाल कर देता है, परन्तु न माननेवालेको सत्य जाकर खुशामद करे कि तुम मुझको मान लो तो आजतक यह न हुआ है और न होगा। सत्यका अर्थ है भगवान्। भगवान्‌को यह गरज नहीं है कि तुम मुझको मान लो। भगवान्‌को मानकर तुम यदि उन्हें पुकारती हो तो भगवान् तुरन्त आकर तुम्हारी सहायता कर देंगे, परन्तु अगर तुम नहीं मान रही हो तो वे चुपचाप तुम्हारे जीवनका तमाशा देखते रहेंगे और तुम्हारी दुर्दशा होती रहेगी। भगवान्‌को माने बिना आजतक किसीको शान्ति न मिली और न मिलेगी। धन-वैभव आजतक किसीको शान्ति न दे सका है और न दे सकेगा, किन्तु भगवान्‌की माया बड़ी विचित्र है। सभी भगवान्‌को छोड़कर यहाँके नश्वर वैभवमें ही लिपटे हुए हैं। तुम्हारे ससुरालवाले भगवान्‌की बात भले कह लें, परन्तु मनमें भगवान्‌का सच्चा विश्वास नहीं हो सका है। अगर हो गया होता तो सबका मन वैभवसे बिलकुल हट जाता। जैसे टट्टीसे घृणा होती है, वैसे ही धन-वैभवसे घृणा होती। तुम्हारे पतिदेवका स्वभाव बड़ा अच्छा है। उनके मनमें भगवान्‌की ओर चलनेकी प्रवृत्ति कभी-कभी झाँकती भी है, पर धन-वैभवका जाल बड़ा घना होता है और उसको तोड़ करके उस जालसे निकल जाना आसान काम नहीं है। बेटी! जो हो तुम्हारे इस विवाहसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुमको बहुत सात्त्विक परिवार मिला है। तुम्हारे पतिदेव श्रीगोपालजी यदि मेरी बात मानेंगे तो पवित्र-से-पवित्र गृहस्थी बसा लेंगे। यदि वे गृहस्थाश्रमके पवित्र नियमोंका पालन करते हुए जीवन व्यतीत करेंगे तो भगवान्‌की प्राप्ति भी हो जायेगी और संसार भी बड़े सुखसे चलेगा-बीतेगा। इसीलिये मैं स्वयं चाहता हूँ कि श्रीगोपालजी और तुम दोनों ही पिताजीकी अनुमति लेकर पाँच-छः दिनोंके लिये यहाँ आ जाओ और फिर बड़ी प्रसन्नताके साथ चली जाओ।

हिन्दू नारीके लिये बहुत प्राचीन कालसे ऐसी ही परम्परा चलती आयी है कि हिन्दू नारी विवाहके बाद पतिके घरपर पतिके साथ पतिकी सर्वथा अनुगामिनी बनकर अपना जीवन व्यतीत करे। ऋषियों-मुनियोंके द्वारा बताये हुए इन नियमोंकी अपेक्षा कोई अन्य ऐसा सुन्दर मार्ग नहीं है, जो हिन्दू नारीको एक ही जन्ममें भगवान्‌की प्राप्ति करवा दे।

मेरे पत्रको बड़े ध्यानसे अच्छी तरह समझ-समझ करके पढ़ना और श्रीगोपालजीको भी पढ़नेके लिये दे देना। अन्तमें तुम्हें बार-बार बतलाना यह है कि तुम अपने पवित्र सद्व्यवहारके द्वारा सास-ससुर-ननद-जेठानीको पूर्ण प्रसन्न रखनेकी चेष्टा रखना। अपना बड़प्पन भूल करके यथायोग्य सबकी रुचिका यथासाध्य पूरा-पूरा ध्यान रखना। सबका आशीर्वाद लेना। घरके नौकर और नौकरानियोंके मनपर भी ऐसा प्रभाव डाल देना कि बहूरानी तो पवित्रताकी मूर्ति है, सद्भावकी जीवन्त प्रतिमा है और अद्भुत निर्मल स्वभावकी है। भगवान् करे, ऐसी बहू तो सबके घर आवे। अगर भगवान्‌को अपने हृदयमें बसाकर तुम चेष्टा करोगी तो सबके अन्तरालसे भगवान् तुम्हें अवसर देते रहेंगे कि तुम सबकी अधिक-से-अधिक सेवा कर सको। अब सर्वोपरि बात यह है कि श्रीगोपालजीकी रुचिका सर्वदा और सर्वथा आदर करते हुए तुम्हारे जीवनका प्रत्येक क्षण बीते। यदि ऐसा कर सकोगी, नीरजा बेटी! तो तुम्हारा जीवन धन्य हो जायेगा, क्योंकि हिन्दू नारीको पतिके रूपमें भगवान् ही मिलते हैं। यदि हिन्दू नारी अपने पतिको ठीक-ठीक प्रकारसे पहचान सके तो पतिकी सेवा करते-करते ही उसमेंसे भगवान् प्रकट हो जायेंगे। यही करना बेटी! अपने माँ-बापके जीवनको भी धन्य बना देगा। पिताको तुम्हारी जैसी बेटीका यह सौभाग्य देखकर आनन्दकी सीमा नहीं रहे और माँ तुम्हारी जैसी बेटीको गर्भमें धारण करनेके कारण धन्य-धन्य अनुभव करने लगे, पर ध्यान दो, केवल बातोंके करनेसे यह सब नहीं होता। सम्पूर्ण जीवनभर अथक प्रयास करनेसे भगवान्‌की कृपासे सफलता मिलती है। और क्या लिखूँ? मेरे कण-कणमें तुम्हारे प्रति पवित्र-से-पवित्र वात्सल्य भरा हुआ है। मेरी आँखमें तुम साक्षात् भगवतीकी मूर्ति हो। वास्तवमें मैं तुमको क्या उपदेश दूँ, पर मनमें जो बात आयी, सो लिख गया।

सौ० श्रीझमकूदेवी बोथरा

प्यार ही प्यार दिया

मथुरामें पूज्य बाबूजीके द्वारा श्रीभागवत-भवनका शिलान्यास शायद १९६५ के फरवरी मासमें हुआ था। उस समय मैं देशनोकमें थी। अचानक मथुरासे मेरे श्वसुरजीके पास पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)-का बहुत ही अनुरोध भरा तार आया। उस तारमें निवेदन किया गया था—बीकानेरसे गोस्वामी परिवार मथुरा आनेवाला है। आप चम्पाकी माँको गोस्वामी-परविारके साथ मथुरा भेज दीजिये। श्रीगुलाबचन्द बोथरा हमलोगोंके साथ है।

मेरे श्वसुरजीका मन कम ही था, पर फिर घरमें माताजीसे विचार-विमर्श करके उन्होंने मुझे बीकानेर गोस्वामी-परिवारके पास पहुँचा दिया। उनके साथ मथुरा पहुँचनेपर जब मैंने पूज्य बाबूजीको प्रणाम किया, तब उन्होंने बड़े ही प्यारसे मेरा कुशल-क्षेम पूछा। उस यात्रामें उनकी अहैतुकी कृपासे उनके कर-कमलोंसे सम्पन्न हुए भागवतभवन-शिलान्यासको देखनेका दुर्लभ सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ। उसी यात्रामें वृन्दावनके विभिन्न देव-मन्दिरों, गोवर्धन-परिक्रमा, राधाकुण्ड, कृष्णकुण्ड, कुसुमसरोवर आदिके दर्शनका एवं उनमें स्नानका सौभाग्य मिला। बरसानेमें पूज्य बाबाजीकी अद्भुत भावमयी स्थिति एवं श्रीराधाजीके मन्दिरके दर्शन एवं वहाँ प्रसाद-ग्रहणका अनुपम सुख एवं सौभाग्य मिला, जो मेरे लिये नितान्त असम्भव था। यदि वे मुझे न बुलाते तो यह सब सौभाग्य मुझे कदापि प्राप्त न होता।

इसी यात्राके दौरान उनके वात्सल्यपूर्ण स्नेहकी एक अमिट स्मृति मेरे मनपर और है। न मैं पढ़ी-लिखी हूँ और न ही मुझमें कोई गुण है और अपने अतिशय संकोची स्वभावके कारण न मैंने पूज्य बाबूजीसे कभी अधिक बात ही की, पर फिर भी पता नहीं क्यों, मुझे उन्होंने सतत प्यार-ही-प्यार दिया। पद-पदपर पूछ-पूछकर मेरी सँभाल करते। बड़े-बड़े लोगोंको अनदेखा करके जब वे मेरा नाम लेकर साधारण-सी व्यावहारिक बात सबके सामने पूछते तो एक ओर तो मैं उनके प्यारसे सराबोर हो जाती दूसरी ओर और लाजसे गड़ भी जाती।

पढ़ाई पूरी करनेके बाद ही श्रीबोथराजी (मेरे जीवन सर्वस्व) गोरखपुर पूज्य बाबूजीके पास चले आये। कमाईकी कोई चेष्टा न करनेसे उनका हाथ

सदा ही तंग रहा, अतः अपने किसी मित्रसे परामर्श करके उन्होंने मेरा कुछ गहना बेचकर दो हजार रुपया इकट्ठा किया और उसे व्याजपर अपने उन्हीं मित्रके पास रख दिया। उन दिनों दो हजारकी रकम भी अधिक होती थी। किसी प्रकार पूज्य बाबूजीको इस बातकी खबर लग गयी। उन्होंने श्रीबोथराजीको और मुझे वहीं मथुरा धर्मशालामें, जहाँ वे ठहरे थे, बुलाया और पुनः सारी बातकी जानकारी प्राप्त की। सारी बात सुनकर उन्होंने श्रीबोथराजीसे कहा—देखो, अब वह रुपया मेरा है और मैं रखूँगा।

श्रीबोथराजी औरं मैं, दोनों ही पूज्य बाबूजीकी इतनी आत्मीयताभरी वाणी सुनकर आप्यायित हो गये। हम दोनों ही सोचने लगे—अहो! इतने बड़े सिद्ध संतके श्रीमुखसे अत्यधिक अपनेपनकी इतनी प्यार भरी वाणी बड़े भाग्यसे निकलती है और सुननेको मिलती है।

मन-ही-मन हमलोग अपने भाग्यकी सराहना करते हुए अपने मथुरा स्थित निवासपर आ गये।

मथुरामें पूज्य बाबूजीने मेरी भोजनादिकी सँभालका दायित्व श्रीभगवानदासजी सिंहानियाको विशेष रूपसे दिया था। भगवानदासजी-जैसे देवपुरुषके संरक्षणमें मुझे तो क्या, किसीको भी किसी प्रकारकी भोजनादिकी असुविधा नहीं हुई। इस प्रकारके सभी समारोहोंमें श्रीभगवानदासजी ही सबके खान-पानकी सारी व्यवस्था देखते थे। उनके मृदुल स्वभावसे सब सदा प्रसन्न रहते। बड़े मनुहारसे वे सबको भोजन कराते, सुख-सुविधाका ध्यान रखते। उनके मनुहारमें पूज्य बाबूजीके प्यारकी झलक मिलती थी, अनुभूति होती थी।

परम सम्माननीया श्रीविमला गोस्वामी

'कल्याण-कल्पतरु' अँग्रेजी मासिक एवं धार्मिक पत्रिकाके सम्पादक पूज्य श्री चिम्मनलालजी गोस्वामीकी अनुजा सम्माननीया श्रीविमला बाईके विषयमें एक रोचक घटना है। वह पूज्य श्रीचिम्मनलालाजीके अतिरिक्त पूज्य बाबूजीको भी अपना भाई मानती थीं और रक्षाबन्धनके अवसर पर उन्हें राखी बाँधती थी। एक बार न जाने उन्हें क्या सूझी कि वह बोलीं—अबकी बार मैं राधाबाबाको राखी बाधूँगी।

बाबाने उन दिनों कठोर मौन व्रत ले रखा था। उन्हें परेशानी न हो इसलिये उनसे मिलनेवालोंकी संख्यापर भी कड़ा नियंत्रण रखा जा रहा था। राखी बाँधना तो अत्यन्त कठिन कार्य था। घरमें सभी लोगोंने उसे डाँटा और कहा कि नासमझीमें न जाने क्या-क्या कह जाती है, किस बातका क्या परिणाम होगा यह भी नहीं सोचती। बाबा तो वैसे भी ठहरे संन्यासी, सभी प्रकारके बँधनोंसे दूर, भला वह क्यों राखीके बन्धनको अकारण ही स्वीकार करेंगे।

सभीने यहाँतक कि बच्चों तकने उन्हें डाँटा। राखीके ही दिन न जाने उनके पुत्र श्रीमुकुन्दजीको क्या सूझी कि वे बाबासे अपनी संक्षिप्त भेंटके समय अपनी माँकी राखी बाँधनेवाली बात बतला दी और कहा—बाबा! जिज्जीका तो दिमाग खराब हो गया है। कल कह रही थी अबकी बार मैं तो बाबाको भी राखी बाँधूगी।

इतना कह करके श्रीमुकुन्दजी सोचने लगे कि अब बाबा नाराज हो जायेंगे और माँको डाँटेंगे।

बाबा बोलते तो थे ही नहीं। एक काली स्लेट और चाँकका टुकड़ा अपने पास रखा करते थे। श्रीमुकुन्दजीकी बात सुनकर करके उन्होंने स्लेट और पेंसिल उठायी। उसपर पूज्य बाबाने कुछ लिखा और वह श्रीमुकुन्दजीके सामने रख दिया। उसमें लिखा था—अगर उसने ऐसा कहा था तो तुरन्त उसको बुलाओ।

मुकुन्दजी दौड़े-दौड़े घरकी ओर भागे। मन-ही-मन पछता भी रहे थे कि अब व्यर्थ ही माँको फटकार सुननी पड़ेगी।

घरमें घुसते ही श्रीमुकुन्दजी पूछा—जिज्जी कहाँ है?

सम्माननीया श्रीविमलाजी स्वयं बोली—'क्या है?'

श्रीमुकुन्दजीने अपनी माँसे कहा—'जल्दी चलो। बाबा तुम्हें तुम्हें तुरन्त बुला रहे है।'

विमलाबाई हल्केसे मुसकरायी और बोली—अच्छा ठहरो, चलती हूँ।

वह भीतर गई और दूसरे ही पल पल्लूसे कुछ बाँधती हुई साथ चलनेके लिये गयी।

बाबासे मिलनेके लिये निःसंकोच भाव इतना था कि किसी प्रकारसे तैयार होकर आने जैसी बात तो सोची ही नहीं जा सकती थी। श्रीविमला बाई धीरे-धीरे कदम उठाती थीं। अपनी चालसे चलती हुई बेझिझक वह बाबाके सामने जा खड़ी हुई।

बाबाने एक दृष्टि उसपर डाली और फिर वही स्लेट और पैंसिल उठाकर कुछ लिखने लगे। श्रीमुकुन्दजी घबरा रहे थे कि पता नहीं बाबा क्या आदेश देगें। शायद यह भी कह दें कि इसे बीकानेर भेज दो या शायद सबके सामने माफी माँगनेको कहें। बाबाने स्लेट मुकुन्दजीके सामने सरका दी। उस स्लेटपर लिखा था—अगर तुम्हारी जिज्जी मुझे राखी बाँधना चाहती है तो उससे कहो राखी लेकर आवे।

श्रीमुकुन्दजीको विश्वास ही नहीं हुआ। उन्होंने दुबारा पढ़ा और फिर माँसे पूछा—क्या राखी लेकर आई हो?

उत्तरमें तुरन्त 'हाँ' कहा और अपनी साड़ीका पल्लू आगे करके उसके कोनेपर लगी गाँठको खोलने लगी। सारे उपस्थित लोग चकित देख रहे थे।

बाबा समझ गये कि श्रीविमला बाई राखी लेकर आई है। पूज्य बाबाने एक बार फिर स्लेट और पेंसिल उठा ली और गम्भीर होकर उसपर कुछ लिखते रहे। लिखनेके बाद फिरसे वह स्लेट श्रीमुकुन्दजीको सौंप दी। उसपर लिखा था—कुंकुमकी पुड़िया तो मुझे दे दो और राखी मेरे पट्टेपर बाँध दो।

श्रीविमला बाईने वैसे ही किया। कुँकुमकी पुड़ियाँको बाबाके सम्मुख रख दी और राखीको, जिस पट्टेपर पूज्य बाबा बैठे थे, उसके एक पाये पर बाँध दिया।

भाई-बहिनके इस अनोखे मिलनको पूरा बगीचा देख रहा था। श्रीविमला बाईकी खुशीका ठिकाना नहीं था। प्रसन्नताकी अतिरेकमें वह कहने लगी—अब मेरे तीन भाई हो गये, मामाजी (अर्थात् पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी), भाईजी और बाबा। सबसे कहती हुई वह अपने घरकी ओर चल दीं।

मेहतरानिन मैयाकी अर्चना

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ४।१३)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-इन चार वर्णोंका समूह गुण और कर्मोंके विभागके अनुसार मेरे (अर्थात् भगवान् श्रीकृष्णके) द्वारा रचा गया है। इस प्रकार सृष्टिकी रचना आदि कर्मका कर्ता होनेपर भी मुझ अविनाशी परमेश्वरको तू

(अर्थात् हे अर्जुन) वास्तवमें अकर्ता ही जान। यह भगवान् श्रीकृष्णकी वाणी है। उन्हींके द्वारा इन चार वर्णोंकी विभागशः सृष्टि हुई है। सत्त्वगुणकी प्रधानतासे ब्राह्मणकी, रजोगुणकी प्रधानता तथा सत्त्वगुणकी गौणतासे क्षत्रियकी, रजोगुणकी प्रधानता तथा तमोगुणकी गौणतासे वैश्यकी और तमोगुणकी प्रधानतासे शूद्रकी रचना की गयी है। सत्त्वगुण प्रधान ब्राह्मणके कर्म शम, दम, तप इत्यादि हैं। रजोगुण प्रधान एवं सत्त्वगुण गौण क्षत्रियके कर्म शूरवीरता, तेज प्रभृति है। रजोगुण प्रधान और तमोगुण गौण वैश्यके कर्म कृषि, वाणिज्य आदि हैं और तमोगुण प्रधान रजोगुण गौण शूद्रका कर्म केवल सेवा-कार्य है।

इन चार वर्णोंके स्वभावके अनुसार आर्षकालीन गुरुजनोंने एक वर्षमें चार त्योहार सुनिश्चित किये हैं। ब्राह्मणोंका मुख्य त्योहार श्रावणी पूर्णिमा है। उस दिन ब्राह्मण जातिके लोग विस्तृत पूजन विधान सम्पन्न करके पुरातन यज्ञोपवीतका विसर्जन करके नवीन यज्ञोपवीत धारण करते हैं।

आजकल इस पूजन-विधानके अवसरपर वे क्षत्रिय और वैश्यजन भी भाग लेते हैं, जिन्होंने यज्ञोपवीत धारण कर रखा है। क्षत्रियोंका मुख्य पर्व आश्विन शुक्ला दशमी है जिसे विजयादशमी कहते हैं। यह ऐतिहासिक दिवस है। इसी दिन रघुवंशीय दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामने पापात्मा रावणका वध करके गोस्वरूपा पृथ्वी माताकी भूमिपर होनेवाले पापाचारोंकी समाप्ति की थी। इस दिन क्षत्रिय लोग शस्त्र-पूजन एवं शस्त्र-सन्धान करते हैं। आज भी स्वतन्त्र भारतमें भारत सरकारकी स्थल सेना विजयादशमी-महोत्सव बड़े उत्साहसे मनाती है। सैनिकोंकी परेड होती है और तोपोंसे सलामी दी जाती है। वैश्योंका मुख्य त्योहार कार्तिक कृष्ण अमावास्या है, इस दिन नगर-नगरकी गली-गली, घर-घरकी छतोंपर दीपोंकी पंक्ति प्रज्वलित रहती है। इस दिन वैश्य व्यापारी लोग धनकी अधिष्ठात्री देवी भगवती लक्ष्मी, अष्टसिद्धि, नौनिधिका पूजन करते हैं। इसका शुभारम्भ गणपति पूजनसे होता है। पूजनके उपरान्त सभी श्रद्धालु भक्तोंकी कामना यही रहती है कि घर धन-धान्यसे परिपूर्ण रहे, व्यापार और कृषिकी उन्नति हो तथा श्री-सम्पत्तिकी अभिवृद्धि हो। शूद्रोंका त्योहार होलीके दूसरे दिन चैत्र कृष्ण प्रतिपदा है। इस दिन रंगोल्लास मनाया जाता है। लोग आपसमें रंग छिड़कते हैं और गुलाल मलते हैं। दुर्भाग्यसे इस उत्सवने आजकल विकृत रूप धारण कर लिया है। इस विकृत रूपको दूर करनेके लिये पूज्य बाबूजीने बहुत प्रयत्न किया और उदाहरण प्रस्तुत किया गोरखपुर नगरके माध्यमसे। प्रातःकाल

लगभग ९ बजे भक्तजन गीताप्रेसके द्वारपर खड़े हो जाते थे। एक रथपर प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्णजीका चित्र सजाया जाता था। रथके आगे भक्तजन भगवन्नाम-संकीर्तन करते हुए चलते रहते थे। कीर्तन करनेवाले जनोंमेंसे किसीके हाथमें मजीरा, किसीके हाथमें ढोलक, किसीके हाथमें करताल और किसीके हाथमें गुलालसे भरी झोली रहती थी। इस प्रकारसे कीर्तन करता हुआ वह समुदाय नगरकी मुख्य सड़कपर चलता रहता था और सभी सराहना करते रहते थे। बाबूजीके इस कार्यसे प्रेरणा लेकर अन्य नगरोंमें भी ऐसा होने लगा। खेदकी बात है कि अब इस परम्पराका निर्वाह नहीं हो रहा है।

इसी दिनकी एक महत्त्वपूर्ण घटना है। गीतावाटिकामें एक मुसलमानिन मेहतरानी सफाईका काम किया करती थी। वर्ष तो मुझे याद नहीं है, किन्तु प्रसंग मेरी आँखोंके सामनेका है। चैत्र कृष्ण प्रतिपदा जिसे धुलेण्डी भी कहते हैं, उस दिन पूज्य श्रीराधा बाबाने उस वृद्धा मेहतरानी मैयाको बुलाया। आजकल जहाँ बहिन कमलजीकी कुटिया है, वहाँपर पहले कच्ची पगडण्डी तथा पानीकी टोंटी थी। वहीं पगडण्डीपर पूज्य बाबाने मेहतरानी मैयाको वन्दन करते हुए कहा—मैया! तू यहाँ थोड़ी देर खड़ी रह।

इसके बाद पूज्य बाबाने फोगला परिवारकी, पालड़ीवाल परिवारकी, दुजारी परिवारकी, शिवभगवानजी पोद्दारके परिवारकी—इस प्रकार आसपासकी जितनी भी कुलीन बहुएँ और बहिनें थीं, सबको बुलाया और सबसे कहा—इस मेहतरानिन मैयाके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम करो।

उस समय ऐसी मान्यता रही है कि ये शूद्र अस्पृश्य हैं, अतः इस भावनासे प्रेरित होकर कुछ बहिनें और बहुएँ प्रणाम करनेसे हिचकीं। उनको हिचकते हुए देखकर बाबाने फटकारभरे स्वरमें डाँटते हुए कहा—क्यों? प्रणाम करते संकोच हो रहा है? हिचकने और आनाकानी करनेसे काम नहीं चलेगा। मैं यहाँ खड़ा हूँ और भली प्रकारसे देख रहा हूँ कि कौन किस ढंगसे प्रणाम कर रही है। अब तो सबको प्रणाम करना ही था। जब सब प्रणाम कर रही थीं तब पूज्य बाबाने मेहतरानिन मैयासे कहा—ऐ मैया! सबके माथापर आपन हथवा रख द। अउर सबनके आशीर्वाद द कि सब फूलें-फलें। (अर्थात् हे मैया! सबके सिर पर अपना हाथ रख दो और सबको आशीर्वाद दो कि सब फूलें-फलें।)

मेहतरानी मैयाने ऐसा ही किया। उसकी आँखेंसे झर-झर आँसू बह रहे थे और बार-बार अपने आँचलसे पोंछ रही थी। जब सबने प्रणाम कर लिया तब पूज्य बाबाने इधर बहुओं और बहिनोंसे कहा कि जाकर स्नान कर लो और उधर मेहतरानिन मैयाके आँचलको धन और वस्त्रसे भर दिया। उसने भूमिपर माथा टेककर बाबाको प्रणाम किया और कहा—अइसन काम तुही करवा सकेल। तोहार जइसन न हम साधू देखलीं और न फकीर देखलीं। खुदा तोहार भला करें। (अर्थात् इस प्रकारका कार्य तुम्हीं करवा सकते हो। तुम-जैसा न साधू और न फकीर मैंने कहीं देखा है। भगवान् तुम्हारा भला करें।)

अपने आँसुओंको पोंछती हुई वह मेहतरानिन मैया चली गयी और इस दृश्यको देखनेवाला मैं अनवरत आँसू बहा रहा था।

सो सुख जानइ मन अरु काना। नहिं रसना पहिं जाइ बखाना॥

मैं मन-ही-मन कह रहा था कि किसी अस्पृश्यका इस प्रकार सम्मान—अर्चन परम पूज्य श्रीराधा बाबा-जैसे महान् संत ही करवा सकते हैं। गीतावाटिकाके किसी जनने कभी ऐसा सोचा नहीं होगा कि राधा बाबाका हृदय कितना उदार, अन्तर कितना विशाल और चिन्तन कितना महान् है। ये कुछ ऐसे प्रसंग हैं जो पूज्य बाबाके अनोखे दृष्टिकोणकी झलक प्रस्तुत करते हैं।

श्रीश्यामादेवी अरोड़ा

श्रीश्यामाजी दुनियाकी नजरोंमें एक साधारण, नासमझ और दुनियादारीसे नाता ना रखनेवाली नारी थी। भले सांसारिक लोगोंकी ऐसी मान्यता हो, किन्तु वास्तविकता यह है कि वे यथार्थतः सभीसे ज्यादा समझदार, दृढ़ निश्चयी एकनिष्ठ एवं संत-श्रद्धाकी प्रतिमूर्ति थीं। संतके वचनोंपर अत्यधिक दृढ़ विश्वास था। इसीका परिणाम है कि संत-कृपासे मृत्युसे दो-तीन महीने पहलेसे उन्होंने अन्नका पूर्णतः परित्याग कर दिया था तथा मात्र गंगाजल पी करके ही शरीर धारण कर रही थीं। पूज्य बाबा द्वारा बतलाये गये, सूर्य-षष्ठी व्रतका वे प्रतिवर्ष विधिपूर्वक पालन किया करती थीं।

जब भी गीतावाटिका उनका जाना काफी होता था, बाबाका सान्निध्य उन्हें अत्यधिक प्रिय था। गीतावाटिकामें रहते हुए एकबार उनकी तबीयत काफी

खराब हो गयी। तब बाबाने उनसे पूछा—बेटी! तुम दवासे ठीक होना चाहती हो या बिना दवाके।

श्यामाजीने जबाब दिया—बिना दवाके।

पूज्य बाबाने इस उत्तरकी अति सराहना की। फिर पूज्य बाबाके वचनोंका श्रीश्यामाजीने भली प्रकारसे निर्वाह किया। जबतक वे स्वस्थ नहीं हो गयीं, तबतक गीतावाटिकासे पूज्य बाबाने जाने नहीं दिया। उनका सुपुत्र श्रीराकेश उनको घर ले जानेके लिये जिद करने लगा, तब पूज्य बाबाने उसे डाँट करके कहा—अगर माँको ले जाओगे तो तुम हत्यारे कहलाओगे।

बादमें श्राश्यामाजीने अपने पुत्र राकेशको समझाया—बाबाकी यह डाँट नहीं, बल्कि कृपा है।

श्रीश्यामाजीने गीतावाटिकामें बीमारीके समय तथा भविष्यमें भी कभी ऐलोपैथिक दवाईयोंका सेवन नहीं किया। इस दृढ़-इच्छा-शक्तिके पीछे वस्तुत: संत-कृपा ही मुख्य है।

संतोंकी कहावत है कि एक संत, एक मंत्र और एक इष्टसे भजनमें सिद्धिकी प्राप्ति हैं एवं श्रीप्रिया-प्रियतमकी कृपा मिलती है। इसी संत-वचनको सत्य करके दिखला दिया श्रीश्यामा माताजीके जीवनने। गीतावाटिकाके एक मात्र श्रीराधाबाबा ही उनके जीवनके आश्रय रहे। एक राधानाम ही उनके जीवनका आधार रहा और एक बिहारीजी ही उनके इष्ट रहे।

इस प्रसंगकी लेखिका श्रीमीनू दधीचको श्रीबाबाके दर्शनका सौभाग्य नहीं मिला, किन्तु मनमें एक प्रबल इच्छा थी कि कोई मिले जो पूज्य बाबा और पूज्य बाबूजीके बारेमें बतलाये और जो उनको बहुत समीप रहा हो। इसीके साथ यदि संतोंके दास और दासोंके दासकी सेवाका अवसर मिल जाये तो अति कृपा समझनी चाहिये। इसी भावनासे उनका हृदय गीतावाटिकाके श्रीराधाबाबासे बहुत अधिक जुड़ा रहता था। प्रभुकी कृपा हुई। एक दिन एक सत्संगी बहिनके माध्यमसे श्रीश्यामाजीकी पहचान श्रीमीनूजीसे हुई। श्रीमान् बहिनजीसे श्रीश्यामाजीने पूछा—कौन हो? कहाँसे आई हो?

श्रीमीनूजीने अपना परिचय दिया। इससे वे बहुत प्रसन्न हुई और कहने लगी—बस, अब कहीं भटकनेकी आवश्यकता नहीं है। गीतावाटिकाके श्रीराधाबाबाके चरणाश्रित हो जावो।

वे श्रीश्यामाजी दिन-रात अब श्रीराधाबाबाको याद करती एवं श्रीबाबा और

श्रीबिहारीजीके चित्रपटके आगे मस्त होकर नाँचती। वे सर्वदा ''मेरे बाबा, मेरे प्यारे बाबा, मेरे बाबा'' ऐसे कहकर प्यारसे उनको पुकारती।

उनका बाबाके प्रति अटूट तथा अनन्य विश्वास था। पूज्य बाबाके अतिरिक्त उनके जीवनमें कुछ नहीं था। उनका जीवन अति सादा, सात्त्विक एवं त्यागमय रहा। वे केवल पूज्य बाबाको याद करती रहती थीं। जब वे नाँचती तो, नाँचते हुए गाती थी—''चींटीके पग घुघरु बाजै, वह भी ठाकुर सुनता है।''

श्रीमीनूजीसे श्रीश्यामाजी कहतीं—ओरी बहिना! बाबा पड़े कृपालु हैं। संत बहुत देखे, किन्तु मेरे बाबा जैसा दयालु तथा प्यार करनेवाला कोई नहीं।

अब श्रीश्यामाजीके शब्दोंमें प्रसंग इस प्रकार है। श्रीश्यामाजीने श्रीमीनूजीसे बतलाया—तो मैं तो इस लायक भी नहीं थी कि संसार मुझे पहचाने। मैं पुरानी बात क्या बताऊँ? एकबार जब मैं गीतावाटिकामें बीमार हुई, तब बाबाने अपनी कुर्सी पर मुझे बिठाया था। तभीसे मुझे सब जानने लगे। उस समय मैंने सोचा कि अब तो बस, बाबाके पास ही गीतावाटिकामें रहना है।

एकबार श्रीश्यामाजीकी तबियत बहुत खराब हुई। उनको लिवा जानेके लिये घरसे सब लोग आये और उनको जबरदस्ती ले जाने लगे। उनका जानेका मन नहीं था। श्रीबाबा पता चला तो वे बोले—'ले जानेवाले क्या गारण्टी दे सकते हैं कि श्यामाको वे सब बचा लेगें? यह कहीं नहीं जायेगी और मेरे पास सदा रहेगी।'

इसके बाद भी घरवाले उन्हें लिवा ले गये। श्रीश्यामाजीकी इच्छानुसार उनको श्रीधाम-वृन्दावन लाया गया। उनका शरीर काफी दुर्बल हो गया। खाना-पीना भी छूट गया था। जरा-सा पनीर और कभी आधा कप जूस, बस पूरे दिनमें यहीं वे ले पाती थी। अत्यधिक रुग्णता हो जानेपर उनके द्वारा यह लेना भी छूट गया।

श्रीश्यामाजीने श्रीमीनूजीसे कहा—मुझे कहींसे गंगाजल मँगा दोगी क्या?

उसने कहा—ठीक है। व्यवस्था हो जायेगी।

दूसरे दिन वह गंगाजल ले आयी। पूरे दिनमें श्रीश्यामाजी एक-दो बार गंगाजल ही पीती थीं और वे कहती थीं—श्रीबाबा भी गंगाजल ही पीते थे।

ऐसा लगता है कि उनके भावकी प्रबलताके कारण संतोंको स्वयं आना पड़ा। एक दिन एक अपरिचित संत पधारे। हाथमें गंगाजल लिये दरवाजा खटखटाया। घरका दरवाजा खोला। खोलते ही उन संतके दर्शन हुए।

उनको देखते ही श्रीश्यामाजी बोली—''आइये प्रभु! पधारिये। वाह! वाह!! क्या वेश बनाया है? आप तो बिलकुल भोले बाबा लगते हो। कहिये, कैसे आना हुआ है?''

वे संत बोले—आपके लिये श्रीराधाबाबाने गंगाजल भेजा है। वह गंगाजल मैं लाया हूँ।

यह सुनकर श्रीश्यामाजी तो आनन्द मग्न हो गयीं। वह मिलन और दर्शन देखने लायक था। उसी समय उन आगन्तुक संतको मौसमी छील करके एवं पनीर दिया गया था। संतके आनेसे पहले श्रीश्यामाजीने कुछ पाया नहीं था। फिर श्रीश्यामाजी उन संतसे बोली—पाइये, प्रभु! भोग लगाएँ।

वे संत बोले—आप अपने हाथसे खिलाएँ।

तब श्रीश्यामा माताजीने अपने हाथोंसे उनको खिलाया। फिर उनसे श्रीश्यामा माताजी बोली—''मैं तो आपको बहिना बोलूँगी।''

फिर श्रीश्यामा माताजी उनसे कहने लगी—बहिना! अब कब वापस आओगी?

इसके बाद वे संत स्वरूप प्रभुजी चले गये। इस तरह उन्होंने श्रीराधाबाबाके प्रति अपनी निष्ठाको आजीवन निभाया और अन्त समयतक वे गंगाजल ही पीती रहीं। वे निकटस्थ सेवा-परायणजनोंसे कहती-कभी मेरे शरीरमें दर्द हो या पीड़ा हो अथवा अन्त समय आ जाये तो पूज्य बाबाकी पदरज लगा देना और कुछ नहीं देना। मुझे कभी कोई दवा मत देना।

इतनी निष्ठा, इतनी अनन्यता थी कि जिसकी सीमा नहीं। बस ''बाबा, मेरे बाबा, प्यारे बाबा'' कहती रहतीं और भाव-समाधिमें चली जाती। पर-निंदा, पर-चर्चासे एकदम दूर रहती। जगत् तो उन्हें सुहाता नहीं था। किसीको अपने पास नहीं आने देती थीं। व्यर्थ वार्तालाप किसीसे नहीं करती। शरीर दुर्बल हो गया। कुछ खाती नहीं थी। इससे श्रीमीनूजीका मन खराब हो जाता था। तब वे उनसे कहती—अरी पगली! रोती क्यों है! आनन्द मना! अब तो मैं अपने बाबाके पास जाऊँगी। वहाँ सखियाँ होंगी, यमुनाजी होंगी और होंगे श्रीप्रिया-प्रियतम।

तब श्रीमीनूजीने उनसे कहा—मेरा भी संदेश पहुँचा देना।

इस पर वे हँसने लग जाती और कहती—बहिना! मैं तो बिहारीजीसे प्रार्थना

करती हूँ कि आप मेरे शरीरको ऐसा बना दो कि इस कमरेके बाहर ही न निकलूँ। बस, मैं और मेरे बाबा मेरे हृदयमें विराजित रहें।

बार-बार उनके मुँहसे यही निकलता था—नाथ! तुम्हारी सदा ही जय हो, जय हो।

'राधा-राधा' नाम लेते-लेते एक दिन प्रात:काल ब्राह्मबेलामें वे अपने निज धाम चली गयीं।

श्रीश्यामादेवी वैद्य

सम्मान्य श्रीरामकृष्णजी वैद्य मध्यप्रदेशमें बाँदरी ग्रामके निवासी हैं। वैष्णवता आपको कुल-परम्परासे प्राप्त है। आप रास-लीलाके अद्भुत रसिक है। इसीके साथ संत-सेवामें आपकी आन्तरिक रुचि रहा करती है। पूज्य बाबूजी एवं पूज्य बाबाके प्रति अगाध श्रद्धा है। इसी स्तरकी श्रद्धा रही है। वृन्दावन स्थित वेणु विनोद कुञ्जके पूज्य श्रीमहाराजजी एवं ठाकुर श्रीघनदासजीके प्रति। श्रीवैद्यजीका सौभाग्य रहा है कि आपकी धर्मपत्नी श्रीश्यामा बहिनने सदा ही अपनी पतिकी रुचिमें रुचि मिलाया। ऐसे ही सत्त्व सम्पन्न आपका पूरा परिवार है। अवसर मिलते ही आप सपरिवार स्वर्गाश्रम भी पूज्य श्रीसेठजी और पूज्य बाबूजीके सत्संग-श्रवणार्थ जाया करते थे।

सर्वप्रथम आप सन् १९४२ में पूज्य बाबूजीके सम्पर्कमें आये। तभीसे आपने उनके श्रीचरणोंके प्रति आत्म-समर्पण कर दिया। गृहस्थ-जीवनमें चढ़ाव-उतार आया ही करता है। अपनी सारी कठिनाई वे पूज्य बाबूजीके समक्ष चाहे प्रत्यक्ष अथवा लिख करके निवेदित कर दिया करते हैं। परम कृपालु पूज्य बाबूजी उनकी सारी कठिनाइयोंको दूर कर दिया करते थे। पूज्य बाबूजीने उनके परिवारकी सँभाल आजीवन की। उसके एक-दो प्रसंग यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

सन् १९६८ की बात है। आपके तीनों बालक एक साथ ही काली खाँसीसे आक्रान्त हो गये, मानो दुर्दैवकी दृष्टि एक साथ ही उनके परिवारपर पड़ गयी। सबसे छोटा बालक पाँच-छ: मासका था। उसको जब खाँसीका दौरा पड़ता, तब उसे देख सकना भी कठिन था। बड़ा हृदय-विदारक दृश्य होता। दिन-

रातमें शिशुको बीसों बार वमन और दस्त होते। खाँसीके दौरसे उसका श्वास रुक जाता था और वह बड़ा घबरा उठता था। इसके साथ ही निमोनिया, तीव्र ज्वर, अतिसार आदि भी रोगके साथी बन गये। श्रीवैद्यजी उसकी स्थितिकी गम्भीरताको अनुभव तो कर ही रहे थे। प्रारमभसे ही अच्छे-से-अच्छा उपचार लगातार चल रहा था, किन्तु वमनके द्वारा सभी औषधियाँ व्यर्थ हो जाती थीं।

तीन दिनोंतक वह शिशु रोगके भीषण आक्रमणको झेलता रहा। श्रीवैद्यजी तीसरे दिन लगभग सायंकालका समय था। वह नन्हा-सा शिशु बीमारीके वेगको सहन न सका। वह चेतना शून्य हो गया। शरीर अकड़ चुका था और नेत्र ऊपर चढ़ गये। भावी 'कू-परिणाम' सम्भावित था। यह देखकर श्रीश्यामाजीने रोना शुरू कर दिया। शिशुका अन्तिम समय जानकर श्रीवैद्यजी स्वयं अकुला उठे। पूजाघरमें प्रभुके समीप ही सिंहासनपर पूज्य बाबूजीका चित्रात्मक श्रीविग्रह विराजमान था। दोनोंने वहाँ जाकर पूज्य बाबूजीके सामने बालकको रख दिया तथा जोर-जोरसे भगवन्नामका कीर्तन करने लगे। पाँच मिनट भी नहीं बीते होंगे कि बालककी चेतना पुनः वापस आ गयी और उसने नेत्र खोल दिये। उस समय इन सबकी जो एक विचित्र भावमयी आनन्दपूर्ण कृतज्ञताभरी स्थिति हो रही थी, वह अकथनीय है। इसके बाद शिशुने आश्चर्यजनक रूपसे आरोग्य-लाभ प्राप्त कर लिया। पूज्य बाबूजीकी कृपासे शिशुका जीवन बच गया।

बेटीकी जीवन रक्षा

अन्य घटना सन् १९६९ की है। श्रीवैद्यजीकी एकमात्र बेटी स्नेहलता मूत्र रोगसे ग्रस्त हो गयी थी। उसके मूत्राशयकी थैलीमें मूत्र रोक सकनेकी क्षमताका अभाव हो गया। डाक्टरोंने बतलाया कि इसका एक मात्र उपचार ऑपरेशन ही है और यह ऑपरेशन बम्बईमें हो सकता है। बम्बई जैसे शहरमें जाकर ऑपरेशन कराना मेरी सीमाके बाहरकी चीज थी। श्रीवैद्यजीका साधारण स्तरका व्यक्तित्व उसके व्यय-भारको झेल सकनेमें सर्वथा असमर्थ था, पर उनकी सारी आर्थिक कठिनाई पूज्य बाबूजीके अनुग्रहसे पूर्णतः दूर हो गयी थी। उन्होंने बम्बईमें हमारे ठहरने और ऑपरेशनकी सारी व्यवस्था करवा दी।

गाँवसे बम्बईके लिये प्रस्थान करते समय घरपर अनेक अपशकुन हुए और रात्रिको दुस्वप्न दिखायी दिये, फिर भी वे सब लोग पूज्य बाबूजीका स्मरण करते हुए बम्बई गये। बच्चीका वहाँ ऑपरेशन हुआ। ऑपरेशनके पश्चात्

चिन्ताजनक स्थिति सामने आ गयी। घावमें इन्फेक्सन होनेसे बच्चीके बचनेकी संभावना समाप्त होने लगी। उन लोगोंके मनपर बड़ी निराशा छा गयी। इस निराशाको उनके एक मित्रके दुस्वप्नने और भी घनीभूत बना दिया। बच्चीकी हालत देखकर वे लोग बड़े विकल हो रहे थे। उन लोगोंको बाबूजीकी कृपाका ही एक मात्र अवलम्बन था। बम्बईसे श्रीभगवानदासजी सिंघानिया गोरखपुर जा रहे थे। श्रीवैद्यजी ने उनके द्वारा बच्चीकी नाजुक हालतका समाचार बाबूजीके पास भिजवाया। समाचार सुनते ही पूज्य बाबूजीने सान्त्वनाका पत्र लिखा। उन्हें पत्र मिला उस समय, जब बच्ची जन्म और मृत्युके बीचमें झूल रही थी। पत्रको पढ़कर और पत्रके रूपमें उनका अनुग्रह प्राप्त करके उन लोगोंके मनमें आशाका सञ्चार हुआ। वस्तुतः आशा पूर्ण हुई और बच्चीके जीवनकी रक्षा हो गयी। बम्बई अस्पतालमें बैठे हुए हम लोग मन-ही-मन बाबूजीके चरणोंमें बारम्बार प्रणाम कर रहे थे।

सन् १९७३ या १९७४ की बात है। आप पूज्य बाबाके दर्शनार्थ गीतावाटिका आये हुए थे। साथमें आपकी सहधर्मिणी और द्वादश वर्षीय सुपुत्र प्रिय श्रीकृष्णकुमार भी था। प्रिय श्रीकृष्णकुमारके हाथमें फोड़ा हो गया था। वह फोड़ा छोटा या साधारण नहीं था। उसका विशदरूप बड़ा कष्टदायी था, इसके बाद भी बालक कृष्णकुमार समवयस्क बालकोंके साथ खेलनेका लोभ संवरण नहीं कर पाया। वह समवयस्क बालकोंके साथ पूज्य बाबूजीकी पावन समाधिके पास खेल रहा था। उसी समय पूज्य बाबा अपनी कुटियासे चलकर पूज्या माँके पास जा रहे थे। चलते-चलते उनकी दृष्टि व्रण-कष्ट-पीड़ित प्रिय कृष्णकुमारपर पड़ गयी। वे ठहर गये और उससे उन्होंने कहा—तुम जाकर अपने माता-पिताजीसे पूछ लो कि बाबा हाथके फोड़ेका उपचार करवा दें क्या?

इतना कहकर पूज्य बाबा आगे बढ़ गये। उचित तो यह था कि प्रिय कृष्णकुमारको तुरन्त जाकर अपने माता-पिताजीसे पूछना चाहिये था, किन्तु बाल्य स्वभावके वशीभूत होकर वह खेलता ही रहा। उसने मन-ही-मन ऐसा सोच रखा था कि खेलकी इस बारीके पूरा होते ही जाकर पूछ लूँगा। इस लापरवाहीको प्रमाद न कहकर बाल-चापल्य कहना चाहिये। बालक कृष्णकुमारका वह बाल-चाञ्चल्य भले उस उपचार-प्रक्रियाके प्रति उदासीन हो, परन्तु करुणा-विगलित संत-हृदय भला कैसे उसकी उपेक्षा कर सकता है। जब पूज्या माँके पाससे

लौटकर पूज्य बाबा आये, तो खेलते हुए प्रिय कृष्णकुमारसे उन्होंने पूछा—क्या अपने माता-पितासे पूछ आये?

प्रिय कृष्णकुमारने कहा—बाबा! खेलमें लगा रहा। मैं अब जा रहा हूँ।

प्रिय कृष्णकुमारने पूज्य बाबाकी बात अपने माता-पितासे कही। इसको उन्होंने अपना परम सौभाग्य और पूज्य बाबाका परम अनुग्रह माना। उसकी माताजी प्रिय कृष्णकुमारको साथ लेकर पूज्य बाबाके पास आयी और नत-मस्तक होकर विनम्र स्वरमें कहा—यह बालक तो आपका ही है। आप जो उचित समझें, वही करें।

शामका समय था। उसी समय पूज्य बाबाने डॉक्टर साहब (सम्मान्य डॉ० एल० डी० सिंहजी) को बुलवाया। जिस समय पूज्य बाबाने उनको बुलवाया, वह ज़नरल मिटिंगका समय था। इन दिनों जनरल मिटिंग प्रतिदिन हुआ करती थी। इस जनरल मीटिंगको अध्यात्म गोष्ठी कहना चाहिये, जिसमें उपास्य एवं उपासना, साध्य एवं साधना, ज्ञान-भक्ति-कर्म आदि-आदि विषयोंपर विशद् चर्चा होती थी। साधु-साधक-सज्जन लोग इस गोष्ठीमें होनेवाली चर्चाको सुननेके लिये उत्सुक रहा करते थे। श्रोतावर्गमें श्रेष्ठ और साधारण, सभी स्तरके लोग रहते थे और सभीको अपने-अपने स्तरके अनुरूप बातें सुननेको मिल जाया करती थी। उस गोष्ठीसे सभीको बड़ी प्रेरणा मिलती थी और बड़ा सन्तोष होता था, परन्तु आज वह गोष्ठी भी पूज्य बाबाके लिये सर्वथा नगण्य हो गयी। डॉक्टर साहबके आते ही पूज्य बाबा प्रिय कृष्णकुमारको साथ लेकर उनके पास बैठ गये। पूज्य बाबाने प्रिय कृष्णकुमारका हाथ पकड़ा और डॉक्टर साहबको फोड़ेको दबा-दबा करके मवाद निकालने लगे। ज्यों-ज्यों मवाद और रक्त निकलता, त्यों-त्यों पीड़ा बढ़ती जाती। फोड़ेकी चिकित्सामें लगभग आधा घण्टा लग गया। आधे घण्टेतक पूज्य बाबा वहीं बैठे रहे। फोड़ेकी सफाई कर देनेके बाद पट्टी बाँधी गयी। इसके बाद पूज्य बाबाने एक गिलास दूध मँगवा करके प्रिय कृष्णकुमारको पिलाया। इतना सारा करके पूज्य बाबाने उस फोड़ेकी चिकित्साका सारा दायित्व डॉक्टर साहबको सौंप दिया।

प्रिय कृष्णकुमारकी माताजी खड़ी-खड़ी देख रही थी कि सच्चर्चावाली उस सुन्दर गोष्ठीको सर्वथा गौण करके पूज्य बाबाने पुत्रकी चिकित्सामें कितनी अधिक रुचि ली है। पूज्य बाबाके इस अगाध वात्सल्यको देखकर माताजीके

हृदयमें ***'कबहुक बिस्मय कबहुँ अनंदा'***। विस्मय हो रहा था पूज्य बाबाके करुणा विगलित अन्तरके सेवोत्साहको देखकर और आनन्द हो रहा था गैरिक-वस्त्रमें छिपे हुए ममतापूरित जीवनके भावोल्लासको देखकर। इस भावोत्कर्षकी कमनीय महनीयतासे केवल वे माताजी ही विभावित नहीं थी, अपितु जितने लोग भी वहाँ द्रष्टाके रूपमें खड़े थे, सभी न्यूनाधिक रूपमें इस स्नेहस्निग्ध दृश्यसे प्रभावित थे। प्रभावित द्रष्टाओंमें एक-दो लोग तो प्रिय कृष्णकुमारके सौभाग्यकी सराहना भी मन-ही-मन कर रहे थे, यह सोच करके कि पूज्य बाबाने इस बालकका हाथ तो पकड़ा। कौन नहीं चाहता कि कोई संत मेरा हाथ थाम ले। सभी चाहते हैं कि कोई बहाना बन जाय और उस बहानेसे संताश्रयका ढंग बन जाय। इस बालकके लिये तो फोड़ा एक बहाना बन गया। भले यह बहाना वर्तमानमें ऊपरी तौरपर कष्टप्रद है, पर इस बहानेका भविष्य तो अनुमानातीत रूपसे सुन्दर है। इस बहानेसे पूज्य बाबाने बालकका हाथ तो थाम ही लिया। भले यह बालक अपनी अबोधावस्थाके कारण अभी इस प्रसंगकी गरिमाको समझ नहीं पा रहा है, पर यह बहाना तो इस बालकके जीवनकी एक निधि बन गया है।

श्रीश्यामाजी विगत २५ वर्षोंसे श्रीराधाजन्मोत्सव एवं अन्य अवसरोंपर अपने ग्राम बाँदरी (सागर) मध्य प्रदेशसे पूजनीया माँ, पूजनीया बाईकी आत्मीयता व प्यारसे प्रेरित होकर पूज्य बाबाके दर्शनार्थ बड़ी उत्सुकता-पूर्वकर गीतावाटिका आती रहीं। गोरखपुर आनेका कार्यक्रम बनते ही अन्तरमें उमंगें हिलोरें लेने लगती थीं। पूज्य बाबा यदि उन्हें कोई सेवा-कार्य दे देते तो उसे प्रसन्नतासे करती। वाटिकामें कोई माँ-बहिन बीमार होती तो पूज्य बाबा सेवा-कार्यके लिये श्यामा बेटीको जरूर याद करते थे।

१९९७ की दीपावलीपर श्यामाके उदरमें अलसर हो गया, जिसका भोपालमें उपचार चला। पूरे एक वर्ष इलाज चला और लगने लगा कि स्वास्थ्य सुधर रहा है, किन्तु १९९८ की दीपावलीपर ही पुनः रोगमें उभार आया और पुनः भोपाल ले जाया गया, जहाँ उनके उदरमें व्याप्त ट्यूमरका ऑपरेशन हुआ। डॉक्टरोंने जवाब दे दिया। खाना-पीना लगभग बन्द हो गया। वृन्दावनमें ठाकुर श्रीघनश्यामजीसे फोन पर श्रीवैद्यजीकी बात होती रहती थी। उन्होंने कहा—वृन्दावन ले आओ, उन्हें व्रजवास कराऊँगा।

भोपालसे मथुराके लिये प्रात: छत्तीसगढ़ एक्सप्रेससे उन्हें रिजर्वेशन द्वारा बड़े पुत्र श्रीविनोदकुमारके साथ रवाना किया गया। भोपाल स्टेशनसे भगवदीय सहायता मिलना प्रारम्भ हो गयी।

अब भोपाल स्टेशनका प्रसंग है। जिस प्लेटफार्मपर स्ट्रेचरपर लेटी हुई थी, ठीक उसके सामने ही रिजर्वेशन कोच आकर खड़ा हुआ। प्रात: सात बजे ट्रेन चलकर नौ बजे बीना स्टेशन पहुँची। बीनासे गाड़ी बदलनी पड़ती है। फिर मथुरा पहुँचकर श्रीश्यामाने श्रीवैद्यजीको बतलाया कि बीना स्टेशनसे दो बहुत सुन्दर स्त्रियाँ, जो इस लोककी नहीं लगती थीं, ट्रेनपर चढ़ी और मुझसे कहा—तुम मेरे साथ चलो।

यह अनुभूति श्रीश्यामाको अर्द्ध-निद्रावस्थामें हुई, जिसे वह बार-बार श्रीवैद्यजीको बताती रही। वृन्दावन पहुँचकर श्यामाको जैसे जीवन मिल गया हो। वहाँ श्रीश्यामाजीको जहाँ ठहराया गया था, उस स्थानपर ठाकुर श्रीघनश्यामजीने एक दिन वाद्ययन्त्र भिजवाकर कीर्तन कराया। कीर्तन सम्मान्य श्रीनारायणजीके नेतृत्त्वमें हुआ। जब हालत ज्यादा नाजुक होने लगी तो श्रीवैद्यजीने पूज्य श्रीश्रीरामजी शर्माके साथ श्रीठाकुरजीसे आज्ञा चाही कि श्रीश्यामाजीको रामकृष्ण मिशन हास्पिटलमें भर्ती करा दिया जाय। श्रीठाकुरजीने कहा—''तीन दिन तो ठहरो।''

आगेका वृत्त बतलाया जाय, उसके पहले यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि तीसरे ही दिवस श्रीगीता-जयन्तीके दिन श्रीश्यामाजी अपने 'श्याम' के पास चली गयीं। इससे ठीक एक दिन पूर्व रात्रिमें आठ बजेके आस-पास श्रीश्यामाजी जिद् करने लगी कि मुझे महाराजजीके पास (श्रीबालकृष्णदासजी महाराज) आश्रममें ले चलो। श्रीवैद्यजीके दोनों पुत्र श्रीविनोदकुमार एवं श्रीकृष्णकुमार ठाकुरजीके पास गये और श्यामाकी चिन्ताजनक स्थितिसे उन्हें अवगत कराया। ठाकुरजीने दो पुष्प श्रीमहाराजजीके श्रीविग्रहके पाससे मँगवा करके श्रीविनोद कुमारको दिया और कहा—ये दो पुष्प श्रीश्यामाजीको दे देना।

श्रीविनोदने वे पुष्प श्यामाको दिये। श्यामाने पुष्पोंकी एक-एक पंखुड़ीको तुरंत आकुलता-पूर्वक खा लिया। यह रात भी बीत गयी। प्रात: श्रीगीता-जयन्ती, मोक्षदा एकादशी तथा पूज्य श्रीबालकृष्णदासजी महाराजके जन्मोत्सवका कार्यक्रम था। दिन सोमवार और दिनांक था ३० नवम्बर, १९९८। वे बार-बार प्रात:से

ही श्रीमहाराजजीके आश्रम ले चलनेके लिये वह आतुर हो रही थीं। श्रीश्यामाजीने लेटे-लेटे ही अपने पतिदेव श्रीरामकृष्णजी वैद्यको गलेसे लगाया। फिर उसने अपने कर्णफूल व पायजेब अपने हाथोंसे उतार दिये। तदुपरान्त अपने छोटे पुत्र श्रीकृष्ण कुमारसे कहा—''दीवारकी ओरसे हटो, वहाँ बाबा, बाबूजी हैं।''

स्पष्ट रूपसे उन दिन श्रीश्यामाजी पर पूज्य बाबा, पूज्य बाबूजीकी अहैतुकी कृपा अनवरत अवतरित होती रही। ये संतद्वय स्वयं श्रीश्यामाजीको ले जानेके लिये आये। श्रीश्यामाजीको स्नान कराया गया। आश्रमके लिये एक एम्बुलेन्स बुला ली गयी। ठीक १३.३० बजे श्रीश्यामाजी आश्रम पहुँच गयीं। वेणु विनोद कुँजमें श्रीमहाराजजीका जन्म-महोत्सवका कार्यक्रम चल रहा था। श्रीश्यामाजीको स्ट्रेचरपरसे पूज्य श्रीमहाराजजीके श्रीविग्रहके समक्ष लिटा दिया गया। वहाँ वे अकेले ही हाथोंसे ताली बजाती हुई, राधानाम संकीर्तन करने लगीं। मुखमें कम्पन बहुत तीव्र था। आश्रममें श्रीमहाराजजीके जन्म-महोत्सवमें आये हुए, परिकर उनके समीप आने लगे तथा श्रीश्यामाजीकी मन-ही-मन सराहना कर रहे थे। सम्मान्य श्रीलालजी चड्ढा (दिल्ली) ने श्रीश्यामाजीको प्रणाम किया।

श्रीश्यामाजीने जीवनमें परम पूज्य बाबाको अपना सर्वस्व माना। अत: अन्तमें बाबाको अपने आश्रितजनको सँभालनेकी टेक निभानी थी। सो पूज्य बाबा स्वयं श्रीश्यामाजीके पास आये ही इसीके साथ पूज्य बाबूजीको लेकर आये। एक बात और है। इस समय गोरखपुरकी गीतावाटिकाका परिकरवर्ग भी श्रीमहाराजजीके जन्म-महोत्सव कार्यक्रममें अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करनेके लिये वृन्दावन आया हुआ था, जैसे आदरणीय श्रीभीमसेनजी चोपड़ा, आदरणीया बहिन श्रीकमलजी, श्रीजयरामजी, सुश्रीशालू बाई। ये सभी जन गीतावाटिकाके प्रतिनिधि स्वरूप वहाँ उपस्थित थे। सम्भवत: डॉ० विश्वम्भरशरणजी पाठक (पूर्व कुलपति, गोरखपुर विश्वविद्यालय) भी आये हुए थे।

लगभग डेढ़ बजे श्रीठाकुर घनश्यामजी, श्रीबिहारीजीके दर्शन करके रिक्शेसे लौट करके आश्रम आये। वे अपने साथ श्रीबिहारीजीकी प्रसादी फूलमाला लाये थे। वहीं उन्होंने श्रीश्यामाजीके गलेमें पहना दी। श्रीश्यामाजीने अपने सामने ठाकुरजीको देखा तो, दो बार श्रीठाकुर घनश्यामजीका आलिंगन किया। इस दृश्यको देख-देख करके उपस्थित जन मुग्ध हो रहे थे। श्रीठाकुरजीने भोगकी प्रसादी मँगायी और एक रसगुल्ला श्रीश्यामाजीके मुँहमें खिला दिया।

श्यामाने ४२ दिनोंसे अन्न नहीं लिया था। आज श्रीठाकुरजीके हाथसे रसगुल्ला पा लिया। इसके पश्चात् ठाकुरजीने संकेतसे पुत्रको कहा—'इन्हें इनके कमरे पर ले जाओ।'

यह श्यामाकी अन्तिम विदाई थी। एम्बुलेंन्ससे उन्हें कमरेपर श्रीविनोदकुमार एवं श्रीकृष्णकुमार ले आये। एम्बुलेंन्ससे उतार करके कमरेमें उन्हें लिटा दिया गया। ज्यों ही लिटाया गया, त्यों ही ऐसा लगा कि वे प्रयाण करनेवाली हैं। श्रीकृष्णकुमारने तुमुल ध्वनिसे भगवन्नामका उद्घोष प्रारम्भ कर दिया। साथ ही पूज्य श्रीबाबा, पूज्य श्रीबाबूजी, पूज्य श्रीमहाराजजीके जयकारे लगाने प्रारम्भ कर दिये। भगवन्नामकी तुमुल ध्वनिके बीच श्रीश्यामाजीने महाप्रयाण किया। तुरन्त श्रीतुलसीदल मुँहमें डाल दिया गया। श्रीविनोदकुमारने श्रीठाकुरजीको उनके महाप्रयाणकी सूचना फोन द्वारा भिजवाई। सूचना पाकर श्रीठाकुरजीने विष्णु-सहस्रनामके दो पाठ करनेके लिये श्रीचोपड़ाजीसे कहा।

अब एक आश्चर्यकी बात। जबतक पूज्य श्रीमहाराजजीका जयन्ती-महोत्सव मनाया जा रहा था, तबतक वे जीवित रही। उत्सवमें कोई विघ्न उपस्थित नहीं हुआ। पूज्य श्रीबाबाकी सँभालकी सीमा नहीं थी। आश्रममें उत्सवके मध्य कोई व्यवधान उपस्थित न हो, एतदर्थ १.४५ बजेतक ही श्यामाको आश्रममें रोका गया। उसके बाद कमरेपर पहुँचकर, उन्होंने दो बजे महाप्रयाण किया।

सायं छः बजे पार्थिव शरीरको यमुना किनारे दाहसंस्कार हेतु ले जाया गया। उससे पूर्व आदरणीया प्रमिलाजी व बहिन कमलजी तथा श्रीजयरामजी आ गये थे। अन्तिम यात्राके लिये श्रीश्यामाजीको पहनानेके लिये एक नयी साड़ी श्रीशालूबाईके हाथ पूज्या श्रीसावित्रीबाई फोगलाने गोरखपुरसे भिजवायी थी। वही साड़ी स्नान करा करके पहनायी गयी।

जब शव यात्रा प्रारम्भ हुई तो श्रीजयरामजीने यह कहकर रास्ते भर कंधा दिया—'मैं पूज्य बाबाको क्या जवाब दूँगा, मैं तो उनका प्रतिनिधि ही हूँ। अतः मुझे तो चलना ही होगा।'

श्रीश्यामाजीको श्रीयमुना किनारे जब ले जाया जा रहा था, तब श्रीयमुनाके किनारे ही एक जगह रासलीला हो रही थी, परन्तु उस रासमें दर्शकगण नहीं थे। दर्शकोंकी जगह बड़े-बड़े सींगोवाली कई, ऊँची-ऊँची गायें थीं और सब खड़ी थीं। यह दृश्य शव-यात्रामें सम्मिलित एक व्यक्तिने अपनी खुली आँखोंसे

देखा। उस व्यक्तिको पहले तो यह सब सामान्य लगा, किन्तु थोड़ी देर बाद ही आभास हुआ कि एकान्त स्थलपर यमुनाके तीरपर बिना दर्शकोंके कौन-सी, किसके द्वारा रासलीला आयोजित हुई, जिसमें दर्शकोंके स्थानपर ऊँची-ऊँची हृष्ट-पुष्ट अनेक गौएँ उपस्थित हैं। उस समय एक सखीके उद्गार उस व्यक्तिके कानोंमें पड़े—'हे प्रिया-प्रियतम जू! आपके नित्य-विहारका समय ह्वै गयो है। सो अब आप कृपा करके नित्य-विहारमें पधारौ।'

पूज्य श्रीबाबाने जिसे अपनी बेटी मान लिया हो, उसकी सँभाल वे किस प्रकार करते हैं, यह इस घटनासे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। जिस-जिसने श्रीश्यामाजीके अन्तिम महाप्रयाणके प्रसंगको सुना, उनकी धन्यता और परम पूज्य बाबाकी अहैतुकी कृपाकी चर्चासे वह सराबोर होता रहा।

श्रीसुशीलाबाई जोशी

सुशीलाबाईके पिताजी श्रीशर्माजी आयुर्वेदिक चिकित्सक थे और पूज्य बाबूजीके कृपापात्र थे। बाबूजीने उनके रहनेकी व्यवस्था गीतावाटिकाके पार्श्वमें कर दी, जिसमें आगे चलकर श्रीमोतीलालजी पारीकका परिवार रहा करता था (और है।)। श्रीपारीकजी तो गीतावाटिकामें रहते थे, किन्तु परिवार पार्श्ववाले मकानमें रहा करता था। सौभाग्याकांक्षिणी श्रीसुशीलाबाईका मंगल परिणय श्रीगोविन्दप्रसादजी जोशीसे हुआ। पूज्य बाबूजीके परम मित्र थे श्रीहरिवक्षजी जोशी और उन्हींकी वंशानुवंश शृंखलामें श्रीगोविन्दप्रसादजी जोशीका नाम आता है। श्रीसुशीलाबाई कलकत्तेमें श्रीगोविन्दप्रसादजीके साथ जीवन व्यतीत करने लगीं।

यह ज्ञात नहीं कि कलकत्ता निवासी जोशी परिवारके आँगनमें कौन-सा आन्तरिक कलह उभरा कि एक दिन गोविन्दप्रसादजी बिना कुछ बताये घरसे सदाके लिये चल दिये। बहुत खोजबीन हुई, किन्तु कुछ पता न चला। बाईके ससुरजीके मनमें सम्भवतः कुछ लोभ जगा होगा और उन्होंने बहू श्रीसुशीलाबाईके प्रति ताना मारा—जब तुम अपने पतिको ही नहीं सँभाल पायी तो फिर हमारी क्या सँभाल कर पाओगी? अब तुम जहाँ जाना चाहो, चली जाओ।

भगवान्‌ने उसकी गोदमें एक बालिका और एक बालक दिया था जो नितान्त अल्प आयुके थे। सुशीलाबाईको गीतावाटिकाकी याद आयी और

गीतावाटिका चली आयी। बाबूजीने उसको आश्रय दिया। वह गीतावाटिकाके सामने वाली नयी कोठीमें कमरा नम्बर ९ में रहती थी और मैं कमरा नम्बर ६ में रहता था। उससे बड़ी आत्मीयता हो गयी थी। वह बड़े मधुर स्वभावकी थी और हमेशा मेरी सँभाल किया करती थी। सुबह ९-१० बजे नयी कोठीसे गीतावाटिका आ जाया करती थी और घरमें आदरणीया सावित्रीबाई फोगलाको पारिवारिक कार्योंमें सहयोग किया करती थी। जब-जब पूज्य श्रीहरिवक्षजी जोशी गोरखपुर आया करते थे, उससे मिला करते थे और उसका कुशल समाचार पूछा करते थे। बाईके सुपुत्रीका नाम ललिता और पुत्रका नाम ओमप्रकाश है। इन दोनोंकी शिक्षाकी व्यवस्था पूज्य बाबूजीकी ओरसे हो रही थी।

श्रीसुशीलाबाई जितनी मधुर थी, उतनी ही बहुत अधिर हाजिर जवाब थी। एक बार घरके नौकरने सुशीलाबाईके आठ-नौ वर्षीय पुत्र ओमप्रकाशको एक चपत लगा दी। सभी माँको अपने बेटे प्यारे होते हैं और कोई भी उसकी ओर नजर उठाता है तो वह सिंहनी बन जाती है। सुशीला बाईने चट नौकरसे पूछा—तुमने क्यों मारा?

नौकर—बाई! यह शरारत कर रहा था।

बाई—छोटे बच्चे तो करते ही हैं। तुम समझा सकते थे। मारनेकी क्या जरूरत है? मैं भी तो इस घरमें रहती हूँ और इस घरको अपना मानती हूँ।

वह नौकर श्रीकुंजबिहारीके अग्रज श्रीराधेश्याम पालड़ीवालका सेवक था। श्रीकुंजबिहारीको सुशीलाजीके द्वारा डाँटा जाना अच्छा नहीं लगा। वह सोचने लगा कि सुशीलाबाईका मन बहुत बढ़ गया है। तब श्रीकुंजबिहारीने उससे कहा—जो भी बाहरका आता है, वह यहाँ रहनेके बाद अपना घर मानने लगता है।

हाजिर जवाबीमें कुशल सुशीलाबाईने चट कहा—भैया! तुम सही कह रहे हो। जो भी बाहरसे आता है, वह इस घरको अपना मानने लगता है। अब वह चाहे मैं हूँ चाहे तुम हो? क्या तुम्हारी जन्मदात्री सावित्री बाई है? तुम बाहर खगड़ियासे आये और मैं भी बाहर कलकत्तेसे आयी। तुम बाहरसे आनेवालेको ऐसा बोलनेका क्या अधिकार है?

यह सुनते ही कुंजबिहारी वहाँसे चला गया।

धीरे-धीरे लाली ललिताने किशोरावस्थामें प्रवेश किया और वह अति नयनाभिरामा थी। पूर्ण युवक श्रीचन्द्रकान्त फोगलाके आँखोंमें चढ़ गयी। अब

वह किसी उचित अवसरकी फिराकमें था। एक दिन चन्द्रकान्तने ललिताको अपने कमरेमें बुलाया और दरवाजा बन्द किया। एक कहावत है—***जाको राखे साइयाँ मार सकै नहिं कोय। बाल न बाँका करि सकै जो जग बैरी होय॥***

इधर चन्द्रकान्तने कमरा बन्द किया, उधर आधे मिनटके अन्दर सुशीलाबाईको सूचना मिल गयी। वह दौड़ती हुई आयी और दरवाजा थपथपाया। अब द्वारको तो खुलना ही था। खुलते ही रोषसे भरी हुई सुशीलाबाईने पूछा—तुमने दरवाजा क्यों बन्द किया।

चन्द्रकान्तके पास कोई जवाब नहीं था। इसके बाद सुशीलाबाईने पूज्य बाबाके पास जाकर शिकायत की। इसपर चन्द्रकान्त और चिढ़ गया। वह मन-ही-मन सोचने लगा—हमारी रोटी पर पलनेवाली यह ब्राह्मणी आज मुझे बदनाम कर रही है। मैं इसका बदला लेकर रहूँगा।

चन्द्रकान्तने भाई श्रीकृष्णचन्द्रजीको कुछ बात बनाकर अपनी ओर मिला लिया। कृष्णजीका बाबूजीके परिवारपर बड़ा अधिकार था। सब उनकी बातको मानते थे। चन्द्रकान्तने पूज्या माँसे कहा—सुशीलाबाईको गीतावाटिकासे हटाओ नहीं तो मैं कुछ कर बैठ सकता हूँ।

यह धमकी साधारण नहीं थी। माँ अत्यधिक भयभीत हो गयी। भाई कृष्णचन्द्रजी अग्रवाल भी भयभीत हो गये। अब पूज्य बाबूजीके सामने भीषण धर्मसंकट उपस्थित हो गया कि सुशीलाबाईको हटाऊँ या रखूँ। श्रीचन्द्रकान्तने जैसी धमकी दी थी, उससे अत्यधिक आतंकिता एवं आशंकिता पूज्या माँके आग्रहपर तथा भाई कृष्णचन्द्र अग्रवालके सुझाव पर पूज्य बाबूजीने सुशीलाबाईके वृन्दावनवासकी व्यवस्था की। श्रीसुशीलाबाई २९ मई १९७० को गोरखपुरसे वृन्दावन चली गयी।

वृन्दावनमें पूज्य बाबूजीने श्रीसुशीलाबाईके निवासकी व्यवस्था भगवान् भजनाश्रममें की तथा जीवन-निर्वाहका दायित्व अपने अभिन्न हृदय श्रीजयदयालजी डालमियाको सौंपा। बड़े होनेपर उसकी पुत्री और पुत्र दोनोंका विवाह हुआ। दोनों सन्तानें श्रीललिता और श्रीओमप्रकाश इन्दौरमें सपरिवार रह रहे हैं। जीवन साधारण रीतिसे व्यतीत हो रहा है। वृन्दावनमें निवास करती हुई श्रीसुशीलाबाईका देहावसान हुआ और वहाँकी रजरानीमें विलीन हो गयी।

श्रीलीलाबाई झुनझुनवाला

सम्मान्य श्रीरामेश्वरप्रसादजी बाजोरिया पूज्य बाबूजीके सम्बन्धी थे। सम्बन्धका स्वरूप याद नहीं आ रहा है। सौभाग्याकांक्षिणी श्रीलीलाबाईका विवाह झुनझुनवाला परिवारमें हुआ, किन्तु सांसारिक दृष्टिसे शोककी बात है कि भगवान्‌ने उनके सौभाग्यका शीघ्र ही अपहरण कर लिया। ऐसा अनुमान होता है यह किसी पूर्वजन्मकृत् अशुभका परिणाम था।

पूज्य बाबूजी सदैव विपद्ग्रस्तजनोंके आश्रयदाता रहे हैं। पूज्य बाबूजीने श्रीलीलाबाईको गीतावाटिका बुला लिया और पूज्य बाबाकी सेवामें नियुक्त कर दिया। बाई पूज्य बाबाकी भिक्षा बनाया करती थीं। पूज्य बाबाको भिक्षामें परवल बहुत पसन्द था। श्रीलीलाबाई बड़े करीनेसे परवलके छिलके उतारकर उसका साग बनाया करती थीं। जब-जब पूज्य बाबा भिक्षा करते थे, परवलके सागकी सराहना करते थे।

जीवनके ढलते समयमें लीलाबाईके जीवनमें चिड़चिड़ापन बहुत आ गया था और आसपास कौन खड़ा है, इसका ध्यान न रखते हुए बाबाके प्रति कई बार अशोभनीय रीतिसे अपने मनकी बात कहने लगती थीं। पूज्य बाबा चुपचाप सह लेते थे। फिर उसका मन गीतावाटिकासे उचट गया। बाबाने तो कुछ नहीं कहा, परन्तु मेरा ऐसा अनुमान है कि बाबाके आराध्यको यह अच्छा नहीं लगा होगा और इसीलिये मनमें उच्चाटनके होते ही वे गीतावाटिका छोड़कर वृन्दावन चली गयीं वहीं पर वास करने लगीं।

लीलाबाईके वृन्दावासके उपरान्त बाबाने परवल खाना छोड़ दिया। कइयोंने बाबासे अनुरोध किया कि परवल आपके लिये रुचिकर और स्वास्थ्यप्रद है, अतः लेना चाहिये, पर बाबाने स्वीकार नहीं किया।

जब पूज्या माँ अत्यधिक रुग्ण पड़ीं, तब लीलाबाईको इसका समाचार वृन्दावनमें मिला। समाचार मिलते ही वे वृन्दावनसे गोरखपुर आयीं। उनके आनेके दो-तीन दिन बाद ही पूज्या माँ 'अपने आराध्य गोपाल' के पास चली गयं। पूज्या माँके जानेके पन्द्रह दिन बाद पूज्य बाबा भी सदाके लिये 'अन्तर्हित' हो गये। यह सब उनके सामने हुआ। इसके बाद वे वृन्दावन चली गयीं और वहीं उन्होंने अपनी जीवन-यात्रा सम्पूर्ण की।

श्रीभानूबाई बाजोरिया

श्रीभानूबाई दिल्लीकी रहनेवाली थीं। यह स्मरण नहीं है कि वे पति परित्यक्ता थीं अथवा विधवा थीं, किन्तु जीवनके उत्तरकालमें संत-संनिधिसे लालसान्विता होकर वे गीतावाटिका चली आयीं। पूज्य बाबाकी श्रीगिरिराज परिक्रमामें नित्य उपस्थित रहा करती थीं। पूज्या माँकी सेवा भी वे उत्साहपूर्वक करती थीं।

जब-जब पूज्य बाबा माँसे मिलनेके लिये कोठीमें आया करते थे और माँके पास बैठा करते थे, तब श्रीभानूबाई भी वहाँ उपस्थित रहा करती थीं। तब श्रीभानूबाई अपने आँचलमें टेप रिकार्डर छिपाकर रखा करती थीं और पूज्य बाबाकी सुन्दर वाणियोंको छिपे-छिपे रिकार्डिंग किया करती थीं। इस प्रकार उनके पास कई कैसेट हो गयी थी।

प्रत्येक एकादशीको श्रीभानूबाई मेरे कमरेमें फलाहारके लिये आया करती थीं। सम्मान्य भाई श्रीफौजदार सिंह भी आया करते थे। हम सभी लोग मिलकर साथ-साथ फलाहार किया करते थे। साथमें विनोद और मनोरंजनका भी वातावरण रहा करता था।

जीवनके अन्तिम दिनोंमें वे अत्यधिक अस्वस्थ हो गयीं और यहीं उन्होंने अपने पाञ्चभौतिक शरीरका परित्याग किया। उनके निधनका समाचार उनके परिवारवालोंको दिल्ली दिया गया और वे लोग तुरन्त दिल्लीसे आये। गोरखपुरकी राप्ती नदीके तटपर उनके शवका अन्तिम संस्कार हुआ। वे अपने जीवनमें सेवा परायण थीं और अभावग्रस्त लोगोंको चुपचाप कुछ-न-कुछ दे दिया करती थीं। गीतावाटिकामें कलेवरका परित्याग शुभका सूचक है तथा सद्गतिका प्रदायक हैं।

सौ० श्रीशकुन्तलादेवी माहेश्वरी

कोलाहलमें अन्तर्मुखता

मेरे पूज्यनीय पिता श्रीदूलीचन्दजी दुजारीकी जब किशोरावस्था थी, तभी उनको परमादरणीय श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारी सन् १९३२ में पूज्य ताऊजी (पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के पास ले आये थे। ताऊजीने बड़े प्यारसे उन्हें अपने पास रखा। पिताजी सम्पादकीय विभागमें काम करने लगे। वे सम्पादकीय विभागके कार्यके साथ-साथ ताऊजी अनेक व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा गोपनीय कार्यों को बड़ी सुन्दरता-कुशलता-तत्परता पूर्वक करते थे। इससे वे अत्यनत विश्वासपात्र बन गये। ताऊजी तथा ताईजीका अथाह प्यार पाकर मेरे पिताजी उन्हींके परिवारके एक अन्तरंग अनन्य सदस्य बन गये। आदरणीया सावित्रीबाई इन्हें 'भाया' कहकर पुकारती थी। सम्मानय श्रीप्यारेलालजी डागाकी पुत्रीसे मेरे पिताजीका मंगल विवाह ताऊजीने कराया था और विवाहके समय मेरे सम्मान्य नानाजीको ताऊजीने कहा था—डागाजी! आप चिन्ता न करें। जैसे मेरी सावित्री बिटिया रहती है, वैसे ही आपकी रामा बिटिया रहेगी।

मेरी माँ ताऊजीको बाबूजी तथा ताईजीको मैया कहती है। ताऊजी तथा ताईजी उन्हें अपनी लड़कीकी तरह मानते रहे हैं। हम चारों भाई-बहिन ताईजी और ताऊजीके अगाध वात्सल्यको पाकर निहाल हो गये।

मेरी छोटी बहिन शारदा (लल्ली) का १९ फरवरी १९६७ के दिन विवाहोत्सव था। माँने ताऊजीके पास जाकर भात न्योतनेका नेग पहले ही कर दिया था। विवाहवाले दिन पूज्य ताऊजी भात भरनेके लिये हमारे घर आये। घरमें बहुत भीड़ थी। भतई भी गीत गाते हुए आये और इधर भी भातके गीत गाये जा रहे थे। चारों तरफ कोलाहल ही कोलाहल था। चौकीपर ताऊजी खड़े थे। उनके सामने माँ हर्ष-विभोर होकर खड़ी थी कि अब बाबूजी अपने हाथसे मुझे चुनड़ी ओढ़ायेंगे। उसी समय एक दूसरी ही बात हो गयी। उस कोलाहलमें ही ताऊजीकी वृत्ति अन्तर्मुखी हो गयी। दिव्य लीलाके रसमय सिन्धुकी मधुर लहरियाँ पूज्य ताऊजीको बहा ले गयी। वे श्रीराधामाधवके लीला-सिन्धुमें निमग्न हो गये।

बुआजी (आदरणीया श्रीसावित्रीबाई फोगला) ताऊजीकी स्थिति भाँप गयीं। उन्हें चिन्ता हुई कि अब भात रनेका नेग कैसे पुरा होगा? उन्होंने ताऊजीके कन्धेको हिला करके कहा—बाबूजी! यह चुनड़ी भाभीको ओढ़ा दीजिये।

ताऊजी नेत्र खोलकर बुआजीकी ओर देखने लगे, किन्तु वे देखकर भी नहीं देख रहे थे। वे इस भौतिक जगतमें रहते हुए भी किसी और जगतमें विचरण कर रहे थे। उनके शरीरकी निश्चेष्टता बतला रही थी कि उन्हें कार्य-अकार्यको कोई परिज्ञान नहीं है। अन्तमें बुआजीने ताऊजीके करपल्लवसे स्पर्श कराके माँको चुनड़ी ओढ़ायी। इस जगतमें श्रीराधामाधवके भक्ति-भावसे भावित व्यक्तिका दर्शन ही परम दुर्लभ बात है, पर आज तो उन दिव्य युगलके लीला-सिन्धुमें सर्वथा निमग्न ताऊजीसे स्पर्शित चुनड़ीका महाप्रसाद मेरी माँको मिला, यह क्या कम सौभाग्यकी बात है? इस महाप्रसादको पाकर हमारा परिवार धन्य हो गया।

पूज्य ताऊजीकी भावमयी स्थिति ऐसी हो गयी थी कि दिव्य लीला-सिन्धुमें निमग्न हो जानेके लिये समय या स्थानकी अनुकूलता-प्रतिकूलता आदिका कोई प्रश्न या बन्धन नहीं रह गया था। एकान्त हो अथवा भीड़, नीरवता हो अथवा कोलाहल, श्रीराधामाधवके लीला-सिन्धुमें निमग्न हो जानेमें ताऊजीको देर नहीं लगती थी। कार्यकी अधिकता अथवा कोलाहलकी प्रखरता अब उनके लिये बाधक तत्त्व नहीं रह गये थे।

अपनी स्थितिकी ओर संकेत हुए ताऊजीने अपने एक पदमें स्वयं ही कहा है—

हो गया उनका सब संसार। उठ गया मेरा कुल अधिकार॥
मिटा सब 'मेरे' पनका भान। मिट गया 'मैं' पनका अभिमान॥
मिटा सब अलग-अलग व्यापार। हुआ सब उनमें एकाकार॥
रह गये वही एक अब शेष। सभी हैं उनके अपने वेश॥
दुःख-सुख सब उनके ही रूप। छा रहे सबमें वही अनूप॥
कर रहे लीला अपने आप। दिखाते अपनेको ही आप॥
मधुर अति, कभी भयानक घोर। भरा उनका मधु-रस सब ओर॥

लूरवाली मैया

(श्रीकन्हैया लालजी जालानकी गृहणी)

१० फरवरी १९६८ के प्रात:काल बाबूजी प्रवचन देनेके लिये श्रीराधाष्टमी पंडालमें आये। प्रवचन आरम्भ होनेवाला ही था कि साहबगंजके सम्मान्य श्रीकन्हैयालालजी जालानके यहाँसे फोन आया कि श्रीकेशोकी माताजी बेहोश हो गयी हैं और बाबूजीको बुलाया है। बाबूजी कई बार पहले भी उनके यहाँ जा चुके थे। अब फिर बुलाया गया था।

श्रीकेशोकी माताजीकी तबीयत बहुत खराब चल रही थी। कहा नहीं जा सकता कि कब वे अपने पाञ्चभौतिक शरीरका परित्याग कर दें। श्रीकेशोकी माताजीकी बाबूजीके प्रति अपार भक्ति थी। अब तो शरीर अशक्त होनेसे वे गीतावाटिका जानेमें असमर्थ थीं, परन्तु जब शरीर काम देता था, तब वे नित्य गीतावाटिका रिक्शेसे जाती थीं। जाड़ा, गर्मी या बरसात, कुछ भी हो, इस नियममें कभी व्यतिक्रम नहीं पड़ता था। गीतावाटिका आकर वे बाबूजीके हाथमें गुलाबके तीन-चार फूल और तुलसीपत्र देती थीं तथा बाबूजीके चरणोंमें प्रणाम करती थीं। बाबूजी उन्हें वापस तुलसीदल देते और वे उसे पा लेती थीं। अपने इस नियमपर वे सदा सुदृढ़ रहीं। उनकी बेहोशीका समाचार पाकर बाबूजीने मोटर तैयार करनेके लिये कहा। आज बाबूजीने बहुत संक्षिप्त प्रवचन दिया। शायद दस मिनट बोले होंगे। उसके बाद उठकर, बिना कुरता पहने उसी स्थितिमें मोटरमें बैठे और श्रीकन्हैयालालजीके घरकी ओर चल पड़े। मोटरमें बाबूजीने कहा—केशोकी माँकी स्थिति ऐसी है कि ज्यादा दिन शायद जीवित न रहे। रक्तचाप बढ़ जानेसे उसकी तकलीफ बढ़ जाती है।

श्रीकन्हैयालालजीके घर पहुँचकर बाबूजी श्रीकेशोकी माताजीके पास गये। बाबूजीको देखकर परिवारके सभी सदस्योंको बड़ी प्रसन्नता हुई। बाबूजी श्रीकेशोकी माताजीके पास बैठ गये तथा उसका हाथ अपने हाथमें लेकर स्नेह भरे शब्दोंमें उन्हें सान्त्वना देने लगे।

श्रीकेशोकी माताजीने कहा—भाईजी, अब क्या करूँ?

बाबूजीने कहा—भगवान्‌का, उनके नामका स्मरण करना चाहिये।

श्रीकेशोकी माताजीको तकलीफ ज्यादा थी। उन्होंने फिर वही कहा—भाईजी, अब क्या करूँ?

इस वाक्यको उन्होंने तीन-चार बार कहा। बाबूजीने कहा—यह तो ठीक नहीं। अन्तमें जैसी मति होती है, वैसी गति होती है। भगवान्‌का स्मरण और नामका जप करना चाहिये।

श्रीकेशोकी माताजी तो बार-बार उसी वाक्यको कहती रहीं। बाबूजीने कहा—इसे कीर्तन सुनाना चाहिये।

बाबूजीके ऐसा कहनेपर परिवारके लोगोंने कीर्तन आरम्भ कर दिया। कुछ देर कीर्तनके होनेके बाद श्रीमद्‌भगवद्‌गीताका पाठ होने लगा। प्रथम अध्यायसे पाठका आरम्भ हुआ। आठवें अध्यायका पाठ हो रहा था कि पाठ सुनते-सुनते बाबूजी समाधिस्थ हो गये। श्रीकेशोकी माताजी जब-जब 'भाईजी भाईजी' करती थीं, तब-तब बाबूजी प्रत्युत्तर दिया करते थे, पर अब कौन उत्तर दे? श्रीकेशोकी माताजीने कई बार पुकारा, परंतु बाबूजीकी ओरसे कोई उत्तर नहीं था। यह स्थिति लगभग पन्द्रह मिनटतक रही।

एक बार बाबूजीने पूछा—मैं कहाँ हूँ?

श्रीदूलीचन्दजीने कहा—आप श्रीकन्हैयालालजीके यहाँ हैं। अब आपको बगीचे चलना है।

श्रीदूलीचन्दजीके कहनेपर बाबूजी उठ खड़े हुए। श्रीदूलीचन्दजीने तथा अन्योंने बाबूजीको सहारा दिया और उन्हें उतारकर नीचे लाये। मोटर कारमें बैठनेके पश्चात् कार गीतावाटिकाकी ओर चल पड़ी। बाबूजी कुछ देरतक चुपचाप बैठे रहे। फिर पूछा—कहाँ जा रहे हैं?

श्रीदूलीचन्दजीने कहा—बगीचे चल रहे हैं।

बाबूजी—यहाँ कहाँ आये थे?

श्रीदूलीचन्दजी—यहाँ श्रीकन्हैया बाबूके घर आये थे। केशोकी माँ बीमार है न? उसीको देखने आये थे।

बाबूजी—उसको देख लिया क्या?

श्रीदूलीचन्दजी—हाँ। अब बगीचे चल रहे हैं। श्रीकन्हैयालालजीने कहा है कि वापस जल्दी ही आइयेगा।

मोटर चल रही थी और मोटरके दोनों ओर सड़कको हलचल, सवारियोंकी दौड़-धूप, मोटर-ट्रककी पें-पें-भों-भों और शहरका शोर-गुल था, पर मोटरका भीतरी जगत इससे बेखबर था। बाबूजीने कहा—तो अभी वापस चलो।

श्रीदूलीचन्दजी—दोपहरके डेढ़ बज चुके हैं। आपको शौचसे निवृत्त होना है तथा भोजन करना है।

बाबूजी—भूख तो नहीं है।

थोड़ी देर बाद बाबूजीने कहा—कमरेका दरवाजा बन्द कर दो। लोग आ जायेंगे। भीड़ लग जायेगी।

श्रीदूलीचन्दजीने कहा—अभी तो हमलोग मोटरमें हैं। हमलोग बगीचेकी ओर चल रहे हैं। पता नहीं बाबूजीने इसको सुना या नहीं। मोटरकार गीतावाटिका पहुँची। श्रीहरिकृष्णजी दुजारीने कहा—उतरिये। बगीचा आ गया।

श्रीहरिकृष्णजीकी बात बाबूजीने नहीं सुनी। मोटरकी सीटपर ही बैठे रहे। श्रीदूलीचन्दजीने भी दो-तीन बार उतरनेके लिये कहा, पर बाबूजी समाधिस्थ रहे। कई बार कहनेके बाद वे नीचे उतरे। उतरते समय सावधानी रखी गयी कि मोटरकी छतसे बाबूजीका सिर कहीं टकरा न जाय। बाबूजीके हाथमें छड़ी दी गयी। छड़ी लेनी चाहिये थी दाहिनी हाथमें, पर उन्होंने ले ली बायें हाथमें। छड़ीके सहारे टटोलते-टटोलते बाबूजी आगे बढ़े। एक तरफ श्रीदूलीचन्दजी थे ओर दूसरी तरफ श्रीबंकाजी थे। सँभालते-सँभालते बाबूजीको ऊपर लाया गया। उन्हें खाटपर बैठाया गया। फिर कमरेका दरवाजा बन्द कर दिया गया।

श्रीकमलीबाई बागला

बागला परिवार कानपुर शहरका एक सम्पन्न घराना है। बाईके पूज्य पतिदेवका शुभ नाम अभी मुझे स्मरण नहीं आ रहा है। अस्तु, दोनोंका ही पूज्या माँ पूज्य बाबूजी एवं पूज्य बाबाके प्रति अगाध श्रद्धा थी। श्रीराधाष्टमी-महोत्सवके अवसरपर तो आप दोनों आया ही करते थे, इसके अतिरिक्त भी जब-तब आया करते थे।

आदरणीया बाईने अनेक बार पूज्य बाबूजीसे एकान्तमें चर्चा की है। इसके अतिरिक्त सेवा-भावसे अनुप्रेरित हो करके घरके आँगनमें पूज्या माँ घर-गृहस्थीके कार्योंमें सहयोग दिया करती थी। बाई बड़े उदार स्वभावकी थी। मैंने कई बार देखा है कि अभावग्रस्त व्यक्तियोंको चुपचाप दे दिया करती थी। पूज्य बाबूजीसे

सम्बन्धित एक रोचक और स्मरणीय प्रसंग है, जो उसने अपनी आँखोंसे देखा। वह आगे दिया जा रहा है।

सम्भवतः सन् १९६२ या ६३ की बात है। अपराह्नकालका समय था। दिनके तीन-चार बजे होंगे। पूज्य बाबूजीकी निजी पारिभाषित शब्दावलीके अनुसार उनका 'माथा खराब' हो गया था। 'माथा खराब' होना बाबूजीकी एक विशिष्ट शब्दावली है, जिसका अर्थ है बाह्य-ज्ञानका अभाव और पूर्ण अन्तर्मुखता। इसी 'माथा खराबी' की स्थितिमें बाबूजीको लघुशंकाका वेग हुआ। बाबूजी कमरेसे बाहर निकले। लघुशंका कर चुकनेके बाद स्थितिकी प्रगाढ़ता और अधिक हो जानेके क़ारण वे कमरेमें वापस नहीं लौट सके। मूत्रालयसे कुछ हटकर छतपर एक कम्बल पड़ा था। उसीपर बिना हाथ धोये हुए वे बैठ गये। अब फिर वे हो गये 'लीला' में लीन।

तभी एक बिल्लीका बचिया (बच्चा) आया और बाबूजीके चक्कर देने लगा। चक्करके स्थानपर परिक्रमा कहना अधिक उपर्युक्त होगा। जब वह बचिया परिक्रमा दे रहा था, तभी उसकी पूँछसे बाबूजीके घुटनेका स्पर्श हुआ। स्पर्श होते ही बाबूजी बहुत हलके-से प्रकम्पित हुए, पर फिर अपनी 'लीला' में लीन हो गये। बचियेने फिर परिक्रमा लगायी, फिर स्पर्श हुआ, फिर बाबूजी किंचित् प्रकम्पित हुए। परिक्रमा देते-देते बचिया उनकी गोदमें कूदकर चढ़ गया। बाबूजी अब स्पर्श-ज्ञानसे भी ऊपर उठ गये। बिल्लीके बचियेके गोदमें आनेका कोई भान नहीं। बचिया फिर गोदसे कूदकर छतकी जमीनपर आ गया। फिर गोदमें कूद गया। कूदकर चढ़ते-उतरने और परिक्रमाके देनेका उसका क्रीड़ा-विनोद चलता रहा, पर बाबूजीको इन सबका कुछ ज्ञान नहीं। बाबूजी लीला-चिन्तनमें तल्लीन रहे।

यह सब देख रही थी आदरणीय श्रीकमलीबाई बागला एक एकान्त स्थानसे बैठी हुई। यह मात्र संयोग है कि इस दिव्य दृश्यको देखनेका सौभाग्य श्रीकमलीबाईको मिल गया। कमलीबाईको रोमांच हो आया। वे बचियेके भाग्यकी सराहना करने लगी। 'लीला-चिन्तन-लीन' व्यक्तिका दर्शन ही बड़ी बात है, पर यह बचिया तो इनकी गोदमें खेल रहा है, बिलकुल निर्भय होकर खेल रहा है।

जब आदरणीया कमलीबाईने यह सब मुझे बतलाया तो मुझे भी बड़ा

आश्चर्य होने लगा। कई श्रेष्ठ साधकोंने, सिद्धोंने यह सदभिलाषा व्यक्त की है कि ऐसा कब होगा जब कि भयातीत शुक या सारिका मेरे कंधेपर बैठकर मेरे प्रेमाश्रुओंकी बूँदोंको कपोलोंपरसे चुग-चुगकर अपनी प्यासको बुझायेंगे। इसी तरहके भावको श्रीभर्तृहरिजीने अपने वैराग्य-शतकमें व्यक्त किया है—

गंगातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य
ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां गतस्य।
तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशंकाः
संप्राप्स्यन्ते जरठहरिणाः शृंगकण्डूविनोदम्॥

श्रीगंगाजीके तीरवर्ती हिमालयकी शिलापर पद्मासन लगाये हुए उन उत्तम दिवसोंका मुझको कब दर्शन होगा, जब कि विधिपूर्वक ब्रह्मध्यानके अभ्याससे योगनिद्रामें तल्लीन हुए मेरे शरीरको वृद्ध हरिण अपने शृंगाग्रभागसे नि:शंक होकर खुजलाने लगेंगे।

जो पहले मैंने कभी सुना था या पढ़ा था, वही आज आदरणीया कमलीबाईके मुखसे सुननेको मिल रहा था। इस दृश्यको देखकर कमलीबाईके तन-मनमें पुलकन व्याप्त हो गयी। कमलीबाईसे रहा नहीं गया। वे चाहती थी कि इस अनिर्वचनीय सुखमें कोई हिस्सा बटावे। मेरी तरह अन्य भी इस अलभ्य सुखका लाभ ले। वे दौड़ी-दौड़ी नीचे माँके पास गयी। माँ घरका काम कर रही थी। कमलीबाईने कहा—माँ! तू ऊपर चल।

माँ—क्यों, क्या बात है?

कमलीबाईने माँका हाथ पकड़ते हुए कहा—तू चल मेरे साथ। देरसे चलनेसे क्या लाभ? शायद पीछे वह देखनेवाली चीज ही न रहे।

कमलीबाईके साथ माँ ऊपर आयीं। सीढ़ियोंपर चढ़ते-चढ़ते माँको उस दृश्यकी सारी बात कमलीबाईने धीरे-धीरे सुना दी। ज्यों ही अन्तिम सीढ़ी आयी, कमलीबाईने इशारा किया—अब माँ, इससे आगे न जाओ। यहींसे खड़ी होकर देखो।

माँने वहींसे खड़े-खड़े वह दृश्य देखा। अभी भी उस बचियेका क्रीड़ा-विनोद चल रहा था। गोदमें चढ़ना, गोदसे उतरना और परिक्रमा देना, यह दृश्य माँ बहुत देरतक खड़ी-खड़ी देखती रही और मुस्कुराती रही। बिल्लीके बचियेका कौतुक-विलास देखकर माँ भी बचियेकी भाग्यकी सराहना करने लगी।

तबतक बाबूजीके चेहरेपर सूरजकी धूप पड़ने लगी थी धूपको देखकर माँके अन्तरका ममत्व जागा। उसने जाकर बाबूजीसे कहा—यहींपर बैठे रहेंगे क्या?

बाबूजी थोड़े बहिर्मुख हुए और पूछा—क्या?

माँने बाबूजीको कमरेमें चलनेके लिये कहा—बाबूजी उसी 'माथा खराबी' की स्थितिमें उठकर जाने लगे। कमलीबाईने कहा—बाबूजी लघुशंका करके आये हैं, पर अभी हाथ नहीं धुले हैं।

कमलीबाईके कहनेपर माँने बाबूजीका हाथ धुलाया। कमरेमें जाकर बाबूजीने दरवाजा बन्द कर लिया।

१७ अप्रैल १९६७ के दिन सूर्यास्तके समय गीतावाटिकामें अपने कमरेके भीतर डेस्कके सहारे बैठे हुए बाबूजी हिसाब जोड़ रहे थे। अनेक कारणोंसे संस्थाओंके हिसाब-किताबकी गोपनीयता आवश्यक होती है, अत: इस ढंगके गोपनीय हिसाबकी सुरक्षा बनाये रखनेके लिये बाबूजी बड़े सावधान रहा करते थे और जहाँतक बन पाता था, वे संस्थाओंके हिसाबको स्वयं ही लिखते और रखते थे। हिसाब जोड़ते-जोड़ते 'माथा खराबी' का अवतरण हो गया। वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो गयीं। शरीर यन्त्रवत् काम कर रहा है, पर क्या कर रहा है और क्यों कर रहा है, इसका कुछ भी ज्ञान मनको नहीं है। बाबूजीका हाथ हिल रहा है, उनकी कलम चल रही है, रुपयोंकी संख्या वे बार-बार लिखते हैं, बार-बार जोड़ते हैं पर बार-बार वही लिखना और वही जोड़ना, बस, इसीका क्रम चल रहा है। बीसों पन्ने खराब कर दिये, पर यह सब हुआ 'माथा खराबी' की स्थितिमें। लगभग आधे घंटेतक इसी प्रकार पेन चलती रही, पेनसे स्याही झरती रही और पन्ने-पर-पन्ने सफेदसे काले होते रहे, पर नतीजा कुछ भी सामने नहीं आ रहा था फिर वह पेन भी हाथसे गिर गयी। ……और स्वयं डेस्कपर झुक गये।

माँ कमरेमें गयी। बाबूजीको भाव-समाधि हो गयी है, उसे जाननेमें क्या देर लगती? माँ हाथने पकड़कर बाबूजीको उठाया तथा खाटपर सुला दिया। शामसे लेकर लगभग साढ़े दस बजे राततक यह स्थिति रहीं। साढ़े दस बजे फिर बाह्य चेतना हुई। उसके बाद बाबूजी शौच आदिसे निवृत्त होकर तथा भोजन करके अपने कार्यमें लगे।

दो दिन बाद १९ अप्रैल, १९६७ को श्रीरामनवमीके दिन फिर उसी स्थितिकी

आवृत्ति हो गयी। 'आज रामनवमी है, दिनके बारह बजनेवाले हैं, नीचे भगवान् श्रीरामका जन्मोत्सव मनाया जायेगा और महोत्सवमें चलना चाहिये'—ऐसा सोचकर बाबूजी ऊपरसे नीचे आये हालत नीचे आने लायक नहीं थी। 'माथा खराबी' के पूर्वाभावके स्पष्ट लक्षण थे, फिर भी बाबूजी ऊपरसे नीचे आये।

नीचे आकर भगवान्‌वाले कमरेके बाहर ही वे दरवाजेके पास बैठ गये। बैठकर मालासे नाम जप करने लगे। उनकी वृत्तियाँ अन्तर्मुख होने लगीं। भगवान् श्रीरामके प्राकट्यका समय हुआ। अन्दर पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी पूजा कर रहे थे। प्राकट्यपर आरती करनेके लिये उन्होंने बाबूजीसे अनुरोध किया। बाबूजीने इशारेसे कह दिया—आप ही कर लीजिये।

आरती होने लगी। सभी उपस्थित लोग खड़े थे, पर बाबूजी बैठे ही रहे। आरती हो गयी, विधिवत् पूजन हो गया, फिर काफी देरतक कीर्तन हुआ, पर इसका बाबूजीका कोई आभास नहीं, अपितु हुआ यह कि वहीं बैठे-बैठे उनके हाथसे जप-माला नीचे गिर गयी। मालाके गिर जानेकी जानकारी नहीं। बाबूजीके दाहिने हाथकी अँगुलियाँ वैसे ही घूम रही थी और होंठ उसी प्रकारके हिलते रहे मानो वे जप कर रहे हों। अन्तमें भगवान् श्रीरामके जन्मोत्सव प्रसाद-वितरण भी हो गया, पर बाबूजी ज्यों-के-त्यों बैठे रहे। कुछ लोग बाबूजीके पास चौकसी करनेके लिये बैठ गये, जिससे किसी प्रकारकी कोई बाधा उपस्थित न हो।

प्रसाद वितरण हो चुकनेके बाद श्रीकमलीबाई ऊपर गयी तथा माँसे कहा—जाओ, अपना धन सँभालो।

अपनी अस्वस्थताके कारण माँ नीचे आरतीमें नहीं आ पायी थीं। उससे माँने पूछा—क्या हुआ?

उसने कहा—बाबूजीको नीचे भाव-समाधि लग गयी है। भगवान्‌वाले कमरेके बाहर बैठे हैं। नीचे जाते ही वे अन्तर्मुख हो गये थे। अब जाकर उनको ऊपर ले आओ।

माँने कहा—ढंग तो पहले ही दीख रहा था। मैंने तो नीचे जानेसे मना किया, पर मेरी सुनता कौन है?

माँ नीचे आयी। बाबूजी ज्यों-के-त्यों बैठे थे। माँने कई बार आवाज लगायी—ऊपर नहीं चलना है क्या आपको?

थोड़ी देर बाद चेतना आयी। उन्हें थोड़ा-सा बाह्य ज्ञान हुआ। बाबूजी उठकर

जाने लगे। पीछे-पीछे कई भाई-बहिन चल रहे थे। बाबूजीको ऐसा लगा कि पीछे-पीछे आनेवाले ये लोग शायद मेरा स्पर्श करना चाहेंगे, स्पर्श शरीरकी सँभालके निमित्तसे। यह बाबूजीको अभीष्ट नहीं था। उन्होंने तुरन्त सावधान कर दिया—कोई मुझे छुए नहीं।

फिर किसीने छुआ ही नहीं। बाबूजी कमरेमें आये और फिर कमरेका दरवाजा बन्द कर लिया। लगभग एक घंटा बाद फिर दरवाजा खोला। खोला लघुशंकाके लिये। मैं अपने केबिनमें काम कर रहा था। बाबूजीके कमरेके पास एक छोटी-सी काठकी कोठरी थी, जिसे लोग केबिन कहते थे। मैं उसी केबिनमें बैठकर अपना काम किया करता था। दरवाजा खुलनेकी आहट मिलते ही मैं बाबूजीके कमरेकी ओर गया। मैंने देखा कि बाबूजी कमरेसे बाहर निकल रहे हैं। मैंने पूछा—क्यों, अब ठीक है क्या?

बाबूजीने बतलाया—अब तो एकदम ठीक है। जब वृत्ति अपने आप उतर आती है। तब तो कोई बात नहीं। यदि वृत्तिको उतारनेका प्रयत्न किया जाता है, वृत्तिके साथ जबरदस्ती की जाती है तो होता यह है कि वृत्ति उतरती तो है नहीं, वह किसी एक स्थानपर अटक जाती है। वही आज हुआ। वृत्तिको उतारनेकी ज्यादा कोशिश की, पर उतरी नहीं। बस, नाम-जपमें अटक गयी, अत: नाम-जप होता रहा। वहाँ और क्या हुआ, कब आरती हुई, कितनी देर कीर्तन हुआ, कौन-कौन बैठा था, इसका मुझे तनिक भी ज्ञान नहीं।

मैंने निवेदन किया—जप करते-करते आपको माला हाथसे छूट करके नीचे गिर गयी थी, परन्तु आपकी अँगुलियाँ और अधर इस प्रकारसे हिल रहे थे मानो जप कर रहे हों।

बाबूजीने बतलाया—मालाके गिर जानेका मुझको तनिक भी ज्ञान नहीं। ऐसे है तब शामको हुआ था ही। मुझे हिसाब करना था, पर वृत्तियाँ ऊपर चढ़ने लगी। वृत्तियोंको रोक करके काममें लगानेकी चेष्टा की। वृत्तियाँ पूरी तरह उतरी नहीं। बस वे-ही-वे संख्याएँ लगातार लिखता रहा या लिखा कबतक लिखा कुछ पता नहीं। पैडके लगभग बीस पन्ने खराब हो गये। फिर सावित्रीकी माँने आकर मुझको खाटपर सुला दिया।

पूज्या श्रीलालीमाईजी

पूज्य बाबूजी सन् १९३० के अप्रैल मासमें चूरू दो तीन दिन रुककर दोनों संत श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीके साथ बीकानेर चले गये। वहाँ उन्हींके घरपर भोजन करके स्थानीय संत श्रीलालीमाईजीके यहाँ पधारे। ये बीकानेरकी एक उच्चकोटिकी संत महिला थीं। बीकानेरके स्त्री-समाजकी सैकड़ों विधवा बहिनोंका उन्होंने जीवन सुखमय बना दिया था। श्रीसेठजी एवं बाबूजी जब भी बीकानेर पधारते, उनसे मिलते थे। श्रीलालीमाईजीकी इन दोनोंमें बहुत श्रद्धा थी। भविष्यमें अनेक बार पूज्य बाबूजी जब-जब बीकानेर गये, पूज्या श्रीलालीमाईजीसे अवश्य मिलते थे।

बहिन श्रीकृष्णकुमारीजी

स्वप्नानुभूति

श्रीयुत् सम्पादकजीको कृष्णकुमारीका 'ॐ नमो कृष्णाय' ज्ञात हो। मुझे ता० २-५-१९३५ को एक स्वप्न हुआ। मैंने स्वप्नमें देखा—भगवान् वृन्दावनविहारी आज्ञा दे रहे हैं कि 'मुझे पानेके लिये और मुझमें प्रेम होनेके लिये हनुमानप्रसादसे उपदेश लो।

'जात पाँत पूछे नहिं कोई । हरि को भजे सो हरि का होई॥'

बस, इतना ही मैंने सुना कि मेरी आँखें खुल गयी। रातके करीब दो बजे थे। मैंने सोचा—'हनुमानप्रसाद' किसका नाम है? यहाँपर तो मैंने किसीका नाम 'हनुमानप्रसाद' नहीं सुना।

यही सोचते-सोचते निद्रा आ गयी और पुनः मुझे सुनायी पड़ा—'तुझे भ्रम हो गया है कि कौन हनुमानप्रसाद है। अरे, वही 'हनुमानप्रसाद पोद्दार, कल्याण—सम्पादक, गोरखपुर।'

बस, फिर क्या था। मुझे परम आनन्द हुआ। अब आपसे मेरी बार-बार यही प्रार्थना है कि अपनी पुत्री समझकर समय-समयपर आप मुझे उपदेश देते रहिये। भूल-चूक क्षमा कीजिये।

इस पत्रके उत्तरमें श्रीपोद्दारजीने जो पत्र लिखा, उसे भी नीचे दिया जा रहा है—

ज्येष्ठ सुदी १२, सं० १९९२, गोरखपुर

प्रिय बहन,

सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र आये बहुत दिन हो गये। मैं समयपर उत्तर नहीं लिख सका, इसलिये आप क्षमा करें। स्वप्नकी घटना ज्ञात हुई। जिनको स्वप्नमें श्रीवृन्दावनबिहारीकी वाणी सुननेको मिलती है, वे सर्वथा धन्य हैं। मेरा तो यह निवेदन है कि आप श्रीवृन्दावनबिहारीसे ही उनसे साक्षात् मिलनेका उपाय पूछिये। उनसे प्रार्थना कीजिये कि किसी दूसरेका नाम बतलाकर क्यों छलते हैं? मेरा तो यह विश्वास है कि यदि आपकी प्रार्थनामें करुणा और उत्कट इच्छा होगी तो वे स्वयं मिलनेका उपाय आपको बतला सकते हैं। भगवान् श्यामसुन्दर इतने दयालु हैं कि वे अपने बँधनेकी रस्सी आप ही दे देते हैं और आकर स्वयं बँध जाते हैं। बस, आप यही प्रार्थना कीजिये और दृढ़ विश्वास रखिये कि जरूर दर्शन देंगे। जिन्होंने आपको स्वप्नमें मुझसे मिलनेकी आज्ञा दी है, वे आपकी सच्ची उत्कण्ठा होनेपर नहीं मिलेंगे, ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये। मेरा तो यही निवेदन है।

आपका भाई
हनुमानप्रसाद पोद्दार

एक आदरणीया बहिन

मेरी एक आदरणीया बहिन हैं। वे नहीं चाहतीं कि मेरा नाम सबके सामने आवे। उनके इस शील एवं संकोचके प्रति मेरे हृदयमें सचमुच आदर है। अब उनके जीवनके एक सत्य प्रसंगको प्रस्तुत करनेके लिये कल्पित नामका प्रयोग कर रहा हूँ। मान लें, उन बहिनजीका नाम श्रीउमा है और उनके जीवन-सर्वस्वका नाम श्रीशंकरजी है और उनकी सुपुत्रीका नाम शैलजा है।

इनके पूरे परिवारकी पूज्य बाबाके प्रति बड़ी गहरी श्रद्धा और बहुत दृढ़ आस्था रही है। इस परिवारके सभी प्रश्नोंका उत्तर पूज्य बाबा ही थे। जब भी कोई समस्या सामने आती, वह समस्या बहिन उमा फोन द्वारा समाचार भेज करके अथवा पत्र लिख करके पूछती थी और उसका समुचित समाधान पूज्य बाबाकी ओरसे मिलता भी था।

उनके पतिदेव श्रीशंकरजीके शरीरमें बीमारीने स्थायी घर बना लिया था। वे सदा विवश रहा करते थे अपनी रुग्णतासे। उनकी रुग्णताको देखकर पूज्य बाबाने बहिन उमासे कहा—देखो! तुम कभी भी इनको अकेले यात्रा मत करने देना। भले एक रातके लिये कहीं जाना हो, पर तुम सदा साथ-साथ जाना।

पूज्य बाबाका कथन तो बहिन उमाके लिये एक आदेश ही था और उन्होंने सदा ही तदनुसार किया, पर कभी-कभी परिस्थितिकी विकटता व्यक्तिको लाचार बना दिया करती है। एक बार किसी नितान्त आवश्यक कार्यसे श्रीशंकरजीको बर्दवानसे कानपुर जाना आवश्यक था और उसी समय बहिन उमा भी अस्वस्थतासे ग्रस्त-त्रस्त थी। अपरिहार्य परिस्थितिमें तब यह तय हुआ कि श्रीशंकरजी अपनी पत्नी श्रीउमाके साथ कानपुर चले जायें। साथ ही यह भी निश्चित हुआ कि कानपुर जानेके पहले गोरखपुरमें पूज्य बाबाका दर्शन कर लेना चाहिये।

श्रीउमाजीके साथ श्रीशंकरजी गोरखपुर आये। श्रीशंकरजीने पूज्य बाबाको प्रणाम किया।

अब पूज्य बाबाने श्रीउमाजीको बुलाया और पूछा—बिटिया! ऐसा एक बार समझ लो कि यात्रा करते समय तुम्हारे पतिजी रास्तेमें अधिक बीमार हो गये तो तुम क्या करोगी?

श्रीउमाजीने धीरेसे कहा—मैं पता लगानेकी कोशिश करूँगी कि कोई डॉक्टर या वैद्य मिल सकता है या नहीं? यदि कोई बात नहीं बन पायी तो अन्तिम शरण आप ही हैं। मैं मन-ही-मन आपको याद करूँगी कि इस संकटसे हमें उबारिये।

पूज्य बाबाने समझाते हुए कहा—बिटिया! घबराना मत। यदि कोई परेशानी सामने आ जाय तो धैर्य रखना तथा अपनी पतिजीकी पूरी सँभाल करना।

श्रीउमाजी तथा श्रीशंकरजी दो-तीन दिन गीतावाटिकामें रहकर कानपुर चले गये और कानपुरका कार्य पूर्ण होनेपर उन्होंने वापसी यात्रा बर्दवानके लिये की। इनका आरक्षण चेयर-कारमें हुआ था। रात्रिके समय श्रीशंकरजीकी तबीयत ज्यादा खराब हो गयी। कई दस्त होनेसे तथा बार-बार उलटी होनेसे बेहद कमजोरी आ गयी। अब चलती ट्रेनमें डॉक्टर-वैद्य कहाँसे आये? कमजोरी इतनी अधिक हो गयी कि चेयरपरसे शौचालयतक जाना भी कठिन हो गया। इस

विकट परिस्थितिमें भला उमाजी क्या करतीं? विवशतामें वह पूज्य बाबाको मन-ही-मन पुकारने लगीं।

उसी समय एक सज्जन आये और चिन्ताकुल श्रीउमाजीकी परेशानीको पूछने लगे। उमाजीसे सारी बात सुनकर सान्त्वना देते हुए वे कहने लगे—तू घबरा मत। मेरे पास दवा है। मैं दवा लाता हूँ। तू बेफिकर होकर बैठ जा। मैं अब तेरे पतिजीको सँभाल लूँगा।

उन सज्जनने श्रीशंकरजीको दवा दी और उन्हींके पास बैठ गये। एक खुराक दवा देते ही उनका दस्त-वमन बन्द हो गया। दस्त-वमन तो बन्द हुआ, पर शरीरमें तो बहुत कमजोरी आ गयी थी। वे सारी ट्रेनमें, यहाँतक कि बर्दवान स्टेशनतक सँभाल करते रहे। बर्दवान स्टेशनपर श्रीशंकरजीको ले जानेके लिये कुर्सीकी व्यवस्था करनी पड़ी। वे सज्जन श्रीशंकरजीको कुर्सीपर बैठाकर जाने लगे तो उन्होंने कहा—बेटी रानी! अब मैं जा रहा हूँ।

श्रीउमाजीने उनका नाम-पता पूछा तो उन्होंने कुछ भी नहीं बतलाया। उमाजी कुछ देरतक उनकी ओर देखती रही और फिर न जाने वे किधर अदृश्य हो गये।

वे चले गये, पर ट्रेनमें ऐसा मददगार भला कैसे मिल सकता है, जो रोगीको दवा दे और ट्रेनकी यात्रा समाप्त होनेतक रोगीकी सँभाल करे। श्रीउमाजीकी केवल भावना नहीं, अपितु यह सुदृढ़ आस्था है कि सँभालकी यह प्रक्रिया पूज्य बाबाकी परोक्ष लीलाका एक प्रमाण है।

इन्हीं बहिनका एक प्रसंग और भी है। वे पूज्य बाबूजीको नानाजी कह करके सम्बोधित किया करती थीं। आगेका वर्णन उन्हींके शब्दोंमें पढ़िये।

कभी-कभी बात इस रीतिसे बन जाया करती है कि उसकी सम्भावनाके बारेमें कल्पना भी नहीं की जा सकती। सन् १९६२ की बात है। मैं पूज्य नानाजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रासदजी पोद्दार)-के पास आयी हुई थी। मैं तो उन सभी भाई-बहिनोंको बड़ा भाग्यशाली समझती हूँ, जो गीतावाटिकामें रहते हैं तथा पूज्य नानाजी तथा पूज्य बाबाके दर्शन पाते रहते हैं। गृहस्थ-जीवनके झमेलोंमें पड़े हुए मुझ-जैसोंको भला यह अवसर कहाँ? गृहस्थीके प्रपञ्चसे निकलकर दो-चार दिनके लिये गीतावाटिका आनेका ढंग बन जाता है, यही बड़े सौभाग्यकी बात है।

हाँ, तो मैं सन् १९६२ की बात कह रही थी। न जाने क्यों, पूज्य बाबाके निजी परिकर श्रीभगतजीका स्नेह मेरे प्रति उमड़ पड़ा। शायद गृहस्थ जीवनकी मेरी विवशताओंको देखकर उनकी भावनाओंमें उभार आ गया होगा। उन्होंने मुझको 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' की एक प्रति दी। पूज्य नानाजीकी यह पुस्तक गीताप्रेससे एक साल पहले ही छपकर निकली थी। उन्होंने मुझे यह पुस्तक शायद यही सोचकर दी होगी कि इसके पढ़नेसे जीवन कुछ तो भगवान्‌की ओर लगेगा। उनके इस नि:स्वार्थ स्नेहको मैंने मन-ही-मन प्रणाम किया।

पूज्य नानाजीकी यह पुस्तक सुन्दर तो थी ही, पर मैं चाहती थी कि इस पुस्तकपर नानाजी अपने आशीर्वादके एक-दो शब्द लिख दें। मनमें इच्छा चाहे जितनी बलवती हो, पर साहस ही नहीं था कि मैं उनके सामने कुछ बोल सकूँ। संकोच और दैन्यने पैरोंको, हाथोंको और सबसे अधिक अधरोंको जकड़ रखा था। बड़ी हिम्मत करके मैंने यह पुस्तक एक भाईको दी और उनसे हाथ जोड़कर विनती की—इस पुस्तकपर पूज्य नानाजीसे आप कुछ लिखवा दें।

उन्होंने वह पुस्तक मुझसे लेकर और अवसर देखकर पूज्य नानाजीको दे दी और मेरी बात भी धीरेसे कह दी। पूज्य नानाजीने वह पुस्तक ले ली और उन भाईसे कहा—उसको कह देना कि कल दिनमें किसी समय आकर वह स्वत: ले ले। जब कुछ लिखकर देना ही है तो फिर मैं अपने हाथसे ही उसे दूँगा।

पूज्य नानाजीका समाचार मुझतक आ गया। सुनते ही प्रसन्नता तन-मनमें भर गयी। अगले दिन सहमे-सहमे पैरोंसे चलते हुए मैं उनके पास गयी और उनके श्रीचरणोंमें प्रणाम करके नीचे बैठ गयी।

नानाजीने पूछा—राजी हो न।

नजर नीचे किये हुए मैंने कहा—हाँ।

नानाजीने फिर कहा—तुमको कुछ बोलना हो तो कहो।

मैंने हिचकते-हिचकते हुए कहना शुरू किया—मैं क्या कहूँ, कुछ समझ नहीं पाती। मैं तो मोथी हूँ। लीलाओंकी जानकारी नहीं। यदि आप एक-दो लीला लिखकर दे देंगे तो मैं उसीको पढ़ा करूँगी। यह मेरे लिये बड़ा सहारा हो जायगा।

पूज्य नानाजी कुछ देर चुप रहे। उसके बाद उन्होंने 'श्रीराधा-माधव-

चिन्तन' की पुस्तक देते हुए मुझसे कहा—देखो, तुम रोज नियमसे इस पुस्तकमेंसे कुछ अंशका पाठ करना। इसीसे तुमको श्रीकृष्ण-प्रेमकी प्राप्ति हो जायेगी। यह मैं तुमसे कह रहा हूँ। तुम मेरी बातपर विश्वास करना।

इन शब्दोंको कहते समय पूज्य नानाजीके चेहरेपर एक अद्‌भुत अलौकिक तेज छाया हुआ था। उनकी दोनों आँखें अत्यन्त दिव्य चमकसे भरपूर थीं। मैं चाह करके भी उनकी ओर नहीं देख पा रही थी। आज भी इस ग्रन्थका पाठ करते समय अथवा उस दिनकी याद आते समय वह तेज और वह चमक मेरे सामने आ जाती है।

'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' ग्रन्थ लेकर मैंने उनके श्रीचरणोंको प्रणाम किया। यह ग्रन्थ तो मेरे लिये बहुमूल्य निधि थी। अपने सौभाग्यकी सराहना करते हुए मैं कमरेसे बाहर आयी। बाहर आकर जब ग्रन्थ देखनेके लिये खोलने लगी तो पूज्य नानाजीके हाथका लिखा हुआ दोहा दिखलायी दिया। उन्होंने लिखा था—

राधा माधव पद कमल रहै चित्त नित लीन।
तुमरो मेरौ सबन्हि कौ यहै प्रार्थना दीन॥

तीर्थयात्रा ट्रेनके एक दम्पत्ति

सन् १९५६ ई० में गीताप्रेसकी ओरसे तीर्थयात्रा ट्रेन गयी थी। उस ट्रेनमें पूज्य बाबूजी और पूज्य बाबा भी थे। इस तीर्थ-यात्रा-ट्रेनमें एक दम्पत्तिका प्रसंग उल्लेखनीय है। स्थान-स्थानपर पत्नी अपने पतिको बड़ी झिड़कती थी। पत्नीके उस तिरस्कारको पति परिस्थितिवशात् चुपचाप सह लेता था। पूज्य बाबा तीर्थ-यात्रा-ट्रेनमें यह झिड़कना देखते रहते थे, परन्तु उससे कुछ कहते नहीं थे। बोलने लायक सुयोग था भी नहीं। जब यात्रा पूर्ण हो गयी, तब उसके कुछ दिन बाद वह बहिन पूज्य बाबाके दर्शनार्थ गीतावाटिका आयी।

उसको देखते ही पूज्य बाबाको तीर्थ-यात्रा-ट्रेनवाली बात याद हो आयी। उससे पूज्य बाबाने कहा—तुमने अपनी तीर्थ-यात्रामें इतना रुपया लगाया, इतना श्रम उठाया, इतनी असुविधा झेली, इतना समय यात्राके लिये निकाला, परन्तु इस तीर्थ-यात्राका शुभ फल तुम्हें कुछ भी नहीं मिलेगा।

पूज्य बाबाके श्रीमुखसे इस शब्दोंको सुनकर उस बहिनकी भावनाओंको

बड़ा झटका लगा। इस तीर्थ-यात्रामें स्थान-स्थानपर इस बहिनने मन्दिरोंमें जो देव-दर्शन किया, सरिता-सरोवरमें जो स्नान किया और साधु-संतोंको जो दान दिया, इससे वह अपने मनमें बड़ी ही प्रसन्न हो रही थी कि जीवनमें उसके द्वारा एक बहुत बड़ा पुण्य कार्य हो गया है। अब तो पूज्य बाबा सर्वथा विपरीत ढंगकी बात बोल रहे हैं। पूज्य बाबाके कथनमें जो यथार्थता थी, उसने उसके चिन्तनको झकझोर दिया। वह मान रही थी कि उसके जीवनमें एक महान शुभका संचय हो गया है और अब बाबा कुछ और ही बोल रहे हैं। उस बहिनने पूज्य बाबासे कहा—आप यह क्या कह रहे हैं?

पूज्य बाबाने कहा—मैं जो कह रहा हूँ, वह सत्य कह रहा हूँ। क्या तू ऐसा समझ रही है कि मेरे द्वारा मिथ्या कहा जा रहा है?

उस बहिनका मन खिन्न हो गया। उसने खिन्न स्वरमें कहा—बाबा! आप तो वही कहेंगे, जो सच है, परन्तु मैं अब यह जानना चाहती हूँ कि मेरे द्वारा ऐसी क्या गलती हो गयी? मैं ऐसा सोच ही नहीं सकती कि आप अन्यथा बोलेंगे, पर अब मेरे मनमें यह प्रश्न है कि तीर्थ-यात्रामें मेरे द्वारा ऐसी कौन-सी बड़ी भूल हो गयी?

पूज्य बाबाने समझाते हुए कहना आरम्भ किया—देख! तू सारी तीर्थ-यात्रामें अपने पतिदेवका अत्यधिक तिरस्कार करती रही है। पति कैसा भी हो, वह नारीके लिये ईश्वरका स्वरूप होता है। पतिरूप ईश्वरका तिरस्कार करके क्या तुमने कोई अच्छा कार्य किया? केवल इस तिरस्कारके कारण तेरे सारे किये-करायेपर पानी फिर गया। एक उदाहरणसे तुम मेरी बात समझ जाओगी। एक बड़े प्यालेमें खीर रखी है। खीर बड़ी बढ़िया है। प्याला खीरसे भरा हुआ है। दुर्भाग्यसे शिशुके दस्तका छींटा उस खीरमें पड़ गया। अब वह खीर चाहे जितनी बढ़िया हो, पर उपयोगकी रही ही नहीं। इसी प्रकार तुम्हारी तिरस्कारवाली क्रियाने सारा खेल बिगाड़ दिया। तुमने जितना शुभ किया, उस शुभ राशिके आगे एक प्रश्नवाचकक चिह्न लग गया, बल्कि एक प्रबल अशुभका बोझ तुमने अपने सिरपर ले लिया। इसीलिये अपने शास्त्रोंमें आया है कि तीर्थ-यात्राके व्रतीको बड़े संयमपूर्वक यात्रा करनी चाहिये।

यह सब सुनकर उस बहिनका मन पश्चात्तापसे भर गया। उसने खेदभरी वाणीमें पूछा—अब यह बात किसी ढंग बन सकती है क्या?

उस बहिनका पश्चात्ताप सच्चा था। सच्चाईका आदर संतके द्वारपर होता ही है। उसकी वाणीमें बड़ी खिन्नता थी। उसके मुखपर मलिनता छायी हुई थी। उससे पूज्य बाबाने कहा—बन तो सकती है, पर उसमें झंझट और परेशानी दोनों ही है। इस तीर्थ-यात्रामें जो-जो मुख्य-मुख्य तीर्थ-स्थान आये हैं, उन सबसे अपराध क्षमा करवानेके लिये अनुष्ठान करवाना होगा।

उस बहिनने प्रार्थना करते हुए कहा—मेरेसे गलती हो गयी। इसका मुझे बड़ा दुःख है। अब आप अनुष्ठान करवा दें।

उसकी प्रार्थनामें खेद था, कातरता थी, यह देखकर पूज्य बाबाने अनुष्ठान करवाना स्वीकार कर लिया है, जिससे भूलका परिमार्जन हो सके। यह अनुष्ठान पूज्य बाबाने एक श्रेष्ठ ब्राह्मणसे गीतावाटिकामें ही करवाया। उस विप्रवरको सारी विधि पूज्य बाबाने बतलायी। यह अनुष्ठान कई सप्ताहतक चला। एक दिन पूज्य बाबा पूज्या माँके पास बैठे हुए थे। वहीं वे विप्रवर आ गये और उनसे पूज्य बाबाने अनुष्ठानके बारेमें जिज्ञासा की। उस विप्रवरने बतलाया—बाबा! वह अनुष्ठान आज ही पूर्ण हुआ। मैं तो पूर्णताकी सूचना देनेके लिये आपके पास आने ही वाला था।

विप्रवरके मुखसे इतना सुनते ही पूज्य बाबाके पेटमें दर्द होने लगा। दर्द होनेके कारण पूज्य बाबा पूज्या माँके पाससे उठकर अपनी कुटियापर आये। कुटियापर पहुँचते-पहुँचते दस्त और वमन होने लगा। अब तो सभीके अन्तरमें खलबली-सी मच गयी कि यह क्या हो गया? खान-पानके अत्यधिक संयमी बाबाको यह होना ही नहीं चाहिये। उन विप्रवरने तत्काल अनुमान लगा लिया कि उस बहिनकी भूलका परिहार कुछ तो अनुष्ठानके द्वारा हुआ और रहा-सहा अशुभ पूज्य बाबाने अपने ऊपर ले लिया। अशुभकी आँचसे पूज्य बाबाको कम परेशानी नहीं हुई, पर उन्होंने अपने मुखसे रहस्योद्घाटन नहीं किया कि इस कष्टका हेतु क्या है। वह बहिन तो इसी बातसे प्रसन्न थी कि मेरी भूलके परिमार्जनके लिये पूज्य बाबाने सविधि अनुष्ठान करवा दिया।

सरोजकी सँभाल

पंजाबके हाँसी नगरके एक सम्पन्न और सम्भ्रान्त अग्रवाल घरानेकी बात है। दिनभर कार्य करके श्रीअग्रवालजी कार्यालयसे रातको दस बजे घर आये। उनकी लड़की सरोजबालाने घरका दरवाजा खोला। वे थके-माँदे थे। उन्होंने अपने कपड़े उतारे, भोजन किया और घरकी छतपर जाकर सो गये। जब वे सबेरे उठे तो पता चला कि सरोज अपने कमरेमें नहीं है। सरोज अपने भाई-बहनके साथ सो रही थी। सुबह उठनेपर उन्होंने सरोजको नहीं पाया। बड़ी खोज की, पर कहीं कुछ पता नहीं चला। घरके और पास-पड़ोसके सभी लोग घबरा गये।

आजकल कुछ ऐसे गुण्डे भी हैं, जो लड़के-लड़कियोंको चुराकर पाकिस्तान ले जाते हैं। तरह-तरहके वहम किये जाने लगे। जवान लड़कीके इस तरह गायब हो जानेसे माँ-बापको बड़ा सदमा पहुँचा। सरोजकी माँने कहा—मेरी लड़की मथुरा-वृन्दावनके अलावा और कहीं नहीं गयी है।

पता चलानेके लिये सगे-सम्बन्धी मथुरा, वृन्दावनकी ओर भेजे गये। जगह-जगह टेलीफोन किया गया और तार भेजा गया, पर कोई फल नहीं। घरके लोग सरोजके लिये बहुत चिन्तित हो उठे।

इन दिनों सरोजके मनमें अधिक विरक्ति जाग उठी थी। उसे जगत् सुहाता नहीं था। वह सात-सात घंटे जप करती और आध्यात्मिक पुस्तकोंके स्वाध्यायमें लगी रहती। किसी संतका आश्रय और ईश्वर-दर्शनकी लालसा उसके मनमें जाग पड़ी थी। जब उसे अवसर मिलता, वह कमरा बन्द करके एकान्तमें बैठ जाती। एक-दो बार उसने अपनी माँसे कहा भी था कि मैं वृन्दावन जाऊँगी, पर उसकी बात हँसीमें टाल दी जाती थी।

रातको लगभग बारह-एक बजे सरोज मथुरा-वृन्दावनके लिये घरसे अकेली निकल पड़ी। राहमें संयोगसे एक किसी कुलीन, समझदार और सत्संगी महिलाका साथ मिल गया। उस महिलाके साथ दिल्ली आयी। उस महिलाने कहा—यदि सचमुच तुम आध्यात्मिक पथपर चलना चाहती हो और संतोंके आश्रयमें रहना चाहती हो, तो गीताप्रेस गोरखपुर जाओ। दिल्लीमें सरोजका विचार बदल गया। उसने दिल्लीसे मथुराकी नहीं, गोरखपुरकी रेल-टिकट ली और वह गोरखपुरके लिये चल पड़ी।

१ सितम्बर १९६६ की दोपहरमें सरोज गोरखपुर पहुँची और फिर गीतावाटिका आयी। उसे बाबूजीके पास पहुँचाया गया। एकान्तमें बाबूजीने उससे बात की। बाबूजीने बड़े प्यारसे बात की, उसे अपना आन्तरिक स्नेह दिया और शीशपर, पीठपर हाथ फेरकर उसको सान्त्वना दी। सरोज अपने घरसे एक पवित्र उद्देश्य और सच्ची नीयतसे निकली थी। उसने बाबूजीको सारी बात सही-सही बता दी। बाबूजीने उससे कहा—बेटी! तेरे माँ-बाप कितने परेशान हो रहे होंगे? जिस उद्देश्यको लेकर तू चली है, उसकी प्राप्ति घरपर रहकर भी हो सकती है। आजकल घरसे बाहर निकलना खतरेसे खाली नहीं है। सच्चे साधु अब मिलते ही कहाँ हैं? जो ईश्वरको वस्तुतः प्राप्त करना चाहता है, उसे घरपर ही रहकर साधना करनी चाहिये।

बाबूजीने बात-बातमें धीरेसे उसके पिताका नाम और पता पूछ लिया। फिर बाई (सौ० श्रीसावित्रीदेवी फोगला)-को बुलाकर सरोजको सँभाला दिया कि ठीकसे बड़े प्यारसे रखना। बाईने उसे पहननेके लिये वस्त्र दिये। स्नान करनेके बाद सरोजको बड़े प्यारसे खिलाया-पिलाया।

बाबूजीने माँसे कहा—देखो, यह सरोज कितनी भोली और सरला है? यह तो अच्छा हुआ कि यह यहाँ चली आयी, पर इस तरह जो अन्य लड़कियाँ भावुकतामें घरसे भागकर चली जाती हैं, यदि किसी गुण्डेके हाथ पड़ जायँ, तो उनका क्या होता होगा?

माँका मन करुणासे भर गया। बाबूजीने गोरखपुरसे सरोजके पिताको हाँसी तार दे दिया कि आपकी लड़की सरोज यहाँपर सुरक्षित है। आपको यहाँ आना चाहिये। इस तारके जवाबमें श्रीअग्रवालजीका तार हाँसीसे दूसरे दिन आ गया और ३ सितम्बर १९६६ को सरोजके ताऊजी गोरखपुर पहुँच गये। ताऊजीके साथ एक सम्बन्धी और थे। वे लोग गीतावाटिका आये। नीचे ही सरोज खड़ी हुई मिल गयी। सरोजने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। सरोजको देखकर उनका हृदय प्रसन्न हो गया। परिवारकी जाती हुई प्रतिष्ठा वापस मिल गयी। एक खोया हुआ धन वापस मिल गया। पासमें ही बाई (सौ० श्रीसावित्रीबाई फोगला) खड़ी थी। सरोजकी थोड़ी देरतक अपने ताऊजीसे बात हुई। जिस आत्मीयतासे बाईने, माँने और बाबूजीने सरोजको अपने पास रखा, उसे सुनकर उसके ताऊजी मुग्ध हो गये। उन्होंने सरोजसे कहा—यद्यपि बिना कहे घरसे बाहर निकलकर तुमने

परिवारका अनुशासन भंग किया है, किन्तु भगवान्‌की कृपासे तुम ऐसे घर आयी, जो अपने घरसे भी बढ़कर है और जो सबका अपना घर है। इस घरमें आनेसे एक ऐसा सम्बन्ध जुड़ गया है, जिससे हमारे कुलके गौरवकी अभिवृद्धि ही हुई है।

फिर सरोजको लेकर ताऊजी ऊपर गये और ताऊजीने बाबूजीको प्रणाम किया। बाबूजीसे वे क्या कहते? जिन्होंने एक पराई बेटीको अपनी बेटीकी तरह प्यार किया, अपनी बेटीकी तरह घरमें रखा, अपनी बेटीसे बढ़कर उसकी इज्जत समझी और इज्जत की, उन्हें क्या कहें? कहनेके लिये शब्द ही कहाँ हैं? नेत्रोंकी बहती हुई सजलताने और कपोलोंकी कृतज्ञताभरी आर्द्रताने सारा अनकहा कह दिया। सरोजके ताऊजीको खिलाया-पिलाया गया। बाबूजीने कहा—गोरखपुर आये हैं तो श्रीगोरखनाथजीके दर्शन कर आइये।

सभी दर्शन करने गये। फिर उन्होंने गीताप्रेस भी देखा। श्रीगोरखनाथ तथा गीताप्रेस हो आनेके बाद अब सरोजको अपने ताऊजीके साथ वापस जाना था। दो दिनमें ही इतनी घुल-मिल गयी कि बाबूजीको बाबूजी, माँको माताजी और बाईको बहिनजी कहने लगी। जाते समय माँने पूछा—भोजन कर लिया क्या?

सरोजने कहा—नहीं माताजी, पर इच्छा भी नहीं है।

माँने सिरपर हाथ फेरते हुए कहा—पर भूखे थोड़े ही जाते हैं।

फिर माँने एक बहिनसे कहा—जा, एक छन्नीमें कलेवा ला। देख, काफी लाना।

वह बहिन कलेवा लेकर आयी। अपने हाथसे माँने सरोजको खानेके लिये दिया। फिर दो नयी कुर्ती, दो नये सलवार और दो नयी चुन्नी पहननेको दी। हाथमें इक्कीस रुपये दिये और ढेर सारे फल दिये। अपनी बेटीकी तरह सरोजको विदाई दी। सरोज माँके प्यारको समेट नहीं पायी। वह आँखोंके कगारोंसे बहने लगा। माँके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम किया। उसने बड़े भारी मनसे विदाई ली। बाबूजीने पीठपर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया। माँ और बाबूजीसे विदा होकर सरोज जब नीचे जाने लगी, तब सीढ़ियोंसे नीचे उतरते समय मैंने उससे कहा—बहिन! गीतावाटिको भूल मत जाना।

सीढ़ियोंपर ठहरकर मेरी ओर देखते हुए सरोजने कहा—मेरी किस्मत चेत गयी, जो मैं यहाँ आयी। मैं क्या आयी, भगवान् लाये हैं। भला इस स्थानको कैसे भूल सकती हूँ।

एक माताजी

मेरा हठ: उनका वात्सल्य

अब तो शरीर वृद्ध होनेको आया, अत: कह देनेमें संकोच नहीं है। मेरे पिताजीने छोटी आयुमें ही मेरा विवाह कर दिया था और विवाहके कुछ समय बाद ही वैधव्यका दु:ख मेरे सिरपर आ पड़ा। अब इस दु:खको भोगना ही था। संतोंके आश्रयने मनको बल दिया। जीवनके दिन बीतने लगे। एक सालके बाद दूसरा साल, इस प्रकार बहुत सारे साल निकल गये। कई साल बाद उनकी, जो गुजर गये थे, उनकी बहुत ज्यादा याद आने लगी। क्या दिन और क्या रात, उनकी याद थमती ही नहीं थी। मुझे चिन्ता होने लगी कि क्या करूँ? बेटीको सहारा अपने माँ-बापका ही होता है। घरपर वे मेरे जन्म देनेवाले पिता हैं तो गीतावाटिकामें श्रीभाईजी मेरे धर्म-पिता हैं। मैं श्रीभाईजीके पास उनके कमरेमें गयी। वे कुछ लिख रहे थे। मुझको श्रीभाईजीने पूछा—क्यों? कैसे आयी?

मैंने कहा—कई दिनसे उनकी बड़ी याद आ रही है। उनकी आत्मा किसी तरहका कष्ट पा रही है क्या?

मुझे पता था कि श्रीभाईजीकी अन्य लोकोंमें भी पहुँच है, पर मुझे भलावेमें डालनेके लिये उन्होंने कहा—मैं भला क्या जानूँ कि तुम्हारे दिवंगत पतिकी आत्मा कष्टमें है या सुखमें?

मुझे बात बनानी तो आती नहीं थी। मैंने सीधे-सीधे कहा—मैं यह सब नहीं जानती। आप चाहें तो पता लगा सकते हैं। आप पता लगाइये और बताइये। उनकी याद इन दिनों मुझे बहुत ही आती हैं।

श्रीभाईजीने कहा—तू तो मूरख है। मुझे जानकारी थोड़े ही है कि किसकी आत्मा किस लोकमें है और किस हालतमें है।

मैं तो हठ करके वहीं बैठ गयी। अपने पितासे हठ नहीं करूँगी तो किससे करूँगी। मैंने आग्रहपूर्वक कहा—मैं भरममें पड़नेवाली नहीं हूँ। आप बता सकते हैं। जब तक आप कुछ बतायेंगे नहीं, मैं जाऊँगी नहीं। न मैं जाऊँगी और न आपको काम करने दूँगी।

मुझे ऐसा लगा कि मेरा वह हठ श्रीभाईजीको प्यारा लगा। हठ भी किसी अपनेके सामने ही करना बनता है। मेरी हठभरी बात सुनकर श्रीभाईजी मुस्कुराने

लगे। उनकी मुस्कुराहट देखकर ही तो यह बात मेरे मनमें आयी कि उनको मेरा हठ अच्छा लगा। मुस्कुराते हुए श्रीभाईजीने कहा—अच्छा जा। परसो मेरे पास आना।

यही तो मैं सुनना चाहती थी। दो दिन बाद मैं फिर श्रीभाईजीके पास गयी। श्रीभाईजीने कहा—मैंने पता लगा लिया है। वे कष्टमें नहीं है, पर उनके अधिक मंगलके लिये तू किसी ब्राह्मणसे श्रीविष्णुसहस्रनामके कुछ पाठ करवा दे।

श्रीभाईजीके मुखसे इस बातको सुनकर मुझे बड़ा संतोष हुआ और इसके बाद उस यादका वेग भी शान्त हो गया।

श्रीमीरा भगत

भागलपुरका श्रीमहिला संघ

भागलपुरके श्रीमहिला संघको अनेक कँटीली और रपटीली गलियोंसे गुजरना पड़ा है। श्रीमहिला संघका विकास वस्तुतः संघर्षकी एक गाथा है। यदि पूज्य बाबाका संरक्षण और सहयोग नहीं मिला होता तो वे सारे मधुर और महान् स्वप्न बिखर गये होते, जो उसकी स्थापनाके प्रेरक-बिन्दु रहे हैं। श्रीमहिला संघके इतिहासमें ऐसा भी वह दुर्दिन आया, जब कि अपने कहलानेवाले ही पराये बन गये। माँ कैकेयी कौशल्यानन्दन श्रीरामको प्राणोंसे भी बढ़कर प्यार करती थीं, पर वही माँ कैकेयी श्रीराम-वनवासका कारण भी बन गयी। इसी प्रकार जो स्वजन श्रीमहिला संघकी स्थापनामें पदे-पदे सहायक रहे, उन्होंने ही न्यायालयमें मुकदमा दायर करा दिया। श्रीमहिला संघका कार्य सँभालनेवाली सरल स्वभावा आदरणीया श्रीचन्दाबाईने न्यायालयकी गलियाँ कभी देखी नहीं थी। उन गलियोंकी गर्हित गालियोंसे गली बातोंको देख-सुन करके वे घबड़ा उठीं। गाली-गलौज करना उनको न आता है और न सुहाता है। उन अभद्र क्षणोंमें अपने एकमात्र संरक्षक पूज्य बाबापर उनकी दृष्टि टिकी हुई थी। उन्होंने अपनी बेटी बाई मीरा भगतको भागलपुरसे गोरखपुर पूज्य बाबाके पास भेजा।

गोरखपुर आकर बाई मीराने श्रीमहिला संघकी विकट परिस्थितियोंका सारा विवरण पूज्य बाबाको सुनाया। उसे सुनकर पूज्य बाबाने बहुत आश्वासन दिया

और कहा—अन्तमें विजय सत्यकी होगी। सत्यकी ही रक्षा करना है। श्रीमहिला संघ अपने सामने एक महान् आदर्शको रखकर सत्य और सेवाके पथपर चल रहा है। तुम लोग अपनी सुरक्षाका पूर्ण प्रयास करो तथा समाजके लोगोंके सामने अपना सत्य पक्ष रखो।

गोरखपुरसे भागलपुर आकर बाई मीराने पूज्य बाबाका संदेश श्रीचन्दाबाईको दिया। अब प्रश्न यह था कि समाजके सामने श्रीमहिला संघका सत्य पक्ष कैसे रखा जाय? शील ही जिस कुलका धन रहा है, उस कुलीनताकी मर्यादाका उल्लंघन कर सकना श्रीचन्दाबाईके लिये संभव ही नहीं था। संकोचमें नितान्त सिमटी होनेके कारण वे सोच ही नहीं सकती थीं कि घरकी ड्योढ़ीको पार करके वे समाजके लोगोंके सामने आवें। अपनी स्वभावगत एवं कुलगत उलझनको पूज्य बाबाके सामने रखनेके लिये उन्होंने पुनः बाई मीराको गोरखपुर भेजा। सारी बात सुनकर पूज्य बाबाने उससे कहा—बिटिया! तुम लोग सर्वप्रथम अपनी संस्था श्रीमहिला संघका पंजीकरण करवा लो, जिससे सुरक्षाका पथ पूर्णतः प्रशस्त हो जाय और भविष्यमें कोई परेशानी न आवे।

निर्देशानुसार बाई मीरा अपनी संस्थाके पंजीकरणके कार्यमें जुट गयीं। आवश्यकता थी संस्थाके संकल्प-पत्र और नियमावलीके निर्माणकी। इस कार्यमें वृन्दावनके श्रीमानव सेवा संघकी सेवा-परायणा बहिन मुक्तेने उन्मुक्त सहयोग दिया। बहिन मुक्तेके अनुरोधको स्वीकार करके शेसन जज श्रीरमेशजी भाईने संस्थाके लिये संकल्प-पत्र और नियमावली बना दी। उसे लेकर बाई मीरा पूज्य बाबाके पास आयी और उसने दिखलाया। उसे देखकर पूज्य बाबाने उससे कहा—बिटिया! किसी संन्यासीको किसी संस्थाकी नियमावलीसे भला क्या प्रयोजन? संन्यासधर्मके अनुसार मैं यह कार्य नहीं कर सकता, परन्तु चन्दा बहिनीके लिये एक मध्यम मार्ग निकालना होगा। मैं यहाँके एक श्रेष्ठ वकीलको बुलवाता हूँ। श्रीजजसाहब (सम्मान्य श्रीरामप्रसादजी दीक्षित) भी उनके साथ बैठेंगे। तुम उन दोनोंके साथ बैठकर इस प्रारूपको भली प्रकार दिखला लो और निर्दोष नियमावली तैयार करवा लो।

अगले दिनसे उपर्युक्त तीनों व्यक्ति बैठकर पूर्व-निर्मित संकल्प-पत्र और नियमावलीका अध्ययन, विश्लेषण, विवेचन और संशोधन करने लगे। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह सारा कार्य पूज्य बाबाकी चौकीके सिरहाने बैठकर

हो रहा था। प्रात:काल आठ बजेसे लेकर शामको सात बजेतक इसी कार्यमें तीनों व्यक्ति लगे रहते और लगातार तीन दिनोंतक यह कार्य चलता रहा। चौथे दिन वकील साहबने श्रीमहिला संघका संकल्प-पत्र एवं नियमावली पूज्य बाबाको आद्यन्त सुनायी। पूज्य बाबाने उनके श्रमकी पूर्ण सराहना की। वकील साहबके चले जानेके बाद पूज्य बाबाने श्रीजजसाहबसे कहा—इसमें कई त्रुटियाँ हैं। मैं वकील साहबके सामने बोलता तो उनके सम्मानपर खरोंच लग जाती। आप मुझे फिरसे सारा सुनाइये।

श्रीजजसाहबने आदिसे अन्ततक फिरसे सुनाया और जहाँ-तहाँ आवश्यक संशोधन करवा दिया। इसके बाद पूज्य बाबाने बाई मीरासे कहा—बिटिया! मैं इसमें एक-दो बात और लिखवाना चाहता था, पर मैं निश्चित नहीं कर पा रहा हूँ कि उसे लिखवा देना उचित रहेगा अथवा नहीं। अच्छा, तुम कल दोपहरको एक बजे इसे लेकर मेरे पास आना।

दूसरे दिन दोपहरको पूज्य बाबाने बाई मीरासे उसे फिरसे आदिसे अन्ततक सुना और सुनकर कुछ संशोधन करवा दिया। इसके बाद उन्होंने इसे अपने हाथमें ले लिया और लगभग बीस मिनटतक पढ़ते रहे। संकल्प-पत्र और नियमावलीके पन्नोंको देख लेनेके बाद उन्होंने नेत्र बन्द करके उस सारे लिखित प्रारूपको भगवान्के श्रीचरणोंपर समर्पित किया। इतना कर चुकनेके बाद पूज्य बाबाने वह संकल्प-पत्र और नियमावली बाई मीराको दी और कहा—इसे लेकर तुम भागलपुर जाओ। वहाँ सबको दिखा लेना और आवश्यक लगे तो यथास्थान संशोधन कर लेना।

बाई मीराने विनम्र स्वरमें भक्ति-भाव पूर्वक कहा—इसे आपने भगवान्के श्रीचरणोंपर समर्पित कर दिया है। अब तो संशोधनका प्रश्न है ही नहीं।

पूज्य बाबाने बड़े प्यारसे कहा—बिटिया! तुम्हारा भाव बड़ा सुन्दर है। नन्दनन्दन श्रीकृष्ण तुम्हारी भावनाको अवश्य 'देखेंगे'। इसके बाद भी मेरा हितभरा सुझाव यह है कि श्रीमहिला संघके लिये जो संशोधन उपयोगी और आवश्यक लग रहा हो, वैसा इसमें करके ही पंजीकरण करवाना चाहिये।

पूज्य बाबाकी स्नेहभरी सिखावन सुनकर भी बाईका मन उसे पूरी तरहसे स्वीकार नहीं कर पाया था। बाई मीराके अधर मौन थे, पर मन मौन नहीं था। मनके भीतर अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था कि प्रभु-चरणोंपर समर्पित कर दिये जानेके बाद उसपर काली स्याही चलाना कहाँतक उचित है। पूज्य बाबाने मीराकी उन

उलझन-सुलझन पूर्ण भाव-रेखाओंको पढ़ लिया, जो उनके हृदयसे उभरकर मुखमण्डलपर झलक आयी थीं। पूज्य बाबाने पुन: उससे कहा—बिटिया! जब किसी प्रकारके संशोधनका प्रश्न आये, तब तुम कुछ क्षणोंके लिये आँखें बन्द कर लेना, उसपर विचार करना, फिर तुमको जो प्रेरणा मिलेगी, उसके बारेमें तुम यही समझना कि वैसा मैं ही कर रहा हूँ। उस समय जैसी प्रेरणा उभरे, तदनुसार कर लेना। तुम सच मानो, वह संशोधन मेरे द्वारा ही होगा। मुझे उचित नहीं लगेगा तो मैं वर्जित भी कर सकता हूँ।

हुआ भी ऐसा ही। बाई मीराने वही किया, जैसा पूज्य बाबाने कहा था। जब श्रीमहिला संघके संकल्प-पत्र और नियमावलीका अन्तिम रूप तैयार हो गया तो पंजीकरणके लिये पटना सचिवालयमें दिया गया। वहाँ भी विरोध करनेवालोंने कम बाधाएँ नहीं पहुँचायी। जब-जब बाधा आती, तब-तब आदरणीया चन्दाबाई भागलपुर-पटनासे बाई मीराको गोरखपुर भेजती और पूज्य बाबा उसे उचित परामर्श देते। वातावरणकी यह विषमता कई साल रही, परन्तु अन्तमें जैसा कि पूज्य बाबाने कहा था, विजय सत्यकी ही हुई। पूज्य बाबाके निर्देशानुसार कार्य करनेसे श्रीमहिला संघका विधिवत् पंजीकरण हो गया, सारे मुकदमें सलट गये और आज उन्हींके शुभाशीर्वादसे सारे कार्य सुचारु रुपसे चल रहे हैं।

श्रीसीमादेवी त्रिवेदी

स्वप्नमें चन्दन

माननीय श्रीत्रिवेदीजी वायुसेनामें एक वरिष्ठ पदाधिकारी हैं। आप हृदय रोगसे ग्रस्त हो गये। पूनाके सैनिक अस्पतालमें आपको भर्ती कराया गया। वहाँ १९ अक्टूबर १९८७ को कई परीक्षण हुए। परीक्षणसे पता चला कि हृदय-संस्थानसे रक्त-प्रवाह ठीक प्रकारसे नहीं हो रहा है। बिजलीके झटके देकर बार एक प्राथमिक उपचार किया गया, पर यह आवश्यक हो गया कि कहींपर किसी कुशल हृदयरोग विशेषज्ञको दिखलाना चाहिये। इसके लिये सेना विभागने २४ अक्टूबर १९८७ के दिन उनको मद्रासके अपोलो अस्पतालमें भर्ती करा दिया। वहाँ भी कई परीक्षण हुए। परीक्षणसे ज्ञात हो गया कि अत्यधिक अवरोध होनेके कारण हृदयसे रक्त-संचार ठीक प्रकारसे नहीं हो रहा है।

यह सारा समाचार उनकी धर्मपत्नी श्रीसीमाजीको दिया गया। बहिन श्रीसीमाजी २६ अक्टूबर १९८७ को मद्रास पहुँच गयीं और २८ अक्टूबरको श्रीत्रिवेदीजीके हृदयका ऑपरेशन हुआ। ऑपरेशनमें पाँच घण्टे लगे। इस पाँच घण्टेतक बहिन श्रीसीमाजीकी मनमें हालत बड़ी नाजुक थी। उनके माँगकी सुहाग-रेखाका प्रश्न था। एक-एक क्षण आकुलताका आगार बना हुआ था। पाँच घण्टे बाद जब वे ऑपरेशन थियेटरसे बाहर लाये गये, तब बहिन श्रीसीमाजीके चित्तको थोड़ी चैन मिल सकी। लगभग पन्द्रह दिन उनको अस्पतालमें रहना पड़ा। क्रमशः उनका स्वास्थ्य सुधरने लगा।

अब मनकी भावनाओंको थोड़ी राहत मिली। फिर पुरानी बातें याद आने लगीं। अस्पतालमें भर्ती होनेसे लगभग एक सप्ताह पहलेकी बात है। पूज्य बाबाने स्वप्नमें श्रीत्रिवेदीजीको दर्शन देकर अपने हाथसे उनको चन्दन दिया। वह चन्दन श्रीत्रिवेदीजीने बाबाके हाथसे लेकर अपने माथेपर त्रिपुण्डाकार लगा लिया। जब यह स्वप्न उन्होंने अपनी धर्मपत्नीको सुनाया, तब उस समय बहिन श्रीसीमाजीने यही सोचा कि पूज्य बाबा इन्हें दिखलायी देते हैं। स्वप्नमें इनको दिखलायी दिया, यह इनका बड़ा भाग्य है, पर मेरी भाग्य रेखा अच्छी नहीं। इसका प्रमाण यही है कि मुझे कभी भी पूज्य बाबाकी झलक नहीं मिल पाती। बहिन सीमाजी उस समय तो अपने भाग्यको कोस रही थी, किन्तु जब अस्पतालमें श्रीत्रिवेदीजीका स्वास्थ्य धीरे-धीरे सुधरने लगा, तब बहिन सीमाजीकी समझमें यह बात आने लगी कि पूज्य बाबाने स्वप्नमें जो चन्दन दिया, उसका अर्थ यही था आगे आनेवाले संकटसे बचाव और उनको जीवनका दान। अब बहिन श्रीसीमाजीको इस बातके लिये भी मनमें खेद था कि मैंने व्यर्थ ही अपने दुर्भाग्य उल्लेख करते हुए पूज्य बाबाको मन-ही-मन उपालम्भ दिया था। सच्ची बात तो यही है कि पूज्य बाबाने उनको चन्दन देकर मेरा ही कार्य किया है और मेरे सुहागको सुरक्षित रखा है।

फिर तो बहिन श्रीसीमाजीके हृदयकी भावनाएँ बार-बार पूज्य बाबाको प्रणाम कर रही थीं और बार-बार उनकी परिक्रमा लगा रही थीं। बहिन सीमाजीकी आन्तरिक आस्था यही है कि जीवनधन श्रीत्रिवेदजीको नवजीवन पूज्य बाबाने ही दिया है। उन दिनों बहिन श्रीसीमाजीके जो पत्र आये, उनमें उनके भावभरे अन्तरकी सरस प्रतिच्छवि रहा करती थी।

श्रीस्वेता भुवालका

मेरे बड़े भाईकी पौत्री बाई श्वेता विवाहके उपरान्त मुझसे मिलनेके लिये गीतावाटिका आयी। सौम्य वदन श्रीरघुवीरजीके साथ बाई श्वेताको देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। नव दम्पत्तिकी मंगल-कामनासे हृदय भरा हुआ था। बहुत स्नेह और सम्मान पूर्वक मैंने उनको अपने कमरेमें बैठाया। वे लोग मन्दिरमें श्रीठाकुरजीके दर्शन करके ही मेरे पास आये थे। मैं उनको समाधिपर ले गया। उन दोनोंने पूज्य बाबूजीकी समाधिको प्रणाम किया और फिर वे पूज्य बाबाके पास गये। पूज्य बाबाको भी भूमिपर माथा टेककर प्रणाम किया। पूज्य बाबाको मैंने उनका संक्षिप्त परिचय दिया।

मैं अपने साथ श्रीमद्भगवद्गीताकी तथाा श्रीरामचरितमानसकी एक-एक प्रति लेता गया था। वह मैंने पूज्य बाबाको दे दी। पूज्य बाबाने दोनों ग्रन्थोंके कुछ पृष्ठ उलटकर देखा और फिर कहा—बेटी! अपना आँचल फैला।

बाई श्वेताने अपना आँचल फैला दिया और पूज्य बाबाने उसे वे दोनों ग्रन्थ दे दिये। गीतावाटिकामें पूज्य बाबाके आशीर्वादको पाकर उसका सरल और सात्त्विक मन उल्लास और आनन्दसे भरा हुआ था। गीतावाटिकासे चले जानेके कई मास बाद बाई श्वेताके जो पत्र आया, उसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

आपके द्वारा डाकसे भेजी गयी पुस्तक 'वाटिकाके पत्र पुष्प' के चार भाग मिले। देखते ही मनमें कितनी प्रसन्नता हुई, यह मैं बता नहीं सकती। पहले आपकी कृपासे मुझे रामायण और गीताजी पूज्य राधाबाबाके हाथसे मिली। आपकी मुझपर बड़ी कृपा है। आपको एक आश्चर्यकी बात बताती हूँ। गोस्वामी तुलसीदासजीकी जो 'श्रीरामचरितमानस' मैं गीतावाटिकासे पूज्य बाबाके आशीर्वाद सहित लायी थी, वह एक आलमारीमें रखी हुई है। उसी आलमारीमें और भी अनेक पुस्तकें हैं, पर जब मैं इस रामचरितमानसको खोलती हूँ तो कमरा चन्दनकी खुश्बूसे भर जाता है, जब कि बाकी पुस्तकोंमें ऐसी बात नहीं है। इसे मैं पूज्य बाबाके आशीर्वादका फल मानती हूँ। यह मेरे जीवनकी निधि है।

श्रीउमाजी राणा

पाइलेटकी प्राण-रक्षा

आदरणीया श्रीउमाजी राणा काश्मीरकी रहनेवाली हैं। इन माताजीकी पूज्य बाबाके प्रति अपार श्रद्धा है, इसीके साथ वात्सल्य भी कम नहीं है। माताजीका सुपुत्र श्रीकुलदीप सिंह राणा भारतकी हवाई सेनामें विंग कमाण्डर है। एक बार अपने पुत्रके साथ माताजी पूज्य बाबाके पास आयी और पूज्य बाबासे कहा—बाबा! यह आपका छोटा भाई है।

पूज्य बाबाने कहा—मैं तो मानता हूँ, यह माने तब न?

एक दूसरी भेंटमें पूज्य बाबाने माताजीसे कहा—अभी तो यह हवाई सेनामें कार्य कर रहा है, पर कभी इसका जीवन बड़ा सात्त्विक हो जायेगा।

सन् १९९० के अक्टूबर मासमें श्रीकुलदीपजीकी नियुक्ति आसामके जोरहाट केन्द्रपर थी। आप सैनिक हवाई जहाज लेकर आकाशमें उड़ रहे थे। हवाई जहाजमें ये थे और आपका एक सहयोगी था। जब वापस लौटनेका समय आया तो हवाई जहाजके पहिये नहीं खुले। पहियेके खुलनेपर ही हवाई जहाज भूमिपर उतरता है और हवाई पट्टीपर दौड़ते-दौड़ते हुए ठहर जाता है, पर इस हवाई जहाजके पहिये नहीं खुलनेसे यह खतरेमें पड़ गया था। हवाई अड्डेपरके सेनाधिकारीने वायरलेससे श्रीकुलदीपजीको सूचना दी—आकाशमें उड़ते-उड़ते टंकीका पेट्रोल समाप्त कर दो, फिर हवाई अड्डेपर उतरो। उतरते समय जो खतरा होगा (जैसे आगका लग जाना, पाइलेटका जीवन संकट ग्रस्त होना, हवाई जहाजका नुकसान होना आदि-आदि) इस सारी दुर्घटनाको सँभालनेके लिये हमलोग यहाँ भूमिपर तैयार रहेंगे।

पेट्रोलके समाप्त हो जानेपर श्रीकुलदीपकजीने हवाई जहाजको हवाई पट्टीपर उतारा। भूमिपर उतरते समय हवाई पट्टीसे टकराते ही बड़े जोरकी आवाज हुई और रगड़ खाते हुए हवाई जहाज कुछ दूर जाकर ठहर गया। आश्चर्यकी बात यह थी कि न तो हवाई जहाजको विशेष नुकसान पहुँचा और न दोनों पाइलेटोंको कहीं खँरोच आयी। ऐसे अवसरपर आग लगनेका बड़ा भय रहता है, वह तो हुआ ही नहीं। हवाई अड्डेके सेनाधिकारीने तथा अन्य कर्मचारियोंने श्रीकुलदीपजीकी सीमातीत सराहना करते हुए कहा—अरे! आपने तो कमाल कर दिया। आप तो ऐसे उतर आये, मानो कुछ भी न हुआ हो। आपने खुदको तो बचाया ही, हवाई जहाजको भी बचा लिया।

श्रीकुलदीपजीने कहा—मैंने कुछ भी नहीं किया। मेरी जान तो संकटमें ही थी। बस 'बचानेवाले' किसीने बचा लिया।

भले श्रीकुलदीपजी अपनी इस सकुशलताका श्रेय किसी औरको दे रहे थे, पर सेनाधिकारीने इसे उनका कौशल ही माना। वे सेनाधिकारी उनके इस कौशलसे इतने प्रभावित, प्रसन्न और अभिभूत थे कि उनकी सिफारिशपर श्रीकुलदीपजीको राष्ट्रपति पुरस्कार मिला।

जब श्रीकुलदीपजीने इस दुर्घटनाकी चर्चा अपनी माँसे की तो उन माताजीने पूछा—जब हवाई जहाजके पहिये नहीं खुले तो क्या तुझे डर नहीं लगा?

श्रीकुलदीपजीने कहा—डर तो लगा और मेरे साथवाला व्यक्ति तो अपना धीरज एकदम खो बैठा। सामने मौतको देखकर वह बड़ा ही विकल हो रहा था। इसी समय एक विचित्र बात घटी। मैं पेट्रोल समाप्त करनेके लिये हवाई जहाजको आकाशमें उड़ा रहा था, तभी मैंने देखा कि मेरे सामनेसे पूज्य श्रीबाबा चले जा रहे हैं। पूज्य बाबाके पीछे-पीछे तुम भी जा रही हो। पूज्य बाबाके दिखलायी देते ही मैं निश्चिन्त हो गया कि अब कोई खतरा नहीं होगा और पेट्रोल समाप्त होते ही मैं भली प्रकारसे नीचे हवाई पट्टीपर उतर जाऊँगा। केवल मैं ही निश्चिन्त नहीं हुआ, बल्कि मेरे दृढ़ विश्वासको देखकर मेरे साथवाला सहयोगी भी धीरज धारण कर सका। पूज्य बाबाकी ही कृपासे उस समय मेरे जीवनकी और उस साथीके प्राणोंकी रक्षा हो सकी।

इस सारे विवरणको सुनकर माताजीका हृदय पूज्य बाबाके प्रति श्रद्धासे और पुत्रके प्रति प्यारसे छलक रहा था। माताजीने मन-ही-मन पूज्य बाबाको प्रणाम किया।

सौ० श्रीशारदादेवी त्रिवेदी

मेरे अपने हैं

श्रीभाईजीके अनन्य श्रद्धालु एवं निज जन श्रीजजसाहबकी पुत्री कहलानेका गौरव मुझे भगवान्‌ने ही दिया है। श्रीभाईजी जैसे परम भागवत् महामानवके

प्रति जो यत्किंचित् श्रद्धाका भाव है, वह मेरे पूज्य पिता श्रीरामप्रसादजी दीक्षितकी देन है। पूज्य बाबा तथा श्रीभाईजी जब कभी प्रयाग आते थे तो हमारे घरपर ही ठहरा करते थे। अब मैं क्या कहूँ उन महापुरुषके लिये, उन देवपुरुषके लिये? उन जैसे तो वे ही थे। कहाँ है उनकी उपमा?

बात सन् १९६४ की है। मेरी माँ बहुत अस्वस्थ थी। दिल्लीके एक बड़े अस्पतालमें उनका ऑपरेशन होनेवाला था। श्रीभाईजी भी अस्पतालमें उपस्थित थे। माँका ऑपरेशन लगभग दो-तीन घंटेतक चलता रहा। भाईजी अपनी समस्त भगवत्ताको अपने ही भीतर पूर्णत: छिपाये हुए एक साधारण पुरुषकी तरह ऑपरेशन रूमके बाहर बेंचपर चिन्तित-से बैठे थे। वे ऐसे चिन्तित थे, जैसे मानो आज उनका न जाने कितना प्रिय सुहृद् अस्वस्थ हो। वे कैसे चिन्तित न होते? सम्पूर्ण संसार तो उनका अपना ही था, प्रत्येककी पीड़ा उनकी पीड़ा थी। ऑपरेशन प्रारम्भ होनेपर वे हम सब लोगोंसे बोले—'हरि:शरणम्' मन्त्रका मनमें जप करो।

उन्होंने हमलोगोंसे जप करनेके लिये कहा और स्वयं भी बराबर जप करते रहे। उनके अधर मन्त्र-जपसे बराबर स्फुरित हो रहे थे। ऐसी थी उनकी ईश्वर-निष्ठा एवं प्रत्येक प्राणीके कष्ट-निवारणके लिये आतुरता!

कहीं मान नहीं, कहीं बड़प्पन नहीं, सम्मानकी भावना उन्हें छू तक नहीं गयी थी। न वेष-भूषासे उनकी महानताका आभास होता था, न उनकी सरल मुख मुद्रासे और न उनके व्यवहारसे ही। सबको सदा यही अनुभूति होती थी कि वे तो मेरे ही हैं, बिलकुल मेरे अपने हैं।

सौ० श्रीअनुराधा सिंह

दीपक नहीं जले

मेरे पिताजी श्रीजीवबोधन सिंह पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)-के पास काम किया करते थे। वे गीताप्रेससे प्रूफके पन्ने गीतावाटिका शामको लाया करते थे और रातमें जब बाबूजी प्रूफको देख लिया करते थे तो सबेरे वे उन्हें गीताप्रेस पहुँचा देते थे। गीताप्रेससे सम्पादकीय विभागकी डाक

भी वे ही लाया करते थे। गीतावाटिका डाकघरकी स्थापना तो सन् ६९ या ७० के आस-पास हुई है। इसके पहले सम्पादकीय विभागकी सारी डाक गीताप्रेसमें ही आया करती थी। डाक और प्रूफको लानेके अतिरिक्त बाबूजीके और भी कई प्रकारके कामोंको वे किया करते थे। बरसातके दिनोंमें बाढ़ ग्रस्त लोगोंके मध्य अन्न बँटवाना, जाड़ेके मौसममें ठण्डसे ठिठुरते लोगोंके मध्य वस्त्र बँटवाना, महत्त्वपूर्ण पत्रोंको विशिष्ट व्यक्तियोंके हाथमें देकर आना, इस प्रकारके अपने कई निजी काम बाबूजी मेरे पिताजीसे करवाया करते थे। ऐसा नहीं था कि मेरे पिताजी दस बजे आकर केवल छ: घंटे काम करें और शामको चार बजे घर चले जायें। पिताजी सपरिवार गीतावाटिकामें ही रहते थे। चाहे रात हो या दिन, चाहे सुबह हो या शाम, बाबूजीका जब-जो काम सामने आता, उसे वे किया करते थे। मेरे पिताजीपर बाबूजीका बड़ा विश्वास था और उनके विश्वासको मेरे पिताजीने भलीभाँति निभाया।

जो अगली बात मैं लिख रही हूँ, वह मैंने अपने माता-पिताजीसे सुनी थी। यह बात उस समयकी है, जब मैं एक अबोध बालिका थी और मेरी आयु मात्र पाँच वर्षकी थी। मेरे कोई भाई नहीं था। जब मेरे भाईका जन्म हुआ तो पिताजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। एक साधारण गृहस्थ यही चाहता है कि मेरा वंश चले। भाईका जन्म होते ही केवल पिताजीको ही नहीं, हमारे कुटुम्बके सभी लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। परिवारमें प्रसन्नता छायी हुई थी, परन्तु विधिका विधान बड़ा विचित्र है। भाग्यमें जब कोई वस्तु बदी नहीं रहती तो मिली हुई वस्तु भी छिन जाती है। सन् १९५८ की ठीक दीपावलीके दिन मेरे शिशु भाईका देहान्त हो गया। वह इस संसारमें कुल दस माह ही रह पाया। परिवारकी सारी प्रसन्नताको शोकने निगल लिया। इकलौते लड़केकी मृत्यु होती ही है परम दु:खकारी। घरमें बहुत अधिक रोना-धोना मच गया। माताजीके हृदयमें अपार शोक था और उनकी आँखोंसे लगातार आँसुओंकी धारा बह रही थी। किसी प्रकार उस शवको ठिकाने लगाया गया। ठीक दीपावलीके दिन यह अति करुण दृश्य देखनेको मिला। इस दिन घरमें जब चूल्हा ही नहीं जला तो भला दीपक कैसे जल पाते!

सबसे अधिक आश्चर्यमें डालनेवाली बहुत बड़ी बात यह थी कि उस दीपावलीके दिन गीतावाटिकाकी कोठीकी छतपर भी दीपक नहीं जले। दिन

गया और रात आयी। रातके आते ही पास-पड़ोसके घरोंकी छतपर दीपोंकी कतार जगमगाने लगी, पर गीतावाटिकामें अँधेरा ही था। दीपावलीकी रातमें भी कोठीकी छतपर दीपोंकी पंक्ति नहीं जलायी गयी, इसीलिये कि बाबूजीने दीप जलानेके लिये मना कर रखा था। बाबूजीको यह रंचमात्र भी पसन्द नहीं था कि हमारे एक कर्मचारीका परिवार शोकमें डूबा रहे और हमलोग दीप जलायें और उत्सव मनायें। देवोपासनाकी दृष्टिसे बाबूजीके घरमें रातको श्रीगणेशजी एवं श्रीलक्ष्मीजीके पूजनके समय दीपक जलाये गये, जिससे पूजनका कार्य विधिपूर्वक पूर्ण हो सके। पूजनमें जितने दीपोंकी आवश्यकता थी, उतने ही दीपक जलाये गये, उससे अधिक एक भी नहीं। एक कर्मचारीके दुःखसे उनकी इतनी एकात्मता देखकर पिताजीके मनमें सचमुच बड़ा आश्चर्य हो रहा था। बाबूजीकी इस आत्मीयतापर मेरे पिताजी और हमारा सारा परिवार न्योछावर था। सचमुच, ऐसे मालिक भला कहाँ होते हैं, जो अपने कर्मचारियोंके दुःख-दर्दको अपना दुःख-दर्द मानें।

आ० श्रीगायत्रीबाई बाजोरिया

स्वागताभिनन्दन

वाराणसीमें हमलोगोंका एक संस्कृत विद्यालय है। उसका नाम है श्रीनन्दलाल बाजोरिया संस्कृत विद्यालय। पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) की मान्यता रही है कि अपने देश भारतमें जितनी भी समस्याएँ हैं, उसका मूल कारण है सब ओर फैली हुई अभारतीयता और भारतीयताका मूल स्रोत संस्कृत साहित्यमें है, एतदर्थ संस्कृत साहित्यके पठन-पाठनके कार्यको बढ़ावा देना चाहिये। अपनी इसी मान्यताके फलस्वरूप पूज्य बाबूजीने सर्वमान्य राष्ट्रपति श्रीराधाकृष्णन्‌को एक बार लिखे गये पत्रमें लिखा था—संस्कृत संसार भरकी भाषाओंमें प्राचीनतम और समृद्धतम है। संस्कृत हमारे राष्ट्रीय गौरवका प्रतीक है। साथ ही भारतकी विभिन्न भाषाओंमें भावनात्मक एकताका एक समर्थ माध्यम है।

संस्कृत भाषा और साहित्यके प्रति जिन बाबूजीकी ऐसी श्लाघनीय मान्यता थी, उनको अपने विद्यालयमें बुलानेके लिये हमलोगोंकी बड़ी इच्छा

थी। २२ जनवरी १९६७ को हमारे विद्यालयका वार्षिकोत्सव होनेवाला था। इसी वार्षिकोत्सवमें मेरे आग्रह भरे अनुरोधको स्वीकार करके बाबूजीने अध्यक्ष बननेकी अनुमति प्रदान कर दी, इससे सभीमें प्रसन्नता छा गयी। उत्सवमें पूज्य बाबूजी पधारे और इस अवसरपर भूतपूर्व राज्यपाल श्रीश्रीप्रकाशजी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके कुलपति डॉ० त्रिगुणसेन एवं काशीके कई संस्कृत विद्वान् उपस्थित थे।

मुझे ज्ञात था कि बाबूजीको सार्वजनिक अभिनन्दन सर्वथा अप्रिय है, अतः यह हमलोगोंके द्वारा होता ही कैसे, किन्तु मनकी श्रद्धाभावना कुछ करनेके लिये उत्सुक भी हो रही थी। उनका अभिनन्दन न सही, पर अभिवन्दन तो हमलोग कर ही सकते थे और वार्षिकोत्सवके सभा-मंचपर विद्यालयके अधिकारी, अध्यापक एवं अध्ययनार्थीगणकी ओरसे उनके व्यक्तित्वका अभिवन्दन किया गया। स्वागताभिवन्दनमें उनके प्रति सहज स्फूर्त आठ श्रद्धोद्‌गार निवेदित किये गये। प्रत्येक श्रद्धोद्‌गार एक सुमन है और प्रत्येक सुमन बाबूजीके व्यक्तित्वके किसी-न-किसी पक्षका यत्किंचित् सौरभ विखेर रहा है। बाबूजीका व्यक्तित्व तो एक विशाल उपवन है, जिसमें अमित सौरभ एवं अचिन्त्य शोभावाले भाँति-भाँतिके असंख्य पुष्प हैं। ऐसे दिव्य उपवनकी सम्पूर्ण सुषमा और सौरभको प्रस्तुत कर सकना कभी सम्भव ही नहीं है। आत्मतोषके लिये केवल आठ सुमन स्वागताभिवन्दनमें समर्पित हुए, वे इस प्रकार है—

[१]

अपने सलिलका अनवरत वितरण करनेके बाद भी सुरसरिताका जलकोष असीम है, इसीलिये कि उसका अक्षय स्रोतसे अविरल सम्बन्ध है। इसी तरह आपके आध्यात्मिक प्रकाशकी रश्मियोंके निरन्तर विकीर्ण होते रहनेके उपरान्त भी आपके प्रकाशका पुञ्ज नित्य पूर्ण है, इसीलिये कि प्रकाशके आधार 'अक्षय-प्रकाशक' से आपका नित्य एवं पूर्ण संग है। आपके प्रकाशने साधारण मानवको समुन्नत होनेकी प्रेरणा दी है। विविध भावोंके अनेक भक्त-साधक अपने साधन-पथपर आपके प्रकाशके सहारे सरलतासे बढ़ते गये हैं। ज्ञान-मार्गी अथवा इससे इतर साधक भी आपके प्रकाशसे लाभान्वित होते रहते हैं। 'अक्षय' की साधना करनेवाले सभी साधकोंके, भले ही वे किसी पथके हों, पथको प्रकाशित करनेकी क्षमता, साधनाक्षेत्रके आपके विविध अनुभव-पुञ्जका प्रमाण है। अक्षय भगवान्‌की नित्य सन्निधिमें रहनेवाले सिद्धोंसे सम्मिलन होनेपर आपके अद्वितीय

प्रकाशकी अमाप्य उज्जवलता एवं अकथ्य सरसता अलक्षित रूपसे बिखर उठती है। दूरस्थ अथवा समीपस्थ साधारण या साधक या सिद्धको जाने-अनजाने प्रेरणा देनेवाली आपकी आध्यात्मिकताका प्रकाश चिन्मय है।

हे प्रकाशपुञ्ज! हम आपका अभिनन्दन करते हैं।

[२]

मानव तो वही है, जिसके व्यवहारमें 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का सिद्धान्त अवतरित हो, किन्तु महामानव वह है, जो पर-हितके लिये निज-हितका परित्याग कर दे। आपके सर्वथा निर्दोष होते हुए भी आपका प्राणान्त करनेके प्रयासमें अथवा आपको फाँसी दिलवानेके प्रयत्नमें संलग्न व्यक्तियोंको भी आपने पोषण एवं प्यार दिया है। आपके निजी परिवारके सदस्योंको चोट पहुँचानेवाले लोगोंका आपने अधिकाधिक मंगल किया है और उनको सम्मान दिया है। असत्यवादीके असत्य-जन्य अपमानको ढकनेके लिये आपका अन्तर सदैव तत्पर रहता है। स्वजनों और साथियोंकी अनेक अवांछनीय विपरीतताओंको आपका शील-स्वभाव ही सहन कर सकता है। परतन्त्र भारतमें अँग्रेजी शासकोंद्वारा प्रस्तावित श्रेष्ठ उपाधि 'नाइटहुड' को, स्वतन्त्र भारतमें केन्द्रीय सरकारद्वारा प्रस्तावित सर्वोच्च उपाधि 'भारत रत्न' को एवं इसी प्रकारके प्रस्तावित अन्य अनेक सम्मानसूचक आग्रहोंको अस्वीकार कर आपने अपने अमानीपनका दुर्लभ उदाहरण प्रस्तुत किया है। आपकी मान-शून्यता, क्षमा, पर-हित-परायणता, सहनशीलता आदि दिव्य सद्गुणावली आदर्श है।

हे महामानव! हम आपका अभिनन्दन करते हैं।

[३]

गीता, गंगा और गायत्रीके समान गाय भी हिन्दू-धर्म और संस्कृतिका अभिन्न अंग है, उसी गायके आप हृदयसे पुजारी हैं। आपकी अपनी निजी गोशाला है तथा अनेक सार्वजनिक गोशालाओंके आप संचालक एवं पथ-प्रदर्शक हैं। गायकी महिमाके उद्घाटनके लिये, गो-सम्बन्धी तथ्योंके प्रकाशनके लिये, गायके प्रति श्रद्धाके विवर्द्धनके लिये, गो-वंशकी हत्याके निरोधके लिये और गोरक्षाके प्रयासोंके प्रोत्साहनके लिये आपकी लेखनी, वाणी और सम्पादन-कला सदैव प्रयत्नशील रही है। 'कल्याण' का गो-अंक इसका स्पष्ट प्रमाण है। आपने घोषणा की—'गोरक्षा विश्व-रक्षा है।' सर्वदलीय गोरक्षा महाभिमान समितिद्वारा

संचालित गोरक्षा-आन्दोलनको 'सर्वदलीय' स्वरूप देनेका श्रेय आपको है और उसके सर्वोच्च सूत्रधारोंमें आप भी एक हैं। गोकी रक्षाके लिये देश-विदेशमें होनेवाले भगवदाराधन, देवानुष्ठान तथा आत्म-बलिदानकी प्रेरणा 'कल्याण' ने दी। आन्दोलनकी सफलताके लिये जन-जागरण, द्रव्य-संग्रह एवं गतिरोध-निवारण परमावश्यक है, एतदर्थ आपके द्वारा कृत प्रयास चिर-स्मरणीय है। आपकी गो-भक्ति सर्वथा अनुकरणीय है।

हे गोभक्त! हम आपका अभिनन्दन करते हैं।

[४]

राष्ट्रके उज्ज्वल भविष्यकी प्रबल कामनाने तथा राष्ट्रके साथ एकात्मताकी प्रबल भावनाने आपके जीवनको एक विशिष्टता प्रदान की है। बीसवीं सदीके आरम्भमें अँग्रेजी शासनके उन्मूलनके स्वप्नोंमें डूबी हुई आपकी क्रान्तिकारी हथेलियोंको बन्दूक और कारतूसोंकी उष्णताकी अनुभूति है। अपनी देशभक्तिके कारण लगभग इक्कीस मासतक आपको नजरबन्दीकी कठिन सजा भोगनी पड़ी है। जीवनकी धारा आध्यात्मिकताकी ओर प्रवाहित होनेके बाद भी स्वतंत्रता-संग्रामकी घटनाओंने समय-समयपर आपके तन-मनको आलोड़ित किया है। स्वदेशी-आन्दोलनमें विदेशी वस्त्रोंका होलिकोत्सव भी आपने मनाया है और अद्यावधि आपके द्वारा खादी-व्रतका पालन हो रहा है। नोआखाली-काण्ड, चीनी-हमला और पाकिस्तानी आक्रमणके समय आपकी वाणीके शौर्यने तथा ओजस्वी आह्वानने भारतीय जन-मानसको आन्दोलित किया है। देशके लिये बलिदान होनेवालोंकी सेवामें आपका धन सदा बहता रहा है। राष्ट्रकी वेदीपर आपके तन-मन-धनका सोत्साह निवेदन अतुल्य है।

हे राष्ट्रसेवक! हम आपका अभिनन्दन करते हैं।

[५]

भगवान् रामकी सुन्दरताने क्या स्वजन, क्या शत्रु, सभीको रिझा लिया था; इसी प्रकार आपके मनकी सरलताने क्या अपरिचित, क्या सुपरिचित, सभीको लुभा लिया है। परस्पर लड़ने वाले परिवारोंके दोनों पक्षोंके लिये आप सदा विश्वसनीय रहे हैं केवल अपनी निश्छल सहृदयताके कारण। गोरक्षा-महाभियानमें विरोधी व्यक्ति या तत्त्व इसीलिये संगठित हो सके कि सभीको आपके व्यक्तित्वपर विश्वास है। श्रमिक-समस्याओंके जालमें यदा-कदा गीताप्रेस फँसता

रहा है, परन्तु आप सदैव ही श्रमिकोंकी श्रद्धाके पात्र रहे। बालक आपकी सरलताको देखकर, आर्त्त आपकी सहृदयतामें नहाकर, संस्थाएँ आपसे परामर्श लेकर, समाज आपकी सत्यताको परखकर, विद्वान् आपकी गहराईमें उतरकर, भावुक आपकी भक्तिमें डूबकर, साधक आपके अनुभवोंको पाकर और संत आपकी सेवासे मुग्ध होकर आपको अपना मानते हैं। क्षुद्र एवं संकीर्ण परिधियोंमें आबद्ध न होनेके कारण प्रत्येक नेता, चाहे वे किसी दलके हों और प्रत्येक धर्माचार्य चाहे वे किसी सम्प्रदायके हों, आपको सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं। आपकी दृष्टिकी विशालता, अन्तरकी कोमलता, आत्मीयताकी सहजता और 'स्व' की व्यापकताने आपको जन-जनका स्वजन बना दिया है।

हे सर्वप्रिय! हम आपका अभिनन्दन करते हैं।

[६]

नवनीतकी अपेक्षा संत-हृदयको इसीलिये श्रेष्ठ कहा गया है कि वह निज नहीं, पर-तापसे द्रवित होता है। आपको निज कष्टकी प्रतीति नहीं होती, पर दूसरोंके दुःख-दर्द-दाह आपके अपने हैं। आपके पास धन नहीं है, किन्तु निर्धन दुखियोंकी सेवाके लिये धनका अभाव भी नहीं है। अनेक विद्यार्थियोंके लिये विविध शुल्कोंकी व्यवस्था आप करते हैं। अकाल और बाढ़से पीड़ित क्षेत्रोंमें अन्न-वस्त्रके वितरणकी व्यवस्था एक बार नहीं, अनेक बार आपके द्वारा सम्पन्न हुई है। शीतमें ठिठुरते भिक्षुकों एवं ग्रामीणोंको प्रतिवर्ष आप ही कम्बल-वस्त्रादि देते-दिलवाते हैं। अभाव ग्रस्त परिवारोंकी सामाजिक प्रतिष्ठाकी रक्षा करते हुए आप ही उनके पास प्रतिमास अयाचित द्रव्यराशि भेजते हैं। कुष्ठियोंके लिये चिकित्सा तथा अन्धे-बहरे-गूँगोंकी शिक्षाकी व्यवस्थामें आपका सहयोग सराहनीय है। निर्धन परिवारोंकी कन्याओंके विवाहकी चिन्ता और अनाथ विधवा बहिनोंके जीवन-यापनकी समस्याके निदानके लिये आप सदा प्रयत्नशील रहे हैं। पर्यटकों तथा तीर्थ-अभिलाषियोंकी विभिन्न समस्याओंके हलका आपका प्रयास भी अनूठा है। पर-दुखसे द्रवित आपका हृदय अनुपमेय है।

हे पर-दुःख-कातर! हम आपका अभिनन्दन करते हैं।

[७]

श्रीमद्भागवत भगवान् श्रीकृष्णकी वाङ्मयी मूर्ति है। 'कल्याण' भी उसी

प्रकार आपका वाङ्मय स्वरूप है। 'कल्याण' के सम्पादन द्वारा आपने हिन्दी साहित्यके विशाल भण्डारको अपूर्व एवं प्रभूत रत्न प्रदान किये हैं। 'कल्याण' का प्रत्येक विशेषांक अपने विषयका एक विश्व-कोष है। आपकी अमूल्य कृति 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' सरल भाषामें सच्चे प्रेमकी एक स्पष्ट व्याख्या है, जिसने श्रीराधा-माधव-प्रेमसे सम्बन्धित सम्पूर्ण भारतीय साहित्यकी अनेक विकृत एवं भ्रान्त धारणाओंका उन्मूलन किया है। आपके काव्य-गगनकी उज्ज्वल एवं पावन आकाशगंगा 'श्रीराधा-माधव-रस-सुधा' के षोडश पदोंमें परमोज्ज्वल प्रेमकी सरसतम एवं हृदयस्पर्शी पवित्र अभिव्यक्ति है। आपके लेख-संग्रह, सूक्ति-माला, सूत्र-टीका, पद-रचना, 'शिव'-वचन, भक्त-गाथा आदि प्रकाशन सुबोध भाषामें होनेके कारण मानव मात्रको ईश्वरानुरक्ति, जग-विरक्ति एवं दैवी-सम्पत्तिकी साधनामें संलग्न होनेकी सतत प्रेरणा प्रदान करते हैं। आपका साहित्य दैवी प्रकाश, सतत आह्लाद एवं देवोन्मुखी तन्मयताका अविरल स्रोत है।

हे साहित्यकार! हम आपका अभिनन्दन करते हैं।

[८]

आजके विद्यालयोंकी आधुनिक शिक्षासे दीक्षित न होनेपर भी अनेक भाषाओंपर आपका अधिकार, आपकी विलक्षण प्रतिभा, पहुँच और लगनका परिचायक है। 'कल्याण' पत्रकी प्राञ्जल एवं प्रौढ़ भाषा आपके अगाध पाण्डित्यका प्रमाण है। बंगालके वैष्णव-साहित्यका गहन अध्ययन एवं सहज स्वाभाविक बंगला बोलनेके कारण आप अखिल-भारतीय-बँगभाषा-सम्मेलनके स्वागताध्यक्षपदको सुशोभित कर चुके हैं। आपद्वारा गुजराती-मराठीके अनूदित अंक प्रायः 'कल्याण' में प्रकाशित होते रहते हैं। संस्कृत भाषाके मूलग्रन्थोंका अपने विशद स्वाध्याय किया है। वैसा ही स्वाध्याय अँग्रेजीके धार्मिक एवं नैतिक साहित्यका भी है। दक्षिण भारतकी भाषाओंको भी सीखनेकी आपको सदा ही अभिरुचि रही है। राजस्थानी होनेके नाते आपको राजस्थानी भाषाका सम्यक् ज्ञान तथा राजस्थानी साहित्यकी विस्तृत जानकारी है। आपका भाषाधिकार और भाषार्जन स्तुत्य है।

हे भाषाविद्! हम आपका अभिनन्दन करते हैं।